प्रातिशाख्य में भी प्रसिद्ध हैं तो क्या इस बात को वे नहीं जानते कि
। वर्णान्तर कभी नहीं हो सकते क्योंकि वे तो कवर्ग में पढ़े हो हैं ॥

तथा अपाणिनीयशिक्षा को पाणिनिकृत मानके पाठ किया करते औ
उस को वेदाङ्ग में गिनते हैं क्या वे इतना भी नहीं जानते कि (अ
शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा) अर्थ—मैं जैसा पाणिनि मुनि क
शिक्षा का मत है वैसी शिक्षा कहूंगा इस में स्पष्ट विदित होता है कि
यह ग्रन्थ पाणिनि मुनि का बनाया नहीं किन्तु किसी दूसरे ने बनाय
है ऐसे २ भ्रमों की निवृत्ति के लिये बड़े परिश्रम से पाणिनिमुनिकृत
शिक्षा का पुस्तक प्राप्त कर उन सूत्रों की सुगम भाषा में व्याख्या क
के वर्णोच्चारण विद्या की शुद्ध प्रसिद्धि करता हूं कि मनुष्यों को थोड़े प
रिश्रम से वर्णोच्चारणविद्या की प्राप्ति शीघ्र हो जावे ॥

इस ग्रन्थ में जो २ बड़े अक्षरों में पाठ है वह २ पाणिनिमुनिकृ
और मध्यम अक्षरों में अष्टाध्यायी और महाभाष्य का पाठ और जो व
छोटे अक्षरों में छपा है वह मेरा बनाया है ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये।

इति भूमिका समाप्ता

ह० दयानन्दसरस्वती (काशी)

॥ ओ३म् ब्रह्मात्मने नमः ॥

अथ वर्णोच्चारणशिक्षा ॥

(प्रश्न) वर्ण वा अक्षर किन को कहते हैं ?

१-(उत्तर) अक्षरं नक्षरं विद्यादश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम् । वर्णं वाहुः पूर्वसूत्रे किमर्थमुपदिश्यते ॥ महाभाष्य । अ १ । पा० १ । आ० २ ॥

मनुष्य (अक्षरं नक्षरम्) जो सर्वत्र व्याप्त जिन का कभी विनाश नहीं होता (वर्णं वाहुः पूर्वसूत्रे) अथवा जिन को पूर्व सूत्र (१) में वर्ण और अक्षर कहते हैं (विद्यात्) उन को प्रयत्न से जानें ॥

(प्रश्न) किसलिये इन का उपदेश किया जाता है ?

२-(उत्तर) वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र च ब्रह्म वर्तते ।
तदर्थमिष्टबुद्ध्यर्थं लघ्वर्थं चोपदिश्यते ॥

सोऽयमक्षरसमाम्नायो वाक्समाम्नायः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः सर्ववेदपुण्यफलावाप्तिश्चास्य ज्ञाने भवति । महाभाष्य अ० १ । पा० १ । आ० २ ॥

मनुष्य (यत्र) जिस में (ब्रह्म च) शब्द ब्रह्म वेद और परब्रह्म की प्राप्ति हो (वाग्विषयः) और जो वाणी का विषय अर्थात् (वर्णज्ञानम्) वर्णों का यथार्थ विज्ञान है उस को जान कर (तदर्थम्) इस इष्टबुद्धि अर्थात् वर्णों का यथार्थ अभीष्ट ज्ञान और स्वरूप [illegible]

(१) महाभाष्य के अ इ उ ण् आदि सूत्रों के व्याख्यान में [illegible] की अपेक्षा में लिखा हुआ सूत्र और [illegible] इस की अपेक्षा में पूर्व [illegible] इस सूत्र में वर्ण का व्याख्यान है ॥

प्रातिशाख्य में भी प्रसिद्ध है तो क्या इस बात को वे नहीं जानते कि वे वर्णान्तर कभी नहीं हो सकते क्योंकि ये तो कवर्ग में पढ़े हो हैं ॥

तथा अपाणिनीयशिक्षा को पाणिनिकृत मानके पाठ किया करते और उस को वेदाङ्ग में गिनते हैं क्या वे इतना भी नहीं जानते कि (अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा) अर्थ—मैं जैसा पाणिनि मुनि की शिक्षा का मत है वैसी शिक्षा कहूंगा इस में स्पष्ट विदित होता है कि यह ग्रन्थ पाणिनि मुनि का बनाया नहीं किन्तु किसी दूसरे ने बनाया है ऐसे २ भ्रमों की निवृत्ति के लिये बड़े परिश्रम से पाणिनिमुनिकृत शिक्षा का पुस्तक प्राप्त कर उन सूत्रों को सुगम भाषा में व्याख्या कर के वर्णोच्चारण विद्या की शुद्ध प्रसिद्धि करता हूं कि मनुष्यों को थोड़े ही परिश्रम से वर्णोच्चारणविद्या की प्राप्ति शीघ्र हो जावे ॥

इस ग्रन्थ में जो २ बड़े अक्षरों में पाठ है वह २ पाणिनिमुनिकृत और मध्यम अक्षरों में अष्टाध्यायी और महाभाष्य का पाठ और जो २ छोटे अक्षरों में छपा है वह मेरा बनाया है ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये ॥

इति भूमिका समाप्ता

५–(उत्तर) तमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रं गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः । स श्रेयसा चाभ्युदयेन चैव सम्यक् प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति ॥ २ ॥

(विप्राः) विद्वान् लोग (तम्) उस आकाशवायुप्रतिपादित (अक्षरम्) नाशरहित (गुहाशयम्) विद्यासुशिक्षासहित बुद्धि में स्थित (परम्) अत्युत्तम (पवित्रम्) शुद्ध (ब्रह्म) शब्दब्रह्मराशि को (सम्यक्) अच्छे प्रकार (उशन्ति) प्राप्ति की कामना करते हैं और (स एव) वही (सम्यक्प्रयुक्तः) अच्छे प्रकार प्रयोग किया हुआ शब्द (अभ्युदयेन) शरीर आत्मा मन (च) और स्वसम्बन्धियों के लिये इस संसार के सब सुख तथा (श्रेयसा) विद्यादि शुभ गुणों के योग (च) और मुक्ति सुख से (पुरुषम्) मनुष्य को (युनक्ति) युक्त कर देता है इसलिये इस वर्णोच्चारण की श्रेष्ठ शिक्षा से शब्द के विज्ञान में सब लोग प्रयत्न करें॥

शब्द का लक्षण ।

६–श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः ॥ महाभा० अ० १ । पा० १ । सू० २ । आ० २ ।

यह (अ इ उ ण्) सूत्र की व्याख्या में लिखा है कि (श्रोत्रोपलब्धिः) जिस का कान इन्द्रिय से ग्राम (बुद्धिनिर्ग्राह्यः) और बुद्धि से निरन्तर ग्रहण (प्रयोगेणाभिज्वलितः) जो उच्चारण से प्रकाशित होता तथा (आकाशदेशः) जिस के निवास का स्थान आकाश है (शब्दः) वह शब्द कहाता है ॥

(प्रश्न) वर्णमाला में कितने वर्ण हैं?

७–(उत्तर) त्रिषष्टिः ॥ ३ ॥

तिरसठ हैं । और वे अकारादि वर्णों में विभक्त हैं।

अकारादि स्वरों का स्वरूप ॥

ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत
अ	आ	आ३
इ	ई	इ३
उ	ऊ	उ३
ऋ	ॠ	ऋ३
ऌ	०	ऌ३
०	ए	ए३
०	ऐ	ऐ३
०	ओ	ओ३
०	औ	औ३

कवर्ग—क ख ग घ ङ

चवर्ग—च छ ज झ ञ

टवर्ग ट ठ ड ढ ण

तवर्ग त थ द ध न

पवर्ग—प फ ब भ म

अन्तस्थ-य र ल व

ऊष्म—श ष स ह

अयोगवाहरूप

ः विसर्जनीय	ँ ह्रस्व
ᳵ जिह्वामूलीय	ँ दीर्घ
ᳶ उपध्मानीय	ँ अनुनासिक चिह्न
ं अनुस्वार	ळ और यह अक्षर
	इस को यार यम भी कहते

बारह अक्षरी का स्वरूप ॥

क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
।	ा	ि	ी	ु	ू	े	ै	ो	ौ	ं	ः
क	का	कि	की	कु	कू	के	कै	को	कौ	कं	कः

संयोगचक्रम् ॥

क् य् अ—क्य	ज् ञ् अ—ज्ञ	क् ऋ—कृ	क् व् अ—क्व
क् च् अ—क्च	ह् य् अ—ह्य	क् ॠ—कॄ	क् ष् अ—क्ष
क् र् अ—क्र	ह् व् अ—ह्व	क् ऌ—कॢ	श् य् अ—श्य

जैसे यह ककार का स्वरों के साथ मेल करके स्वरूप दिखलाया है वैसे ही खकारादि वर्णों का स्वरों के साथ मेल और स्वरूप का विधान बुद्धि से पढ़ने पढ़ानेवालों को लिख लिखा कर ठीक २ करना चाहिये ॥

स्वरों का लक्षण ॥

८—स्वयं राजन्त इति स्वराः ॥ महाभाष्ये अ० १ । पा० २ । सू० २९ । आ० १ ॥

जिन के उच्चारण में दूसरे वर्णों के सहाय की अपेक्षा न हो वे स्वर कहाते हैं ॥

स्वरों की संज्ञा ॥

९—ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ अ० १। पा० २। सू० २७ ॥

स्वरों की ह्रस्व दीर्घ और प्लुत भेद से तीन संज्ञा हैं। इन के उच्चारण समय का लक्षण यह है कि जितने समय में अङ्गुष्ठ के मूल की नाड़ी की गति एक बार होती है उतने समय में ह्रस्व उस से दूने काल में दीर्घ और उस के तिगुने काल में प्लुत का उच्चारण करना चाहिये और स्वरों के उदात्तादि भी गुण हैं ॥

१०—उच्चैरुदात्तः ॥ अ० १। २। २९ ॥

ऊर्ध्वध्वनि से उदात्त। और

११—नीचैरनुदात्तः ॥ अ० १। २। ३० ॥

नीचे स्वर से अनुदात्त बोला जाता है।

१२—समाहारः स्वरितः ॥ अ० १। २। ३१ ॥

उदात्त और अनुदात्त स्वरों को मिला कर बोलना स्वरित कहाता है

१३—ह्रस्वं लघु ॥ अ० १। ४। १० ॥

ह्रस्व स्वर की लघु संज्ञा। और

१४—संयोगे गुरु ॥ अ० १। ४। ११ ॥

जो दो वा अधिक व्यञ्जनों का संयोग परे हो तो पूर्व ह्रस्व स्वर की गुरु संज्ञा होती है। जैसे (विप्रः) यहां वकार में इकार की गुरु संज्ञा है क्योंकि इस के परे पकार और रेफ का संयोग है॥

१५—दीर्घं च ॥ अ० १। ४। १२ ॥

और दीर्घ की भी गुरु संज्ञा है।

१६—हलोऽनन्तराः संयोगः ॥ अ० १। १। ७ ॥

अनन्तर अर्थात् अचों का जो व्यवधान उस से रहित हलों की संयोग संज्ञा है ॥

व्यञ्जन का लक्षण ॥

१७—अन्वग्भवति व्यञ्जनमिति ॥ म० भा० ॥

अ० १ । पा० २ । सू० २९ । आ० १ ॥

जिन का उच्चारण विना स्वर के नहीं हो सकता वे व्यञ्जन कहाते हैं।

उच्चारण करनेवालों के गुण ॥

१८—माधुर्य्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।

धैर्य्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥

(माधुर्यम्) वर्णों के उच्चारण में मधुरता (अक्षरव्यक्तिः) भिन्न २ अक्षर (पदच्छेदः) पृथक् २ पद (तु) और (सुस्वरः) सुन्दरध्वनि (धैर्यम्) धीरता (च) और (लयसमर्थम्) विराम यथा सार्थकता और जैसा ह्रस्व दीर्घ प्लुत उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरस्पर्श आदि आभ्यन्तर और विवारादि बाह्य प्रयत्न से अपने २ स्थानों में वर्णों का उच्चारण करना तथा सत्यभाषणादि भी वर्णों के उच्चारण करनेवालों के गुण हैं ॥

स्वरों के उच्चारण में दोष ॥

१९—ग्रस्तं निरस्तमविलम्बितं निर्हतमम्बूकृतं ध्मातमथो विकम्पितम् ॥ सन्दष्टमेणीकृतमर्द्धकं द्रुतं विकीर्णमेताः स्वरदोषभावनाः ॥ महाभाष्य अ० १ । पा० १ । आ० १ ॥

(ग्रस्तम्) जैसे किसी वस्तु को मुख में पकड़ कर बोलना (निरस्तम्) जैसे किसी वस्तु को मुख से ग्रहण करके फेंक देना (अविलम्बितम्) जिस का उच्चारण पृथक् २ करना चाहिये उस को वर्णान्तर में मिलाके बोलना (निर्हतम्) जैसे किसी को धक्का देना (अम्बूकृतम्) जैसे मुख में जल भर के बोलना (ध्मातम्) जैसे रुई को धूनना

स्वरों की संज्ञा ॥

९—ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ अ० १ । पा० २ । सू० २७ ॥

स्वरों की ह्रस्व दीर्घ और प्लुत भेद से तीन संज्ञा हैं। इन के उच्चारण समय का लक्षण यह है कि जितने समय में अङ्गुष्ठ के मूल की नाड़ी की गति एक बार होती है उतने समय में ह्रस्व उससे दूने काल में दीर्घ और उस के तिगुने काल में प्लुत का उच्चारण करना चाहिये और स्वरों के उदात्तादि भी गुण हैं ॥

१०—उच्चैरुदात्तः ॥ अ० १ । २ । २९ ॥

ऊर्ध्वध्वनि से उदात्त । और

११—नीचैरनुदात्तः ॥ अ० १ । २ । ३० ॥

नीचे स्वर से अनुदात्त बोला जाता है।

१२—समाहारः स्वरितः ॥ अ० १ । २ । ३१ ॥

उदात्त और अनुदात्त स्वरों को मिला कर बोलना स्वरित कहाता है

१३—ह्रस्वं लघु ॥ अ० १ । ४ । १० ॥

ह्रस्व स्वर की लघु संज्ञा । और

१४—संयोगे गुरु ॥ अ० १ । ४ । ११ ॥

जो दो वा अधिक व्यञ्जनों का संयोग परे हो तो पूर्व ह्रस्व अच् की गुरु संज्ञा होती है। जैसे (विप्रः) यहां वकार में इकार की गुरु संज्ञा है क्योंकि इस के परे पकार और रेफ का संयोग है ॥

१५—दीर्घं च ॥ अ० १ । ४ । १२.

और दीर्घ की भी गुरु संज्ञा है।

१६—हलोऽनन्तराः संयोगः ॥

अनन्तर अर्थात् अचों का जो

संयोग संज्ञा है।

व्यञ्जन का लक्षण ॥

१७—अन्वग्भवति व्यञ्जनमिति ॥ म० भा० ॥

अ० १ । पा० २ । सू० २९ । आ० १ ॥

जिन का उच्चारण विना स्वर के नहीं हो सकता वे व्यञ्जन कहाते हैं।

उच्चारण करनेवालों के गुण ॥

१८—माधुर्य्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।

धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥

(माधुर्यम्) वर्णों के उच्चारण में मधुरता (अक्षरव्यक्तिः) भिन्न अक्षर (पदच्छेदः) पृथक् २ पद (तु) और (सुस्वरः) सुन्दरस्वर (धैर्यम्) धीरता (च) और (लयसमर्थम्) विराम यथा सार्थक और भिन्न ह्रस्व दीर्घ प्लुत उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरस्पर्श आदि आभ्यन्तर और विवारादि बाह्य प्रयत्न से अपने २ स्थानों में वर्णों का उच्चारण करना तथा सत्यभाषणादि भी वर्णों के उच्चारण करनेवालों के गुण हैं ॥

स्वरों के उच्चारण में दोष ॥

जो इ, ई, इ३, चु अर्थात् च, छ, ज, झ, ञ, य और श हैं इन का तालु स्थान अर्थात् दांतों के ऊपर से उच्चारण करना चाहिये जैसे च के उच्चारण में जिस स्थान में जैसी जीभ की क्रिया करनी होती है वैसे शकार का उच्चारण करना योग्य है ॥

२९–ऋटुरषा मूर्द्धन्याः ॥ १२ ॥

ऋ ऋ, ऋ३, ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष का उच्चारण मूर्द्धा स्थान अर्थात् तालु के ऊपर से करना चाहिये। जैसी क्रिया ट के उच्चारण में की जाती है वैसी ही ष के उच्चारण में करनी उचित है ॥

३०–रेफो दन्तमूलीय एकेषाम् ॥ १३ ॥

कई एक आचार्यों का ऐसा मत है कि र का उच्चारण दांत के मूल से भी करना योग्य है ॥

३१–दन्तमूलस्तु तवर्गः ॥ १४ ॥

वैसे ही कई एक आचार्यों के मत में तवर्ग अर्थात् त, थ, द, ध और न का उच्चारण दन्तमूल स्थान से भी करना अच्छा है ॥

३२–लृतुलसा दन्त्याः ॥ १५ ॥

लृ लृ ३ तु अर्थात् त, थ, द, ध, न, ल और स इन वर्णों का दन्तस्थान अर्थात् दांतों में जिह्वा लगाके उच्चारण करना ठीक है ॥

३३–वकारो दन्त्योष्ठ्यः ॥ १६ ॥

व का उच्चारण दांत और ओष्ठ से होना चाहिये ॥

३४–सृक्किणीस्थानमेके ॥ १७ ॥

कई एक आचार्यों के मत में वकार को सृक्किणी स्थान से बोलना जो दांत और ओष्ठ के बीच में स्थान है उस को सृक्किणी कहते हैं ॥

३ [illegible]ीया ओष्ठ्याः ॥ १८ ॥

फ, ब, भ, म और ꣹ इस उपध्मानीय का ओष्ठ स्थान है ॥

३६—अनुस्वारयमा नासिक्याः ॥ १९ ॥

ळ को छोड़के ७ और अनुस्वार को नासिका से बोलना शुद्ध है ॥

३७—कण्ठ्यनासिक्यमनुस्वारमेके ॥ २० ॥

कंठ और नासिका स्थानवाले ङकार को कोई आचार्य्य अनुस्वार के समान केवल नासिका स्थानी कहते हैं ॥

३८—यमाश्च नासिक्यजिह्वामूलीया एकेषाम् ॥ २१ ॥

कई एक आचार्य्यों के मत से यम वर्ण अर्थात् ꣲ, ꣲ, ७ येभी नासिका और जिह्वामूल स्थानवाले हैं ॥

३९—एदैतौ कण्ठ्यतालव्यौ ॥ २२ ॥

ए ऐ कंठ और तालु से बोलने योग्य हैं ॥

४०—ओदौतौ कण्ठ्योष्ठ्यौ ॥ २३ ॥

ओ औ को कंठ और ओष्ठ से बोलना शुद्ध है ॥

४१—ङञणनमाः स्वस्थाननासिकास्थानाः ॥ २४ ॥

ङकारादि पांच वर्णों को स्व २ स्थान और नासिका स्थान से बोलना चाहिये ॥

४२—द्वे द्वे वर्णे सन्ध्यक्षराणामारम्भके भवत इति ॥ २५ ॥

सन्ध्यक्षर अर्थात् जो (ए, ऐ, ओ, औ) हैं इन में दो २ वर्ण मिले होते हैं जैसे (अ, आ, से इ, ई) मिल के ए, (अ, आ, से ए, ऐ) मिल के ऐ, (अ, आ, से उ, ऊ) मिल के ओ (अ, आ, से ओ, औ) मिल के औ हो, जाते हैं जैसे एकार के आदि मे अकार का कंठ और अन्त में इकार का तालु स्थान है इसी प्रकार ओकार में प्रथम कण्ठ और दूसरा ओष्ठ स्थान है ॥

४३—सरेफ ऋवर्णः ॥ २६ ॥

जो रेफ के सहित ऋवर्ण है उस को मूर्द्धा स्थान में बोलना चाहिये ॥

इति प्रथमं ॥

स्वरों की संज्ञा ॥

१—ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ अ० १ । पा० २

स्वरों की ह्रस्व दीर्घ और प्लुत भेद से तीन संज्ञा
। समय का लक्षण यह है कि जितने समय में
ी गति एक बार होती है उतने समय में ह्रस्व
और उस के तिगुने काल में प्लुत का उच्चारण
रों के उदात्तादि भी गुण हैं ॥

०—उच्चैरुदात्तः ॥ अ० १ । २ । २९ ॥
ध्वनि से उदात्त । और

१—नीचैरनुदात्तः ॥ अ० १ । २ ।
स्वर से अनुदात्त बोला जाता है,

२—समाहारः स्वरितः
त्त और अनुदात्त

—ह्रस्व
स्वर

अथ प्रथमं प्रकरणम् ॥

२२—अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः ॥ ५ ॥

अ, आ, अ३, कु अर्थात् क, ख, ग, घ, ङ, ह और : विसर्जनीय इन वर्णों का कण्ठ स्थान है। अर्थात् जो जिह्वा का मूल कण्ठ का अग्रभाग काकलक के नीचे देश है उस कण्ठ स्थान से इन का शुद्ध उच्चारण होता है ॥

२३—हविसर्जनीयावुरस्यावेकेषाम् ॥ ६ ॥

कई एक आचार्यों का ऐसा मत है कि हकार और : विसर्जनीय का उच्चारण उरःस्थान अर्थात् कण्ठ के नीचे और स्तनों के ऊपर स्थान से करना चाहिये ॥

२४—जिह्वामूलीयो जिह्व्यः ॥ ७ ॥

और वे ऐसा भी मानते हैं कि जिस लिये जीभ के मूल से इस जिह्वामूलीय का उच्चारण होता है इसलिये यह जिह्वामूलीय कहाता है ॥

२५—कवर्ग ऋवर्णश्च जिह्व्यः ॥८ ॥

तथा उन का यह भी मत है कि जिस कारण कवर्ग और ऋवर्ण अर्थात् ह्रस्व दीर्घ और प्लुत का जिह्वामूल भी स्थान है इस से इन को जिह्वा की जड़ में से भी बोलना अशुद्ध नहीं ॥

२६—सर्वमुखस्थानमवर्णमित्येके ॥ ९ ॥

लिये अवर्ण का उच्चारण सब मुख में करना शुद्ध है इसलिये अवर्ण को सर्वमुखस्थान वाला कहते हैं ॥

कण्ठ्यानास्यमात्रानित्येके ॥ १० ॥

एक आचार्यों का मत ऐसा भी है कि जिन * वर्णों का न सब [illegible] मात्र में होना भी अशुद्ध नहीं।

[illegible] ॥

या लोहार की भाठी के समान उच्चारण करना (विकम्पितम्) जैसे कम्प करके बोलना (सन्दष्टम्) जैसे किसी वस्तु को दांतों से काटते हुए बोलना (एणीकृतम्) जैसे हरिण कूद के चलते हैं वैसे ऊपर नीचे ध्वनि से बोलना (अर्द्धकम्) जितने समय में जिस वर्ण का उच्चारण करना चाहिये उस के आधे समय में बोलना (द्रुतम्) त्वरा से बोलना (विकीर्णम्) जैसे कोई वस्तु बिखर जाय वैसा उच्चारण करना ये सब दोष स्वरों के उच्चारण करनेहारों के हैं ॥

२०—अतोऽन्ये व्यञ्जनदोषाः । शशः षष इति मा भूत् । पलाशः पलाष इति मा भूत् । मञ्चको मञ्जक इति मा भूत् महाभाष्य अ० १ । पा० १ । आ० १ ॥

व्यंजनों के उच्चारण में भी दोषों को छोड़कर बोलना चाहिये जैसे (शशः) इन तालव्य शकारों के उच्चारण में (षष इति मा भूत्) मूर्द्धन्य षकारों का उच्चारण करना (पलाशः पलाषः) यहां भी पूर्ववत् जानना (मञ्चकः) कोई इस च के स्थान में (मञ्जकः) ज का उच्चारण करे इत्यादि व्यञ्जनों के उच्चारण करनेहारों के दोष कहाते हैं इसलिये जिस २ अक्षर का जो २ स्थान प्रयत्न और उच्चारण का क्रम है वैसा ही उस २ का उच्चारण करना योग्य है ॥

(प्रश्न) इस ग्रन्थ में कितने प्रकरण हैं ?

२१-(उत्तर) स्थानमिदं करणमिदं प्रयत्न एषो द्विधाऽनिलः स्थानम् । पीडयति वृत्तिकारः प्रक्रम एषोऽथ नाभितलात् ॥४॥

स्थान, करण, आभ्यन्तर प्रयत्न, बाह्य प्रयत्न, स्थान में वायु का ताडन, वृत्तिकार, प्रक्रम और नाभि के अधोभाग से वायु का उत्थान ये आठ ८ प्रकरण क्रम से इस ग्रन्थ में हैं ॥

अथ प्रथमं प्रकरणम् ॥

२२—अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः ॥ ५ ॥

अ। आ। अ३, कु अर्थात् क, ख। ग, घ, ङ, ह और : विसर्जनीय इन वर्णों का कण्ठ स्थान है। अर्थात् जो जिह्वा का मूल कण्ठ का अग्रभाग काकलक के नीचे देश है उस कण्ठ स्थान में इन का शुद्ध उच्चारण होता है ॥

२३—हविसर्जनीयावुरस्यावेकेषाम् ॥ ६ ॥

कई एक आचार्यों का ऐसा मत है कि हकार और : विसर्जनीय का उच्चारण उरःस्थान अर्थात् कण्ठ के नीचे और स्तनों से ऊपर स्थान से करना चाहिये ॥

२४—जिह्वामूलीयो जिह्व्यः ॥ ७ ॥

और वे ऐसा भी मानते हैं कि जिस लिये जीभ के मूल से इस जिह्वामूलीय का उच्चारण होता है इसलिये यह जिह्वामूलीय कहाता है ॥

२५—कवर्गं ऋवर्णश्च जिह्व्यः ॥८॥

तथा उन का यह भी मत है कि जिस कारण कवर्ग और ऋवर्ण अर्थात् ह्रस्व दीर्घ और प्लुत का जिह्वामूल भी स्थान है इस से इन को जिह्वा की जड़ में से भी बोलना अशुद्ध नहीं ॥

२६—सर्वमुखस्थानमवर्णमित्येके ॥ ९ ॥

जिसलिये अवर्ण का उच्चारण सब मुख में करना इष्ट है इसलिये कोई आचार्य अवर्ण को सर्वमुखस्थान वाला कहते हैं ॥

२७ कण्ठ्यानास्यमाणानित्येके ॥ १० ॥

तथा कई एक आचार्यों का मत ऐसा भी है कि जिन • वर्णों का कण्ठ स्थान है उन सब का उच्चारण मुखमात्र में होना भी इष्ट नहीं ॥

—इचुयशास्तालव्याः ॥ ११ ॥

जो इ, ई, इ३, चु अर्थात् च, छ, ज, झ, ञ, य और श हैं इन क
तालु स्थान अर्थात् दांतों के ऊपर से उच्चारण करना चाहिये जैसे च
के उच्चारण में जिस स्थान में जैसी जीभ की क्रिया करनी होती है वैसे
प्रकार का उच्चारण करना योग्य है ॥

२९–ऋटुरषा मूर्द्धन्याः ॥ १२ ॥

ऋ, ॠ, ऋ३, ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष का उच्चारण मूर्द्धा
स्थान अर्थात् तालु के ऊपर से करना चाहिये। जैसी क्रिया ट के
उच्चारण में की जाती है वैसी ही ष के उच्चारण में करनी उचित है।

३०–रेफो दन्तमूलीय एकेषाम् ॥ १३ ॥

कई एक आचार्य्यों का ऐसा मत है कि र का उच्चारण दांत के मूल
से भी करना योग्य है ॥

३१–दन्तमूलस्तु तवर्गः ॥ १४ ॥

वैसे ही कई एक आचार्यों के मत में तवर्ग अर्थात् त, थ, द, ध
और न का उच्चारण दन्तमूल स्थान से भी करना अच्छा है ॥

३२–ऌतुलसा दन्त्याः ॥ १५ ॥

ऌ ॡ ३ तु अर्थात् त, थ, द, ध, न, ल और स इन वर्णों का
दन्तस्थान अर्थात् दांतों में जिह्वा लगाके उच्चारण करना ठीक है ॥

३३–वकारो दन्त्यौष्ठ्यः ॥ १६ ॥

व का उच्चारण दांत और ओष्ठ से होना चाहिये ॥

३४–सृक्किणीस्थानमेके ॥ १७ ॥

कई एक आचार्यों के मत में वकार को सृक्किणी स्थान से बोलना
चाहिये। जो दांत और ओठ के बीच में स्थान है उस को सृक्किणी कहते हैं ॥

३५–उपूपध्मानीया ओष्ठ्याः ॥ १८ ॥

उ, ऊ, उ३, प, फ, ब, भ, म और ≍ इन ~

३६—अनुस्वारयमा नासिक्याः ॥ १९ ॥

ळ को छोड़के ं और अनुस्वार को नासिका से बोलना शुद्ध है ॥

३७—कण्ठ्यनासिक्यमनुस्वारमेके ॥ २० ॥

कंठ और नासिका स्थानवाले ङकार को कोई आचार्य्य अनुस्वार समान केवल नासिका स्थानी कहते हैं ॥

३८—यमाश्च नासिक्यजिह्वामूलीया एकेषाम् ॥ २१ ॥

कई एक आचार्य्यों के मत से यम वर्ण अर्थात् ं, ं, ं ये भी नासिका और जिह्वामूल स्थानवाले हैं ॥

३९—एदैतौ कण्ठ्यतालव्यौ ॥ २२ ॥

ए ऐ कंठ और तालु से बोलने योग्य हैं ॥

४०—ओदौतौ कण्ठ्योष्ठ्यौ ॥ २३ ॥

ओ औ को कंठ और ओष्ठ से बोलना शुद्ध है ॥

४१—ङञणनमाः स्वस्थाननासिकास्थानाः ॥ २४ ॥

ङकारादि पांच वर्णों को स्व २ स्थान और नासिका स्थान से बोलना चाहिये ॥

४२—द्वे द्वे वर्णे सन्ध्यक्षराणामारम्भके भवत इति ॥ २५ ॥

सन्ध्यक्षर अर्थात् जो (ए, ऐ, ओ, औ) हैं इन में दो २ वर्ण मिले होते हैं जैसे (अ, आ, से इ, ई) मिल के ए, (अ, आ, से ए, ऐ) मिल के ऐ, (अ, आ, से उ, ऊ) मिल के ओ (अ, आ, से ओ, औ) मिल के औ हो जाते हैं। जैसे एकार के आदि में अकार का कंठ और अन्त में इकार का तालु स्थान है इसी प्रकार ओकार में प्रथम कण्ठ और दूसरा ओष्ठ स्थान है ॥

४३—सरेफ ऋवर्णः ॥ २६ ॥

जो रेफ के सहित ऋवर्ण है उस को मूर्द्धा स्थान में बोलना चाहिये ॥

इति प्रथमं प्रकरणम् ॥

जो इ, ई, इ३, चु अर्थात् च, छ, ज, झ, ञ, य और श है इन का तालु स्थान अर्थात् दांतों के ऊपर से उच्चारण करना चाहिये जैसे च के उच्चारण में जिस स्थान में जैसी जीभ की क्रिया करनी होती है वैसे ही इस प्रकार का उच्चारण करना योग्य है ॥

२९—ऋटुरषा मूर्द्धन्याः ॥ १२ ॥

ऋ, ॠ, ऋ३, ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष का उच्चारण मूर्द्धा स्थान अर्थात् तालु के ऊपर से करना चाहिये। जैसी क्रिया ट के उच्चारण में की जाती है वैसी ही ष के उच्चारण में करनी उचित है।

३०—रेफो दन्तमूलीय एकेषाम् ॥ १३ ॥

कई एक आचार्य्यों का ऐसा मत है कि र का उच्चारण दांत के मूल से भी करना योग्य है ॥

३१—दन्तमूलस्तु तवर्गः ॥ १४ ॥

वैसे ही कई एक आचार्यों के मत में तवर्ग अर्थात् त, थ, द, ध और न का उच्चारण दन्तमूल स्थान से भी करना अच्छा है ॥

३२—लृतुलसा दन्त्याः ॥ १५ ॥

लृ लॄ ३ तु अर्थात् त, थ, द, ध, न, ल और स इन वर्णों का दन्तस्थान अर्थात् दांतों में जिह्वा लगाके उच्चारण करना ठीक है ॥

३३—वकारो दन्त्योष्ठ्यः ॥ १६ ॥

व का उच्चारण दांत और ओष्ठ से होना चाहिये ॥

३४—सृक्किणीस्थानमेके ॥ १७ ॥

कई एक आचार्यों के मत में

चाहिये कि मुख और ओष्ठ के

४८—जिह्वाग्रेण दन्त्यानाम् ॥ ५ ॥

जिन वर्णों का दन्त स्थान कहा है उन का उच्चारण जिह्वा के अग्रभाग से दांतों को स्पर्श करके ही करना चाहिये ॥

४९—इत्येतदन्तःकरणम् ॥ ६ ॥

इस प्रकार से मुख के भीतर स्थानों में वर्णों की उच्चारण क्रिया जाननी चाहिये ॥ इति द्वितीयं प्रकरणम् ॥

अथ तृतीयं प्रकरणम् ॥

अब स्थान और करण के कहने पश्चात् तीसरे प्रकरण का आरम्भ किया जाता है । इस में आभ्यन्तर प्रयत्नों का वर्णन किया है ॥

५०—प्रयत्नोऽपि द्विविधः ॥ १ ॥

प्रयत्न भी दो प्रकार के होते हैं ॥

५१—आभ्यन्तरो बाह्यश्च ॥ २ ॥

आभ्यन्तर और बाह्य ॥

५२—आभ्यन्तरस्तावत् ॥ ३ ॥

इन दोनों में से प्रथम आभ्यन्तर प्रयत्नों को कहते हैं ॥

५३—स्पृष्टकरणाः स्पर्शाः ॥ ४ ॥

ककार से लेके मकारपर्य्यन्त २५ पच्चीस वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न है अर्थात् जि[illegible] २ स्थानों में स्पर्श करके इन वर्णों का उच्चारण

यहां वर्ग शब्द से (कु, चु, टु, तु, पु) इन पांचों का ग्रहण है इन के दो २ वर्ण अर्थात् कवर्ग में (क, ख,) चवर्ग में (च, छ,) टवर्ग में (ट, ठ,) तवर्ग में (त, थ,) पवर्ग में (प, फ,) ऊष्मों में (श, ष, स,) और (:) विसर्जनीय (ᳵ) जिह्वामूलीय (ᳶ) उपध्मानीय (ꣳ, ꣴ,) ये दो यम इन १८ अठारह वर्णों का (विवृत कंठ) अर्थात् कंठ को फैला (श्वासानुप्रदान) उच्चारण के पश्चात् श्वास को युक्त कर और (अघोष) सूक्ष्म ध्वनि की योजनारूप क्रिया करके इन का उच्चारण करना चाहिये ॥

६२—एके अल्पप्राणा इतरे महाप्राणाः ॥ ३ ॥

पांचों वर्गों के प्रथम तृतीय और पञ्चम अर्थात् (क, ग, ङ, च, ज ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल, व,) यम प्रथम तृतीय अर्थात् (ꣳ, ‿) इतने सब अल्पप्राण अर्थात् ये थोड़े और (ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, श, ष, स, ह, (:) (ᳵ) (ं) (ꣴ, ꣵ) और अकारादि स्वर ये सब महाप्राण अर्थात् अधिक बल से बोले जाते हैं ॥

६३—वर्गाणां तृतीयचतुर्था अन्तस्था हकारानुस्वारौ यमौ च तृतीयचतुर्थौ नासिक्याश्च संवृतकण्ठा नादानुप्रदाना घोषवन्तश्च ॥ ४ ॥

पांचों वर्गों के तीसरे और चौथे वर्ण अर्थात् (ग, घ, ज, झ, ड, ढ, द ध) अन्तस्थ अर्थात् (य, र, ल, व,) ह, (ं) अनुस्वार और ये यम अर्थात् (ꣵ) तथा सानुनासिक अकारादि स्वर इन [illegible]ड प्रयत्न अर्थात् कंठ का संकोच (नादानुप्रदानाः) इन के ध्वनि और (घोषवन्तः) इन का उच्चारण गंभीर शब्द से ॥

। तृतीयास्तथा पञ्चमाः ॥ ५ ॥

तीय वर्णों के समान पञ्चम वर्ण अर्थात् (ङ, ञ, ण, संवृतकण्ठ) (नादानुप्रदान) और (घोष) प्रयत्न

५५ — ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः ॥ ६ ॥

जिसलिये ऊष्म अर्थात् श, ष, स, ह का अपने २ स्थान में जिह्वा का किंचित् स्पर्श करके शुद्ध उच्चारण होता है इसलिये इन का ईषद्विवृत प्रयत्न है ॥

५६—विवृतकरणा वा ॥ ७ ॥

और इस में दूसरा पक्ष यह भी है कि स्व २ स्थान को जीभ से स्पर्श के विना भी इन का उच्चारण करना शुद्ध है इसलिये श, ष, स, ह का विवृत प्रयत्न भी है ॥

५७—विवृतकरणाः स्वराः ॥ ८ ॥

जिसलिये उक्त स्थानों से जीभको अलग रख के स्वरों का उच्चारण करना योग्य है इसलिये इन का विवृत प्रयत्न है ॥

५८—संवृतस्त्वकारः ॥ ९ ॥

अकार का संवृत प्रयत्न है क्योंकि इस का उच्चारणकण्ठ को संकोच करके होता है परन्तु इस का कार्य करने के समय विवृत प्रयत्न ही होता है ॥

५९—इत्येषोऽन्तःप्रयत्नः ॥ १० ॥

यह आभ्यन्तर प्रयत्नों का प्रकरण पूरा हुआ ॥

इति तृतीयं प्रकरणम् ॥

अथ चतुर्थं प्रकरणम् ॥

६०—अथ बाह्याः प्रयत्नाः ॥ १ ॥

अब इस के आगे चौथे प्रकरण में वर्णों के बाह्य प्रयत्नों का वर्णन करते हैं ॥

६१—वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसविसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीया यमौ च प्रथमद्वितीयौ विवृतकण्ठाः श्वासाऽनुप्रदानाश्चाऽघोषाः ॥ २ ॥

अथ षष्ठं प्रकरणम् ॥

७०—अवर्णो ह्रस्वदीर्घप्लुतत्वाच्च त्रैस्वर्य्योपनयेन चानुनासिक्यभेदाच्च संख्यातोऽष्टादशात्मक एवमिवर्णादयः ॥१॥

अब अकारादि वर्णों के भेद दिखाते हैं—अकार के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद हैं। और जब इन एक २ के साथ ह्रस्व उदात्त ह्रस्व अनुदात्त, ह्रस्व स्वरित और इसी प्रकार दीर्घ और प्लुत के साथ लगाते हैं तब अकार के नव भेद हो जाते हैं और जब ये सानुनासिक भेदयुक्त होते हैं तब इन नव ९ के अठारह १८ भेद होते हैं। इसी प्रकार इकार आदि स्वरों में प्रत्येक के अठारह१८ भेद समझने चाहियें परन्तु—

७१—लृवर्णस्य दीर्घा न सन्ति ॥ २ ॥

जिस लिये लृकार के दीर्घ भेद नहीं होते —

७२—तं द्वादशभेदमाचक्षते ॥ ३ ॥

इसलिये लृकार को बारह १२ भेद से युक्त कहते हैं—

७३—यदृच्छाशब्द अशक्तिजानुकरणे वा यदा दीर्घाः स्युस्तदाऽष्टादशभेदं ब्रुवते क्लृपक इति ॥ ४ ॥

जिन लोगों के मत में यदृच्छा शब्द होते हैं वे लोग उन का अशक्तिज के अनुकरण में प्रयोग करते हैं तब लृकार को दीर्घ मानके उस के भी अठारह १८ भेद कहते हैं जैसे क्लृपक इस प्रयोग में होते हैं ॥

७४—सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति तान्यपि द्वादशप्रभेदानि ॥ ५ ॥

जिसलिये संध्यक्षर अर्थात् (ए, ऐ, ओ, औ,) इन के ह्रस्व नहीं होते इसलिये इन के भी बारह १२ भेद होते हैं ॥

७५—अन्तस्था द्विप्रभेदा रेफवर्जिताः सानुनासिका निरनुनासिकाश्च ॥

६५–मानुनासिक्यमेषामधिको गुणः ॥ ६ ॥

पूर्वोक्त ङ, ञ, ण, न, म को मुख से बोले पश्चात् नासिका से बोलना ही इन का आनुनासिक्य गुण अधिक है ॥

६६–शादय ऊष्माणः ॥ ७ ॥

शादि अर्थात् (श, ष, स, ह,) की ऊष्म संज्ञा और ये (महाप्राण) प्रयत्न से बोले जाते हैं ॥

६७–स्थानेन द्वितीयाः ॥ ८ ॥

जो पांच वर्गों के दूसरे वर्ण अर्थात् (ख, छ, ठ, थ, फ,) हैं वे सकार के समान महाप्राण प्रयत्न से बोलने चाहियें ॥

६८–हकारेण चतुर्थाः ॥ ९ ॥

वर्गों के चतुर्थ अर्थात् (घ, झ, ढ, ध, भ,) इन पांच वर्णों का हकार के समान महाप्राण प्रयत्न होता है ॥ इति चतुर्थं प्रकरणम् ॥

अथ पञ्चमं प्रकरणम् ॥

६९–तत्र स्पर्शयमवर्णकरो वायुरयः पिण्डवत्स्थानमभिपीडयति ॥ अन्तस्थवर्णकरो वायुर्दारुपिण्डवदूष्मस्वरवर्णकरो वायुरूर्णापिण्डवदुक्ताः स्थानकरणप्रयत्नाः ॥ १ ॥

सब मनुष्यों को उचित है कि जो (स्पर्श) ककार से ले के म पर्यन्त पचीस २५ वर्ण और चार यम हैं इन को प्रकट करनेवाले वायु को लोहे के गोले के समान स्थान में लगा के अन्तस्थ वर्णों के बोलने में वायु को काष्ठ के गोले के समान स्थान में लगा के और शादि तथा २२ बाईस स्वरों के उच्चारण में वायु को ऊन के गोले के समान स्थान में लगा के बोला करें । इस प्रकार जो स्थान करण और प्रयत्न कह चुके हैं उन का ज्ञान अवश्य करें ॥ इति पञ्चमं प्रकरणम् ॥

ना जाता है और अलग इस की प्राप्ति होती है इस से विसर्गादि
क अयोगवाह कहाता और वर्णमाला के वर्णों से अलग गिना जाता
। वर्णमाला के व्यंजनों में एक अकार अनुबन्ध किया है वह उच्चारण-
र्थ के लिये है कि जिस से व्यंजन का स्पष्ट उच्चारण हो।

८१—ᳵकᳵपयोः कपकारौ च तद्वर्गीयाश्रयत्वतः ॥
पलिक्क्नी चख्ख्नतुर्नग्मिमर्घ्घ्नुरित्यत्र यद्पुः।
नासिक्यनाके कादीनां त इमेऽयमास्तेषामुकारः
संस्थानवर्गोपलक्षकः ॥ ९ ॥

ᳵ जिह्वामूलीय और उपध्मानीय के साथ में जो ककार और
कार हैं वे तद्वर्गीयाश्रयत्व से हैं अर्थात् उन का कवर्ग और पवर्ग के
रे विधान है इस से उन के साथ में ककार और पकार हैं। पलिक्नी
आदि प्रयोगों में जो (क्, ख्, ग्, घ्,) इत्याकारक अंग नासिकास्थानीय
न न म न) वर्णों से अप्रकटित अर्थात् गृहीत नहीं होता है वह अयम
र्थात् यम नहीं और ककारादि वर्णों का जो उकार आता है वह सं-
स्थानवर्गीय वर्ण अर्थात् उन वर्गों के सजातीय वर्णों का लक्षक है जैसे
(कु, चु, टु, तु, पु,) इन में प्रत्येक वर्ण के उकार के संयोग से वर्गमा-
त्र का बोध होता है ॥ इति सप्तमं प्रकरणम् ॥

अथाष्टमं प्रकरणम् ॥

८२—उक्ताः स्थानकरणप्रयत्नाः ॥ १ ॥

जो सब वर्णों में स्थान, करण और प्रयत्नों को कह चुके अब इस
प्रकरण में स्थान आदि के लक्षण कहते हैं ॥

८३—यत्रस्था [illegible] उपलभ्यन्ते तत्स्थानम् ॥ २ ॥

और (र) को छोड़ कर अन्तस्थ अर्थात् (य, ल, व,) ये तीन अनुनासिक यँ, लँ, वँ और निरनुनासिक य, ल, व, भेद से दो प्रकार के होते हैं ॥

७६–रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति ॥ ७ ॥

जिसलिये (र) और ऊष्म अर्थात् (श, ष, स, ह,) का कोई सवर्ण नहीं होता इसलिये इन के परे किसी वर्ण के स्थान में इन का सवर्ण आदेश नहीं होता ॥

७७–वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः ॥ ८ ॥

परन्तु कु, चु, टु, तु, पु, इन पांच वर्ग और य, ल, व, इन तीनों की परस्पर सवर्ण संज्ञा मानी जाती है, जैसे ककार का सवर्ण खकार समझा जाता है वैसे सर्वत्र समझना चाहिये ॥

इति षष्ठं प्रकरणम् ॥

अथ सप्तमं प्रकरणम् ॥

७८– इत्येष क्रमो वर्णानाम् ॥ १ ॥

यह पूर्व अकारादि वर्णों का क्रम कह के—

७९–तत्रैते कौशिकीयाः श्लोकाः ॥ २ ॥

षष्ठ प्रकरण के विषय में कौशिक ऋषि के श्लोक हैं उन में से आगे कुछ विशेषविषयक श्लोक लिखते हैं:—

८०–सर्वान्तेऽयोगवाहत्वाद्विसर्गादिरिहाऽष्टकः ॥
अकार उच्चारणार्थो व्यञ्जनेष्वनुबध्यते ॥ ३ ॥

बिना संयोग के प्राप्त होने से यहां सब वर्णमाला के अन्त में विसर्ग

८४—येन निर्वर्त्यते तत्करणम् ॥ ३ ॥

स्थानों में जीभ और प्राण के जिस संयोग से वर्णों का उच्चा[रण]
करना होता है उस को करण कहते हैं ॥

८५—प्रयतनं प्रयत्नः ॥ ४ ॥

जो वर्णों के उच्चारण में पुरुषार्थ से यथावत् क्रिया करनी हो[ती]
है वह प्रयत्न कहाता है ॥

८६—नाभिप्रदेशात्प्रयत्नप्रेरितः प्राणो नाम वायुरूर्ध्वमा[-]
क्रमन्नुरआदीनां स्थानानामन्यतमस्मिन् स्थाने प्रयत्ने[न]
विचार्यते ॥ ५ ॥

जो ऊपर को श्वास निकलता है उसको प्राण कहते हैं. जो व[र्णो-]
च्चा[र]ण के उच्चारण की इच्छा से विचारपूर्वक नाभिदेश से प्रेरणा किया प्र[-]
वायु ऊपर को उठता हुआ कण्ठ आदि स्थानों में से किसी स्थान [में]
उत्तम यतन के साथ विचारा जाता है अर्थात् अकारादि वर्णों के
पृथक्२ उच्चारण में वायु के संयोग से विचारपूर्वक यथायोग्य क्रिया कर[नी]
चाहिये । सब मनुष्यों को उचित है कि जिस २ प्रकरण में जिस २ व[र्ण]
के उच्चारण के लिये जो २ बात लिखी है उस को ठीक२ जानकर विद[्या-]
र्थियों को जनावें अष्टाध्यायी के प्रयोग वर्णों के स्थानों कर प्रशंसित [हो]
सदा आनन्द से युक्त रहें और सब विद्यार्थियों को भी वर्णोच्चारण [शुद्ध]
करा कर आनन्द में रक्खें ॥

इत्यष्टमं प्रकरणम् ॥

[वे]दरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे माघमासे सिते दले । चतुर्थ्यां शनिवारेऽयं ग्रन्थः पूर्ति[मगात्]

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीप्रणीतव्याख्या-
सहिता पाणिनीयमिदांसूत्राणि प्रदर्शिता

वर्णोच्चारणशिक्षा समाप्ता ॥

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रस्थः

द्वितीयो भागः

॥ सन्धिविषयः ॥

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां

प्रथमो भागः ॥

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ॥

पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्थो भागः

अजमेर नगरे वैदिकयन्त्रालये

मुद्रित.

संवत् १९५५ कार्त्तिक

तृतीयावृत्तिः १०००

मूल्य ।≈)

वैदिकयन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम।

(१) मूल्य रोक भेजकर मंगावें, (२) रोक भेजनेवालों को १०) रु० या इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जावेंगे (३) डाकमहसूल वेदभाष्य छोड़कर सब पुस्तकों पर अलग लिया जायगा २) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक रजिस्टरी कराकर भेजे जावेंगे, (४) मूल्य निचेलिखे पतेसे भेजें ॥

पुस्तक	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अंक १–२४३	८१)	
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण	२४)	
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका		
विना जिल्द की	२॥)	=)
„ जिल्द की	३)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	-)	)॥
सन्धिविषय	।=)	)॥
नामिक	।/)	)॥
कारकीय	।)	)॥
सामासिक	।/)	)॥
स्त्रैणताद्धित	१)	-)
अव्ययार्थ	-)॥	)॥
सौवर	=)॥	)॥
आख्यातिक	१।/)	=)॥
पारिभाषिक	=)॥	)॥
धातुपाठ	।/)	)॥
गणपाठ	।-)	)॥
उणादिकोष	॥)	-)
निघण्टु	।=)	)॥
निरुक्त	१)	-)॥
अष्टाध्यायी मूल	।-)	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)	)॥
हवनमंत्र	)॥	)॥
व्यवहारभानु	=)	)॥
भ्रमोच्छेदन	)॥।	)॥

पुस्तक	मू०	डा०
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥।	)॥
मेला चांदापुर नागरी	-)	)॥
„ उर्दू	-)॥	)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	-)	)॥
गोकरुणानिधि	-)	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन		
गुजराती	)॥	)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	=)	)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)॥
„ इंग्रेजी	)।	)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	=)	)॥
शास्त्रार्थकाशी	-)	)॥
आर्य्याभिविनय	।)	)॥
„ जिल्द की	।=)	-)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	-)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	-)।	)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	=)॥	)॥
„ जिल्द की	।-)॥	-)
आर्य्यसमाज केनियमोपनि०	)।	)॥
शतपथ ब्राह्मण (१ काण्ड)	॥)	-)
सत्यार्थप्रकाश	२)	=)॥
„ जिल्द का (कुछ समय के वास्ते)	२।)	।/)
संस्कार विधि	१।)	=)
„ जिल्द का	१॥=)	=)
स्वीकार पत्र	)।	)॥

* [illegible] सफेद कागज पर ।) सैकड़ा [illegible] पर ।/) तथा [illegible] सफेद पर ।)

ओ३म्

॥ भूमिका ॥

यह सन्धिविषय व्याकरण का प्रथम भाग है ॥

मैंने यह पुस्तक इसलिये बनाया है कि जिस से व्याकरण में जितना सन्धि का विषय है उस को पढ़नेहारे सुख से समझ लेवें, व्याकरण का यही प्रथम विषय है कि जिस में अच् के स्थान में हल्, हल् के स्थान में अच् और हल् के स्थान में हल् और अच् के स्थान में अच् भी हो जाते हैं, विना सन्धिज्ञान के यह बात समझ में कभी नहीं आ सकती इस के विना जो२ शब्द का प्रथम और पश्चात् स्वरूप होता है वह २ समझ में कभी नहीं आ सकता इस के विना पदार्थज्ञान और इस के विना वाक्यार्थज्ञान क्योंकर हो सकता है ? जबतक यह सब नहीं होता तबतक मनुष्य का अभीष्ट प्रयोजन भी प्राप्त नहीं हो सकता। इस ग्रन्थ में लोक और वेद का विषय सम्पूर्ण रक्खा है परन्तु पूर्वापर के स्थान में जो आदेश जिस २ नियम से होते हैं वह २ इसी ग्रन्थ से समझ लेना चाहिये और जो २ परिभाषा महाभाष्यस्थ हैं उन सब की व्याख्या उदाहरण प्रत्युदाहरण सहित पारिभाषिक ग्रन्थ में लिखी है क्योंकि जो सन्धिविषयादि व्याकरणविषय के ग्रन्थ क्रम से सरल पर सब सूत्र घटा कर बनाये हैं जिस से पढ़ने पढ़ानेहारों को कुछ भी क्लेश न हो, इसलिये जो कोई इन ग्रन्थों को पढ़ें वा पढ़ावें वे सब निम्नलिखित रीति से पठन पाठन करें और करावें। जहां २ एक उदाहरण वा प्रत्युदाहरण लिखा है उस के सदृश दूसरे भी उदाहरण प्रत्युदाहरण बना के पढ़ने पढ़ाने चाहिये कि जिस से शीघ्र ही पूर्ण बोध हो जाय. इस में तीन प्रकरण हैं - एक संज्ञा, दूसरा परिभाषा, तीसरा कार्य। इन में से संज्ञा उस को कहते हैं कि जिस से कोई परिभाषा करके व्यवहार होवे। परिभाषा उस को कहते हैं कि जो संज्ञादि सूत्रों के विषयों को व्यवस्थापक होकर उन के विषय को नियम करके परिपूर्ण कर देवे। कार्य उस को कहते हैं कि जिस से [illegible]

ओ३म्

॥ सच्चिदानन्दात्मने नमः ॥

अथ सन्धिविषयः ॥

श्रीमत्स्वामि दयानन्दसरस्वतीकृत व्याख्यासहितः ॥

पठनपाठनव्यवस्थायाम् ॥

चतुर्थं पुस्तकम् ॥

॥ यह पठन पाठन की व्यवस्था में चौथा पुस्तक है ॥

सन्धि उस को कहते हैं कि जिस में पूर्वापर वर्णों को मिलाकर पद और वाक्यों का उच्चारण करना होता है, इस ग्रन्थ में इसी विषय की व्याख्या होने से इस का नाम सन्धिविषय रक्खा है ॥

(प्र०) शब्द नित्य हैं वा अनित्य ?

(उ०) नित्य हैं ।

(प्र०) जब नित्य हैं तो शब्दों में लोप, आगम और वर्णविकार क्यों होते हैं ?

(उ०) सिद्धन्तु नित्यशब्दत्वात् ॥ सिद्धमेतत् ॥ कथम् ॥ नित्यशब्दत्वात् नित्याः शब्दाः॥ नित्येषु सतामादैचां संज्ञा क्रियते न संज्ञया आदैचो भाव्यन्ते ॥ महाभाष्य । अ० १। पाद १। सू० १६ । आ० ३ ॥

ये दोष नहीं आ सकते क्योंकि जो सत्य है वही होता और जो असत्य है वह कभी नहीं होता ॥

का साधुत्व किया जाता है । इन तीनों विषयों को जो कोई ठीक २ समझ लेगा उस की अग्रस्थ नामिक आदि ग्रन्थों को शीघ्र उपस्थित करके वेद और लौकिक ग्रन्थों का भी बोध अनायास से होगा ॥

इस ग्रन्थ में जो सूत्रों के आगे अङ्क हैं वे तो इसी ग्रन्थस्थ सूत्रों की संख्या जनाने के लिये हैं । और । अ० । इस सङ्केत के आगे जो तीन अङ्क लिखे हैं उन में प्रथम अङ्क से अध्याय, दूसरे से पाद और तीसरे से सूत्र की संख्या समझी जाती है ॥

(स्वामी दयानन्द सरस्वती)

इन शब्दों के प्रयोग होने से भी वे अनित्य नहीं हो सकते क्योंकि बुद्धि और वाणी की क्रिया ही का परिणाम अर्थात् अवस्थान्तर होता है शब्दों का नहीं क्योंकि जो शब्द अनित्य हों तो उनकी पुनः पुनः प्रसिद्धि नहीं हो सकती, जैसे कोई मनुष्य गौः इस को बोल के मौन अथवा अन्य शब्दों का उच्चारण करके कालान्तर में पुनः गौ शब्द का उच्चारण करता है जो गौ शब्द अनित्य होता तो पुनः कहां से आता और क्या उच्चारण के पश्चात् बुद्धि में गौ शब्द नहीं रहता तथा क्या सर्वज्ञ ईश्वर के ज्ञान में किसी शब्द अर्थ और सम्बन्ध का कभी अभाव भी होता है? इसलिये वहां ऐसा समझना चाहिये कि गौ शब्द के उच्चारण में जबतक वाणी की क्रिया गकारस्थ होती तबतक औकार में नहीं, जबतक औकार में रहती तबतक विसर्जनीय में नहीं जबतक विसर्जनीय में होती तबतक अवसान में नहीं रहती है। इसी प्रकार सर्वत्र वाणी की क्रिया ही का परिणाम जानना चाहिये शब्दों में अवस्थान्तर नहीं ॥

नित्याश्च शब्दाः। नित्येषु शब्देषु कूटस्थैरविचालिभिर्वर्णैर्भवितव्यमनपायोपजनविकारिभिः ॥ महा० अ० १। पा० १। सू० २। आ० २ ॥

इसलिये शब्द नित्य हैं क्योंकि जो २ शब्दों में वर्ण हैं वे कूटस्थ अर्थात् निश्चल हैं जो उच्चारणक्रिया से ताडित, वायु की चालना होने से आकाशवत् सर्वत्र स्थित शब्द सुने जाते हैं जो पर्वत के समान कूटस्थ हैं, न इन का अपाय अर्थात् लोप, न आगम, न विकार और न कभी ये चलते और आकाश का गुण होने से इन के समान शब्द भी नित्य हैं इसलिये जो २ शब्दों के विषय में लोप आगम वर्णविकार आदि की साधनप्रक्रिया शास्त्रों में लिखी हैं जो २ शब्द, अर्थ और सम्बन्ध के जनाने के लिये हैं। देखो यह वचन हैः—

अथ युक्तं यन्नित्येषु शब्देष्वादेशाः स्युः ॥ बाढं युक्तम् । शब्दान्तरैरिह भवितव्यम् ॥ तत्र शब्दान्तराच्छब्दान्तरस्य प्रतिपत्तिर्युक्ता ॥ आदेशास्तर्हीमे भविष्यन्ति ॥ अनागमकानां सागमकाः ॥ तत्कथम् ॥ सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः । एकदेशविकारे हि नित्यत्वन्नोपपद्यते ॥ १ ॥ महाभाष्ये । अ० १ । पा० १ । सू० ३४ । आ० ५ ॥

(प्र०) क्या नित्य शब्दों में आदेशादि का होना युक्त है ?

(उ०) हाँ,क्योंकि शब्दान्तरों के स्थानोंमें शब्दान्तरों के प्रयोगमात्र करने को आदेशादि होते हैं । जैसे—आदि, सु,अन्तासु औ, इत्यादि के स्थानों में । आद्यन्तौ । इत्यादि और पुरुष आम् इत्यादि आगमरहित पदों के स्थानों में"पुरुषाणाम्"ऐसे नुडागमसहित के प्रयोग किये जाते हैं,इसी प्रकार दाक्षी के पुत्र पाणिनि आचार्य्य के मत में सब शब्दसङ्घातों के प्रयोगविषय में शब्दान्तरों के सङ्घातों का उच्चारण किया जाता है क्योंकि एकदेशविकार अर्थात् इकार के स्थान में यकार और यकार के स्थान में इकार आदि कार्य्य होने से शब्दों का नित्यत्व सिद्ध नहीं हो सकता । जैसे आचार्य के स्थान में शिष्य का उपयोग, पिता के स्थानापन्न पुत्र, देवदत्त के अधिकार में यज्ञदत्त आदि का ग्रहण होता है तथा घोड़े के स्थान में बैल और बैल के स्थान में घोड़ा जोड़ा जाता है । यहां क्या किसी का नाश हो जाता है ?

कार्यविपरिणामाद्वा सिद्धम् । अथवा कार्यविपरिणामात् सिद्धमेतत् ॥ किमिदं कार्य्यविपरिणामादिति ? कार्या बुद्धिः सा विपरिणम्यते । महाभाष्ये । अ० १ । पा० १ । सू० ७२ ।

इन शब्दों के प्रयोग होने से भी वे अनित्य नहीं हो सकते क्योंकि बुद्धि और वाणी की क्रिया ही का परिणाम अर्थात् अवस्थान्तर होता है। शब्दों का नहीं क्योंकि जो शब्द अनित्य हों तो उनकी पुनः पुनः प्रसिद्धि नहीं हो सकती। जैसे कोई मनुष्य गौः इस को बोल के मौन अथवा अन्य शब्दों का उच्चारण करके कालान्तर में पुनः गौ शब्द का उच्चारण करता है जो गौ शब्द अनित्य होता तो पुनः कहां से आता और क्या उच्चारण के पश्चात् बुद्धि में गौ शब्द नहीं रहता तथा क्या सर्वज्ञ ईश्वर के ज्ञान में किसी शब्द अर्थ और सम्बन्ध का कभी अभाव भी होता है ? इसलिये वहां ऐसा समझना चाहिये कि गौ शब्द के उच्चारण में जबतक वाणी की क्रिया गकारस्थ होती तबतक औकार में नहीं, जबतक औकार में रहती तबतक विसर्जनीय में नहीं जबतक विसर्जनीय में होती तबतक अवसान में नहीं रहती है। इसी प्रकार सर्वत्र वाणी की क्रिया ही का परिणाम जानना चाहिये शब्दों में अवस्थान्तर नहीं ॥

नित्याश्च शब्दाः । नित्येषु शब्देषु कूटस्थैरविचालिभिर्वर्णैर्भवितव्यमनपायोपजनविकारिभिः ॥ महा० अ० १ । पा० १ । सू० २१ भा० २ ॥

इसलिये शब्द नित्य हैं क्योंकि जो २ शब्दों में वर्ण हैं वे कूटस्थ अर्थात् निश्चल हैं जो उच्चारणक्रिया से ताडित, वायु को चालना होने से आकाशवत् सर्वत्र स्थित शब्द सुने जाते हैं सो पर्वत के समान कूटस्थ हैं, न इन का अपाय अर्थात् लोप, न आगम, न विकार और न कभी वे चलते और आकाश का गुण होने से इन के समान शब्द भी नित्य हैं इसलिये जो २ शब्दों के विषय में लोप आगम वर्णविकार आदि की साधनप्रक्रिया शास्त्रों में लिखी हैं सो २ शब्द, अर्थ और सम्बन्ध के जनाने के लिये है। देखो यह वचन हैः—

कथं पुनरिदम्भगवतः पाणिनेराचार्यस्य लक्षणं प्रवृत्तम् सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे ॥ महाभाष्ये । अ०१।पा०१।आ० १

व्याकरणादि शास्त्रों की प्रवृत्ति नित्य शब्द, नित्य अर्थ और नित सम्बन्धों के जनाने ही के लिये है इसलिये सब मनुष्यों को उचित कि इस सन्धिविषय का ज्ञान अवश्य करें और करावें क्योंकि जब अनेः पद अथवा अक्षर मिलकर एक होने से उन का स्वरूप पहिचानने में नहं आता उन के ज्ञान के विना पद और पदार्थ का ज्ञान भी नहीं हो सक ता, विना इस के प्रीति और व्यवहार की सिद्धि के न होने से सुखलाभ कैसे हो सकता है ॥

(प्र०) व्याकरणादिशास्त्र पढ़ने के कितने प्रयोजन हैं ?

(उ०) रक्षा । ऊहः । आगमः । लघु । असन्देहः । तेऽसुराः । दुष्टः शब्दः । यदधीतम् । यस्तु प्रयुङ्क्ते । अविद्वांसः । विभक्तिङ्कुर्वन्ति । यो वा इमाम् । चत्वारि । उत त्वः । सक्तुमिव । सारस्वतीम् । दशम्यां पुत्रस्य । सुदेवो असि वरुण इति । ये १८ अठारह प्रयोजन हैं। इन के अर्थ—(रक्षा)मनुष्य लोगों को वेदों की रक्षा के लिये व्याकरणादि शास्त्र अवश्य पढ़ने चाहियें क्योंकि इन के पढ़ने ही से लोप,आगम और वर्णविकार आदि का यथावत् बोध होकर वेदों की रक्षा कर सकते हैं । (ऊहः) वेदों में सब लिङ्ग और सब विभक्तिसहित शब्दों के प्रयोग नहीं किये हैं उन का बोध व्याकरणादि शास्त्र के विज्ञानपूर्वक तर्क के विना यथावत् कभी नहीं हो सकता । (आगमः) सब मनुष्यों को अवश्य उचित है कि साङ्गोपाङ्ग वेदों को प[illegible] क्रिया करके सुखलाभ को प्राप्त हों सो व्याकरणादि

लाभकारी होता है। (लघु) मनुष्यों को अवश्य उचित है कि वेदादि शास्त्रों के सब शब्द अर्थ और सम्बन्धों को जानें सो व्याकरणादि के पढ़े विना थोड़े परिश्रम से पूर्वोक्त पदार्थों का सहज से यथावत् जानना नहीं हो सकता। (असन्देहः) मनुष्य व्याकरणादि को पढ़ के ही शब्दार्थ सम्बन्धों को निस्सन्देह जान सकता है। (तेऽसुराः) जो मनुष्य व्याकरणादि शास्त्रों की शिक्षा से रहित होते हैं वे हल्ला गुल्ला करके अप्रतिष्ठित होकर नीचता को प्राप्त हो जाते और जो व्याकरणादि की सुशिक्षा से युक्त होते हैं वे श्रेष्ठता से संपन्न होते हैं। (दुष्टः शब्दः) स्वर और वर्णों के विपरीत करने से शब्द दुष्ट और वज्र के समान होकर वक्ता के अभिप्राय को विपरीत कर देता है और जो व्याकरणादि को पढ़के यथावत् स्वर और वर्णोच्चारण करते हैं वे ही पण्डित कहाते हैं। [यदधीतम्] जो मनुष्य अर्थज्ञान के विना पाठमात्र ही पढ़ते जाते हैं उनके हृदय में विद्यारूप सूर्य्य का प्रकाश कभी नहीं होता और जो व्याकरणादि शास्त्रों को अर्थसहित पढ़ते हैं वे ही सूर्य्य के प्रकाश के समान विद्यारूप प्रकाश को प्राप्त होकर अन्य मनुष्यों को इन की प्राप्ति कराके सर्वदा आनन्दित रहते हैं। [यस्तु प्रयुङ्क्ते] जो मनुष्य विशेष व्यवहारों में शब्दों के प्रयोग ज्यों के त्यों करते हैं वेही अनन्त विजय को प्राप्त होते और जो ऐसा नहीं करते वे सर्वत्र पराजित होकर सर्वदा दुःखित रहते हैं। [अविद्वांसः] जो विद्याहीन मनुष्य होते हैं वे सभा तथा बड़े छोटे मनुष्यों के सङ्ग में भाषणादि व्यवहारों को यथावत् नहीं कर सकते, उन को विद्वानों की सभा में स्त्री के समान लज्जित होना पड़ता और जो विद्वान् होते हैं वे पूर्वोक्त व्यवहारों को यथावत् करके सर्वत्र प्रशंसा को प्राप्त होते हैं। [विभक्तिङ्कुर्वन्ति] जो विद्वान् होते हैं वेही यज्ञकर्म्म अथवा सभाके बीच में यथायोग्य विभक्तिसहित शब्दों के प्रयोग कर सकते और जो व्याकरणादि शास्त्र को पढ़े

प्रयोजन यहां संक्षेप से लिखे हैं किन्तु इन को प्रमाण और विस्तारपूर्वक अष्टाध्यायी की भूमिका में लिखेंगे। सन्धि और संहिता ये दोनों एकार्थ हैं॥

(प्र०) संहिता किस को कहते हैं ?

(उ०) परः सन्निकर्षः संहिता। शब्दाविरामः। न्हादाविरामः। पौर्वापर्यमकालव्यपेतं संहिता॥ अ० १। पा० ४। सू० १०९। भा० ४॥

जहां पूर्व वर्ण वा पदों को पर के साथ उच्चारित शब्द ध्वनि और काल का व्यवधान न हो उस को संहिता कहते हैं कि जहां अक्षरों के साथ अक्षर, पदों के साथ पद और वाक्यों के साथ वाक्य मिला कर उच्चारण किये वा लिखे जाते हैं, जैसे अ, अ ये दोनों मिलकर आ और अ, इ मिलकर ए इत्यादि अक्षरों, धर्म्मार्थकाममोक्षाः। इत्यादि पदों और "अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्" इत्यादि वाक्यों की संहिता कहाती है। (प्र०) अवसान किस को कहते हैं ?

(उ०) विरामोऽवसानम्। अ० १। पा०४। सू० ११०। जहां क्रिया और वर्ण का अभाव तथा व्यवधान हो उस को अवसान कहते हैं क्योंकि वाक्यं वक्त्रधीनं हि। वाक्य वक्ता के आधीन होता है, चाहे संहिता करे चाहे अवसान करे, परन्तु इस में यह नियम समझना अवश्य है कि एक पद समास और धातु तथा उपसर्ग के योग में तो संहिता ही करनी और वाक्य में संहिता तथा अवसान दोनों पक्ष शुद्ध हैं, सो चार प्रकार का होता है स्वर, हल्, हल् स्वर और अयोगवाह सन्धि। स्वरसन्धि उस को कहते हैं कि जहां दो या अधिक स्वर मिलकर एक हो जाते हैं जैसे अ+अ=आ। अ+इ=ए इत्यादि। हल्सन्धि उस को कहते हैं कि जहां हल् से परे हल् का मेल हो जाता है जैसे—कात्स्न्र्यम्। यहां र् त् म् मिले हैं। हल् स्वरसन्धि उस को कहते हैं कि जहां अच् और हल्

का मेल होता है जैसे क्+अ=क इत्यादि और अयोगवाहसन्धि उस को कहते हैं कि जिस में अच् और हल् के साथ जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, ꣳकार, अनुस्वार, अनुनासिक और विसर्जनीय का मेल होता है। जिह्वामूलीय। देवदत्तᳵकिङ्करोति, किङ्करᳵखनति इत्यादि। उपध्मानीय। बालकᳶपठति, वृक्षᳶफलति। इत्यादि। ह्रस्व ꣳ कार। तेषाꣳ सहस्रयोजने। दीर्घ ꣴकार। सꣴ हितासि। इत्यादि। अनुस्वार। प्रशंसन्ति। इत्यादि। अनुनासिक। तांश्चिनोति। इत्यादि। विसर्जनीय। परमेश्वरः। इत्यादि पढ़ने और पढ़ानेवाले ऐसी उत्तम रीति से इस को पढ़ें पढ़ावें कि जिस से संयुक्त शब्दों को यथावत् शीघ्र जानकर विद्या के ग्रहण करने और कराने में उपयुक्त होकर शास्त्रों के पढ़ने में सामर्थ्य को प्राप्त कर के सुखी हो जावें ॥

अथ संज्ञाप्रकरणम् ॥

८७—अथ शब्दानुशासनम् ॥ १ ॥

शब्दानुशासन शास्त्र का अधिकार किया जाता है। अर्थात् शब्दों को कैसे बनाना, बोलना और परस्पर सम्बन्ध करना चाहिये इस प्रकार की शिक्षा का आरम्भ किया जाता है। यह प्रतिज्ञासूत्र है ॥

अ इ उ ण् ॥ २ ॥ ऋ ऌ क् ॥ ३ ॥ ए ओ ङ् ॥ ४ ॥ ऐ औ च् ॥ ५ ॥ ह य व र ट् ॥ ६ ॥ ल ण् ॥ ७ ॥ ञ म ङ ण न म् ॥ ८ ॥ झ भ ञ् ॥ ९ ॥ घ ढ ध ष् ॥ १० ॥ ज ब ग ड द श् ॥ ११ ॥ ख फ छ ठ थ च ट त व् ॥ १२ ॥ क प य् ॥ १३ ॥ श ष स र् ॥ १४ ॥ ह ल् ॥ १५ ॥

ये चौदह सूत्र वर्णोपदेश के लिये हैं। इस को वर्णसमाम्नाय वा अक्षरसमाम्नाय भी कहते हैं। शब्दविषय में जितने वर्ण हैं वे सब ये ही हैं। इन चौदह सूत्रों में अन्त के चौदह वर्ण हल् पढ़े हैं वे प्रत्याहार बनाने के लिये हैं ॥

८८—हलन्त्यम् ॥ १६ ॥ १ । ३ । ३ ॥

उपदेश में धातु आदि के जो २ अन्त्य हल् अर्थात् व्यञ्जन वर्ण हैं वे इत्संज्ञक हों। जैसे ण् क् इत्यादि। उपदेशग्रहण इसलिये है कि अग्निचित्। यहां त् की इत्संज्ञा न हो ॥ १६ ॥

८९—आदिरन्त्येन सहेता ॥ १७ ॥ १ । १ । ८५ ॥

जो २ इन सूत्रों में आदि वर्ण हैं वे इत्संज्ञक अन्त्य वर्णों के साथ मिल कर मध्यस्थ वर्णों और अपने रूप को भी ग्रहण करने वाले होवें।

अ इ उ ण् यहां आदि वर्ण अकार इत्संज्ञक णकार के साथ मिल

का मेल होता है जैसे क+अ=क इत्यादि और अयोगवाहसन्धि उस के कहते हैं कि जिस में अच् और हल् के साथ जिह्वामूलीय, उपध्मानीय ऽकार, अनुस्वार, अनुनासिक और विसर्जनीय का मेल होता है। जिह्वा मूलीय। देवदत्तᳵकिङ्करोति,किङ्करᳵखनति इत्यादि। उपध्मानीय। बालकᳶपठति,वृक्षᳶ फलति। इत्यादि। ह्रस्व ऽ कार। तेषा ऽ सहस्रयोजने दीर्घ ऽकार। स ऽ हितासि। इत्यादि। अनुस्वार। प्रशंसन्ति। इत्यादि। अनुनासिक। तांश्चिनोति। इत्यादि। विसर्जनीय। परमेश्वरः। इत्यादि पढ़ने और पढ़ानेवाले ऐसी उत्तम रीति से इस को पढ़ेंपढ़ावें कि जिस से संयुक्त शब्दों को यथावत् शीघ्र जानकर विद्या के ग्रहण करने और कराने में उपयुक्त होकर शास्त्रों के पढ़ने में सामर्थ्य को प्राप्त कर के सुखी हो जावें ॥

अथ संज्ञाप्रकरणम् ॥

८७—अथ शब्दानुशासनम् ॥ १ ॥

शब्दानुशासन शास्त्र का अधिकार किया जाता है। अर्थात् शब्दों को कैसे बनाना, बोलना और परस्पर सम्बन्ध करना चाहिये इस प्रकार की शिक्षा का आरम्भ किया जाता है। यह प्रतिज्ञासूत्र है ॥

अ इ उ ण् ॥ २ ॥ ऋ ऌ क् ॥ ३ ॥ ए ओ ङ् ॥ ४ ॥ ऐ औ च् ॥ ५ ॥ ह य व र ट् ॥ ६ ॥ ल ण् ॥ ७ ॥ ञ म ङ ण न म् ॥ ८ ॥ झ भ ञ् ॥ ९ ॥ घ ढ ध ष् ॥ १० ॥ ज ब ग ड द श् ॥ ११ ॥ ख फ छ ठ थ च ट त व् ॥ १२ ॥ क प य् ॥ १३ ॥ श ष स र् ॥ १४ ॥ ह ल् ॥ १५ ॥

ये चौदह सूत्र वर्णोपदेश के लिये हैं। इस को वर्णसमाम्नाय वा अक्षरसमाम्नाय भी कहते हैं। शब्दविषय में जितने वर्ण हैं वे सब ये ही हैं। इन चौदह सूत्रों में अन्त के चौदह वर्ण हल् पढ़े हैं वे प्रत्याहार बनाने के लिये हैं ॥

८८—हलन्त्यम् ॥ १६ ॥ १ । ३ । ३ ॥

उपदेश में धातु आदि के जो २ अन्त्य हल् अर्थात् व्यञ्जन वर्ण हैं वे इत्सञ्ज्ञक हों। जैसे ण् क् इत्यादि। उपदेशग्रहण इसलिये है कि अग्निचित्। यहां त् की इत्सञ्ज्ञा न हो ॥ १६ ॥

८९—आदिरन्त्येन सहेता ॥ १७ ॥ १ । १ । ८५ ॥

जो २ इन सूत्रों में आदि वर्ण हैं वे इत्सञ्ज्ञक अन्त्य वर्णों के साथ संज्ञा बनकर मध्यस्थ वर्णों और अपने रूप को भी ग्रहण करने वाले होवें। जैसे अ इ उ ण यहां आदि वर्ण अकार ण् के साथ संज्ञा को प्राप्त होता

का मेल होता है जैसे क्+अ=क इत्यादि और अयोगवाहसन्धि उस को कहते हैं कि जिस में अच् और हल् के साथ जिह्वामूलीय, उपध्मानीय ꣳकार, अनुस्वार, अनुनासिक और विसर्जनीय का मेल होता है। जिह्वामूलीय। देवदत्तᳵकिङ्करोति,किङ्करᳵखनति इत्यादि। उपध्मानीय। बालक पठति,वृक्षᳶ फलति। इत्यादि। ह्रस्व ꣳ कार। तेषा ꣳ सहस्रयोजने। दीर्घ ꣳकार। सꣳ हितासि। इत्यादि। अनुस्वार। प्रशंसन्ति। इत्यादि। अनुनासिक। ताँश्चिनोति। इत्यादि। विसर्जनीय। परमेश्वरः। इत्यादि पढ़ने और पढ़ानेवाले ऐसी उत्तम रीति से इस को पढ़ें पढ़ावें कि जिस से संयुक्त शब्दों को यथावत् शीघ्र जानकर विद्या के ग्रहण करने और कराने में उपयुक्त होकर शास्त्रों के पढ़ने में सामर्थ्य को प्राप्त कर के सुखी हो जावें ॥

९२–हलोऽनन्तराः संयोगः ॥ २० ॥ १ । १ । २२ ॥

जिन के बीच में कोई स्वर न हो इस प्रकार के दो वा अधिक हलों को संयोग सञ्ज्ञा है। जैसे इन्द्रः। अग्निः। आदित्यः। इत्यादि ॥२०॥

९३–मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः ॥ २१ ॥ १ । १ । २३ ॥

कुछ मुख और कुछ नासिका से जिस वर्ण का उच्चारण हो उसकी अनुनासिक सञ्ज्ञा हो। जैसे ञ, म, ङ, ण, न, इन पांच वर्णों, अनुस्वार और अनुनासिक के चिन्ह को भी अनुनासिक कहते हैं ॥ २१ ॥

९४–तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ॥ २२ ॥ १ । १ । २४ ॥

जिन वर्णों का कण्ठ आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न समान हो उन की परस्पर सवर्ण सञ्ज्ञा होती है। जैसे क ख ग घ ङ इत्यादि की सवर्णसञ्ज्ञा है। स्थान प्रयत्नों का विषय (वर्णो० २२–६८) में है ॥ २२ ॥

९५–नाज्झलौ ॥ २३ ॥ १ । १ । २५ ॥

अच् हल् परस्पर सवर्ण सञ्ज्ञक न हों। जैसे अ–ह। इ–श। ऋ–ष। इत्यादि की परस्पर सवर्ण सञ्ज्ञा नहीं होती ॥ २३ ॥

९६–वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः ॥ २४ ॥ ८ । २ । ८२ ॥

प्लुतप्रकरण में यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो कहेंगे वह पद के टिसंज्ञक भाग को प्लुत उदात्त समझा जावेगा ॥ २४ ॥

९७–प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ॥ २५ ॥ ८ । २ । ८३ ॥

प्रत्यभिवाद में वाक्य के टि को प्लुत उदात्त स्वर हो और शूद्र के प्रत्यभिवाद में न हो। जो पूर्व अभिवादन (नमस्कार) किया जाता है उस का जो उत्तर देनेवाले की ओर से वाक्य होता है उस को प्र-त्यभिवाद कहते हैं, जिस के आगे नाम का शब्द होता है वह प्लुत

है सो अ इ उ का ग्राहक होता है इसी प्रकार (अच्) के कहने से (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ) वर्णों का ग्रहण होता है और जो अच् प्रत्याहार के बीच में ण् क् च् आदि आते हैं इन का ग्रहण नहीं होता क्योंकि चौदह सूत्रों के चौदह अन्त्य के हलों की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, यहां व्याकरण के चौदह सूत्रों में जितने प्रत्याहार बनते हैं उन को निम्नलिखित प्रकार से जानो, जैसे अकार से लेके ७ सात प्रत्याहार अण्, अक्, अच्, अट्, अम्, अश्, अल्। इकार से ३ तीन प्र० इक्, इच्, इण्। उकार से एक १ प्र० उक्। एकार से दो २ प्र० एङ्, एच्। ऐकार से एक १ प्र० ऐच्। हकार से दो २ प्र० हल्, हश्। यकार से पांच ५ प्र० यण्, यम्, यञ्, यय्, यर्। वकार से एक १ प्र० वश्। रेफ से एक १ प्र० रल्। ञकार से एक १ प्र० ञम्। मकार से एक १ प्र० मय्। ङकार से एक १ प्र० ङम्। झकार से चार ४ प्र० झष्, झय्, झर्, झल्। भकार से एक १ प्र० भष्। जकार से एक १ प्र० जश्। बकार से दो २ प्र० बय्, बल्। छकार से एक १ प्र० छव्। खकार से दो २ प्र० खय्, खर्। चकार से दो २ प्र० चय्, चर्। शकार से दो २ प्र० शर्, शल्। ये सब मिलकर एकतालीस ४१ प्रत्याहार बनते हैं ॥ १० ॥

९०—वृद्धिरादैच् ॥ १८ ॥ १ । १ । १६ ॥

दीर्घ आकार और ऐच् प्रत्याहार ऐ औ इन की वृद्धि संज्ञा हो। जैसे कमु, घञ्, सु = कामः। गर्ग, यञ्, सु (गर्गस्य गोत्रापत्यम्) गार्ग्यः। णीञ्, ण्वुल्, सु (यो नयति सः) नायकः। शिव, अण्, सु=शैवः। उपगु, अण्, सु = औपगवः ॥ १८ ॥

९१—अदेङ् गुणः ॥ १९ ॥ १ । १ । १७ ॥

ह्रस्व अकार एङ् अर्थात् ए ओ इन तीन वर्णों की गुण संज्ञा हो।

सन्देहो भवति श्रोष्यति न श्रोष्यतीति तद्दूरमिहावगम्यते॥२९॥

जहां स्वाभाविक प्रयत्न से बुलाने में सुनने न सुनने का विशेष कारण न मिले वहां सन्देह होता है कि जिस को बुलाते हैं वह सुनेगा वा नहीं उसको दूर कहते हैं । उदाहरण—आगच्छ भो माणवक देवदत्त३ अत्र । यहां दूरग्रहण इसलिये है कि आगच्छ भो माणवक देवदत्त । यहां प्लुत न हुआ ॥ २६ ॥

१०२–हैहेप्रयोगे हैहयोः ॥ ३० ॥ ८ । २ । ८५ ॥

है हे शब्दों का प्रयोग हो तो दूर से बुलाने में जो वाक्य उस में है हे शब्दों को प्लुतोदात्त हो । उ० है ३ देवदत्त । देवदत्त है ३ । हे ३ देवदत्त । देवदत्त हे ३ । इस में द्विवारा है हे ग्रहण इसलिये है कि वाक्य के आदि अन्त में सर्वत्र है हे को प्लुतोदात्त हो जावे ॥ ३० ॥

१०३–गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् ॥३१॥८।२।८६॥

जो ऋकार को छोड़ के अनन्त्य गुरु वर्ण है उस एक २ को सम्बोधनवाक्य में विकल्प करके प्लुतोदात्त हो । दे३वदत्त। यहां (दे) गुरु है उस को प्लुतोदात्त होता है । देवद३त्त । यहां दकार को प्लुतोदात्त होता है । इसी प्रकार । यज्ञ३दत्त । इत्यादि । यहां गुरुग्रहण इसलिये है कि वकार को प्लुत न हो । ऋकार का निषेध इसलिये है कि कृष्णादत्त ३ । यहां ऋकार को प्लुत न हुआ । प्राचांग्रहण इसलिये है कि प्लुत उदात्त विकल्प करके हो । आयुष्मानेधि देवदत्त। यहां एक पक्ष में नहीं होता । एकैकग्रहण इसलिये है कि एक वाक्य में एक साथ कई ... को प्लुत न हो ॥ ३१ ॥

का चिन्ह समझा जाता है। प्लुत के तीन भेद हैं। प्लुतोदात्त प्लु
नुदात्त। प्लुतस्वरित। उनका यहां क्रम से विधान करते हैं। अभिवाद
अभिवादये देवदत्तोऽहम्भोः। प्रत्यभिवाद—आयुष्मानेधि देवदत्त ३ इति।
त्यादि। यहां अशूद्रग्रहण इसलिये है कि अभिवादये तुपजकोऽहम्भोः
आयुष्मानेधि तुपजक। यहां नहीं हुआ ॥ २५ ॥

९८—वा०—अशूद्रस्त्र्यसूयकेष्विति वक्तव्यम् ॥ २६ ॥

शूद्र के अभिवाद में जो निषेध है वहां स्त्री और असूयक अर्थात्
निन्दक के टि को भी प्रत्यभिवाद में प्लुतोदात्त न हो। जैसे स्त्री—अ-
भिवादये गार्गी अहम्भोः। आयुष्मती भव गार्गि। वात्सी अहम्भोः। आ-
युष्मती भव वात्सि। असूयक—अभिवादये स्थाल्यहम्भोः। आयुष्मानेधि
स्थालिन्। स्थाली किसी निन्दक की संज्ञा है ॥ २६ ॥

९९—वा०—भोराजन्यविशां वा ॥ २७ ॥

भो, राजन्य (क्षत्रिय) विश् (वैश्य) इन के प्रत्यभिवाद में जो
वाक्य उसके टि को प्लुतोदात्त विकल्पकरके हो। भो—देवदत्तोऽहम्भोः
आयुष्मानेधि देवदत्त भो ३ः इति। आयुष्मानेधि देवदत्त भोः। राजन्य-
इन्द्रवर्म्माऽहम्भोः। आयुष्मानेधीन्द्रवर्म्म ३न्। आयुष्मानेधीन्द्रवर्म्मन्
विश्—अभिवादये इन्द्रपालितोऽहम्भोः। आयुष्मानेधीन्द्रपालित ३ इह
आयुष्मानेधीन्द्रपालित। इत्यादि ॥ २७ ॥

१००—दूराद्धूते च ॥ २८ ॥ ८ । २ । ८४ ॥

जो दूर से बुलाने में वर्त्तमान वाक्य है उस के टि को प्लुतोदात्त हो।
दूर शब्द से यहां क्या समझना चाहिये क्योंकि जो दूर है वही किसी के
प्रति समीप भी होता है इसलिये ॥ २८ ॥

१०१—भा०—यत्र प्राकृतात् प्रयत्नाद् विशेषेऽनुपादीयमाने

है वहां प्लुतोदात्त होता है। जैसे। ओ३म् इषे त्वोर्जे त्वा। ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितम्। इत्यादि ॥ ३२ ॥

१०५—ये यज्ञकर्मणि ॥ ३३ ॥ ८ । २ । ८८ ॥

यज्ञकर्म अर्थ में ये इस पद को प्लुतोदात्त हो। ये ३ यजामहे। यज्ञकर्मक इसलिये कहा है कि। ये यजामहे। ऐसा पाठ करने मात्र में प्लुत न हो किन्तु विधियज्ञ में जब मन्त्र का प्रयोग हो वहीं प्लुत होवे और यजामहे के साथ ही ये शब्द को प्लुत अभीष्ट है किन्तु (ये देवासः) इत्यादि में प्लुत अभीष्ट नहीं ॥ ३३ ॥

१०६—प्रणवष्टेः ॥ ३४ ॥ ८ । २ । ८९ ॥

यज्ञकर्म में टि के स्थान में प्रणव आदेश हो। सो प्लुत हो, पाद वा आधी ऋचा की अंत्य टिसञ्ज्ञक (१३९) भाग के स्थान में प्लुत ओंकार हो प्रणव कहाता है। उ०—अपां रेतांसि जिन्वतो३म् इत्यादि ॥ ३४ ॥

१०७—याज्यान्तः ॥ ३५ ॥ ८ । २ । ९० ॥

यज्ञकाण्ड में पढ़े हुए मन्त्रों के अन्त का जो टिसञ्ज्ञक भाग है उस को प्लुत हो। उ०—स्तोमैर्विधेमाग्नये ३। जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहा३म्। इस में अन्तग्रहण इसलिये है कि कोई ऋचा वाक्य समुदाय रूप है उन प्रत्येक वाक्य के अन्त्य टिभाग को प्लुत न हो किन्तु मन्त्रान्त में ही हो ॥ ३५ ॥

१०८—ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः ॥ ३६॥८।२।९१ ॥

ब्रूहि, प्रेष्य, श्रौषट्, वौषट् और आवह इनके आदि अच्‌र को उदात्त प्लुत हो। उ०—अग्नयेऽनु ब्रू३हि। अग्नये गोमयान् प्रे३ष्य। अस्तु श्रौ— ... श्रौ३षट्। अग्निमा३वह ॥ ३६ ॥

१०९–अग्नीत्प्रेषणे परस्य च ॥ ३७ ॥ ८ । २ । ९२ ॥

अग्नीधऋत्विग्विशेष को प्रेरणा करने में आदि और उससे पर को भी प्लुतोदात्त हो । उ०—ओ३म् आ३वय । इत्यादि ॥ ३७ ॥

११०–विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः ॥ ३८ ॥ ८ । २ । ९३ ॥

पूछे हुए के उत्तर देने में हि को प्लुतोदात्त हो विकल्प कर के । उ०-अकार्षीः कटं देवदत्त ?। अकार्षं हि३ । अकार्षं हि । इत्यादि । पृष्टप्रतिवचनग्रहण इसलिये है कि कटङ्करिष्यति हि । यहां न हो ॥ ३८ ॥

१११–निगृह्यानुयोगे च ॥ ३९ ॥ ८ । २ । ९४ ॥

वादी को प्रमाणों से उस के पक्ष से हरा के अपने पक्ष में पीछे नियुक्त करने में जो वाक्य उसके टिभाग को प्लुतोदात्त विकल्प से हो । उ०—नित्यः शब्दः । किसी ने यह प्रतिज्ञा की उस को युक्ति से हराके उपहासपूर्वक कहे कि—अनित्यः शब्द इत्यात्थ३ । अनित्यः शब्द इत्यात्थ । आप ने यही कहा था इत्यादि ॥ ३९ ॥

११२–आम्रेडितं भर्त्सने ॥ ४० ॥ ८ । २ । ९५ ॥

धमकाने अर्थ में आम्रेडित वा उस में पूर्वभाग को पर्याय कर के प्लुतोदात्त हो । उ०—चौर चौर ३ । चौर ३ चौर घातयिष्यामि त्वा । दस्यो दस्यो ३ । दस्यो ३ दस्यो वन्धयिष्यामि त्वा । इत्यादि ॥ ४० ॥

११३–अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम् ॥ ४१ ॥ ८ । २ । ९६ ॥

अङ्ग शब्द से युक्त सापेक्ष जो तिङन्त है उस के टि को धमकाने अर्थ में प्लुतोदात्त हो । उ०—अङ्ग कूज३ । अङ्ग व्याहर३ इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म । इत्यादि । तिङ् इसलिये कहा कि अङ्ग देवदत्त । यहां न हो ॥४१॥

११४–विचार्यमाणानाम् ॥ ४२ ॥ ८ । २ । ९७ ॥

जो विचार्यमाण वाक्य हैं उन की टि को प्लुतोदात्त हो । जैसे

पोतास्थं दीक्षितस्य गृहा३इ इति । यहां दीक्षित के घर में प्रवन ... चाहिये यह विचार करते हैं ॥ ४२ ॥

११५– पूर्वन्तु भाषायाम् ॥ ९३ ॥ ८ । २ । ९८ ॥

लौकिक प्रयोग में विचार्यमाण वाक्यों के पूर्व प्रयोग में प्लुतोदात्त हो । अहिर्नु ३ । रज्जुर्नु । यह सांप है वा रज्जु ? ॥ ४३ ॥

११६–प्रतिश्रवणे च ॥ ९४ ॥ ८ । २ । ९९ ॥

स्वीकार अर्थ में जो वाक्य उस के टि को प्लुतोदात्त हो । गां देहि भोः । अहं ते ददामि ३ ॥ ४४ ॥

११७–अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः ॥ ९५ ॥ ८।२।१००॥

प्रश्न के अन्त में और अभिपूजित अर्थ में अनुदात्तप्लुत हो । प्रश्नान्त–अगम ३: पूर्वा३न् ग्रमा३न् । अग्निभूता३इ इति । पटा३उ इति । यहां अगमः३ पूर्वा३न् ग्रामा३न् (१२२) से आदि मध्य में प्लुत हुआ है । अभिपूजित–शोभनः खल्वसि माणवक ३ अत्र । इत्यादि ॥ ४५ ॥

११८–चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने ॥९६॥ ८ । २ । १०१॥

उपमार्थवाची चित् अव्यय के प्रयोग में जो वाक्य उस की टि के प्लुतानुदात्त हो । उ०–अग्निचिद्भाया३त् । राजचिद्भाया३त् । अग्नि के तुल्य वा राजा के तुल्य तेजस्वी होवे । उपमार्थ इसलिये कहा कि कथञ्चिदाहुः । यहां प्लुत न हो । प्रयुज्यमान इसलिये है कि अग्निर्माणवको भायात् । यहां न हो ॥ ४६ ॥

११९–उपरिस्विदासीदिति च ॥ ९७ ॥ ८ । २ । १०२ ॥

वृद्धि, ...

१२०–स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु ॥ ४८ ॥ ८ । २ । १०३ ॥

जो आम्रेडित (द्विर्वचन का परभाग) परे हो तो असूया, सम्मति, कोप और कुत्सन अर्थ में पूर्वभाग को स्वरितप्लुत हो। असूया—माणवक ३ माणवक । सम्मति—माणवक प्रियं वद ३प्रियं वद शोभनः खल्वसि । कोप—दुर्जन ३ दुर्जन तूष्णीम्भव । कुत्सन—याष्टीक ३ याष्टीक रिक्ता ते यष्टिः । इत्यादि ॥ ४८ ॥

१२१–क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम् ॥ ४९ ॥ ८ । २ । १०४ ॥

क्षिया—आचार बिगाड़ना, आशीर्वाद और आज्ञा देने अर्थ मे अन्य उत्तरपद को आकाङ्क्षा रखनेवाला तिङन्त पद प्लुतस्वरित हो । स्वयं रथेन याति ३ उपाध्यायं पदातिं गमयति । सुतांश्च लप्सीष्ट३धनं च तात । कटं कुरु ३ ग्रामं च गच्छ । आकाङ्क्षग्रहण इसलियेहै कि दीर्घं ते आयुरस्तु । यहां प्लुत न होवे ॥ ४९ ॥

१२२—अनन्तस्यापि प्रश्नाख्यानयोः ॥ ५० ॥ ८ । २ । १०५ ॥

प्रश्न और आख्यान अर्थ में अन्त्य और अनन्त्य पदके भी टिभाग को प्लुतस्वरित होवे । अगमः ३ पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता ३ इ । पटा३ उ । आख्यान में—अगमः ३ पूर्वा३न् ग्रामा३न् भोः ॥ ५० ॥

१२३–प्लुतावैच इदुतौ ॥ ५१ ॥ ८ । २ । १०६ ॥

(दूराद्धूते०) इत्यादि सूत्रों में जो प्लुतविधान किया है वहां एच् को जो प्लुत आवे तो उस के अवयव इकार उकार को प्लुत हो । ऐ३तिकायनः । औ३पगवः । यहां जब इवर्ण उवर्ण अवर्ण का समविभाग समझा जाता है तब इकार उकार [illegible] हो जाते हैं ॥ ५१ ॥

१२४-एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्द्धस्याऽऽदुत्तरस्येदुतौ ॥ ५२ ॥ ८ । २ । १०७ ॥

जो समीप में बुलाने में अप्रगृह्य एच् है उस के पूर्व अर्धभाग अर्द्ध को आकारादेश हो और उत्तरभाग को इकार उकार आदेश हों ॥ ५२ ॥

१२५-वा०-प्रश्नान्ताभिपूजितविचार्यमाणप्रत्यभिवादयाज्यान्तेष्विति वक्तव्यम् ॥ ५३ ॥

जो इस सूत्र में कार्यविधान है, वह प्रश्नान्त, अभिपूजित, विचार्यमाण, प्रत्यभिवाद और याज्यान्तविषय में समझना चाहिये । प्रश्नान्त—आगमः३ पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ पटा३उ । अभिपूजित—सिद्धोऽसि माणवकऽ३ग्निभूता ३ इ । पटा ३ उ । विचार्यमाण—होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ । प्रत्यभिवाद—आयुष्मानेधि अग्निभूता३इ । याज्यान्त—उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नया३इ । इत्यादि । पूर्वोक्त विषयों में परिगणन इसलिये किया है कि विष्णुभूते३ विष्णुभूते घातयिष्यामि त्वा । यहां न हुआ ॥ ५३ ॥

१२६—वा०—एचः प्लुतविकारे पदान्तग्रहणम् ॥ ५४ ॥

जहां एच् को पूर्व सूत्र से आदेश करते हो वहां पदान्त समझना चाहिये । अर्थात् यहां नहीं होता, भद्रं करोषि गौः । यहां अन्त में विसर्जनीय आते हैं । यहां अप्रगृह्यग्रहण इसलिये है कि शोभने खलु माले३ ॥ ५४ ॥

१२७—वा०—आमन्त्रिते छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ ५५ ॥

आमन्त्रित परे हो तो पूर्व को प्लुत हो वेदविषय में । जैसे—

पत्नीवः ॥ ५५ ॥

१२८ –तयोर्य्वावचि संहितायाम् ॥ ५६ ॥ ८ । २ । १०८ ॥

'पूर्वोक्त इकार उकार को य, व, आदेश क्रम से होते हैं। अग्ना३ न्द्रम्। पटा३वुदकम् ॥ ५६ ॥

(इति प्लुतसंज्ञाप्रकरणम्)

१२९–ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् ॥ ५७ ॥ १ । १ । २६ ॥

ई, ऊ, ए, ये जिन के अन्त में हों ऐसे जो द्विवचनान्त शब्द वे गृह्यसंज्ञक हों। जैसे अग्नी इमौ। वायू इमौ। माले इमे इत्यादि ॥५७॥

१३०–अदसो मात् ॥ ५८ ॥ १ । १ । २७ ॥

अदस् शब्द के मकार से परे ई, ऊ की प्रगृह्यसंज्ञा हो। जैसे अमी ति। अमू इति ॥ ५८ ॥

१३१—शे ॥ ५९ ॥ १ । १ । २८ ॥

जो विभक्ति के स्थान में शे आदेश होता है उस की प्रगृह्यसंज्ञा हो। जैसे अस्मे इन्द्राबृहस्पती ॥ ५९ ॥

१३२-निपात एकाजनाङ् ॥ ६० ॥ १ । १ । २९ ॥

आङ् को छोड़ के जो केवल एक ही अच् निपात है वह प्रगृह्य-संज्ञक हो। जैसे अ, इ, उ। अ अपक्राम। इ इन्द्रं पश्य। उ उत्तिष्ठ ॥६०॥

१३३–ओत् ॥ ६१ ॥ १ । १ ।३० ॥

जो ओकारान्त निपात है वह प्रगृह्यसंज्ञक हो। जैसे अथो इति। अहो इमे। नो इह। इत्यादि ॥ ६१ ॥

१३४–सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे ॥ ६२ ॥ १ । १ । ३१ ॥

जो अनार्ष अर्थात् लौकिक इति शब्द के परे संबुद्धिनिमित्तक

ओकार है उस को शाकल्य ऋषि के मत में प्रगृह्य संज्ञा हो। जैसे वायो इति। अन्य ऋषियों के मत में वायविति। यहां अनार्षग्रहण इसलिये है कि आर्ष अर्थात् वैदिक इति शब्द के परे प्रगृह्यसंज्ञा न हो। जैसे बन्धवित्य ब्रवीत् इत्यादि ॥ ६२ ॥

१३५–उञ ऊँ ॥ ६३ ॥ १ । १ । ३२ ॥

शाकल्य आचार्य के मत में अनार्ष इति शब्द परे हो तो उञ् की प्रगृह्यसंज्ञा और उञ् के स्थान में ऊँ ऐसा आदेश हो उस की भी प्रगृह्य संज्ञा हो। जैसे उ इति। ऊँ इति। विति ॥ ६३ ॥

१३६–ईदूतौ च सप्तम्यर्थे ॥ ६४ ॥ १ । १ । ३३ ॥

सप्तमी विभक्ति के अर्थ में वर्त्तमान ईकारान्त ऊकारान्त शब्द प्रगृह्य-संज्ञक हों। उ०–मामकी इति। तनू इति। सोमो गौरी अधिश्रितः ॥६४॥

१३७–नवेति विभाषा ॥ ६५ ॥ १ । १ । ५८ ॥

निषेध और विकल्प के अर्थ की विभाषा संज्ञा हो ॥ ६५ ॥

१३८–अदर्शनं लोपः ॥ ६६ ॥ १ । १ । ७४ ॥

विद्यमान के अदर्शन की लोप संज्ञा हो ॥ ६६ ॥

१३९–अचोऽन्त्यादि टि ॥ ६७ ॥ १ । १ । ७८ ॥

जो अचों के बीच में अन्त्य अच् है उस से ले के जो अन्त्यादि समुदाय सो टिसंज्ञक होता है। जैसे अग्निचित्। यहां अन्त्य के इत् भाग को टि संज्ञा है ॥ ६० ॥

१४०–अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा ॥ ६८ ॥ १ । १ । ७९ ॥

जो वर्ण समुदायरूप में अन्त्य वर्ण से पूर्व वर्ण है उस की उपधा संज्ञा ... है। जैसे निर् दुर् यहां इ, उ, की उपधा संज्ञा है ॥ ६८ ॥

१४१–ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ ६९ ॥ १ । २ । २७ ॥

एकमात्रिक, द्विमात्रिक और त्रिमात्रिक अच् क्रम से ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतसंज्ञक हों । अ । आ । आ ३ ॥ ६६ ॥

१४२–सुप्तिङन्तं पदम् ॥ ७० ॥ १ । ४ । १४ ॥

सुबन्त और तिङन्त शब्दों की पदसंज्ञा हो ॥ ८० ॥

१४३–प्राग्रीश्वरान्निपाताः ॥ ७१ ॥ १ । ४ । ५६ ॥

यह अधिकार सूत्र है इस से आगे जो कहेंगे उन की निपात संज्ञा होगी ॥ ८१ ॥

१४४–चादयोऽसत्त्वे ॥ ७२ ॥ १ । ४ । ५७ ॥

जहां किसी निज द्रव्य के वाचक न हों वहां च आदि शब्द निपातसंज्ञक हों । च । वा । ह । इत्यादि की निपातसंज्ञा है ॥ ८२ ॥

१४५–प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे ॥ ७३ ॥ १ । ४ । ५८ ।

प्रादि शब्द असत्त्व अर्थ में निपातसंज्ञक और क्रियायोग में उपसर्गसंज्ञक हों ॥ ८३ ॥

१४६–गतिश्च ॥ ७४ ॥ १ । ४ । ५९ ॥

क्रियायोग में प्रादि शब्द गतिसंज्ञक भी हों ॥ ८४ ॥

१४७–परः सन्निकर्षः संहिता ॥ ७५ ॥ १ । ४ । १०८ ॥

पर–(अतिशयकर) जो सन्निकर्ष–(वर्णों की समीपता) है उस की संहिता संज्ञा हो ॥ ८५ ॥

१४८–विरामोऽवसानम् ७६ ॥ १ । ४ । १०९ ॥

समाप्ति अर्थात् जिस के आगे कोई वर्ण न हो उस अन्तिम वर्ण की अवसान संज्ञा होवे ॥ ८६ ॥

इति संज्ञाप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ परिभाषाप्रकरणम् ॥

१४९–समर्थः पदविधिः ॥ ७७ ॥ २ । १ । १ ॥

जो कुछ इस व्याकरण शास्त्र में पद को विधान कार्य सुना जाता है वह समर्थ को जानना चाहिये। व्याकरण में प्रथम यही परिभाषा सं‑बंध प्रवृत्त होती है क्योंकि (अपदन्न प्रयुञ्जीत) अपद अर्थात् सुप् तिङ् प्रत्यय से रहित शब्द का प्रयोग कभी न करना चाहिये और सुप् तथा तिङ् भी समर्थ ही से विधान होते हैं असमर्थ से नहीं क्योंकि विना सं‑ज्ञा के सामर्थ्य नहीं होता सामर्थ्य के विना उस से प्रत्यय की उत्पत्ति नहीं हो सकती और इस के विना प्रयोग भी नहीं बन सकता क्योंकि:—

। केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या न च केवलः प्रत्ययः । प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थं सह ब्रूतः।

इस महाभाष्य के वचन का अभिप्राय यही है कि दोनों के मिले विना कोई भी प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकता इस कारण सामर्थ्य से विना किसी प्रत्यय कार्य्य वा कोई व्याकरण की बात पृथक् नहीं हो सकती इसलिये इसी सूत्र के भाष्य में:—

परिभाषायां च सत्यां यावान् व्याकरणे पदगन्धो नाम स सर्वः संगृहीतो भवति

यह परिभाषा सूत्र है इसलिये जो कुछ व्याकरण का विषय है उस सब में इस सूत्र की प्रवृत्ति अवश्य होती है क्योंकि जैसे विना धातुसंज्ञा के भ्वादि शब्द कृत्संज्ञक प्रत्ययों की उत्पत्ति में समर्थ नहीं होते और कृत्संज्ञक प्रत्यय भी धातु से परे नहीं हो सकते, वैसे विना प्रातिपदि‑के टाप् आदि स्त्री और अण् आदि तद्धित प्रत्यय उत्पन्न हो सकते क्योंकि विना प्रातिपदिक संज्ञा के उन का सामर्थ्य ही सुप् आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति करा सके और सुप् स्त्री और सुप् आदि प्रातिपदिकों के आगे होने में समर्थ हो ...

हो सकते ऐसे ही सर्वत्र समझ लेना । इस सूत्र में दो पक्ष हैं, प्रथम पक्ष में दो पद और दूसरे पक्ष में एक पद है । इस से आचार्य्य का यह अभिप्राय विदित होता है कि प्रथम पक्ष से व्यपेक्षाभाव सामर्थ्य जिस में पृथक् २ पद अलग २ स्वर और भिन्न २ विभक्ति रहती हैं उस का प्रकाश और दूसरे पक्ष से एकार्थी भाव सामर्थ्य अर्थात् जिस में अनेक पदों का एकपद अनेक स्वरों का एकस्वर और अनेक विभक्तियों की एक विभक्ति हो जाती है और जो व्यपेक्षा सामर्थ्य में समर्थ शब्द के आगे उत्तरपद विधि शब्द का लोप भी किया है इस से यह सिद्ध होता है कि व्याकरण आदि सब शास्त्र और लोकव्यवहार में भी समर्थ के लियेसब विधान है असमर्थ के लिये कुछ भी नहीं जैसे आंखवाला देखने में समर्थ होता है इसलिये उस को देखने का उपदेश भी करते हैं कि इस को तू देख अन्धे को कोई नहीं कह सकता क्योंकि वह देखने में समर्थ नहीं है । वैसे ही कोई सामर्थ्यवाले के लिये जो कुछ विधान करता है वह शुद्ध और सफल और जो कोई इस से उलटा करता है वह अशुद्ध और निष्फल समझा जाता है इसलिये यह सूत्र जितने व्याकरण आदि शास्त्रों के विषय हैं उन सब में लगता है इस से यह भी समझना कि जो भट्टोजिदीक्षित ने कौमुदी में इस सूत्र को समास ही में प्रवृत किया है सो अशुद्ध ही है ॥ ८० ॥

१५०—इको गुणवृद्धी ॥ ७८ ॥ १ । १ । १८ ॥

जहां २ गुण और वृद्धि शब्द करके गुण और वृद्धि का विधान करें वहां २ इक् ही के स्थान में गुण और वृद्धि होते हैं । ऐसा सर्वत्र व्याकरणशास्त्र में समझ लेना, यहां अ, ए और ओ की गुण संज्ञा आ ऐ और औ की वृद्धि संज्ञा है जैसे कर्त्ता । यहां ऋ के स्थान में (१५६)

१५२–आद्यन्तौ टकितौ ॥ ८० ॥ १ । १ । ६० ॥

जो टकार और ककार अनुबन्धवाले आगम हों वे आदि अन्त में यथासंख्य करके हो जावें । अर्थात् टित् आगम जिस को कहा हो उसी के आदि में और कित् जिस को विधान किया हो उस के अन्त में हो जावे जैसे टित्–पुरुषाणाम् । यहां नुट् आम् के आदि में । अभवत् । यहां अट् का आगम धातु के आदि में । भविता । यहां इट् का आगम प्रत्यय के आदि में हुआ है । कित्–सोमसुत् । जटिलो भीषयते । यहां तुक् और षुक् आगम भी धातु के अन्त में हुए हैं इत्यादि ॥ ८० ॥

१५३–मिदचोऽन्त्यात्परः ॥ ८१ ॥ १ । १ । ६१ ॥

जो मित् आगम वा प्रत्यय है वह अन्त्य अच् से परे होता है । जैसे नुम्–निन्दति । नन्दति । श्नम्–रुणद्धि । मुम्–वाचंयमः । नुम्–कुण्डानि । यशांसि । इत्यादि ॥ ८१ ॥

१५४–एच इग्घ्रस्वादेशे ॥ ८२ ॥ १ । १ । ६२ ॥

जहां२ एच् के स्थान में ह्रस्व आदेश विधान करें वहां २ इक् ही ह्रस्व हो जावें । जैसे गो–चित्रगुः । शबलगुः । यहां ओकार के स्थान में उकार । रै–अतिरि । यहां ऐकार के स्थान में इकार और नौ–अधिनु यहां औकार के स्थान में उकार आदेश होता है इत्यादि ॥ ८२ ॥

१५५–षष्ठी स्थानेयोगा ॥ ८३ ॥ १ । १ । ६३ ॥

जो २ इस व्याकरणशास्त्र में अनियतयोगा षष्ठी (अर्थात् जिस का नियम नहीं किया कि इस षष्ठी का योग इस में हो) है वह २ स्थानेयोगा समझनी चाहिये अर्थात् स्थान में उस का योग होवे । जैसे (अलोऽन्त्यस्य) यहां अलः, अन्त्यस्य, ये दोनों षष्ठी हैं । सो अनियतयोगा होने से स्थानेयोगा समझी जाती हैं, जैसे (इको गुणवृद्धी) इस

यह षष्ठी है, इक् के स्थान में गुण वृद्धि होवें । स्थान शब्द का लाभ
इसी परिभाषा से सर्वत्र होता है और जहां २ षष्ठी का नियम कर दि-
या है कि इस षष्ठी का योग यहां हो वहां२ स्थान शब्द की उपस्थि-
ति नहीं होती, जैसे शास इदङ्हलोः । यहां शास धातु की उपधा को
इत् आदेश होता है इत्यादि ॥ ८३ ॥

१५६—स्थानेऽन्तरतमः ॥ ८४ ॥ १ । १ । ६४ ॥

जो२ आदेश जिस२ के स्थान में प्राप्त हो वह२ अन्तरतम अर्थात्
सदृशतम हो । अन्तरतम उस को कहते हैं कि जो अत्यन्त सदृश हो,
जो किसी के स्थान में होता है वही आदेश कहाता है सो स्थान श-
ब्द का लाभ तो पूर्व परिभाषा से हुआ परन्तु जो स्थान में प्राप्त आ-
देश है वह कैसा होना चाहिये सो नियम इस परिभाषा से करते हैं
सादृश्य चार प्रकार का होता है, तद्यथा— स्थानकृतम् । अर्थकृतम्
प्रमाणकृतम् । गुणकृतञ्चेति । स्थानकृत अन्तरतम उस को कहते हैं कि
जो २ कण्ठ आदि स्थान आदेशी का हो वही आदेश का भी होना अ-
वश्य है, जैसे दण्ड—अग्रम् । दण्डाग्रम् । यहां पूर्व पर कण्ठस्थानी दो
अकारों के स्थान में दीर्घ एकादेश कहा है सो स्थानकृत आन्तर्य मा-
ने के कण्ठस्थानवाले दोनों अकारों के स्थान में कण्ठस्थानवाला दीर्घ
आकार ही होता है भिन्नस्थान होने से ईकार, ऊकार नहीं होते । अ-
र्थकृत आन्तर्य उस को कहते हैं कि जहां जैसा एक दो और बहुत अ-
र्थों का बोधक स्थानी हो वहां वैसा ही आदेश भी होना चाहिये स्था-
नी सदृश हो या नहीं हो, जैसे तस्थस्थमिपान्तान्तन्तामः । भवताम्,
यहां (तस्) प्रत्यय दो अर्थों का बोधक स्थानी है उस के स्थान में
(ताम्) आदेश भी दो अर्थों का बोधक ही होता है इसी प्रकार थस्
आदि के स्थान में भी समझना चाहिये । प्रमाणकृत सादृश्य वह कहाता

है कि जो एकमात्रिक स्थानी हो तो उसके स्थान में एक मात्रा का ही आदेश भी होवे और द्विमात्रिक के स्थान में द्विमात्रिक आदेश होना अवश्य है इत्यादि, जैसे अमुष्मै। अमूभ्याम्। यहां एकमात्रिक स्थानी है उस के स्थान में एकमात्रिक ही और द्विमात्रिक के स्थान में द्विमात्रिक आदेश होता है। गुणकृत आन्तर्य्य उस को कहते हैं कि जो अल्पप्राण स्थानी हो तो उसके स्थान में अल्पप्राणवाला आदेश और महाप्राण स्थानी हो तो महाप्राण वाला आदेश भी होवे जैसे वाग्घसति। त्रिष्टुब्भसति। यहां हकार के स्थान में पूर्वसवर्ण आदेश की प्राप्ति में जैसा हकार नादवान् और महाप्राण गुणवाला है उसके स्थान में आदेश भी वैसा ही होना चाहिये सो ये दोनों गुण वर्गों के चतुर्थ वर्णों में हैं इस कारण गुणकृत आन्तर्य्यमान के घकार और भकार ही होते हैं। इत्यादि ॥ ८४ ॥

५७-भा०-स्थान इत्यनुवर्त्तमाने पुनः स्थानग्रहणं किमर्थम्॥८५॥

प्र०—पूर्व सूत्र से स्थान की अनुवृत्ति आ जाती फिर स्थानग्रहण का प्रयोजन क्या है ? ॥ ८५ ॥

५८-उ०—यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत एवान्तर्य्यं बलीयो यथा स्यात् ॥ ८६ ॥

जहां अनेक प्रकार के अर्थात् स्थानकृत आदि दो तीन वा चारों आन्तर्य्य मिलते हों वहां स्थानकृत जो आन्तर्य्य है अत्यन्त बलवान् होने से वही प्रवृत्त किया जाता है। जैसे चेता। स्तोता। यहां एकमात्रिक इकार उकार के स्थान में प्रमाणकृत आन्तर्य्य को मान के अकार गुण पाता है सो न हो, स्थानकृत आन्तर्य्य से तालु और ओष्ठस्थानवाले एकार और ओकार हो जाते हैं, यह द्वितीय स्थानग्रहण का प्रयोजन है।

और यहां तमग्रहण इसलिये है कि वाग्घसति। यहां महाप्राण हकार के स्थान में महाप्राण आदेश किया चाहैं तो द्वितीय खकार प्राप्त है और जो नादवान् किया चाहैं तो तृतीय गकार प्राप्त होता है। तमग्रहण होने से जो वर्गों का (घ) आदि चौथा वर्ण महाप्राण और नाद गुण वाला है वह होता है ॥ ८६ ॥

१५९—उरण् रपरः ॥ ८७ ॥ १ । १ । ६५ ॥

जहां ऋ के स्थान में अण् का प्रसंग अर्थात् अण् करने लगें तत्काल ही रपर हो। अर्थात् उस अण् से परे रेफ भी हो जावे, जैसे कर्ता । हर्ता । यहां ऋ के स्थान में अकार गुण हुआ है इसी से अण् से परे रेफ भी हो जाता है। किरिः । गिरिः । यहां जो (कॄ) और (गॄ) धातु के स्थान में इकारादेश किया है वह रपर हो गया है। और द्वैमातुरः । यहां उकार भी रपर हुआ है। यहां (उः) ग्रहण इसलिये है कि अयदातं मुखम् । यहां दैप् धातु के ऐकार के स्थान में आकार हुआ है सो रपर न हो जावे। अण्ग्रहण इसलिये है कि सौधातकिः । यहां ऋकार के स्थान में अकङ् आदेश होता है सो रपर न होवे ॥ ८० ॥

१६०—अलोऽन्त्यस्य ॥ ८८ ॥ १ । १ । ६६ ॥

जहां २ षष्ठीनिर्दिष्ट के स्थान में आदेश कहें वहां २ वे अन्त्य अल् के स्थान में होवें । जैसे (त्यदादीनामः) विभक्ति के परे त्यदादि शब्दों के स्थान में अकारादेश होवे ऐसा कहें तब इसी परिभाषा की प्रवृत्ति होवे कि जो अन्त्य वर्ण दकार है उस के स्थान में अकारादेश हो जाता है। जैसे स्यः । सः । यः । इदम् । तेभ्यः । इत्यादि ॥ ८८ ॥

१६१—ङिच्च ॥ ८९ ॥ १ । १ । ६७ ॥

आदेश अन्त्य अल् के स्थान में हो । यहां पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति आती है जैसे अनङ्—होतापोतारौ । मातापितरौ । यहां अनङ् आदेश अन्त्य अल् ऋकार के स्थान में होता है । यह सूत्र (१६४) सूत्र का अपवाद है । (प्र०) तातङ् आदेश अन्त्य अल् के स्थान में प्राप्त है सो क्यों नहीं होता ? ॥ ८९ ॥

१६२-(उ०) भा०—एवं तर्ह्येतदेव ज्ञापयति न तातङन्त्यस्य स्थाने भवतीति-यदेतं ङितं करोति । इतरथा हि लोट एरुप्रकरण एव ब्रूयात् तिह्योस्तादाशिष्यन्यतरस्यामिति ॥ ९० ॥

यह इसी सूत्र पर महाभाष्यकार ने समाधान किया है कि जिस कारण तातङ् आदेश ङित् किया है इसी से आचार्य की शैली स्पष्ट विदित होती है कि यह अन्त्य अल् के स्थान में नहीं होता। जो अन्त्य अल् के स्थान में करना होता तो तृतीयाध्याय के चतुर्थ पाद में (लोटो लङ्वत्) (एरुः) इन सूत्रों के आगे तात् आदेश कहते इस में लाघव भी बहुत आता था जो लोट् लकार का ति और हि का इकार उस को तात् आदेश विकल्प करके होवे, ऐसा कहने से अन्त्य अल् इकार के स्थान में हो ही जाता फिर अर्द्धमात्र के अधिक पढ़ने और सप्तमाध्याय के प्रथम पाद में तातङ् आदेश के कहने से ठीक जाना जाता है कि तातङ् आदेश में ङित्करण गुण वृद्धि प्रतिषेध आदि के लिये है इस कारण अन्त्य अल् के स्थान में नहीं होता ॥ ९० ॥

१६३-आदेः परस्य ॥ ९१ ॥ १ । १ । ५८ ॥

जो पर अर्थात् उत्तर को कार्य्य कहें वह आदि अल् के स्थान में समझना चाहिये । यह सूत्र (तस्मादित्युत्तरस्य) इस सूत्र का शेष है यहां पढ़ने का प्रयोजन यह है कि अल् की अनुवृत्ति इस में आ जावे अन्यत्र

पढ़ने से फिर अल् ग्रहण करना होता, जैसे (आसीनोऽधीते) यहां आस धातु से उत्तर आन को ईकारादेश कहा है सो उसके आदि अकार के स्थान में हो जाता है। द्वीपम्। यहां द्वि शब्द से परे अप् शब्द को ईकारादेश कहा है सो उस के आदि अल् अकार के स्थान में हो जाता है ॥ ६१ ॥

१६४—अनेकाल्शित् सर्वस्य ॥ ९२ ॥ १ । १ । ६९ ॥

जो अनेकाल् और शित् आदेश हो वह संपूर्ण के स्थान में हो जावे। अनेकाल् जिस में अनेक वर्ण हों शित् अर्थात् जिसका शकार इत् जाय, जैसे अस्तेर्भूः। यहां अस् धातु के स्थान में भू आदेश अनेकाल् होने से सब के स्थान में हो जाता है। भविष्यति। भवितव्यम्। इत्यादि। शित्-इदम् इश्। विभक्ति के परे इदम् शब्द के स्थान में इश् आदेश होता है सो शित् होने से सबके स्थान में हो जाता है। इतः। इह। आभ्याम्। इत्यादि ॥ ६२ ॥

१६५—स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ ॥ ९३ ॥ १ । १ । ७० ॥

जो आदेश है वही स्थानी के तुल्य होवे अर्थात् जो काम स्थानी से सिद्ध होता है वही आदेश से भी हो जावे परन्तु जो अलाश्रयविधि कर्तव्य हो तो आदेश स्थानिवत् न हो। स्थानी उस को कहते हैं कि जो प्रथम हो पीछे न रहै और आदेश उस को कहते हैं कि जो प्रथम न हो और पीछे हो जावे जो एक के तुल्य दूसरे को मान के कोई काम करना है उस को अतिदेश कहते हैं। स्थानी और आदेश के पृथक् २ होने से स्थानी का कार्य आदेश से नहीं निकल सकता इसलिये आदेश को स्थानिवत् अतिदेश करते हैं। जैसे राजा। यहां विभक्तिलोप होने पर भी पदसंज्ञा रहती है। इत्यादि। आशधिषीष्ट। यहां हन धातु के स्थान

मान के हो जाता है । वृक्षाय । यहां जो ङे विभक्ति के स्थान में य आदेश होता है उस को सुप् मान के दीर्घ और पदसंज्ञा आदि कार्य्य भी मानते हैं । इत्यादि । यहां वत्करण इसलिये है कि संज्ञाधिकार में यह परिभाषा सूत्र पढ़ा है सो आदेश की स्थानी संज्ञा न हो जावे । आदेशग्रहण इसलिये है कि आदेशमात्र स्थानिवत् हो जावे अर्थात् जो अवयव के स्थान में आदेश होते हैं वे भी स्थानिवत् हो जावें, जैसे भवतु । यहां इकार के स्थान में उकार हुआ है उस के स्थानिवत् होने से ही पदसंज्ञा आदि कार्य्य होते हैं । अनल्विधिग्रहण इसलिये है कि अल्-विधि में स्थानिवद्भाव न हो । अल्विधि शब्द में चार प्रकार का समास होता है—अल् से परे जो विधि, अल् की जो विधि, अल् में जो विधि और अल् करके जो विधि करना हो वहां स्थानिवद्भाव न हो । जैसे अल् से परे विधि—द्यौः । यहां दिव् शब्द के वकार को औकारादेश हुआ है उस हल् वकार से परे सु विभक्ति का लोप (हल्ङ्याब्भ्यो०) इस सूत्र से प्राप्त है सो नहीं होता क्योंकि यहां हल् से परे सु नहीं है । अल् की जो विधि—द्युकामः । यहां दिव् शब्द के वकार को उकारादेश हुआ है सो जो स्थानिवत् माना जाय तो उस वकार का लोप (लोपो व्योर्वलि) इस सूत्र से हो जावे । अल् में जो विधि—क इष्टः । यहां यकार के स्थान में इकार संप्रसारण हुआ है सो जो स्थानिवत् माना जाय तो (हशि च) इस सूत्र से उत्व प्राप्त है सो नहीं होता । अल् करके जो विधि वहां स्थानिवत् न हो । जैसे व्यूढोरस्केन । महोरस्केन । यहां वि-सर्जनीय के स्थान में सकारादेश हुआ है उसको यदि स्थानिवत् मानें तो विसर्जनीय जो अट्कुप्वाङ् से प्रसिद्ध है उस का अट् प्रत्याहार में पाठ मान के नकार को णकारादेश प्राप्त है सो नहीं होता, इत्यादि इस सूत्र का महान् विषय है किन्तु महाभाष्य में देख लेना ॥ ६१ ॥

हो गया । चर्विधि—जक्षतुः । यहां भी घस् धातु के अकार का हुआ है उस के स्थानिवत् होने से घकार को ककारादेश नहीं होता था सो होगया ॥ ६५ ॥

१६८—वा०—प्रतिषेधे स्वरदीर्घयलोपविधिषु लोपाजादेशो न स्थानिवत् ॥ ९६ ॥

जो सूत्र से पदान्त आदि विधियों में निषेध किया है वह इस प्रकार से होना चाहिये कि स्वर । दीर्घ । और यलोपविधि के करने में जो लोपरूप अच् के स्थान में आदेश है वही स्थानिवत् न हो अन्य आदेश तो स्थानिवत् हो ही जावे । जैसे स्वरविधि—पञ्चारत्न्यः । यहां इक् के स्थान में यणादेश हुआ है उस के स्थानिवत् होने से (इगन्तकाल कपाल०)इस सूत्र से पूर्वपद प्रकृतिस्वर हो जाता है। दीर्घविधि—किर्य्योः। इस किरि शब्द के इकार के स्थान में यणादेश हो गया है उस के स्थानिवत् होने से दीर्घ नहीं होता । यलोपविधि—वाय्वोः । यहां उकार के स्थान में वकार हुआ है उस के स्थानिवत् होने से यकार का लोप नहीं होता ॥ ६६ ॥

१६९—वा०—क्विलुगुपधात्वचङ्परनिर्ह्रासकुत्वेषूपसंख्यानम् ॥९

(यह दूसरा वार्तिक सूत्र के विषय से अलग स्थानिवद्भाव निषेध करता है) क्वौ लुप्ते न स्थानिवत् । जहां क्विप् प्रत्यय के किसी का लोप हुआ हो वहां स्थानिवद्भाव न हो। लौः । यहां क्वि प्रत्यय के परे णिच् प्रत्यय का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् न होने से वकार को ऊठ् आदेश होता है । लुकि न स्थानिवत् । लु होनेमें ... न हो। पञ्चपटुः । यहां तद्धित प्रत्यय का लुक् है

होने से पटु शब्द को यणादेश नहीं होता। उपधात्वे न स्थानिवत् उपधा का कार्य्य करने में स्थानिवद्भाव न हो। पारिखेयः। यहां परिखा शब्द से चातुरर्थिक अण् प्रत्यय के परे आकार के स्थानिवत् नहीं होने से परिखा शब्द से खोपध छ प्रत्यय हो जाता है। चङ्परनिर्ह्रासे न स्थानिवत्। जहां चङ् प्रत्यय के परे किसी का लोप हो वहां स्थानिवत् मान के कोई कार्य्य न किया जावे। जैसे अपीपदत्। यहां णिच् के परे णिच् का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् नहीं होने से उपधा को ह्रस्व हो जाता है। कुत्वे न स्थानिवत्। कुत्वविधि करने में स्थानिवद्भाव न हो। जैसे अर्कः। यहां अर्च धातु से घञ् प्रत्यय के परे णिच् प्रत्यय का लोप हुआ है उसके स्थानिवत् नहीं होने से चकार को ककारादेश हो जाता है ॥ ६० ॥

१७०-वा०—पूर्वत्राऽसिद्धे च ॥ ९८ ॥

(इस तीसरे वार्तिक से) अष्टाध्यायी के अन्त्य के तीन पादों के कार्य्य करने में स्थानिवद्भाव न हो। जैसे यायष्टिः। यहां यङ् प्रत्यय के अकार का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् होनेसे यज् धातु के जकार को षकारादेश नहीं प्राप्त होता था इत्यादि ॥ ६८ ॥

१७१-द्विर्वचनेऽचि ॥ ९९ ॥ १ । १ । ७२ ॥

द्विर्वचननिमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो द्विर्वचन करने के लिये अच् के स्थान में जो आदेश है वह स्थानिरूप ही हो जावे। इस सूत्र में स्थानिवद्भाव का विधान है अर्थात् निषेध की अनुवृत्ति नहीं आती इसी से यह भी अतिदेश हुआ, अतिदेश दो प्रकार के होते हैं—एक कार्य्यातिदेश और दूसरा रूपातिदेश। कार्य्यातिदेश वह होता है कि जो आदेश [illegible] स्थानी का काम आदेश से ले लेना। और

रूपातिदेश उस को कहते हैं कि स्थानी अपने स्थान में स्वयं आ जावे के के जहां स्थानी के समान आदेश को मानने से काम नहीं चलता व रूपातिदेश माना जाता है सो इस सूत्र में रूपातिदेश है. जैसे पपतुः । य पतुस् प्रत्यय के परे धातु के आकार का लोप हुआ है उस को स्थानि होने से ही द्विर्वचन हो सकता है । यहां द्विर्वचनग्रहण इसलिये कि गोदः । यहां आकार का लोप अजादि प्रत्यय के परे हुआ है पर द्विर्वचननिमित्त प्रत्यय नहीं । इस से स्थानिवद्भाव नहीं होता और अ ग्रहण इसलिये है कि देध्मीयते । यहां अजादि प्रत्यय परे नहीं इस स्थानिवत् नहीं होता ॥ ९९ ॥

१७२–प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ॥ १०० ॥ १ । १ । ७६ ॥

जहां प्रत्यय का लोप हो जावे वहां उस प्रत्यय को मान के को कार्य प्राप्त होवे तो हो जाय । जैसे अग्निचित् । यहां लोप के बलवा होने से क्विप् प्रत्यय का लोप प्रथम ही हो जाता है पीछे उस को मान के तुक् का आगम होता है इस सूत्र में प्रत्ययग्रहण इसलिये है कि जहां संपूर्ण प्रत्यय का लोप हो वहीं प्रत्ययनिमित्त कार्य्य हो और जहां प्रत्यय के अवयव का लोप हो वहां न हो । जैसे आघ्नीत । यहां प्रत्यय के अवयव सकार का लोप हुआ है सो जो प्रत्ययलक्षण होवे तो हन् धातु की उपधा का लोप नहीं प्राप्त होवे। दूसरा प्रत्ययग्रहण इसलिये निषेध ·त्यय के लोप में वर्णाश्रय कार्य प्राप्त होता है सो न हो किसी का ·लम् । रैकुलम् । यहां प्रत्यय के लोप में एच् प्रत्याहार के कि ··य के परे ·· आय् आदेश प्राप्त है सो नहीं हुआ ॥ १०० ॥

नि रायः कु ··कार को ···य प्रकार कार्··

·ताङ्गस्य ॥ १०१ ॥ १ । १ । ७७ ॥

··य न

हो वहां उस प्रत्यय के परे जिस की अङ्ग संज्ञा हो उस को प्रत्ययलक्षण मान के कार्य न हो। पूर्व सूत्र में जो प्रत्ययलक्षणकार्य सामान्य से कहा है उस का इस सूत्र से विशेषविषय में निषेध करते हैं। जैसे गर्गाः। यहां यञ् प्रत्यय को मान के वृद्धि और आद्युदात्त स्वर प्राप्त हैं सो नहीं होते। इस सूत्र में लुमताग्रहण इसलिये है कि धार्यते। यहां णिच् प्रत्यय का लोप हुआ है इस से प्रत्ययनिमित्त कार्य जो वृद्धि है उस का निषेध नहीं होता ॥ १०१ ॥

१७४—तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य ॥१०२॥१।१।८०॥

जो शब्द सप्तमी विभक्ति से निर्दिष्ट (पढ़ा) हो उस से जो पूर्व शब्द वा वर्ण हो उसी को कार्य हो अर्थात् उस से परे और व्यवधानवाले को न होवे। इस सूत्र में इति शब्द अर्थ का बोध होने के लिये पढ़ा है अन्यथा (तस्मिन्) यही शब्द जहां पढ़ते वहीं पूर्व को कार्य होता। जैसे दधि—अत्र। यहां अकार सप्तमीनिर्दिष्ट है उस से पूर्व जो इकार है इसी को कार्य होता है। इस में निर्दिष्टग्रहण इसलिये है कि व्यवधान में यणादेश न हो, जैसे समिधः। यहां धकार के व्यवधान में यण् नहीं होता ॥ १०२ ॥

१७५—तस्मादित्युत्तरस्य ॥ १०३ ॥ १ । १ । ८१ ॥

जो पञ्चमी विभक्ति से निर्देश किया कार्य है वह व्यवधानरहित पर के स्थान में हो। पूर्व सूत्र से यहां निर्दिष्ट शब्द की अनुवृत्ति आती है, इति शब्द यहां भी पूर्वोक्त प्रयोजन के लिये है। जैसे द्वीपम्। यहां द्वि शब्द से परे अप् शब्द को ईकारादेश होता है। इस सूत्र में निर्दिष्टग्रहण का प्रयोजन यह है कि अत्यन्त समीपवाले को कार्य हो। अन्तर्धाना आपः। यहां अप् शब्द को ईकारादेश न होवे (आदेः परस्य) यह सूत्र लिख चुके हैं सो इसी का शेष है ॥ १०३ ॥

ग्रहण और अपने रूप का भी ग्रहण इष्ट है वहां २ पित्संकेत करना चाहिये । जैसे स्वे पुषः । स्वपोषं पुष्यति। यहां अपने स्वरूप का ग्रहण है । रैपोषं पुष्यति। धनपोषं पुष्यति । यहां स्वशब्द के पर्यायवाची रै आदि हैं । अश्वपोषम् । गोपोषम् । यहां अश्व आदि शब्द उस के विशेषवाची हैं ॥१०६॥

१७९-वा०-जित्पर्यायवचनस्यैव राजाद्यर्थम् ॥ १०७ ॥

जिन राजादि शब्दों के पर्यायवाचियों का ही ग्रहण इष्ट है वहां२ जित्संकेत करना चाहिये । इस वार्तिक से (सभा राजामनुष्यपूर्वा) इस सूत्र में राजन् शब्द के पर्यायवाचियों का ही ग्रहण होता है । इनसभम् । ईश्वरसभम् । ये राजन् शब्द के पर्यायवाची हैं और राजन् शब्द का ही ग्रहण नहीं होता । राजसभा । और राजन् शब्द के विशेषवाचियों का भी ग्रहण नहीं होता । जैसे चन्द्रगुप्तसभा । पुष्पमित्रसभा । इत्यादि ॥१०७॥

१८०-वा०-झित्तस्य च तद्विशेषाणां च मत्स्याद्यर्थम् ॥ १०८ ॥

जिन मत्स्यादि शब्दों के विशेषवाचियों और उनके स्वरूप का ग्रहण इष्ट है वहां झित्संकेत करना चाहिये। इस वार्तिक से (पक्षिमत्स्यमृगान्हन्ति) इस सूत्रमें मत्स्य शब्द से अपने स्वरूप और उस के विशेषवाची शब्दों का ग्रहण होना इष्ट है । जैसे मत्स्यान्हन्ति मात्सिकः । यहां स्वरूप का ग्रहण और उस के विशेषवाची । शाफरिकः । शाकुलिकः । इत्यादि । पर्यायवाची अजिह्म आदि शब्दों का ग्रहण नहीं होता परन्तु एक पर्यायवाची का भी ग्रहण इष्ट है । मीनान्हन्ति मैनिकः ॥ १०८ ॥

१८१-अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः ॥ १०९ ॥ १ । १ । ८३ ॥

अण् प्रत्याहार और उदित् ये दोनों अपने सवर्णों के ग्रहण करनेवाले हों अर्थात् इन को जो कार्यविधान किया हो वह इन के सवर्णियों को भी हो परंतु प्रत्यय का अण् सवर्ण का ग्राहक न हो। पूर्व

सूत्र से (स्वं रूपं०) इन दो शब्दों की अनुवृत्ति आती है। अण् प्रत्याहार इस सूत्र में पर णकार से लिया जाता है और उदित् करके कु, चु, टु, तु, पु, ये पांच अक्षर। जैसे (अस्य च्वौ) यहां अकार को कार्य कहा है सो आकार को भी होता है तथा उदित् (चुटू) यहां चवर्ग टवर्ग का और (अट्कुप्वां०) यहां कु, पु शब्दों से कवर्ग पवर्ग का ग्रहण होता है। इस सूत्र में प्रत्यय का निषेध इसलिये है कि अ, उ। इन प्रत्ययों के दीर्घ वर्णों का ग्रहण न हो ॥ १०९ ॥

१८२–तपरस्तत्कालस्य ॥ ११० ॥ १ । १ । ८४ ॥

जिस से तकार परे हो वा जो वर्ण तकार से परे आवे वह उतने ही काल और अपने रूप का बोधक हो अर्थात् तपर ह्रस्व वर्ण को कार्यविधान किया हो तो दीर्घ और प्लुत को न हो। जैसे (अत्) यहां दीर्घ आकार का ग्रहण नहीं होता क्योंकि उस के उच्चारण में द्विगुण काल लगता है तथा जहां २ सूत्रों में अकार तपर पढ़ा है उस का प्रयोजन यह है कि उदात्त अनुदात्त और स्वरित का भी ग्रहण हो क्योंकि उदात्तादिकों में कालभेद नहीं होता, ह्रस्व स्वरों में पूर्व सूत्र से सामान्य करके सवर्णग्रहण प्राप्त था सो इस सूत्र से ह्रस्व तपर स्वरों में अधिक कालवाले दीर्घ प्लुत का निषेध कर दिया है। तथा पूर्व सूत्र से दीर्घ स्वरों में सवर्णग्रहण प्राप्त नहीं था सो इस सूत्र से तत्काल के ग्रहण में उदात्तादि त्रिविध गुणों का भी ग्रहण हो जाता है ॥ ११० ॥

१८३–येन विधिस्तदन्तस्य ॥ १११ ॥ १ । १ । ८५ ॥

जिस विशेषण करके विधि हो वह जिस के अन्त में हो उस को कार्य हो। जैसे अचो यत्। यहां अचः यह पद धातु का विशेषण हो-ने से अंत शब्द का ग्रहण करके सो अच् का कार्यविधान है। अजन्त को होता है। चेतव्य। इत्यादि ॥ १११ ॥

१८४—वा०—समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः ॥ ११२ ॥

समासविधान और प्रत्ययविधान में तदन्तविधि न हो। समासविधान में जैसे कष्टश्रितः। यहां तो समास होता है और परमकष्टं श्रितः। यहां तदन्त का समास नहीं होता। प्रत्ययविधि—नडस्यापत्यं नाडायनः। यहां तो प्रत्ययविधान होता है और सूत्रनडस्यापत्यं सौत्रनाडिः। यहां तदन्त से फक् प्रत्यय नहीं हुआ। इत्यादि ॥ ११२ ॥

१८५—वा०—उगिद् वर्णग्रहणवर्जम् ॥ ११३ ॥

पूर्व वार्त्तिक से जो निषेध किया है सो प्रत्ययविधि में सर्वत्र नहीं लगता अर्थात् उगित्ग्रहण और वर्णग्रहण को छोड़ के। जैसे भवती। यहां उदित् भवत् शब्द से ङीप् प्रत्यय होता है तो। अतिभवती। यहां तदन्त से भी हो जावे। वर्णग्रहण—अत इञ्। दाक्षिः। इत्यादि में भी अदन्त से भी प्रत्ययविधान होता है ॥ ११३ ॥

१८६—अचश्च ॥ ११४ ॥ १ । २ । २८ ॥

जहां २ व्याकरण शास्त्र में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत विधान करें वहां २ अच् ही के स्थान में हों। जैसे (ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य) यहां प्रातिपदिक को ह्रस्व कहा है जैसे (रै) अतिरि। यहां ऐकार को इकार और अधिनु। यहां औकार को उकार होता है। यहां अच्ग्रहण इसलिये है कि सुवाग्ब्राह्मणकुलम्। इत्यादि प्रयोगों में हलन्त को ह्रस्व न हो। दीर्घ—अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः। स्तु। श्रु। स्तूयते। श्रूयते। यहां उकार के स्थान में ऊकार दीर्घ हुआ है। अच् का नियम इसलिये है कि अग्निचित्। यहां तकार के स्थान में प्लुत न हो [illegible]। जहां संज्ञा करके ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत कहे हों वहां अच् के स्थान में हों, यह नियम इसलिये है कि [illegible]। यहां [illegible] कहा है और अकार को ह्रस्व संज्ञा है तो यहां अच् की [illegible] न हो. इत्यादि ॥ ११४ ॥

१८७–यथासंख्यमनुदेशः समानाम् ॥ ११५ ॥ १।३।१० ॥

जहां २ बराबर संख्यावालों का कार्य में सम्बन्ध करना हो वहां यथासंख्य अर्थात् जैसा उन का क्रम पढ़ा हो वैसा ही सम्बन्ध किया जावे। जैसे (एचोऽयवायावः) यहां एच् प्रत्याहार में चार वर्ण हैं और अय्, अव्, आय्, आव् ये चार आदेश हैं सो प्रथम के स्थान में प्रथम, द्वितीय के स्थान में द्वितीय, तृतीय के स्थान में तृतीय और चतुर्थ के स्थान में चतुर्थ होते हैं। इसी प्रकार सर्वत्र यह नियम जान लेना, यहां (समानाम्) ग्रहण इसलिये है कि लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः। यहां चार अर्थ और तीन उपसर्ग हैं इस से यथासंख्य क्रम नहीं लगता, इत्यादि ॥ ११५ ॥

१८८–स्वरितेनाऽधिकारः ॥ ११६ ॥ १ । ३ । ११ ॥

उस स्वरित के चिन्ह से अधिकार का बोध करना चाहिये। जो अक्षर के ऊपर खड़ी रेखा लगाते हैं वह वर्ण का स्वरित धर्म होता है जैसे प्रत्ययः। धातोः। कर्मण्यण् इत्यादि। अब जिसके ऊपर स्वरित का चिन्ह किया हो वह अधिकार कहांतक जावे गा यह बात उस २ के विशेष व्याख्यान से जानना ॥ ११६ ॥

१८९–विप्रतिषेधे परं कार्य्यम् ॥ ११७ ॥ १ । ४ । २ ॥

विप्रतिषेध में पर को कार्य होना चाहिये। इतरेतरप्रतिषेधो विप्रतिषेधः। जो परस्पर एक दूसरे का रोकना है वह विप्रतिषेध कहाता है द्वौ प्रसंगौ यदान्यार्थौ भवत एकस्मिंश्च युगपत्प्राप्नुतः स विप्रतिषेधः। जो पृथक् २ प्रयोजनवाले दो कार्य एक विषय में एक काल में प्राप्त होते हैं उस को विप्रतिषेध कहते हैं, जैसे वृक्षाभ्याम्। यहां (अतो दीर्घो यञि) इस से दीर्घ होता है और वृक्षेषु। यहां (बहुवचने झल्येत्) से एकारादेश होता है ये तो इनके पृथक् २ प्रयोजन हैं परंतु (

यहां जो दो सूत्रों की प्राप्ति एक काल में होकर वृक्ष शब्द को दीर्घ और एकारादेश दोनों ही प्राप्त होते हैं इस का न्याय इस परिभाषा सूत्र से किया है कि पर का कार्य एकारादेश हो जावे और पूर्वसूत्र का कार्य दीर्घादेश न हो । इत्यादि असंख्य प्रयोजन हैं ॥ ११७ ॥

१९०—अन्तादिवच्च ॥ ११८ ॥ ६ । १ । ८५ ॥

जो पूर्व पर के स्थान में एकादेश विधान किया है सो पूर्व का अन्त अवयव और पर का आदि अवयव समझना चाहिये । पूर्व पर और एक शब्द की अनुवृत्ति इस के पूर्व सूत्र से आती है, इस के प्रयोजन—जैसे पूर्व का अन्तवत् । ब्रह्मबन्धूः । यहां ऊकारान्त शब्द से ऊङ् प्रत्यय होता है। ऊकारान्त तो प्रातिपदिक और अप्रातिपदिक प्रत्यय का ऊकार है इन दोनों ऊकारों का एकादेश प्रातिपदिक के ग्रहण करके गृहीत होने से स्वादि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है अन्यथा नहीं हो सकती । इत्यादि । पर का आदिवत् । अग्नी इति । वायू इति । यहां इकार, उकार और औकार का एकादेश हुआ है सो द्विवचन औकार को आदिवत् होने से ही प्रगृह्य-संज्ञा हो सकती है अन्यथा नहीं हो सकती थी इत्यादि ॥ ११८ ॥

१९१—षत्वतुकोरसिद्धः ॥ ११९ ॥ ६ । १ । ८६ ॥

जो षत्व और तुक्‌विधि के करने में पूर्व पर के स्थान में एकादेश है वह सिद्ध कार्य करने में असिद्ध हो जाता है । जैसे षत्व—कोऽसि-चत् । यहां अकार को पूर्वरूप एकादेश हुआ है उस को षत्वविधि करने में असिद्ध मानके षत्व नहीं होता इत्यादि । तुक्‌विधि—अधीत्य । परीत्य । यहां सवर्णदीर्घ एकादेश को असिद्ध मान के ह्रस्व से परे तुक् का आगम होता है, इत्यादि ॥ ११९ ॥

१९२—वा०—संप्रसारणङीट्सु सिद्धः ॥ १२० ॥

परन्तु जहां ण,ङि विभक्ति और इट् प्रत्यय के साथ एका-

देश हुआ हो तो वहां षत्व और तुक्‌विधि करने में एकादेश सिद्ध ही माना जावे। क्योंकि सूत्र से निषेध प्राप्त था उसी प्रतिषेध का यह प्रतिषेध है, जैसे संप्रसारण—प्रकहूषु। यहां प्रकपूर्वक ह्वेञ् धातु से क्विप् के परे संप्रसारण को पूर्वरूप एकादेश हुआ है उस को असिद्ध मानने से सप्तमी विभक्ति के सकार को षत्व नहीं पाता था इस से हो गया। ङि—ईचिछत्रम्। वृक्षेच्छत्रम्। यहां वृक्ष शब्द का ङि विभक्ति के इकार के साथ एकादेश हुआ है जो उसको असिद्ध मानें तो पूर्ववत् नित्य तुक् पाता है, (पदान्ताद्वा) से विकल्प इष्ट है सो हो गया, इत्यादि ॥१२०॥

१९३—पूर्वत्राऽसिद्धम् ॥ १२१ ॥ ८ । २ । १ ॥

जो कार्य यहां से पूर्व सपादसप्ताऽध्यायी अर्थात् एक पाद सात अध्याय में जितना शब्दकार्य्य कहा है वहां सर्वत्र त्रिपादी का किया कार्य असिद्ध माना जावे और त्रिपादी में भी पूर्व २ के प्रति पर सूत्र का कार्य असिद्ध माना जाय, जैसे वादा उच्यते। यहां (लोपः शाकल्यस्य) इस सूत्र से अवर्णपूर्व वकार का लोप हुआ है उस को असिद्ध मान के गुण एकादेशरूप सन्धि नहीं होता। आन आयाहि। यहां भी सवर्ण से पूर्व यकार का लोप होने से उस को असिद्ध मान के सवर्ण दीर्घ नहीं होता, इत्यादि। त्रिपादी में—गोधुड्मान्। यहां दुह् धातु के हकार को घकार घकार को गकार और गकार को डकार और दकार को धकार होता है। इन सब को असिद्ध मानके मतुप् के मकार को वकारादेश नहीं होता, इत्यादि ॥ १२१ ॥

१९४—न लोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति ॥ १२२॥८।२।२॥

परन्तु प्रातिपदिकान्त नकार का जो लोप होता है वह सुप्, स्वर, संज्ञा और कृत्सम्बन्धी तुक्‌विधि इन्हीं विधियों के करने में असिद्ध माना ... नकार का समास होता है सुप् के स्थान में जो

विधि और सुप्के परे जो विधि, जैसे सुप् के स्थान में जो विधि—राजभिः। तक्षभिः। यहां राजन् तक्षन् शब्द के नकार का लोप हुआ है उसको असिद्ध न मानें तो भिस् विभक्ति को ऐस् आदेश हो ही जावे सो इष्ट नहीं है तथा सुप् के परे जो विधि—राजभ्याम्। तक्षभ्याम्। यहां नलोप को असिद्ध मानने से विभक्ति के परे दीर्घ नहीं होता। स्वरविधि—पञ्चार्मम्। सप्तार्मम्। यहां पञ्चन् और सप्तन् शब्दके नकार का लोप हुआ है उस को असिद्ध मान के (अर्मे चावर्णं द्व्यच्त्र्यच्) इस स्वरविधायक सूत्र से अवर्णान्त पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर प्राप्त है सो नहीं होता क्योंकि नलोप के असिद्ध मानने से अवर्णान्त ही नहीं। संज्ञाविधि—पञ्चभिः। यहां पञ्चन् और सप्तन् शब्द के नकार का लोप हुआ है उस को असिद्ध मान के षट्संज्ञा होती और तदाश्रय षट्संज्ञा के कार्य भी होते हैं। तुग्विधि—वृत्रहभ्याम्। वृत्रहभिः। यहां नलोप को असिद्ध मानके जो कृत् के आश्रय से तुक् प्राप्त है सो नहीं होता। यहां कृद्ग्रहण इसलिये है कि वृत्रहच्छत्रम्। यहां जो छकाराश्रय तुगागम है सो हो जावे, इत्यादि (प्र०) पूर्वत्रासिद्धम्। इस उक्त सूत्र से ही त्रिपादी के सब कार्य्य असिद्ध हो जाते फिर यह सूत्र किसलिये किया? (उ०) यह सूत्र नियमार्थ है कि इतने ही विधियों के करने में नकार का लोप असिद्ध माना जावे अन्यत्र नहीं, इस से राजीयति। यहां ईत्वादेश अदन्त मानके हो जाता है, इत्यादि ॥ १९२॥

१९५—न मु ने ॥ १२३ ॥ ८ । २ । ३ ॥

नाभाव करने में मुभाव असिद्ध नहीं होता। अर्थात् सिद्ध ही माना जाता है। जैसे अमुना। यहां अदस् शब्द के दकार को मकार और उकार को ऊकारादेश त्रिपादी में होता है उस को असिद्ध नहीं मानने से घिसंज्ञक से परे टा विभक्ति को ना आदेश हो जाता है। नाभाव करने के पीछे भी मुभाव को असिद्ध मानें तो अदन्त अंग को [illegible]

होता है इसलिये ऐसा अर्थ करना कि नाभाव के करने में और करने के पश्चात् भी सुभाव सिद्ध ही माना जावे, इत्यादि ॥ १२३ ॥

१९६—वा०—संयोगान्तलोपो रोरुत्वे ॥ १२४ ॥

यहां रु को उकारादेश करने में संयोगान्तलोप सिद्ध माना जाता है। जैसे हरिवो मेदिनं त्वा। यहां जो हरिवन्त् शब्द में संयोगान्त तकार का लोप असिद्ध माना जावे तो हश् के न होने से उत्व प्राप्त नहीं होता इत्यादि ॥ १२४॥

१९७—वा०—सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वक्तव्यः ॥ १२५॥

सवर्णदीर्घ एकादेश के करने में त्रिपादी में विहित सिच् प्रत्यय का लोप सिद्ध ही समझना चाहिये। जैसे अलावीत्। अपावीत्। यहां इट् से परे सिच् के सकार का लोप ईट् के परे हुआ है पश्चात् उस सकार के लोप को असिद्ध मानें तो सवर्णदीर्घ एकादेश नहीं पावे इत्यादि ॥ १२५ ॥

१९८—वा०—संयोगादिलोपः संयोगान्तलोपे ॥ १२६ ॥

जो त्रिपादी में संयोगादि सकार ककार का लोप होता है वह संयोगान्त लोप करने में सिद्ध माना जावे। जैसे काष्ठतट्। यहां संयोगादि ककार का लोप संयोगान्तलोप में सिद्ध मानने से संयोगान्त टकार का लोप नहीं होता। इत्यादि ॥ १२६ ॥

१९९—वा०—निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः ॥ १२७ ॥

जो निष्ठासंज्ञक प्रत्ययों के स्थान में आदेश होते हैं वे षत्व, स्वर, प्रत्यय और इट्विधि के करने में सिद्ध मानने चाहियें। जैसे षत्वविधि—वृक्णः। वृक्णवान्। यहां ओव्रश्चू धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हुआ है उस को सिद्ध मानने से (व्रश्चभ्रस्ज०) इस सूत्र से षत्व नहीं होता इत्यादि। स्वरविधि—क्षीबः। यहां क्षीब धातु से निष्ठा के परे ईट् तमान्त का लोप माना है (क्षीब्—इट्—क्त) इस अवस्था में [illegible]

से इट् को इ और क्त को त इस प्रकार इत् का लोप होकर क्त के अ में व मिल के धौवः बनता है—उस को सिद्ध मान के (निष्ठा च द्व्यजनात्) इस से आद्युदात्त स्वर हो जाता है। प्रत्ययविधि—धौवेन तरति धौविकः। यहां भी उस लोप के सिद्ध मानने से ही द्व्यच् लक्षण ठन् प्रत्यय होता है। इट्विधि—धौवः। इस को जब तकार के स्थान में नकारादेश निपातन मानते हैं तब उस को सिद्ध मान के इट् नहीं होता ॥ १९० ॥

२००—वा०—प्लुतिस्तुग्विधौ छे च ॥ १२८ ॥

जो त्रिपादी में विधान किया हुआ प्लुत स्वर है वह छकार के परे तुक्विधि करने में सिद्ध ही समझना चाहिये। जैसे अग्ना३इच्छत्रम्। पटा३उच्छत्रम्। यहां प्लुत को सिद्ध मान के तुक् का आगम हो जाता है ॥ १९८ ॥

२०१—वा०—श्चुत्वं धुड्विधौ ॥ १२९ ॥

जो शकार चवर्ग के योग में सकार तवर्ग को शकार चवर्ग होते हैं उन को धुड्विधि में सिद्ध मानना चाहिये। जैसे अट्-श्च्योतति। यहां शकार को सिद्ध मानने से (डःसि धुट्) इस सूत्र करके धुट् का आगम नहीं होता ॥ १९९ ॥

२०२—वा०—अभ्यासजश्त्वचर्त्वमेत्वतुकोः ॥ १३० ॥

जो अभ्यास में झलों को जश्त्व और चर्त्व त्रिपादी में कहा है उस को एत्व और तुक् के करने में सिद्ध मानना चाहिये। जैसे बभणतुः। बभणुः। यहां अभ्यास के भकार को बकारादेश हुआ है उस को सिद्ध मानने से आदेशादि धातु को एत्व नहीं होता। चर्त्व। उच्चिच्छिषति। यह उच्छी विवासे धातु का प्रयोग है उस के अभ्यास में

चकारादेश होता है उस को असिद्ध मानने से तुक् पाता है सो सिद्ध मान के न होवे ॥ १३० ॥

२०३—वा०—द्विर्वचने परसवर्णत्वम् ॥ १३१ ॥

जहां २ (अनचि च) करके द्विर्वचन करते हैं वहां २ परसवर्ण सिद्ध ही मानना चाहिये। जैसे सँय्यन्ता। सँव्वत्सरः। यँल्लोकम्। तँल्लोकम् इत्यादि में अनुस्वार को परसवर्ण आदेश होता है उस को सिद्ध मान के द्विर्वचन होता है इत्यादि ॥ १३१ ॥

इति परिभाषाप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ साधनप्रकरणम् ॥

२०४—एकः पूर्वपरयोः ॥ १३२ ॥ ६ । १ । ८४ ॥

यह अधिकार सूत्र है यहां से आगे जो २ कहेंगे वह सब पूर्वपर के स्थान में एकादेश समझना योग्य है ॥ १३२ ॥

२०५—अकः सवर्णे दीर्घः ॥ १३३ ॥ ६ । १ । १०० ॥

अक् प्रत्याहार से सवर्ण अच् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में सवर्ण दीर्घ एकादेश हो । अक् प्रत्याहार में पांच वर्ण लिये जाते हैं । अ इ उ ऋ लृ । इन का परस्पर सन्धि दिखलाते हैं । अवर्ण में परस्पर चार प्रकार के सन्धि होते हैं । अ—अ । अ—आ । आ—अ । आ—आ । इन दो २ को मिल के सवर्ण दीर्घ आकार हो जाता है जैसे परम—अर्थः । परमार्थः । वेद—आदिः । वेदादिः । विद्या—अर्थी । विद्यार्थी । विद्या—आनन्दः । विद्यानन्दः । अन्य शब्दों में भी अवर्णसन्धि इसी प्रकार के आवेंगे । इवर्ण में भी चार भेद हैं । इ—इ । इ—ई । ई—इ । ई—ई । जैसे प्रति—इतिः । प्रतीतिः । भूमि—ईशः । भूमीशः । मही—इनः । महीनः । कुमारी—ईहते । कुमारीहते । ऐसे उवर्ण का भी चार प्रकार का विषय है । जैसे उ—उ । उ—ऊ । ऊ—उ । ऊ—ऊ । क्रम से उदाहरण विधु—उदयः । विधूदयः । मधु—ऊर्मी । मधूर्मी । चमू—उद्गमः । चमूद्गमः । वधू—ऊतिः । वधूतिः । ऋवर्ण के विषय में भी ऐसा ही समझना परन्तु मिलते भी हैं । पितृ—ऋणम् । पितॄणम् । इत्यादि । परन्तु ऋ लृ दो वर्णों में इतना विशेष है ॥ १३३ ॥

२०६—वा०—ऋति ऋ वा वचनम् ॥ १३४ ॥

ह्रस्व ऋकार से परे ऋकार के परे पूर्व पर के स्थान में विकल

कारके ह्रस्व ऋकार एकादेश होता और दूसरे पक्ष में दीर्घ एकादेश हे ता है । सूत्र से सवर्ण दीर्घ एकादेश प्राप्त है इसलिये यह वार्तिक प है जैसे होतृ—ऋकारः । होतृकारः । द्वितीय पक्ष में । होतृ—ऋकारः।हो तॄकारः ॥ १३४ ॥

२०७—वा०—लृति लृ वा वचनम् ॥ १३५ ॥

ऋकार लृकार के स्थान प्रयत्न एक नहीं है इसलिये सवर्णसं ज्ञाविषय में वार्तिक लिख चुके हैं और अक् प्रत्याहार में भी ऋ लृ दो नों पढ़े हैं । ऋकार से ह्रस्व लृकार के परे पूर्व पर के स्थान में ह्रस्व लृ कार एकादेश हो । जैसे होतृ—लृकारः । होतॢकारः । और जिस पक्ष में ऋकार लृकार को मिल के लृकार एकादेश नहीं होता वहां लृकार के दीर्घ नहीं होने से दीर्घ ऋकार एकादेश ही हो जाता है, जैसे होतॄ कारः। इन दोनों को परस्पर सवर्णसंज्ञा का फल भी यही है कि दो नों को मिल के एकादेश हो जावे ॥ १३५ ॥

२०८—आद्गुणः ॥ १३६ ॥ ६ । १ । ८७ ॥

अवर्ण से असवर्ण अच् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में गुण ए- कादेश होता है । जैसे अ—इ । अ—ई । अ—उ । अ—ऊ । अ—ऋ । आ—इ । आ—ई । आ—उ । आ—ऊ । आ—ऋ । यह दश प्रकार का गुण एकादेश होता है । क्रम से उदाहरण । उप—इन्द्र । देव । परम—ई-

२०९—वृद्धिरेचि ॥ १३७ ॥ ६ । १ । ८८ ॥

अवर्ण से एच् प्रत्याहार परे हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश हो जाय। यह सूत्र गुणादेश का अपवाद है, एच् प्रत्याहार में चार वर्ण आते हैं ए ऐ ओ औ इन चार वर्णों के परे वृद्धि होती है। अ—ए। अ—ऐ। अ—ओ। अ—औ। आ—ए। आ—ऐ। आ—ओ। आ—औ। इसी रीति से आठ प्रकार की वृद्धि होती है जैसे ब्रह्म—एकम्। ब्रह्मैकम्। परम—ऐश्वर्य्यम्। परमैश्वर्य्यम्। गुड़—ओदनः। गुड़ौदनः। परम—औषधम्। परमौषधम्। महा—ओजस्वी। महौजस्वी। क्षमा—एका। क्षमैका। विद्या—ऐहिकी। विद्यैहिकी। खट्वा—औपगवः। खट्वौपगवः। अब इन गुण वृद्धि के विशेष अपवादरूप सूत्र लिखते हैं ॥ १३७ ॥

२१०—एत्येधत्यूठ्सु ॥ १३८ ॥ ६ । १ । ८९ ॥

अवर्ण से एति, एधति और ऊठ् परे हों तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश हो। यहां एति और एधति इन दो धातुओं के परे (एङि पररूपम्) से पररूप एकादेश पाता था इसलिये वृद्धि का आरम्भ किया है और ऊठ् आदेश में गुण पाता था उस का अपवाद है। उप—एति उपैति। उप—एमि। उपैमि। प्र—एधते। प्रैधते। उप—एधते। उपैधते। ऊठ्। प्रष्ठ—ऊहः। प्रष्ठौहः। प्रष्ठ—ऊहे। प्रष्ठौहे ॥ १३८ ॥

२११—वा०—अक्षादूहिन्याम् ॥ १३९ ॥

अक्ष शब्द के आगे ऊहिनी शब्द हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है। जैसे अक्ष—ऊहिनी। अक्षौहिणी। यहां गुण एकादेश की बाधक वृद्धि है ॥ १३९ ॥

२१२—वा०—प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु ॥ १४० ॥

प्र उपसर्ग के आगे ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य शब्द हों तो

पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है। जैसे प्र—ऊहः। प्रौहः प्र—ऊढः। प्रौढः। प्र—ऊढिः। प्रौढिः। प्र—एषः। प्रैषः। प्र—एष्यः। प्रैष्यः। इन दो शब्दों में पूर्व पर के स्थान में गुण को बाध के वृद्धि हो जाती है ॥ १४० ॥

२१३—वा०—स्वादिरेरिणोः ॥ १४१ ॥

स्व शब्द के आगे इर और इरिन् शब्द हों तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है। जैसे स्व—इरम्। स्वैरम्। स्व—इरी। स्वैरी। यहां गुण पाता था सो न हुआ ॥ १४१ ॥

२१४—वा०—ऋते च तृतीयासमासे ॥ १४२ ॥

अवर्णान्त पूर्वपद के आगे तृतीयासमास में ऋत शब्द हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है। सुखेन—ऋतः। सुखार्तः। दुःखेन—ऋतः। दुःखार्तः। यहां ऋतग्रहण इसलिये है कि सुख—इतः सुखितः। ऐसे वाक्यों में वृद्धि न हो। तृतीयाग्रहण इसलिये है कि परम—ऋतः। परमर्तः। यहां भी वृद्धि एकादेश न हो और समासग्रहण इसलिये कि सुखेन—ऋतः। सुखेनर्तः। यहां भी वृद्धि एकादेश न हुआ। यहां गुण और प्रकृतिभाव भी पाया था ॥ १४२ ॥

२१५—वा०—प्रवत्सतरकम्बलवसनानां च ऋणे ॥ १४३ ॥

प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, इन शब्दों के आगे ऋण शब्द हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है। जैसे प्र—ऋणम्। प्रार्णम्। वत्सतर—ऋणम्। वत्सतरार्णम्। कम्बल—ऋणम्। कम्बलार्णम्। वसन—ऋणम्। वसनार्णम्। यहां सर्वत्र गुण और प्रकृतिभाव पाया था ॥ १४३ ॥

२१६—वा०—ऋणदशाभ्यां च ॥ १४४ ॥

महा—ईश्वरः। म[illegible]
महा—ऋषिः। [illegible]

वृद्धि एकादेश होता है। जैसे ऋण—ऋणम्। ऋणार्णम्। दश—ऋणम्। दशार्णम्। यहां भी गुण और प्रकृतिभाव दोनों पाये थे ॥ १४४ ॥

२१७—उपसर्गादृति धातौ ॥ १४५ ॥ ६ । १ । ९१ ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से परे ऋकारादि धातु हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश हो जाय। यह सूत्र भी गुण एकादेश का बाधक है। प्र—ऋच्छति। प्रार्च्छति। उप—ऋच्छति। उपार्च्छति। प्र—ऋध्नोति। प्रार्ध्नोति। यहां उपसर्गग्रहण इसलिये है कि खट्वा—ऋच्छति। खट्वर्च्छति। यहां वृद्धि न हुई ॥ १४५ ॥

२१८—वा सुप्यापिशलेः ॥ १४६ ॥ ६ । १ । ९२ ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से परे ऋकारादि सुबन्त धातु हो तो पूर्व पर के स्थान में विकल्प करके वृद्धि एकादेश होता है पक्ष में गुण हो जाय। परन्तु यह बात आपिशलि आचार्य के मत में है अन्य के नहीं। यहां पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति आती है। उप—ऋणीयति। उपार्णीयति। उपर्णीयति। विकल्प के लिये वा शब्द तो पढ़ा ही है फिर जो यहां आपिशलि का ग्रहण है सो सत्कारार्थ है ॥ १४६ ॥

२१९—एङि पररूपम् ॥ १४७ ॥ ६ । १ । ९४ ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङादि धातु हो तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है। यह सूत्र वृद्धि का अपवाद है। प्र—एलति। प्रेलति। उप—एलति। उपेलति। प्र—ओषति। प्रोषति। उप—ओषति। उपोषति ॥ १४७ ॥

२२०—वा०—एवे चानियोगे ॥ १४८ ॥

अनियोग अर्थात् अनियत अर्थ में अवर्णान्त से परे एव शब्द हो तो पूर्व पर के —एव। इहेव।

अद्य—एव । अद्यैव । यहां अनियोगग्रहण इसलिये है कि (इहैव भव मा स्म गाः) यहां नियोग के होने के कारण पररूप न हुआ ॥ १४८ ॥

२२१—वा०—शकन्ध्वादिषु च ॥ १४९ ॥

शकन्धु आदि शब्दों में पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है । जैसे शक—अन्धुः । शकन्धुः । कुल—अटा । कुलटा । इत्यादि ॥ १४९ ॥ सीमन्त शब्द भी शकन्ध्वादि शब्दों के सदृश है परन्तु इस में भेद यह है कि:—

२२२—वा०—सीमन्तः केशेषु ॥ १५० ॥

केश अर्थ वाच्य हो तो सीम शब्द से अन्त शब्द के परे पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश हो जाय । जैसे सीम—अन्तः । सीमन्तः । यह केशग्रहण इसलिये है कि अन्यत्र पररूप एकादेश न हो अर्थात् और (सीमान्तः) यहां पररूप एकादेश न हुआ किन्तु सवर्णदीर्घ एकादेश हो गया ॥ १५० ॥

२२३ — वा० — ओत्वोष्ठयोः समासे वा ॥ १५१ ॥

जो अवर्णान्त के आगे ओतु, ओष्ठ शब्दों का समास किया हो तो विकल्प करके पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है । पक्ष में वृद्धि हो जाती है क्योंकि इस वार्तिक से वृद्धि की प्राप्ति में पररूप एकादेश किया है । जैसे स्थूल—ओतुः । स्थूलोतुः । स्थूलौतुः । बिम्ब—ओष्ठी । बिम्बोष्ठी । बिम्बौष्ठी । यहां समासग्रहण इसलिये है कि [illegible] प्राप्ति । यहां समास के न होने से पररूप नहीं हुआ ॥ १५१ ॥

२२४—वा०—एमन्नादिषु छन्दसि ॥ १५२ ॥

२२९—नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा ॥ १५७ ॥ ६ । १ । ९९ ।

जो आम्रेडितसंज्ञक अव्यक्त शब्द के अनुकरण का अत्भाग हो उस को इति शब्द के परे पररूप एकादेश न हो किन्तु जो आम्रेडितसंज्ञक के अन्त में तकार है उस को विकल्प करके पररूप एकादेश होवे । पटत् पटत् । यहां पर भाग आम्रेडित कहाता है। पटत्पटत्—इति पटत् पटेति । और जिस पक्ष में पररूप न हुआ वहां पटत्पटदिति॥ १५७॥

२३०—वा०—नित्यमाम्रेडिते डाचि पररूपङ्कर्त्तव्यम् ॥ १५८ ॥

इस वार्तिक का प्रयोजन यह है कि जो अनुकरण में डाच् प्रत्ययान्त आम्रेडित परे हो तो पूर्व के अन्त्य के तकार को नित्य पररूप एकादेश हो जाय । जैसे पटत्पटा । यहां तकार का पर अर्थात् पकार का रूप हो जाता है । पटपटा करोति । पटपटायते । घटघटा करोति । घटघटायते । खरखरा करोति । खरखरायते । काशिकावाले जयादित्य आदि लोगों ने इस वार्तिक का सूत्रपाठ में व्याख्यान किया है सो सत्य नहीं महाभाष्य के देखने से स्पष्ट विदित होता है कि यह सूत्र नहीं है किन्तु लेखकभ्रम से सूत्रों में लिखा गया है ॥ १५८ ॥

२३१—एङः पदान्तादति ॥ १५९ ॥ ६ । १ । १०८ ॥

जो पदान्त एङ् से परे ह्रस्व अकार हो तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है। जैसे अग्ने अत्र—अग्नेऽत्र । वायो अत्र—वायोऽत्र । ब्राह्मणो अब्रवीत्—ब्राह्मणोऽब्रवीत् । गुरवे अदात्—गुरवेऽदात् । अत्पद्ग्रहण इसलिये है कि वायो इति । यहां पूर्वरूप न हुआ ॥ १५९ ॥

२३२—प्रकृत्यान्तःपादमव्यपरे ॥ १६० ॥ ६ । १ । ११५ ॥

(यहां से लेके सात सूत्रों का विषय वेदों ही में समझना) अन

करके अर्थात् ज्यों का त्यों बना रहे परन्तु वह पाद के बीच में हो। जैसे आरे अस्मे च शृण्वते, अयो अस्य पादाः। उपप्रयन्तो अध्वरम्। शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः। यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः। इत्यादि यहां पाद के बीच में इसलिये कहा है कि द्विषतो वधोऽसि। रक्षसां भागोऽसि। इत्यादि में एङ् प्रकृति करके न रहे। वकार यकार परे न हों यह इसलिये है कि तेऽवदन्। तेऽयुः। इत्यादि में भी प्रकृतिभाव न हो ॥ १६० ॥

२२३–अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च ॥१६१॥ ६ । १ । ११५ ॥

पदान्त एङ् से अव्यात्, अवद्यात्, अवक्रमुः, अव्रत, अयम्, अवन्तु, अवस्यु, इन उत्तरपदों में वकार यकार परे भी अकार परे हो तो पदान्त एङ् प्रकृति करके रह जावे। जैसे वसुभिर्नो अव्यात्। मित्रमहो अवद्यात्। मा शिवासो अवक्रमुः। ते नो अव्रताः। शतधारो अयं मणिः। ते नो अवन्तु पितरः। शिवासो अवस्यवः। इत्यादि ॥ १६१ ॥

२२४–यजुष्युरः ॥ १६२ ॥ ६ । १ । ११६ ॥

यजुर्वेद में अकार के परे उरः शब्द का उरो पदान्त एङ् होता है वह प्रकृति करके रहे। जैसे उरो अन्तरिक्षम्। इत्यादि ॥ १६२ ॥

२२५–आपो जुषाणो वृष्णो वर्षिष्ठे अम्बे अम्बाले अम्बिके पूर्वे ॥ १६३ ॥ ६ । १ । ११७ ॥

यजुर्वेद में आपो, जुषाणो, वृष्णो, वर्षिष्ठे, ये एङन्त शब्द अकार के पूर्व हों तो प्रकृति करके रहें और अम्बिके शब्द से पूर्व अम्बे, अम्बाले हों तो ये दो शब्द इसी प्रकार रहें। जैसे आपो अस्मान् मातरः शुन्धन्तु। जुषाणो अप्तुराज्यस्य। वृष्णो अंशुभ्यां गभस्तिपूतः। वर्षिष्ठे अधि नाके। अम्बे अम्बाले अम्बिके ॥ १६३ ॥

२३६–प्रङ्ग इत्यादौ च ॥ १६४ ॥ ६ । १ । ११८ ॥

जो यजुर्वेद में अकार परे हो तो अङ्गे एङन्त शब्द प्रकृति करके रह जावे और जो अङ्गे इस के परे आदि एङ् है सो भी प्रकृति करके रहता है। जैसे ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे अदीध्यत्। ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यत्। इत्यादि ॥ १६४ ॥

२३७–अनुदात्ते च कुधपरे ॥ १६५ ॥ अ० ६ । १ । ११९

यजुर्वेद में जिस अनुदात्त अकार से परे कवर्ग और धकार हों उस के परे पदान्त एङ् प्रकृति करके रह जावे। जैसे अयं सो अग्निः। अयं सो अध्वरः। इत्यादि ॥ १६५ ॥

२३८–अवपथासि च ॥ १६६ ॥ ६ । १ । १२० ॥

अवपथास् इस अनुदात्त क्रिया के परे पदान्त जो एङ् है वह प्रकृति करके रहे यजुर्वेद में। जैसे त्रिरुद्रो अवपथाः। इत्यादि ॥ १६६ ॥

२३९–सर्वत्र विभाषा गोः ॥ १६७॥६ । १ । १२१ ॥

सर्वत्र अर्थात् लोक और वेद में गो शब्द से परे ह्रस्व अकार रहे तो गो शब्द का एङ् अर्थात् ओकार विकल्प करके प्रकृति अर्थात् ज्यों [illegible] रहे और पक्ष में सन्धि भी हो जाय। गो अग्रम्। गोऽग्रम्। [illegible] गोऽङ्गानि। ऐसे दो २ रूप होते हैं ॥ १६० ॥

[illegible] स्फोटायनस्य ॥ १६८ ॥ ६ । १ । १२२ ॥

[illegible] टायन आचार्य के मत में अच्मात्र के परे गो शब्द के ओकार [illegible] अवङ् आदेश हो ही जाता है। यहां पूर्व सूत्र से गो शब्द को [illegible] है। जैसे गो–अग्रम्। गवाग्रम्। यहां तो आदेश हुआ [illegible] आचार्यों के मत में अवङ् आदेश नहीं होता वहां [illegible] विभाष होने से गोऽग्रम्। और गो अग्रम्। ये दो रू

पूर्वरू[illegible] ब्राह्मणो [illegible] इसलिये [illegible] २३२–प्रकृ[illegible] (यहां है [illegible] पदान्त एङ् से परे

२३६–अङ्ग इत्यादौ च ॥ १६४ ॥ ६ । १ । ११८ ॥

जो यजुर्वेद में अकार परे हो तो अङ्गे एङन्त शब्द प्रकृति क रह जावे और जो अङ्गे इस के परे आदि एङ् है सो भी प्रकृति क रहता है । जैसे ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे अदीध्यत् । ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे निदीध्यत् । इत्यादि ॥ १६४ ॥

२३७–अनुदात्ते च कुधपरे ॥ १६५ ॥ अ० ६ । १ । ११

यजुर्वेद में जिस अनुदात्त अकार से परे कवर्ग और धकार हों के परे पदान्त एङ् प्रकृति करके रह जावे । जैसे अयं सो अग्निः । अयं अध्वरः । इत्यादि ॥ १६५ ॥

२३८–अवपथासि च ॥ १६६ ॥ ६ । १ । १२० ॥

अवपथास् इस अनुदात्त क्रिया के परे पदान्त जो एङ् है वह प्र ति करके रहे यजुर्वेद में । जैसे त्रिरुद्रो अवपथाः । इत्यादि ॥ १६६ ।

२३९–सर्वत्र विभाषा गोः ॥ १६७॥६ । १ । १२१ ॥

सर्वत्र अर्थात् लोक और वेद में गो शब्द से परे ह्रस्व अकार र तो गो शब्द का एङ् अर्थात् ओकार विकल्प करके प्रकृति अर्थात् ज भी हो जाय । गो अग्रम् । गोऽग्र

॥ १६७ ॥

तो इन के स्थान में यण् अर्थात् य् व् र् ल् ये चार वर्ण हो जायं । जैसे वापी अश्वः । वाप्यश्वः । कुमारी अपि । कुमार्यपि । यहां बहिरङ्गलक्षण यणादेश को असिद्ध मान कर संयोगान्तलोप नहीं होता । वधू अत्र । वध्वत्र । पितृ अर्थम् । पित्रर्थम् । लृ अनुबन्धः । लनुबन्धः । इत्यादि असंख्य उदाहरण बनते हैं ॥ १०८ ॥

२५१—एचोऽयवायावः ॥ १७९ ॥ ६ । १ । ७८ ॥

एच् अर्थात् ए ओ ऐ औ इन चार वर्णों से परे अच् हो तो इन के स्थान में क्रम से अय्, अव्, आय्, आव् ये आदेश होते हैं । जे अः । जयः । माले आ । मालया । माले ओः । मालयोः । इत्यादि । वायो आयाहि । वायवायाहि । लो अः । लवः । रै अः । रायः । इत्यादि । लौ अकः । लावकः । इत्यादि ॥ १०६ ॥

२५२—वान्तो यि प्रत्यये ॥ १८० ॥ ६ । १ । ७९ ॥

वान्त अर्थात् जो पूर्व सूत्र से अव् आव् आदेश कहे हैं वे यकारादि प्रत्यय के परे भी हो जावें । जैसे अव् । बाभ्रो—यः । बाभ्रव्यः । आव् । नौ—यः । नाव्यः । इत्यादि यहां वान्तग्रहण इसलिये है कि रै यति । यहां न हो । यकारादिग्रहण इसलिये है कि नौका, यहां न हो । प्रत्ययग्रहण इसलिये है कि गोयानम् । यहां अव् आदेश न हो जावे ॥ १८० ॥

२५३—वा०—गोर्यूतौ छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ १८१ ॥

वैदिक प्रयोगों में गो शब्द से परे यूति हो तो गो शब्द के स्थान में वान्त आदेश हो जाय । आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । यहां गो आ यूतिः इस का गव्यूतिः हुआ है ॥ १८१ ॥

२५४—वा०—अध्वपरिमाणे च ॥ १८२ ॥

२५९–वा०–हृदय्या आप उपसंख्यानम् ॥ १८७ ॥

जल अर्थ में हृद शब्द के एकार को यत् प्रत्यय के परे अयवा-देश हो। हृदय्या आपः ॥ १८० ॥

इति स्वरसन्धिः॥

अथ हल्सन्धिः ॥

अब इस के आगे पदान्त अथवा अपदान्त नकार मकार वा अन्य वर्णों को जिस २ वर्णों के परे जो २ कार्य होते हैं उस २ को लिखते हैं।

२६२—मोऽनुस्वारः ॥ १९० ॥ ८ । ३ । २३ ॥

जो हल् परे हो तो पदान्त मकार को अनुस्वार होता है। जैसे ग्रामम् याति। ग्रामं याति। यहां पदान्त की अनुवृत्ति इसलिये है कि गम्यते। यहां अनुस्वार न हुआ ॥ १९० ॥

२६३—नश्चाऽपदान्तस्य झलि ॥१९१ ॥८ । ३ । २४ ॥

जो झल् प्रत्याहार परे हो तो अपदान्त अर्थात् एक पद में नकार और मकार को अनुस्वार होता है। जैसे मीमान्—सते। मीमांसते। पुम्—सु। पुंसु। इत्यादि। इस विषय में यह समझना चाहिये कि श, ष, स, ह, इतने वर्णों के परे अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार होता है परन्तु वैदिक प्रयोगों में श,ष,स,ह इन वर्णों के परे अनुस्वार को ङ् आदेश होता है क्योंकि—रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति। महा० । १ । १ । ९ । इस वाक्य से सवर्णादेश का निषेध हो कर असवर्णादेश होता है। इस में जो जो कुछ विशेष है वह आगे लिखेंगे। झल्प्रत्याहारग्रहण इसलिये है कि मन्यते। यहां न हुआ। और झल् प्रत्याहार में बाकी जो वर्ण बचे हैं उन के परे अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार हो के जो कुछ विकार होता है वह आगे लिखेंगे ॥ १९१ ॥

२६४—मो राजि समः क्वौ ॥ १९२ ॥ ८ । ३ । २५ ॥

क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु परे हो तो सम् के मकार को मकार आदेश हो। जैसे सम्—राट्। सम्राट्।

आदेश होता है। इससे उत्तर सूत्र मे पदान्तग्रहण के ज्ञापक से यह सू
अपदान्त के लिये है। जैसे अं—कः। अङ्कः। अं—चनम्। अञ्चनम्।
वं—टनम्। वण्टनम्। अं—तितः। अन्तितः। चं—डः। चण्डः। कं—
पनम्। कम्पनम्। इत्यादि। परसवर्ण अर्थात् जिस वर्ग का अक्षर परे
हो उसी वर्ग का अनुनासिक वर्ण अनुस्वार के स्थान मे हो जाता है। जै-
से कवर्ग के परे पूर्व अनुस्वार के स्थान मे ङकार ही होगा इसी प्रका-
र सर्वत्र समझना चाहिये ॥ १९६ ॥

२६९—वा पदान्तस्य ॥ १९७ ॥ ८। ४। ५८ ॥

यय् प्रत्याहार के परे पदान्त अनुस्वार को पर का सवर्ण आदेश
विकल्प करके होता है। जैसे कटङ्करोति। कटंकरोति। बालञ्चेतय-
ति। बालं चेतयति। ग्रामण्टीकते। ग्रामंटीकते। नदीन्तरति। नदींत-
रति। प्रजाम्पिपर्ति। प्रजां पिपर्ति। सँय्यन्ता। संयन्ता। सँव्वत्सरः। सं-
वत्सरः। यँल्लोकम्। यंलोकम्। इत्यादि॥ इत्यनुस्वारप्रकरणम् ॥ १९० ॥

२७०—तोर्लि ॥ १९८ ॥ ८। ४। ५९ ॥

लकार परे हो तो तवर्ग के स्थान में परसवर्ण हो जावे। जैसे अ-
ग्नि—चित् लुनाति। अग्निचिल्लुनाति। विद्यु त्—लेलायते। विद्युल्लेलायते।
भवान्—लवयति। भवाँल्लवयति। इत्यादि ॥ १९८ ॥

२७१—ङ्णोः कुक् टुक् शरि ॥ १९९ ॥ ८। ३। २८ ॥

शर् प्रत्याहार परे हो तो पदान्त ङकार णकार को विकल्प करके
कुक्, टुक् का आगम यथाक्रम से होता है। जैसे उदङ्क्शेते। उदङ्शेते।
उदङ्क्पष्ठः। उदङ्पष्ठः। उदङ्क्षुनोति। उदङ्षुनोति। प्रशाण्ट्शेते। प्रश-
ण्शेते। प्रशाण्ट्स्सरकते। प्रशाण्स्सरकते। प्रशण्ट् सरति। प्रशा...
इत्यादि ॥ १९९ ॥

इत्यादि । अब इस के आगे तुक् का आगम लिखते हैं ॥ २०४ ॥

२७७—ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ॥ २०५ ॥ ६ । १ । ७१ ॥

पूर्व ह्रस्व को तुक् का आगम होता है जो पित् कृत् परे हो तो। पुण्यकृत् । अग्निचित् । इत्यादि ॥ २०५ ॥

२७८—संहितायाम् ॥ २०६ ॥ ६ । १ । ७२ ॥

यह अधिकार सूत्र है इस के आगे जो २ कहेंगे सो २ संहिताविषय में समझना ॥ २०६ ॥

२७९—छे च ॥ २०७ ॥ ६ । १ । ७३ ॥

जो ह्रस्व से परे छकारादि उत्तरपद हो तो पदान्त और अपदान्त में भी उस को तुक् का आगम होता है। जैसे इ—छति । इच्छति । गच्छति । स्वच्छन्दः । देवदत्तच्छत्रम् । इत्यादि ॥ २०७ ॥

२८०—आङ्माङोश्च ॥ २०८ ॥ ६ । १ । ७४ ॥

जो आङ् और माङ् से परे छकार हो तो उस को तुक् का आगम होता है। ईषदर्थ, क्रियायोग, मर्यादा, अभिविधि, इन अर्थों में आकार ङित् आता है। ईषदर्थ—आ—छाया । आच्छाया । क्रियायोग—आ—छादनम् । आच्छादनम् । मर्यादा—आ—छायायाः । आच्छायायाः । अभिविधि—आ—छायम् । आच्छायम् । मा—छैत्सीत् । माच्छैत्सीत् । माच्छिदत् । इत्यादि ॥ २०८ ॥

२८१—दीर्घात् ॥ २०९ ॥ ६ । १ । ७५ ॥

जो अपदान्त अर्थात् एक पद में दीर्घ से परे छकार हो तो उस को तुक् का आगम होता है। जैसे ह्री—छति । ह्रीच्छति । म्लेच्छति । इत्यादि ॥ २०९ ॥

२८२—पदान्ताद्वा ॥ २१० ॥ ६ । १ । ७६ ॥

जो पदान्त दीर्घ से परे छकारादि उत्तरपद हो तो उस को तुक्

न्ति । मधुलिट्—सरति । इत्यादि । जो सूत्रकार ने नाम् अर्थात् षष्ठी के बहुवचन को छोड़ के ष्टुत्व का निषेध किया है उसी में वार्त्तिककार कहते हैं कि ॥२१४ ॥

२८७-वा०-अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् ॥ २१५ ॥

नाम् के निषेध के साथ नवति और नगरी शब्द का भी निषेध करना चाहिये । जैसे षट्—नाम् । षण्णाम् । षट्—नवतिः । षण्णवतिः । षट्—नगर्य्यः । षण्णगर्य्यः । इत्यादि । सूत्र में पदान्तग्रहण इसलिये है कि ईड्—ते । ईट्टे । यहां टवर्ग आदेश का निषेध न हुआ । टवर्ग से परे इसलिये है कि निष्—तप्तम् । निष्टप्तम् । सर्पिष्—तमम् । सर्पिष्टमम् । यहां ष्टुत्व हो ही गया ॥ २१५ ॥

२८८—तोष्षि ॥ २१६ ॥ ८ । ४ । ४२ ॥

षकार के योग में तवर्ग को टवर्ग आदेश न हो । जैसे योषित्—षण्डः । योषित्षण्डः । इत्यादि ॥ २१६ ॥

२८९—शात् ॥ २१७ ॥ ८ । ४ । ४३ ॥

शकार से परे तवर्ग को चवर्ग आदेश न हो । जैसे विश्नः । प्रश्नः । यहां ञकार न हुआ ॥ २१७ ॥

२९०—यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ॥ २१८ ॥ ८ । ४ । ४४ ॥

जो अनुनासिकादि उत्तरपद परे हो तो पदान्त यर् को अनुनासिक आदेश विकल्प करके होता है । जैसे वाक्—नमति । वाङ्नमति । वा-

घन होता है और दूसरा यय् से परे शर् को द्विर्वचन हो। जैसे स्त्याली। स्त्याता। स्स्फोटः। स्तोतः। श्च्यूयोतति। और संवत्स्सरः। कृष्णीस् अप्स्सराः। इत्यादि ॥ २२३ ॥

२९६—वा०—अवसाने च ॥ २२४ ॥

जो अवसान में यर् हैं उन को विकल्प करके द्विर्वचन होता है। जैसे। वाक्क्। वाक्। इत्यादि ॥ २२४ ॥

२९७—नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य ॥ २२५ ॥ ८।४।४७॥

जो आक्रोश अर्थ में आदिनी शब्द परे हो तो पुत्र शब्द के तकार को द्विर्वचन न हो। यह (अनचि च) इस सूत्र का अपवाद है। जैसे पुत्र—आदिनी। पुत्रादिनी। आक्रोशग्रहण इसलिये है कि पुत्त्रादिनी सर्प्पिणी। यहां हो गया ॥ २२५ ॥

२९८—वा०—तत्परे च ॥ २२६ ॥

पुत्र शब्द से परे पुत्र शब्द हो तो भी उस को द्विर्वचन न हो। जैसे पुत्रपुत्रादिनी ॥ २२६ ॥

२९९—वा०—वा हतजग्धयोः ॥ २२७॥

जो पुत्र शब्द से परे हत और जग्ध शब्द हों तो उस को विकल्प करके द्विर्वचन होता है। जैसे पुत्त्रहती। पुत्रहती। पुत्त्रजग्धी। पुत्रजग्धी इत्यादि ॥ २२७ ॥

३००—वा०—चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेः ॥ २२८ ॥

जो शर्प्रत्याहार के परे चय् प्रत्याहार हो तो उस के स्थान में वर्गों के द्वितीय वर्ण आदेश हो जाते हैं। यह पौष्करसादि आचार्य्य का मत है। क्ष्याता। ख्षता। वत्सरः। वथ्सरः। अप्सराः। अफ्सराः। इत्यादि ॥ २२८ ॥

सूच से तकार हो जाता है। उत्थाता। उत्थातुम्। उत्थातव्यम्। उद्-स्
म्भनम्। उत्तम्भनम्। उत्तम्भिता। उत्तम्भितुम्। उत्तम्भितव्यम्। इत्यादि।
स्था स्तम्भ का ग्रहण इसलिये है कि उद्-स्कभ्नोति। उत्स्कभ्नोति।
इत्यादि में न हुआ ॥ २३५ ॥

२०८—वा०—उदः पूर्वत्वे स्कन्देश्छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ २३६ ॥

वैदिक प्रयोगों में उद् उपसर्ग से परे स्कन्द धातु को पूर्वसवर्ण आदेश हो। जैसे अग्न्येदूरमुत्कन्दः। यहां। उद्-स्कन्दः। सकार को पूर्वसवर्ण तकार होकर उत्कन्दः। ऐसा होता है ॥ २३६ ॥

२०९—वा०—रोगे चेति वक्तव्यम् ॥ २३७ ॥

रोग अर्थ में भी स्कन्द को पूर्वसवर्ण आदेश हो जावे। जैसे उत्कन्दो रोगः ॥ २३७ ॥

२१०—झयो होऽन्यतरस्याम् ॥ २३८ ॥ ८ । ४ । ६१ ॥

झय् प्रत्याहार से परे हकार को पूर्वसवर्ण आदेश विकल्प करके होता है। जैसे कवर्ग से परे हो तो घकार। वाग्—हसति। वाग्घसति। टवर्ग से परे हो तो ढकार। लघड्—हन्ता। लघड्ढन्ता। तवर्ग से परे हो तो धकार। अग्निचित्—हसति। अग्निचिद्धसति। पवर्ग से परे हो तो भकार होता है। त्रिष्टुप्—हसति। त्रिष्टुब्भसति। इत्यादि। यहां झय् ग्रहण इसलिये है कि भवान् हसति। इत्यादि में न हो ॥ २३८ ॥

२११—शश्छोऽटि ॥ २३९ ॥ ८ । ४ । ६२ ॥

जो झय् से परे और अट् प्रत्याहार के पूर्व शकार हो तो उस को छकार आदेश विकल्प करके होता है। जैसे वाक् छेते। वाक् शेते। मधुलिट् छेते। मधुलिट् शेते। त्रिष्टुप् छेते। त्रिष्टुप् शेते। इत्यादि ॥ २३९ ॥

२१२—वा०—छत्वममीति वक्तव्यम् ॥ २४० ॥

जो अम् प्रत्याहार परे हो तो भी झय् से परे

अथ अयोगवाहसन्धिः ॥

अब इस के आगे अयोगवाहसन्धि का प्रकरण लिखा जाता है

२१५—स सजुषो रुः ॥ २४३ ॥ ८ । २ । ६६ ॥

जो पदान्त सकार और सजुष् शब्द का मूर्द्धन्य षकार है उस को रु आदेश होता है । पदान्त दो प्रकार का होता है एक तो अवसान में अर्थात् जिस से आगे कोई पद वा अक्षर न हो और दूसरा उत्तर-पद के पर भी पदान्त कहाता है । इस में से अवसान में सकार को रु होता है उस का विषय नामिक पुस्तक में आवेगा । और यह अयोगवाहप्रकरण है यहां शब्दों की मिलावट दिखलाई जाती है । यह आदेश सब दन्त्य सकारान्त शब्दों को होता है इसीलिये सजुष् शब्द के मूर्द्धन्य षकार को रुविधान किया है । पदान्त सकार भी दो प्रकार का होता है एक स्वरान्त शब्दों से विभक्ति का सकार और दूसरा जो प्रथम से ही सकारान्त होते हैं, विभक्ति से सकारान्त जैसे पुरुष सु । इत्यादि । प्रथम से सकारान्त । जैसे मनस्, पयस्, धनुष्, हविष् । इत्यादि । अब इस पदान्त सकार को रु आदेश होकर पीछे क्या २ कार्य होता है सो क्रम से लिखते हैं ॥ २४३ ॥

२१६—एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ॥ २४४ ॥ ६ । १ । १३१ ॥

ककार और नञ्समास को छोड़कर हल् प्रत्याहार परे हो तो एतत् और तत् शब्द के सु का लोप हो । जैसे स पठति । एष गच्छति । इत्यादि । यहां ककार का निषेध इसलिये है कि एषको गच्छति । सको न्ब्रूते । यहां न हुआ । नञ्समास में निषेध इसलिये है कि अनेष...

पय आश्रयिष्यत । यहां न हो । अब जहां अवर्णान्त वा अन्य स्वर
शब्दों से परे (स) हो और उत्तरपद में तो क्या होना चाहिये इ
विषय में लिखते हैं ॥ २४० ॥

२२०—भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ॥ २४८ ॥ ८ । ३ । १७ ॥

जो भोस्, भगोस्, अघोस् और अवर्ण से परे अश् प्रत्याहार हो तो स
के स्थान में (य्) आदेश हो जाता है । जैसे भोय्—अत्र । भो अत्र ।
भगोय्—इह । भगो इह । अघोय्—उत्तिष्ठ । अघो उत्तिष्ठ । अकार से परे
आकार के पूर्व । पुरुष य्—आगच्छति । पुरुष आगच्छति । आकार से परे
आकार के पूर्व । ब्राह्मणा य्—अविदुः । ब्राह्मणा अविदुः । अब जो स
के स्थान में (य्) आदेश हुआ है इस का क्या होना चाहिये सो लि-
खते हैं ॥ २४८ ॥

२२१—व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य ॥ २४९ ॥ ८ । ३ । १८ ॥

जो अवर्ण से परे यकार वकार है उस को लघुप्रयत्नतर आदेश हो
शाकटायन आचार्य्य के मत में । जिन के उच्चारण में बहुत थोड़ा बल
पड़े वह लघुप्रयत्नतर कहाता है । (एचोऽयवायावः) इस उक्त सूत्र से प
दान्त में जो अय् आदि आदेश होते हैं वे तथा जो पूर्व सूत्र से स के
स्थान में यकारादेश होता है उन सब यकार वकारों का यहां ग्रहण है ।
पुरुषयागच्छति । पुरुषयिह । ब्राह्मणायङ्गुः । इत्यादि । अय् आदेश । के
आसते । कयासते । वायो आयाहि । वायवायाहि । श्रियै उद्यतः ।
श्रियायुद्यतः । असौ आदित्यः । असावादित्यः । जो यह लघुप्रयत्नतर
आदेश होता है सो उदाहरणों में बहुत कम आता है, अब जहां लघु-
प्रयत्नतर आदेश नहीं होता वहां क्या होता है सो दिखलाते हैं ॥ २४९ ॥

२२२—लोपः शाकल्यस्य ॥ २५० ॥ ८ । ३ । १९ ॥

जो अवर्ण से परे और अश् प्रत्याहार के पूर्व पदान्त यकार व

३२५-हशि च ॥ २५३ ॥ ६ । १ । ११३ ॥

ह्रस्व अकार से परे रु के रेफ को उकार आदेश होता है जो हश् प्रत्याहार परे हो तो । जैसे पुरुष उ हसति । उकार के साथ गुण एकादेश होकर पुरुषो हसति । इत्यादि ॥ २५३ ॥

३२६—हलि सर्वेषाम् ॥ २५४ ॥ ८ । ३ । २२ ॥

हल् प्रत्याहार के परे भो, भगो।अघो और अवर्ण जिस के पूर्व उस यकार का लोप सब आचार्यों के मत से हो । भो य्—हसति भो हसति । भगो य्—हसति । भगो हसति । अघो य्—हसति । अघो हसति अकारान्त से पुरुषा य्—हसन्ति । पुरुषा हसन्ति । बाला य्—नन्दन्ति बाला नन्दन्ति । चन्द्रमा य्—वर्त्तते । चन्द्रमा वर्त्तते । इत्यादि । हश् मात्र में इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है । यहां हल्ग्रहण उत्तर सूत्रों के लिये है क्योंकि यहां हश् प्रत्याहार से ही प्रयोजन है, अब इकार आदि स्वरों से परे रु हो और हश् प्रत्याहार उत्तरपद में आवे तो रु का रेफ उत्तरवर्ण के ऊपर चढ़ जाता है। जैसे सद्भिर्देवैन । सद्भिर्याति । अग्निर्दहति । वायुर्वाति । गौर्धावति । इत्यादि । शर् प्रत्याहार में रेफ भी आता है उस के परे क्या होना चाहिये सो लिखते हैं ॥ २५४ ॥

३२७-रो रि ॥ २५५ ॥ ८ । ३ । १४ ॥

जो रेफ के परे रेफ हो तो पूर्व रेफ का लोप होता है । जैसे प्रातर्—रक्तम् । प्रात—रक्तम् । निर्—रक्तम् । नि—रक्तम् । गुरुर्—राजते। गुरु—राजते । अब लोप हो के क्या होना चाहिये सो लिखते हैं ॥ २५५॥

३२८—ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ॥ २५६ ॥ ६ । ३ । १११॥

जहां रेफ ढकार का लोप हो वहां उस रेफ ढकार से पूर्व अण् को दीर्घ आदेश हो जावे । दीर्घ होकर प्रातारक्तम् । नीरक्तम् । गुरू राजते। इत्यादि ॥ २५६ ॥

नीय को विसर्जनीय हो। जैसे पुरुषः चाम्यति। पुरुषः त्सरुः। इत्यादि ॥ २६० ॥

३३३—वा शरि ॥ २६१ ॥ ८ । ३ । ३६ ॥

शर् प्रत्याहार के परे विसर्जनीय को विकल्प करके विसर्जनीय आदेश हो। जैसे पुरुषः शेते। पुरुषश्शेते। कवयः षट्। कवयष्षट्। धार्मिकाः सन्तु। धार्मिकास्सन्तु। इत्यादि ॥ २६१ ॥

३३४—वा०—वा शर्प्रकरणे खर्परे लोपः ॥ २६२ ॥

जिस से परे खर् प्रत्याहार का वर्ण हो ऐसा जो शर् उस के पूर्व विसर्जनीय हो तो विकल्प करके लोप हो। जैसे पुरुषाः ष्ठीवन्ति। पुरुषा ष्ठीवन्ति। वृक्षाः स्थातारः। वृक्षा स्थातारः। इत्यादि ॥ २६२ ॥

यहां खर्परक शर् प्रत्याहार में तीन २ प्रयोग बनेंगे। पुरुषाः ष्ठीवन्ति। पुरुषा ष्ठीवन्ति। पुरुषाष् ष्ठीवन्ति। इत्यादि। अब खर् प्रत्याहार में सब वर्णों के साथ विसर्जनीय की सन्धि तो दिखला दी परन्तु खर् प्रत्याहारस्थ क, ख, प, फ, इन चार वर्णों के साथ विसर्जनीय को जो २ होता है सो दिखलाते हैं ॥

३३५—कुप्वोः ᳲकᳲपौ च ॥ २६३ ॥ ८ । ३ । ३७ ॥

कवर्ग पवर्ग अर्थात् क, ख, प, फ इन चार वर्णों के परे विसर्जनीय को विकल्प करके क्रम से जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश हों ॥

पुरुषᳲकरोति। पुरुषः करोति। बालᳲखिद्यते। बालः खिद्यते। पुरुषᳲ पठति। पुरुषः पठति। बालᳲ फणति। बालः फणति। इत्यादि। जिस पक्ष में जिह्वामूलीय उपध्मानीय आदेश नहीं होते उस पक्ष में विसर्जनीय ही रहते हैं ॥ २६३ ॥

३३६—सोऽपदादौ ॥ २६४ ॥ ८ । ३ । ३८ ॥

जो अपदादि अर्थात् एक पद में कवर्ग पवर्ग परे हो ... विसर्जनी

२४०—नमस्पुरसोर्गत्योः ॥ २६८ ॥ ८ । ३ । ४० ॥

जो कवर्ग और पवर्ग परे हों तो गतिसंज्ञक नमस् और पुरस् शब्दों के विसर्जनीय को सकार आदेश होता है। नमः—कर्ता। नमस्कर्ता। नमः—कृत्य। नमस्कृत्य। पुरस्कर्ता। पुरस्कृत्य। इत्यादि ॥ २६८ ॥

२४१—इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य ॥ २६९ ॥ ८ । ३ । ४१ ॥

इकार वा उकार जिस के उपधा में हैं उस प्रत्ययभिन्न शब्द के विसर्ज्जनीय को षकार होता है। जैसे निर्—कृतम्। निष्कृतम्। निर्—पीतम्। निष्पीतम्। दुर्—कृतम्। दुष्कृतम्। दुर्—पीतम्। दुष्पीतम्। आविस्—कृतम्। आविष्कृतम्। प्रादुस्—कृतम्। प्रादुष्कृतम्। इत्यादि यहां अप्रत्ययग्रहण इसलिये है कि वायुः पाति। यहां षकार आदेश न हो ॥ २६९ ॥

२४२— वा०—पुम्मुहुसोः प्रतिषेधः ॥ २७० ॥

पुम् और मुहुस् इन शब्दों में भी अप्रत्यय के विसर्जनीय हैं यहां इस उक्त सूत्र से विसर्जनीय को षकाराऽऽदेश न हो। जैसे पुंस्कामः। मुहुःकामः। यहां विसर्जनीय को षकार न हो ॥ २७० ॥

२४३—तिरसोऽन्यतरस्याम् ॥ २७१ ॥ ८ । ३ । ४२ ॥

गतिसंज्ञक तिरस् शब्द के जो विसर्जनीय उन को कवर्ग पवर्ग के परे सकारादेश विकल्प कर के होता है। पक्ष में विसर्जनीय रह जावेंगे। तिरस्कृतम्। तिरःकृतम्। तिरस्कर्ता। तिरःकर्ता। तिरः कृत्य। तिरस्कृत्य। तिरस्पिबति। तिरः पिबति। गतिग्रहण इसलिये है कि तिरः कृत्वा। यहां सकारादेश न हो ॥ २७१ ॥

२४४—द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे ॥२७२॥८।३।४३॥

कृत्वसुच् प्रत्यय के अर्थ में वर्तमान जो द्वि, त्रि और चतुर शब्द

पयस्कुम्भः । पयस्कुम्भी । यहां स्त्रीलिङ्ग में भी होता है । पयस्पात्रम् । अयस्कुशा । अयस्कर्णी । यहां अकार से परे ग्रहण इसलिये है कि गीः कारः । पूःकारः । यहां सकार न हो। तपरकरण इसलिये पढ़ा है कि भाः कामः । यहां न हो । और अव्यय का निषेध इसलिये है कि अन्तःकरणम् । प्रातःकालः । पुनः करोतु । समास इसलिये है कि यशः करोति । यहां न हो । अनुत्तरपदस्थ इसलिये है कि सुवचःकामः । यहां न हो ॥ २७५ ॥

३४८–अधः शिरसी पदे ॥ २७६ ॥ ८ । ३ । ४७ ॥

जो समास में पद शब्द परे हो तो अधस् और शिरस् के अनुत्तरपदस्थ विसर्जनीय को सकार आदेश होता है। अधस्पदम् । शिरस्पदम् । अधस्पदी । शिरस्पदी । यहां समासग्रहण इसलिये है कि अधःपदम् । यहां न हो । अनुत्तरपदस्थग्रहण इसलिये है कि परमशिरः पदम् । यहां सकारादेश न हुआ ॥ २७६ ॥

३४९–कस्कादिषु च ॥ २७७ ॥ ८ । ३ । ४८ ॥

जो २ शब्द कस्क आदि गण में पढ़े हैं उन के विसर्जनीय को यथालिखित सकार वा षकार आदि जानना चाहिये । यहां भी एक पद से परे विसर्जनीय और उत्तरपद में कवर्ग पवर्ग पर लिये जाते हैं जैसे कः–कः । कस्कः । कौतस्कुतः । भ्रातुष्पुत्रः । शुनस्कर्णः । सद्यस्कालः । सद्यस्क्री । सद्यस्कः । कांस्कान् । सर्पिष्कुण्डिका । धनुष्कपालम् । बर्हिष्पूलम् । यजुष्पात्रम् । अयस्कान्तः । मेदस्पिण्डः । इति ॥ २७७ ॥

३५०–छन्दसि वा प्राम्रेडितयोः ॥ २७८ ॥ ८ । ३ । ४९ ॥

जो प्र और आम्रेडित को छोड़ के कवर्ग पवर्ग परे हों तो वेद में विकल्प करके विसर्जनीय को सकारादेश होता है । जैसे अयः–पात्रम् । अयस्पात्रम् । यहां प्र और आम्रेडित का निषेध इसलिये है कि इन्द्रा-

चक्षुषे सूर्याय । दिवस्पृष्ठे । पृथिव्यास्पृष्ठे । तमसस्पारम् । इ
ळिष्पति । सूर्यं चक्षुर्दिवस्पयः । रायस्पोषेण समिषा मदन्तः । य
ग्रहण इसलिये है कि मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत् । यहां न हु

३५५–इडाया वा ॥ २८३ ॥ ८ । ३ । ५४ ॥

जो वेदों में पूर्वसूत्रोक्त पति आदि शब्द परे हों तो इडा श
षष्ठी के विसर्जनीय को विकल्प करके सकारादेश होता है । जैसे इ
स्पतिः । इडायाः पतिः । इत्यादि ॥ २८३ ॥

३५६–अम्नरूधरवरित्युभयथाच्छन्दसि ॥ २८४॥ ८।२।

अम्नस्, ऊधस्, अवस् इन शब्दों के सकार को रु आदेश वि
करके होता है । जैसे अम्नस्–एव । अम्नरेव । ऊधस्–एव । ऊधरेव
स्–एव । अवरेव । इत्यादि ॥ २८४ ॥

३५७–अहन् ॥ २८५ ॥ ८ । २ । ६८ ॥

अहन् शब्द को रु आदेश होता है । अहन्–भ्याम् । अहोभ्याम् ॥२

इस सूत्र पर यह वार्तिक है:–

५८–वा०–रुत्वविधावहोरूपरात्रिरथन्तरेषूपसंख्यानम् ॥२

रुत्वविधिप्रकरण में रूप, रात्रि और रथन्तर शब्दों के परे अ
शब्द के नकार को रु आदेश होता है । जैसे अहन्–रूपम् । अहोरू
म् । अहन्–रात्रः । अहोरात्रः । अहन्–रथन्तरम् । अहोरथन्तरम् ॥२८६

३५९–रोऽसुपि ॥ २८७ ॥ ८ । २ । ६९ ॥

जो सुप् से भिन्न कोई उत्तरपद परे हो तो अहन् शब्द के नका
को र् आदेश होता है । इस में यह विशेष है कि जहां रु होता है
वहां उत्व भी होता है और जहां र् होता है वहां उत्व नहीं होता ।
जैसे अहन्–ददाति । अहर्ददाति । अहन्–भुङ्क्ते । अहर्भुङ्क्ते । इत्या-
दि । और इस पर यह वार्तिक है ॥ २८७ ॥

ककार के पूर्व सुट् का आगम होता है। जैसे संस्कृतम्। परिस्कृतम्। उपस्कृतम्। यहां भी पूर्व के समान सब उदाहरण समझना ॥ ३०० ॥

३७३-उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु ॥ ३०१ ॥ ६ । १ । १३८ ॥

प्रतियत्न अर्थात् जो किसी व्यवहार में अनेक गुणों का आरोपण करना। वैकृत अर्थात् विकार को प्राप्त होना। वाक्याध्याहार अर्थात् जो जानने योग्य अर्थ है उस को जानने के लिये वाक्य बोलना। इन तीन अर्थों में जो उप उपसर्ग से परे कृ धातु का प्रयोग हो तो ककार से पूर्व सुट् का आगम हो। प्रतियत्न—उपस्कुरुते एधोदकस्य। वैकृत—उपस्कृतं भुङ्क्ते। वाक्याध्याहार—उपस्कृतं ब्रूते। इत्यादि ॥ ३०१ ॥

३७४-किरतौ लवने ॥ ३०२ ॥ ६ । १ । १३९ ॥

लवन अर्थात् काटने अर्थ में जो कृ धातु का प्रयोग हो तो उप उपसर्ग से परे उस के ककार से पूर्व सुट् का आगम होता है। जैसे उप—किरति। यहां ककार से पूर्व सुट् हो के मद्रका लवनं चेत्रमुपस्किरति। अट् के व्यवधान में। उपास्किरत्। अभ्यास के व्यवधान में। उपचस्करतुः ॥ ३०२ ॥

३७५-हिंसायां प्रतेश्च ॥ ३०३ ॥ ६ । १ । १४० ॥

हिंसा अर्थ में उप तथा प्रति उपसर्ग से परे कृ धातु का प्रयोग हो तो ककार से पूर्व सुट् का आगम होता है। जैसे उपस्किरति श्वानम्। प्रतिस्किरति श्वानम्। इत्यादि ॥ ३०३ ॥

३७६—अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने ॥ ३०४॥६।१।१४१॥

चतुष्पात् अर्थात् चार पगवाले घोड़ा, हाथी, ऊंट, बकरी, गौ आ- [illegible] पक्षी मोर, तीतिर, मुर्गा आदि, ये कर्त्ता हों तो [illegible]

होता है। संहितम्। सहितम्। संततम्। सततम्। इसी सतत शब्द
सातत्य बनता है। जहां लोप नहीं होता वहां मकार को अनुस्वा
होके विकल्प करके परसवर्ण भी हो जाता है॥ ३०८॥

३८१—वा०—समुतुमुनोः कामे लोपो वक्तव्यः॥ ३०९॥

जो काम शब्द परे हो तो सम् और तुमुन् प्रत्यय के मकार का
ोप होता है। सम्—कामः। सकामः। भोक्तुम्—कामः। भोक्तुकामः।
इत्यादि॥ ३०६॥

३८२—वा०—अवश्यमः कृत्ये लोपो वक्तव्यः॥ ३१०॥

जो कृत्य प्रत्ययान्त शब्दों के परे पूर्व अवश्यम् शब्द हो तो उ
के मकार का लोप हो जावे। अवश्यम्—भाव्यम्। अवश्यभाव्यम्। अव
यलाव्यम्। इत्यादि। इन वार्तिकों का यहां प्रसंग नहीं था परन्तु इसी
(१०६) सूत्र पर थे इसलिये लिख दिये हैं॥ ३१०॥

३८३—गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेषु॥ ३११॥ ६।१।१४४॥

सेवित, असेवित और प्रमाण अर्थ का वाचक (गोष्पदम्) यह निपातन
किया है। सेवित—गोष्पदो देशः। असेवित—गोष्पदमरण्यम्। प्रमाण—
ोष्पदपूरं वृष्टो मेघः। यहां इन अर्थों का ग्रहण इसलिये है कि गोः
पदम्। गोपदम्। यहां सुट् न हुआ। और इन अर्थों में ऐसा विग्रह हो
चाहिये कि गावः पद्यन्ते प्राप्यन्ते यत्र तत् गोष्पदम्॥ ३११॥

३८४—आस्पदं प्रतिष्ठायाम्॥ ३१२॥ ६।१।१४५॥

प्रतिष्ठा अर्थ में (आस्पदम्) यह निपातन किया है। आस्पदं लि-
मात्मनः। यहां भी पद शब्द के पूर्व सुट् हुआ है। यहां प्रतिष्ठाग्रहण
इसलिये है कि आपदमप्रतिष्ठां प्राप्तो देवदत्तः। यहां न हुआ॥ ३१२॥

३८५—आश्चर्यमनित्ये॥ ३१३॥ ६।१।१४६॥

अनित्य अर्थात् जो कभी रहे कभी न रहे इस अ

है। प्रति—कश:। प्रतिष्कश:। यहां ककार से पूर्व सुट् और सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन से हुआ है॥ ३१८॥

३९१—प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी॥ ३१९॥ ६।१।१५२॥

ऋषि अर्थ में प्रस्कण्व: हरिश्चन्द्र:, ये दो शब्द सुट् आगम के साथ निपातन किये हैं। अर्थात् ये दोनों ऋषि के नाम हैं। जहां और किसी के नाम होंगे वहां सुट् न होगा इत्यादि॥ ३१९॥

३९२—मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयो:॥३२०॥६।१।१५३॥

मस्कर: (बांस की लकड़ी) और (उस को धारणकरनेवाला सन्यासी) मस्करी, ये दोनों शब्द वेणु और परिव्राजक अर्थ में निपातन किये हैं। जहां इन से अन्य अर्थ हो वहां मकर: (धूर्तता) और मकरी (धूर्त मनुष्य का नाम) जानना॥ ३२०॥

३९३—कास्तीराजस्तुन्दे नगरे॥ ३२१॥ ६।१।१५४॥

कास्तीर और अजस्तुन्द, ये दो शब्द नगर अर्थ में निपातन किये हैं। अर्थात् किसी नगर के नाम हों वहां इन दो शब्दों के तकार से पूर्व सुट् होता है। कास्तीरं नाम नगरम्। अजस्तुन्दं नाम नगरम्। अन्य अर्थों में कातीरम्। अजतुन्दम्। ऐसा ही रहेगा॥ ३२१॥

३९४—पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्॥३२२॥६।१।१५५॥

जहां पारस्कर आदि शब्द संज्ञा अर्थात् किसी के नियत नाम हों वहां इन में सुट् का आगम किया है। जैसे पारस्कर:। किसी देश का नाम है। अन्यत्र पारकर:। कारस्कर:। किसी वृक्ष का नाम है। अन्यत्र कारकर:। रथस्या। किसी नदी का नाम है। अन्यत्र रथया। किष्कु:। एक हाथ वा वितस्ति भर नाप का नाम है। अन्यत्र किकु:। किष्किन्धा। किसी गुफा का नाम है। अन्यत्र किकिन्धा॥ ३२२॥

३९५—वा०—तद्बृहतो: करपत्योश्चोरदेवतयो: सुट् तलोपश्च॥३२३॥

पुंश्चली । इत्यादि । खय्ग्रहण इसलिये है कि पुन्दासः । यहां न हुआ। और अम्परेग्रहण इसलिये है कि पुंक्षीरम् । यहां न हुआ । यहां एक पक्ष में सकार को द्विर्वचन हो जाता है। इस प्रकरण में रु का अधिकार है परन्तु पुंस् शब्द को उक्त (संपुंका०)इस वार्तिक से सकारादेश इस लिये है कि कवर्ग पवर्ग के परे विसर्जनीय को जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश कहे हैं वे न हों ॥ ३२६ ॥

३९९—नश्छव्यप्रशान् ॥ ३२७ ॥ ८ । ३ । ७ ॥

प्रशान् शब्द को छोड़ के पदान्त नकार को रु आदेश होता है जो छव् प्रत्याहार से परे अम् प्रत्याहार हो तो । और पूर्व सूत्र से रु से पूर्व वर्ण को अनुनासिक और अनुस्वार हो जाते हैं । जैसे भवान्—छिनत्ति । नकार को रु रु को विसर्जनीय, विसर्जनीय को सकार, सकार को शकार होकर भवँश्छिनत्ति । भवांश्छिनत्ति। भवान्—चेतति। भवँश्चेतति। भवांश्चेतति । सन्—च । सँश्च । संश्च । भवान्—टीकते। भवाँष्टीकते। भवांष्टीकते। भवान्—तर्पयति । भवाँस्तर्पयति । भवांस्तर्पयति। इत्यादि। यहां प्रशान् का निषेध इसलिये है कि प्रशाञ्छिनत्ति । प्रशाञ्चेतति। रु आदेश न हुआ । छव्ग्रहण इसलिये है कि भवान् वदतु । यहां रु न हुआ । अम्पर ग्रहण इसलिये है कि भवान् त्सरति। यहां न हुआ ॥३२७॥

४००—उभयथर्क्षु ॥ ३२८ ॥ ८ । ३ । ८ ॥

(पूर्व सूत्र से नित्य प्राप्त रु आदेश का इस सूत्र से विकल्प किया है) ऋग्विषय में छव् प्रत्याहार के परे पदान्त नकार को रु आदेश हो विकल्प करके । जैसे तस्मिँस्त्वा दधाति । तस्मिंस्त्वा दधाति । जिस पक्ष में रु नहीं होता वहां नकार बना रहता है । तस्मिन्-त्वा दधाति। इत्यादि ॥ ३२८ ॥

कानां सत्वम्) इस वार्त्तिक से जिह्वामूलीय और विसर्जनीय को बंध सकार हो हो जाता है कांस्कान् ॥ ३३२ ॥

इतीरितस्सन्धिविधिर्महामुनेर्निशम्य सन्धेर्विषयस्सतां मुदे।
सुखेन तच्छास्त्रप्रवृत्तयेनयामयार्य्यया कल्पितयार्य्यभाषया ॥ १ ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीप्रणीतार्य्य-
भाषाविवृतिसहितस्सन्धिविषयस्समाप्तः॥

ओ३म्

सन्धिविषयस्य शुद्धाशुद्धपत्रम् ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
८	१	क+अ	कृ+अ
८	२	अच	अच्
१०	१०	एक १ प्र० वर्।	दो २ प्र० वर्। बल्।
१०	१२	चार ४ प्र० भप्,	पांच ५ प्र० भप्, भरा,
१०	१३	दो २ प्र० बरा, बल्,	एक १ प्र० वर।
१४	५	यज्ञर्मक	यज्ञकर्म
१६	११	अमा३न्।	आमा३न्।
१७	१०	को	की
१८	१	एचं	एचोऽप्रगृह्य०
१८	११	आतु	आयुष्मानेधि
१९	२१	लौत्रि	लौकिक
२७	११	क रण	कारण
२७	१९	बलव न्	बलवान्
३३	१९	यहा	यहां
३८	१६	शब्दों	शब्दों
५२	१५	इमालिये	इसलिये है
६५	४	चकारान्त	चकारान्त
६८	७	समझना	समझना
७२	२१	त्रिष्टु।	त्रिष्टुम्नाम्।
७३	१६	अचग्रहण	अच्ग्रहण
७४	२२	सूणाना	सूणाता
७७	११	भर का	भर् का
७८	२२	हां	यहां
८२	१५	शर्	हरा
९२	२२	२६	१३६
९४	९	सद्	सुट्
९६	२४	सवंदा	सर्वदा
९८	१८	पारस्कर	पारस्कर
९१	११	नन् वे	ननु वे
९७	२१	आमेडित	आम्रेडित

वैदिकयन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक दिये जायगे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा ५) रु० इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जावें (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें ॥

पुस्तक	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अं० १—१४७	४८)	
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण	२८)	
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका		
विना जिल्द की	२)	≠)
" जिल्द की	२॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	-)	)॥
सन्धिविषय	।≠)॥	)॥
नामिक	।≡)॥	)॥
कारकीय	।-)॥	)॥
सामासिक	।≠)॥	)॥
स्त्रैणताद्धित	।≠)	-)
अव्ययार्थ	≠)॥	)॥
सौवर	≠)॥	)॥
आख्यातिक	१॥)	≠)॥
पारिभाषिक	≡)॥	)॥
धातुपाठ	।-)	)॥
गणपाठ	।-)	)॥
उणादिकोष	।≠)	-)
निघण्टु	।≠)	-)॥
	।-)॥	)॥

पुस्तक	मू०	डा०
व्यवहारभानु	≠)	)
भ्रमोच्छेदन	)॥	)
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	)
मेलाचांदापुर	-)	)
आर्योद्देश्यरत्नमाला	-)	)
गोकरुणानिधि	-)	)
स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	)॥	)
वेदविरुद्धमतखण्डन	≠)	)
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)
शास्त्रार्थ फीरोजाबाद	≠)	)
शास्त्रार्थकाशी	-)	)
आर्य्याभिविनय	।)	)
" जिल्द की	।≠)	)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	-)	)
भ्रान्तिनिवारण	-)।	)
पञ्चमहायज्ञविधि	≠)॥	)
" जिल्द की	।-)॥	-)
आर्यसमाज के नियमो-		

वैदिकयन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों का सूचीपत्र
और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें (२) रोक लेने वालों को १०) रु० इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक दिये जायगे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा ५) रु० इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जायेंगे (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें ॥

	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अं० १—१४०	४८)	
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण	३८)	
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका		
बिना जिल्द की	३)	⌀)
" जिल्द की	३॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	⁄)	)॥
सन्धिविषय	।⌀)॥	)॥
नामिक	।⁄)॥	)॥
कारकीय	।⁄)॥	)॥
सामासिक	।⌀)॥	)॥
स्त्रैणताद्धित	१⌀)	⁄)
अव्ययार्थ	⁄)॥	)॥
सौवर	⁄)॥	)॥
आख्यातिक	१॥)	⁄)॥
पारिभाषिक	[illegible]	[illegible]

व्यवहारभानु
भ्रमोच्छेदन
अनुभ्रमोच्छेदन
मेलाचांदापुर
आर्योद्देश्यरत्नमाला
गोकरुणानिधि
स्वामीनारायणमतखण्डन
गुजराती
वेदविरुद्धमतखण्डन
समन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश
शास्त्रार्थ फीरोजाबाद
शास्त्रार्थकाशी
आर्याभिविनय
" जिल्द की

जो मनुष्य सातद्वीपयुक्तपृथिवी तीनलोक अर्थात् नाम लक्ष और स्थान चार [illegible] पाङ्ग वेद अर्थात् एकसौ एक व्याख्यानयुक्त यजुः । हजार व्याख्यानयुक्त साम । इक्कीस व्याख्यानयुक्त ऋक् । नव व्याख्यानयुक्त अथर्ववेद (वाकोवाक्य) [illegible] दर्शनशास्त्र (इतिहासः, पुराणम्) साम गोपथ ब्राह्मण और (वैद्यक) [illegible] चरक सुश्रुत आदि इस बहुत बड़े शब्द के विषय को देखे सुने बिना कोई [illegible] कि अदृष्टशब्दों का निर्देश कहीं नहीं किया यह उस का कहना केवल [illegible] अज्ञान का भरा हुआ है क्योंकि जो साधारणता से प्रयोगविषय देखने में [illegible] आता वह विद्वानों के देखने में विस्तीर्ण शब्दविषय में आता है ॥

२०५-अथ शब्दानुशासनम् ॥ १ ॥ म० १ । १ । १ ॥

यहां (अथ) शब्द अधिकार के लिये है शब्दों का अनुशासन अर्थात् [illegible] की शिक्षा का अधिकार किया जाता है यहां से आगे क्रम से शब्दों का [illegible] दिखाया जायगा ॥ १ ॥

(प्र०) शब्द का लक्षण क्या है ।

२०६-(उ०) श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाऽभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः ॥ २ ॥ महा० १ । १ ॥

जिस का कानों से सुन कर बोध हो जो बुद्धि से निरन्तर ग्रहण करने [illegible] [illegible]य उच्चारण से प्रकाशित और आकाश जिस के रहने का स्थान है वह श[illegible] [illegible]जाता है ॥ २ ॥

(प्र०) शब्द के के भेद हैं ।

(उ०) चार अर्थात् नाम, आख्यात, उपसर्ग, और निपात, इन चारों में [illegible] [illegible]म शब्दों का व्याख्यान इस ग्रन्थ में किया जायगा ॥ ३ ॥

(प्र०) नामवाचक कौन शब्द हैं ।

२०७-(उ०) सत्त्वप्रधानानि नामानि ॥ ३ ॥ निरु० ॥ १ । १ ॥

जो द्रव्यता से सत्त्वप्रधान अर्थात् द्रव्य और द्रव्यों के वाचक शब्द हैं उन [illegible] [illegible]म कहते हैं । जैसे । गौः । अश्वः । पुरुषः । इत्यादि ।

(प्र०) व्याकरण में कैसे २ शब्दों का विधान किया जाता है ।

२०८-(उ०) समर्थः पदविधिः ॥ २ ॥ अ[illegible] १ ॥

पदविधि समर्थ के आश्रित होता है । समर्थ [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इस प्रकार से सातों विभक्तियों के अलग २ रूप जान लेना चाहिये ॥ १०॥

४१५–द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने ॥ ११ ॥ अ० १।४।२२

दो पदार्थों के कहने की इच्छा हो तो द्विवचन और एक पदार्थ के कहने की इच्छा हो तो एकवचन हो जैसे (पुरुष–सु) (पुरुष–औ) ॥ ११ ॥

४१६–बहुषु बहुवचनम् ॥ १२ ॥ अ० १ । ४ । २१ ॥

बहुत पदार्थों की कहने की इच्छा हो तो बहुवचन हो जैसे पुरुष–सु पुरुष–औ । पुरुष–जस् । इन में से प्रथम । पुरुष–सुँ । इस का साधन जैसे ॥१२॥

४१७–उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ १३ ॥ अ० १ । ३ । २॥

जो उपदेश में अनुनासिक अच् है वह इत्संज्ञक हो उपदेश यहां उस को कहते हैं कि जो धातु सूत्र और गणों में पाणिन्यादि मुनियों का प्रत्यक्ष कथन है इस सूत्र से (सुँ) इस के उकार की इत्संज्ञा होकर ॥ १३ ॥

४१८–तस्य लोपः ॥ १४ ॥ अ० १ । ३ । ९ ॥

जिस की इत्संज्ञा हुई हो उस का लोप हो । लोप होकर । पुरुष–स् । इस अवस्था में ॥ १४ ॥

४१९–सुप्तिङन्तम्पदम् ॥ १५ ॥ अ० १ । ४ । १४ ॥

जिस के अन्त में सुप् वा तिङ् हो उस समुदाय की पदसंज्ञा हो । इस से सु और तिप् आदि प्रत्ययान्त शब्दों की पदसंज्ञा होती है । तिङन्तों की व्याख्या आख्यातिक में लिखी जायगी । पुरुष–स् । इस की पदसंज्ञा होकर पश्चात् ॥ १५ ॥

४२०–ससजुषोरुः ॥ १६ ॥ अ० ८ । २ । ६६ ॥

सकारान्त पद और सजुष् शब्द के स् और ष् को रु आदेश हो ।(पुरुष–रुँ) इस अवस्था में रु के उकार की*इत्संज्ञा होकर लोप हो ...

४२१–विरामोऽवसानम् ॥ १७

वक्ता की उक्ति का जो विराम अर्थात् ठह[र]... जैसे । (पुरुष–र्) इस से रेफ की अवसानसंज्ञा ...

४२२–खरवसानयोर्विसर्जनीयः ॥

* [इत्संज्ञा] (उपदेशेऽजनुनासिक इत्) [लोपः] तस्य लोप

आदेश हो । जैसे । पुरुषान् । अब तृतीया विभक्ति का एकवचन । पुरुष-टा
इस अवस्था में ॥ २४ ॥

४२९—टाङसिङसामिनात्स्याः ॥ २५ ॥ अ० ७ । १ । १२

अदन्त अङ्ग से परे टा, ङसि, ङस्, के स्थान में क्रम से इन, आत्, स्य, ये तीनों
आदेश हों । जैसे । पुरुष-इन । अब पूर्व पर को *गुण एकादेश होकर पुरुषेन ॥ २५ ॥

४३०—अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ॥ २६ ॥ अ० ८ । ४ । २ ॥

एक पद में अट् प्रत्याहार, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् इन के व्यवधान में
भी जो रेफ और षकार से परे नकार हो तो उस के स्थान में णकारादेश हो ।
जैसे । पुरुषेण । तृतीया विभक्ति का द्विवचन (पुरुष-भ्याम्) इस अवस्था में ॥ २६ ॥

४३१—यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम् ॥ २७ ॥ अ० १ । ४ । १३ ॥

जिस धातु वा प्रातिपदिक से परे प्रत्यय विधान करें उस को तथा वह धातु
वा प्रातिपदिक जिस के आदि में हो उस को भी अङ्गसंज्ञा होती है । सु, आदि
सब प्रत्ययों के परे पूर्व को अङ्गसंज्ञा होती है ॥ २७ ॥

४३२—सुपि च ॥ २८ ॥ अ० ७ । ३ । १०२ ॥

जो यञादि सुप् परे हो तो अकारान्त अङ्ग को दीर्घ हो । जैसे । पुरुषाभ्या
म् । तृतीया का बहुवचन (पुरुष-भिस्) इस अवस्था में ॥ २८ ॥

४३३—अतोभिस ऐस् ॥ २९ ॥ अ० ७ । १ । ९ ॥

जो अकारान्त अङ्ग से परे भिस् हो तो उस को ऐस् आदेश हो । अनेकाल्
होने से भिस् मात्र के स्थान में ऐस् हुआ । अब † वृद्धि, रुत्व, और विसर्जनी-
य होकर । पुरुषैः ॥ २९ ॥

४३४—बहुलं छन्दसि ॥ ३० ॥ अ० ७ । १ । १० ॥

परन्तु वैदिकप्रयोगों में भिस् के स्थान में ऐस् आदेश बहुल करके होता है ।
जैसे । देवेभिः । देवैः । कर्णेभिः । कर्णैः । इत्यादि । सब अकारान्त शब्दों में
दो २ रूप होंगे । चतुर्थी का एक वचन (पुरुष-ङे) इस अवस्था में ॥ ३० ॥

४३५—ङेर्यः ॥ ३१ ॥ अ० ७ । १ । १३ ॥

जो अकारान्त अङ्ग से परे ङे हो तो उस के स्थान में (य) आदेश हो । जैसे ।
पुरुष य । यहां भी ‡ दीर्घ होकर पुरुषाय । द्विवचन (पु
पुरुषाभ्याम् ।
बहुवचन पुरुषभ्यस् ॥ ३१ ॥

* (गुणः) आद्गुणः अ० ॥ १०८ ॥
† (वृद्धिः) - (वृद्धिरेचि, सत्वसूत्रे०)
‡ (दीर्घः) — (सुपि च)

आदेश हो। जैसे। पुरुषान्। अब तृतीया विभक्ति का एकवचन। पुरुष-टा। इस अवस्था में ॥ २४ ॥

४२९–टाङसिङसामिनात्स्याः ॥ २५॥ अ० ७।१।१२॥

अदन्त अङ्ग से परे टा, ङसि, ङस्, के स्थान में क्रम से इन, आत्, स्य, ये तीन आदेश हों। जैसे। पुरुष-इन। अब पूर्व पर को *गुण एकादेश होकर पुरुषेन। २५।

४३०–अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ॥ २६ ॥ अ०८।४।२॥

एक पद में अट् प्रत्याहार, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् इन के व्यवधान में भी जो रेफ और षकार से परे नकार हो तो उस के स्थान में णकारादेश हो। जैसे। पुरुषेण। तृतीया विभक्ति का द्विवचन (पुरुष-भ्याम्) इस अवस्था में। २६।

४३१–यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम्॥२७॥अ०१।४।१३॥

जिस धातु वा प्रातिपदिक से परे प्रत्यय विधान करें उस को तथा वह धातु वा प्रातिपदिक जिस के आदि में हो उस को भी अङ्गसंज्ञा होती है। सु, आदि सब प्रत्ययों के परे पूर्व को अङ्गसंज्ञा होती है ॥ २७ ॥

४३२–सुपि च ॥ २८ ॥ अ० ७ । ३ । १०२॥

जो यञादि सुप् परे हो तो अकारान्त अङ्ग को दीर्घ हो। जैसे। पुरुषाभ्याम्। तृतीया का बहुवचन (पुरुष-भिस्) इस अवस्था में ॥ २८ ॥

४३३–अतोभिस ऐस् ॥ २९ ॥ अ० ७ । १ । ९ ॥

जो अकारान्त अङ्ग से परे भिस् हो तो उस को ऐस् आदेश हो। अनेकाल् होने से भिस् मात्र के स्थान में ऐस् हुआ। अब † वृद्धि, रुत्व, और विसर्जनीय होकर। पुरुषैः ॥ २९ ॥

४३४–बहुलं छन्दसि ॥ ३० ॥ अ० ७ । १ । १० ॥

परन्तु वैदिकप्रयोगों में भिस् के स्थान में ऐस् आदेश बहुल करके होता है। जैसे। देवेभिः। देवैः। कर्णेभिः। कर्णैः। इत्यादि। सब अकारान्त शब्दों में दो २ रूप होंगे। चतुर्थी का एक वचन (पुरुष-ङे) इस अवस्था में ॥ ३० ॥

४३५–ङेर्यः ॥ ३१ ॥ अ०७ । १ । १३ ॥

जो अकारान्त अङ्ग से परे ङे हो तो उस के स्थान में (य) आदेश हो। जैसे। पुरुष य। यहां भी ‡ दीर्घ होकर पुरुषाय। द्विवचन (पुरुष-भ्याम्) पुरुषाभ्याम्। बहुवचन पुरुषभ्यस् ॥ ३१ ॥

* (गुणः) आद्गुणः सन्धि० ॥ १०८ ॥
† (वृद्धिः) -(वृद्धिरेचि, सन्धि०)
‡ (दीर्घः)—(सुपि च)

४४६—नपुंसकाच्च ॥ ४२ ॥ अ० ७।१।१९ ॥

जो अकारान्त नपुंसकलिङ्ग से परे (१) औङ् हो तो उस के स्थान में शी आदेश हो। जैसे। धन-शी। श् की इत्संज्ञा हो के। धन-ई। इस अवस्था में (आद्गुणः) इस सूत्र से गुण होके। धने। धन-जस् ॥ ४२ ॥

४४७—जश्शसोः शिः ॥ ४३ ॥ अ० ७।१।२० ॥

जो अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रातिपदिक से परे जस् और शस् विभक्ति हों तो उन के स्थान में शि आदेश हो। जैसे। धन-शि ॥ ४३ ॥

४४८—शि सर्वनामस्थानम् ॥ ४४ ॥ अ० १।१।४२ ॥

शि सर्वनामस्थान संज्ञक हो। शकार की इत्संज्ञा होके। धन-इ। इस अवस्था में गुण (२) प्राप्त हुआ उस को बाध के ॥ ४४ ॥

४४९—नपुंसकस्य झलचः ॥ ४५ ॥ अ० ७।१।७२ ॥

जो सर्वनामस्थान परे हो तो झलन्त और अजन्त नपुंसकलिङ्ग को नुम् का आगम हो। धन-नुम्-इ। यहां मकार और उकार की इत्संज्ञा होके। धन-नि। ऐसा हुआ इस अवस्था में ॥ ४५ ॥

४५०—सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ ॥ ४६ ॥ अ० ६।४।८ ॥

जो संबुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो तो नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ हो। इस धन शब्द के अन्त को दीर्घ हो के। धनानि। धन-अम्। यहां। अम् विभक्ति का लुक् नहीं होता है, किन्तु उस के स्थान में पूर्ववत् अम् आदेश होके प्रथमा विभक्ति के तुल्य। धनम्। धने। धनानि। तृतीया विभक्ति से लेके सब विभक्तियों में पुरुष शब्द के समान प्रयोग समझना चाहिये। जैसे। धनेन। धनाभ्याम्। धनैः। धनाय। धनाभ्याम्। धनेभ्यः। धनात्। धनाभ्याम्। धनेभ्यः। धनस्य। धनयोः। धनानाम्। धने। धनयोः। धनेषु। संबोधन चेतन ही में घट सकता है इसलिये इस के संबोधन में प्रयोग नहीं बनते। दत्त, दुग्ध, पात्र, फल, बल, जल, सलिल, गृह। इत्यादि नित्यनपुंसकलिङ्गों के भी रूप धन शब्द के समान जानना चाहिये। अकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द कोई भी नहीं है। क्योंकि स्त्रीलिङ्ग में अकारान्त से टाप् वा ङीप् आदि प्रत्यय होजाते हैं, जो अकारान्त धर्म शब्द पुलिंग और नपुंसकलिंग में है। उस के रूप भी पुरुष और धन

---

१ औङ् यह प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के द्विवचन को कहता है।

२ (पुगन्त०) [illegible] ॥

४४०—आदेशप्रत्यययोः ॥ ३६ ॥ अ० ८ । ३ । ५९ ॥

इण्प्रत्याहार और कवर्ग से परे आदेश और प्रत्यय के सकार को मूर्द्ध अर्थात् षकार आदेश हो। जैसे। पुरुषेषु ॥ २६ ॥

४४१—सम्बोधने च ॥ ३७ ॥ अ० २ । ३ । ४७ ॥

(१) सम्बोधन अर्थ में भी प्रथमा विभक्ति हो। प्रातिपदिकार्थ से संबोधन अधिक होने से (२) पूर्व सूत्र से प्रथमा विभक्ति प्राप्त न थी इसलिये यह सूत्र बना॥

४४२—सामन्त्रितम् ॥ ३८ ॥ अ० २ । ३ । ४८ ॥

सम्बोधन में जो प्रथमा तदन्त शब्द स्वरूप आमन्त्रित संज्ञक हो। १८।

४४३—एकवचनं सम्बुद्धिः ॥ ३९ ॥ अ० २ । ३ । ४९ ॥

आमन्त्रित प्रथमा विभक्ति के एक वचन की संबुद्धिसंज्ञा हो। जैसे। पुरुष-स्। उकार की इत्संज्ञा हो के। पुरुष-स्। इस अवस्था में। २८।

४४४—एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः ॥ ४० ॥ अ० ६ । १ । ६९ ॥

जो एङन्त और ह्रस्वान्त प्रातिपदिक से परे संबुद्धि का हल् हो तो उसका लोप हो। संबोधन अर्थ दिखाने के लिये। हे, रे, अङ्ग, भोः, भो, । इत्यादि शब्द भी संबोधन प्रथमान्त शब्द के साथ रहते हैं। जैसे। हे पुरुष। हे पुरुषौ। हे पुरुषाः। वा पुरुष पुरुषौ पुरुषाः (३)। इसीप्रकार, परमेश्वर, शिव, [illegible], घट, पट, ग्रन्थ, वेद, न्याय, धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, व्यवहार, परमार्थ। इत्यादि। अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप जानने चाहिये। ३०।

अथ नियतनपुंसकलिङ्गधनशब्दः ॥

धन शब्द का पूर्ववत् प्रातिपदिकसंज्ञा आदि कार्य होकर। धन-सु। इस अवस्था में।

४४५—अतोऽम् ॥ ४१ ॥ अ० ७ । १ । २४ ॥

अकारान्त नपुंसक से परे सु और, अम्, विभक्ति के स्थान में अम् आदेश हो। इस अम् करने का यही प्रयोजन है कि (४) सु और अम् का लुक प्राप्त है वह न हो। धनम्। धन-औ। ४१।

[illegible]

शब्द के समान जानना चाहिये । जैसे । धर्मः । धर्मौ । धर्माः । धर्मम् । धर्मौ । धर्मान् । धर्मेण । धर्माभ्याम् । धर्मैः । धर्माय । धर्माभ्याम् । धर्मेभ्यः । धर्मात् । धर्माभ्याम् । धर्मेभ्यः । धर्मस्य । धर्मयोः । धर्म्माणाम् । धर्मे । धर्मयोः । धर्मेषु । नपुंसकलिङ्ग में । धर्मम् । धर्मे । धर्माणि । धर्मम् । धर्मे । धर्माणि । इत्यादि ॥ ॥

अथ आकारान्तः सोमपा शब्दः ॥

सोम ओषधियों के रस को कहते हैं उसको जो पीवे वा उस की रचा करे उस का नाम (सोमपा) है यह (सोमपा) शब्द विशेष के अनुसार तीनों लिङ्गों में होता है । जैसे । सोमपाः पण्डितः । सोमपा स्त्री । सोमपं कुलम् । उन में से प्रथम पुल्लिङ्ग जैसे । सोमपा–सु । इत्संज्ञा और विसर्जनीय होके । सोमपाः । सोमपा–औ । वृद्धि एकादेश होके । सोमपौ । सोमपा–जस् । जकार की इत्संज्ञा और लोप तथा सकार को विसर्जनीय और एकादेश होके । सोमपाः । यहां एकवचन और बहुवचन में भेद तभी होगा कि जब इस के साथ विशेषवाची का निर्देश किया जायगा । जैसे । सोमपाः पण्डितः । सोमपाः पण्डिताः । सोमपा–अम् । पूर्वसवर्ण एकादेश होके । सोमपाम् । सोमपौ । पूर्ववत् । सोमपा–शस् । इस अवस्था में ॥ ४६ ॥

४५१–यचि भम् ॥ ४७ ॥ अ० १ । ४ । १८ ॥

यादि अजादि सर्वनामस्थान भिन्न कप् (१) प्रत्ययावधिस्वादि प्रत्यय परे तो पूर्व की भ संज्ञा हो ॥ ४० ॥

४५२–आतोधातोः ॥ ४८ ॥ अ० ६ । ४ । १४० ॥

भ संज्ञक आकारान्त धातु का लोप हो । जो आदेश सामान्य से विधान किया जाता है वह (अलोन्त्यस्य) इस परिभाषा बल से अन्त्य वर्ण के स्थान में समझना चाहिये । सोमपा शब्द में (पा) आकारान्त धातु है इस के अन्त्य आकार का लोप होके । सोमपः । सोमपा । सोमपाभ्याम् । सोमपाभिः । सोमपे । सोमपाभ्याम् । सोमपाभ्यः । सोमपः । सोमपाभ्याम् । सोमपाभ्यः । सोमपः । सोमपोः । सोमपाम् । सोमपि । सोमपोः । सोमपासु । संबोधन में कुछ विशेष नहीं । हे सोमपाः । हे सोमपौ । हे सोमपाः । स्त्रीलिंग में भी सोमपा शब्द के रूप ऐसे ही होते हैं, परन्तु नपुंसकलिंग में भी कुछ विशेषता है । सोमपा–सु । इस अवस्था में ॥ ४८ ॥

४५३–ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥ ४९ ॥ अ० १ । २ । ४७ ॥

(१) [illegible]

जो नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमान अजन्त प्रातिपदिक है उस को ह्रस्वादेश हो जैसे। सोमप-सु। अब सब विभक्तियों में धन शब्द के समान सब कार्य समझना चाहिये। जैसे। सोमपम्। सोमपे। सोमपानि। सोमपम्। सोमपे। सोमपानि। सोमपेन। सोमपाभ्याम्। सोमपैः। सोमपाय। सोमपाभ्याम्। सोमपेभ्यः। सोमपात्। सोमपाभ्याम्। सोमपेभ्यः। सोमपस्य। सोमपयोः। सोमपानाम्। सोमपे। सोमपयोः। सोमपेषु। इसी प्रकार गोजाः, प्रथमजाः। गोपाः। कूपखाः। दधिक्राः। आज्यपाः। कीलालपाः। इत्यादि शब्दों के भी प्रयोग तीनों लिंगों में समझना चाहिये। आकारान्त कन्या, शब्द। कन्या-सु। इस अवस्था में ॥ ४८ ॥

४५४-हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्॥ ५०॥अ० ६।१।६८॥

हलन्त और दीर्घ ङीप् ङीष् ङीन्। टाप् डाप् चाप् ये जिन के अन्त में हों उन से परे जो सु, ति, सि, इन का अपृक्त हल् उस का लोप हो जैसे। कन्या। कन्या-औ। इस अवस्था में ॥ ५० ॥

४५५-औङ आपः ॥ ५१ ॥ अ० ७। १। १८ ॥

जो आबन्त अङ्ग से परे (१) औङ् हो तो उस को शी आदेश हो। शकार की इत्संज्ञा और गुण हो के। कन्ये। कन्या-जस्। जकार की इत्संज्ञा पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश रुत्व विसर्जनीय होके। कन्याः। कन्या-अम्। पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होके। कन्याम्। कन्या-औट्। पूर्ववत्। कन्ये। कन्या-शस्। शकार की इत्संज्ञा। पूर्वसवर्ण दीर्घ रुत्व और विसर्जनीय होके। कन्याः। कन्या-टा इस अवस्था में ॥ ५१ ॥

४५६-आङि चाऽऽपः ॥ ५२ ॥ अ० ७। ३। १०५ ॥

आबन्त अङ्ग से परे टा विभक्ति हो तो उस को एकार हो। जैसे। कन्ये-टा। टकार की इत्संज्ञा होके, कन्ये-आ। इस अवस्था में अय् आदेश होकर। कन्यया। कन्याभ्याम्। कन्याभिः। कन्या-ङे। इस अवस्था में ॥ ५२ ॥

४५७-याडापः ॥ ५३ ॥ अ० ७। ३। ११३ ॥

आबन्त अङ्ग से परे ङित् प्रत्यय को, याट् का आगम हो। जैसे। कन्या-याट्-ङे। टकार ङकार की इत्संज्ञा और लोप तथा इस से वृद्धि एकादेश होके। कन्यायै। कन्याभ्याम्। कन्याभ्यः। कन्यायाः। कन्याभ्याम्। कन्याभ्यः। कन्यायाः। कन्या-ओस्। यहां एकार आदेश, अय्, रुत्व और विसर्जनीय होके। कन्ययोः। कन्या-आम्। (२) कन्यानाम्। कन्या-याट्-ङि। इस अवस्था में ॥ ५३ ॥

१ औङ् यह वचन और विभक्ति के द्विवचन की संज्ञा है।
२ । ह्रस्वनद्यापो नुट्। इस से नुट् होगा।

४५८—ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ॥ ५४ ॥ अ० ७ । ३ । ११६

आबन्त नदीसंज्ञक और नी इन अङ्गों से परे ङि के स्थान में आम् आदेश हो। जैसे। कन्याया—आम्। यहां एकादेश होके। कन्यायाम्। कन्ययोः। कन्यासु। संबोधन में इतना विशेष है कि। कन्या-सु। पूर्ववत् सकार का लोप होके॥

४५९—सम्बुद्धौ च ॥ ५५ ॥ अ० ७ । ३ । १०६ ॥

सम्बुद्धि परे हो तो आबन्त अंग को एकार आदेश हो। जैसे। हे कन्ये। हे कन्याः (१)। इसी प्रकार, प्रजा, जाया, छाया, माया, मेधा, अजा, इत्यादि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के प्रयोग जानना चाहिये, परन्तु जरा शब्द में कुछ विशेष है॥

४६०—जराया जरसन्यतरस्याम् ॥ ५६ ॥ अ० ७।२।१०१॥

अजादि विभक्तियों के परे जरा शब्द को जरस् आदेश हो। विकल्प करके, जरसौ। जरे। जरसः। जराः। इत्यादि ॥ ५६ ॥

॥ इकारान्तनियतपुल्लिङ्ग अग्निशब्द ॥

पूर्ववत् सब कार्य होकर। अग्निः। अग्नि—औ। यहां (२) पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश ईकार होके। अग्नी। अग्नि—जस् इस अवस्था में जकार की इत्संज्ञा होके।

४६१—जसि च ॥ ५७ ॥ अ० ७ । ३ । १०९ ॥

जो जस् प्रत्यय के परे पूर्व ह्रस्वान्त अङ्ग हो तो उस को गुण हो। इ इकार को एकार गुण और एकार को अय् आदेश होकर। अग्नयः ॥ ५७ ॥

४६२—वा०-जसादिषु छन्दसि वा वचनं प्राङ्णौ चङ्युपधायाः ॥ ५८

जस् आदि विभक्तियों में इस प्रकरण में जो कार्य कहे हैं वे वेद में विकल्प करके हों। जैसे। गुण का विकल्प। अग्नयः। (१) अग्न्यः। शतक्रतवः। शतक्रत्वः। पशवे। पश्वे। अग्नि-अम्। यहां अमिपूर्वः। इस सूत्र से पूर्वरूप हो के। अग्निम्। अग्नि—औ। पूर्ववत्। अग्नी। अग्नि—शस्। पूर्वसवर्ण दीर्घ और सकार को नकारादेश हो के अग्नीन्। अग्नि—टा ॥ ५८ ॥

४५८–ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ॥ ५४ ॥ अ० ७ । ३ । ११६

आबन्त नदीसंज्ञक और नी इन अङ्गों से परे ङि के स्थान में आम् आदेश। जैसे । कन्याया—आम् । यहां एकादेश होके । कन्यायाम् । कन्ययोः । कन्यासु संबोधन में इतना विशेष है कि । कन्या-सु। पूर्ववत् सकार का लोप हो के ॥ ५४ ॥

४५९–सम्बुद्धौ च ॥ ५५ ॥ अ० ७ । ३ । १०६ ॥

सम्बुद्धि परे हो तो आबन्त अंग को एकार आदेश हो । जैसे । हे कन्ये ! हे कन्याः (१) । इसी प्रकार, प्रजा, जाया, छाया, माया, मेधा, अजा, इत्यादि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के प्रयोग जानना चाहिये, परन्तु जरा शब्द में कुछ विशेष है ॥ ५५ ॥

४६०–जराया जरसन्यतरस्याम् ॥ ५६ ॥ अ० ७ । २ । १०१ ॥

अजादि विभक्तियों के परे जरा शब्द को जरस् आदेश हो । विकल्प करके, जरा। जरसौ । जरे । जरसः । जराः । इत्यादि ॥ ५६ ॥

इकारान्तनियतपुल्लिङ्ग अग्निशब्द ॥

पूर्ववत् सब कार्य होकर । अग्निः । अग्नि—औ । यहां (२) पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश ईकार होके । अग्नी । अग्नि—जस् इस अवस्था में जकार की इत्संज्ञा हो के।

४६१–जसि च ॥ ५७ ॥ अ० ७ । ३ । १०९ ॥

जो जस् प्रत्यय के परे पूर्व ह्रस्वान्त अङ्ग हो तो उस को गुण हो। इस इकार को एकार गुण और एकार को अय् आदेश होकर । अग्नयः ॥ ५७ ॥

४६२–वा०–जसादिषु छन्दसि वा वचनं प्राङ्णौ चङ्युपधायाः ॥ ५८ ॥

जस् आदि विभक्तियों में इस प्रकरण में जो कार्य कहे हैं वे वेद में विकल्प करके हों । जैसे । गुण का विकल्प । अग्नयः । (२) अग्न्यः । शतक्रतवः । शतक्रत्वः । पश्वे । पशवे । अग्नि—अम् । यहां अमिपूर्वः । इस सूत्र से पूर्वरूप हो के । अग्निम् । अग्नि—औ । पूर्ववत् । अग्नी । अग्नि—शस् । पूर्वसवर्ण दीर्घ और सकार को नकारादेश हो के अग्नीन् । अग्नि—टा ॥ ५८ ॥

४६३ आङो ना स्त्रियाम् ॥ ५९ ॥ अ० ७ । ३ । १२० ॥

जो घिसंज्ञक अङ्ग से परे आङ् अर्थात् टा विभक्ति हो तो उस के स्थान में,

आदेश हो सो ङित्र में न हो। अग्निना। अग्निभ्याम्। अग्निभिः। अग्नि-
५८॥

२६४-शेषो घ्यसखि ॥ ६० ॥ अ० १ । ४ । ७ ॥

शेष अर्थात् जिन की नदी संज्ञा न हो ऐसे जो ह्रस्व इकारान्त उकारान्त हैं उन की घिसंज्ञा हो। इस से अग्नि शब्द की घिसंज्ञा हो के ॥ ६० ॥

२६५-घेर्ङिति ॥ ६१ ॥ अ० ७ । ३ । १११ ॥

प्रत्यय परे हो तो घ्यन्त अङ्ग को गुणादेश हो। उस को अय् आदेश हो के। ने। अग्निभ्याम्। अग्निभ्यः। अग्नि-ङसि। ङकार की इत्संज्ञा और इकार .. होके। अग्ने-अस्। इस अवस्था में ॥ ६१ ॥

२६६-ङसिङसोश्च ॥ ६२ ॥ अ० ६ । १ । १०९ ॥

जो पदान्त एङ् से परे ङस् सम्बन्धी अकार हो तो पूर्व पर के स्थान में एकादेश हो। जैसे। अग्नेः। अग्निभ्याम्। अग्निभ्यः। अग्नेः। अग्नि-ओस् . य् आदेश हो गया। अग्न्योः। अग्नि-आम्। यहां (१) नुट् ... । अग्नीनाम् सिद्ध हुआ। अग्नि-ङि। इस अवस्था में ॥ ६२ ॥

२६७-अच्च घेः ॥ ६३ ॥ अ० ७ । ३ । ११९ ॥

४६९–पतिःसमास एव ॥ ६५ ॥ अ० १ । ४ । ८ ॥

पति शब्द समास ही में घिसंज्ञक हो। इस से समास से अन्यत्र पति शब्द घिसंज्ञा के कार्य नहीं होते। पत्या। पत्ये। पति–ङसि। यहां। पत्यस्। अवस्था में ॥ ६५ ॥

४७०–ख्यत्यात्परस्य ॥ ६६ ॥ अ० ६ । १ । १११ ॥

जो ख्य और त्य इन से परे ङस् सम्बन्धी अकार हो तो उसको पूर्व रूप एक आदेश हो। पत्युः। पति–ङि। ङि को (१) औकार आदेश हो गया। पत्यौ और सखि शब्द में विशेष यह है कि। सखि–सु ॥ ६६ ॥

४७१–अनङ् सौ ॥ ६७ ॥ अ० ७ । १ । ९३ ॥

जो संबुद्धिभिन्न, सु, विभक्ति परे हो तो सखि शब्द को अनङ् आदेश हो अनङ् आदेश के (अ, ङ्,)। इन की इत्संज्ञा और लोप तथा (२) दीर्घ होकर। सखान्–सु। हल् ङ्याब्भ्यो दीर्घात्। इस सूत्र से सु का लोप और ॥ ६७ ॥

४७२–न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥ ६८ ॥ अ० ८ । २ । ७ ॥

प्रातिपदिकान्त पद के नकार का लोप हो इस सूत्र से नकार का लोप होके। सखा, सखि–औ इस अवस्था में ॥ ६८ ॥

४७३–सख्युरसंबुद्धौ ॥ ६९ ॥ अ० ७ । १ । ९२ ॥

असंबुद्धि में जो सखि शब्द उस से परे जो सर्वनामस्थान सो णित् हो। इस से णित् होकर ॥ ६९ ॥

४७४–अचो ञ्णिति ॥ ७० ॥ अ० ७ । २ । ११५ ॥

ञित् और णित् प्रत्यय परे हो तो अजंत अंग को वृद्धि हो। जैसे। सखै–औ। अब ऐकार को आय् आदेश हो के। सखायौ। सखायः। सखायम्। सखायौ। आगे पति शब्द के समान। सखीन्। सख्या। सख्ये। सख्युः। सख्युः। सख्यौ। इत्यादि, पति शब्द का वेद में कुछ विशेष है ॥ ७० ॥

४७५–षष्ठी युक्तश्छन्दसि वा ॥ ७१ ॥ अ० १ । ४ । ९ ॥

षष्ठीयुक्त जो पति शब्द उस को घिसंज्ञा वेद में विकल्प करके हो। जैसे।

[illegible]न्त अंग से परे ङित् विभक्ति को आट् का आगम हो। वेदि—आट्—ङे।
और इसि एकादेश होके। वेद्यै। जिस पक्ष में नदीसंज्ञा न हुई वहां घि-
[illegible] होके। वेदि—ङे। यहां अग्नि शब्द के समान गुण और अय् आदेश होके।
[illegible]। वेदिभ्याम्। वेदिभ्यः। वेदि-आट्-ङसि (ट्, ङ्, इ,) इनको इत्संज्ञा हो
वेद्याः। घिसंज्ञा पक्ष में। वेदेः। वेदिभ्याम्। वेदिभ्यः। वेदि—आट्—ङस्।
[illegible]त्। वेद्याः। वेदेः। वेद्योः। वेदि—आम्। यहां (१) नुट् होके। वेदीनाम्।
[illegible]—ङि। नदीसंज्ञा में। वेदि-आट्—आम्। वेद्याम्। घिसंज्ञा में। वेदौ।
[illegible]ोः। वेदिषु (२) इसी प्रकार श्रुति, स्मृति, बुद्धि, धृति, क्षति, वापि, हानि, रुचि,
[illegible]मि, और धूलि आदि शब्दों का साधुत्व जानना चाहिये ॥ ८० ॥

ईकारान्त पुल्लिङ्ग सेनानी शब्द ॥

सेनानी—सु। उकार का लोप हल् और विसर्जनीय होके। सेनानीः
[illegible]नानी—औ।

४८५–एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ॥ ८१ ॥ अ० ६।४।८२ ॥

जिस से धातु का अवयव पूर्व संयोग नहीं ऐसा जो इवर्ण है तदन्त अनेकाच् अङ्ग
को अच् परे हो तो यणादेश हो। सेनान्यौ। सेनान्यः। सेनान्यम्। सेनान्यौ। सेनान्यः।
सेनान्या। सेनानीभ्याम्। सेनानीभिः। सेनान्ये। सेनानीभ्याम्। सेनानीभ्यः।
सेनान्यः। सेनानीभ्याम्। सेनानीभ्यः। सेनान्यः। सेनान्योः। सेनान्याम्। सेनानी–ङि।
यहां नी से परे ङि को (आम्) (३) आदेश होके सेनान्याम्। सेनान्योः। सेनानीषु।
संबोधन में यहां कुछ विशेष नहीं है। हे सेनानीः। हे सेनान्यौ। हे सेनान्यः। इसी
प्रकार, ग्रामणी, अग्रणी, यवनी, सुधी, इत्यादि। शब्दों के रूप भी जानना।
[illegible]रन्तु ग्रामणी शब्द में यह विशेष है कि ॥ ८१ ॥

४८६–श्रीग्रामण्योश्छन्दसि ॥ ८२ ॥ अ० ७। १। ५६ ॥

वेद में श्री और ग्रामणी शब्द से परे आम् हो तो उस को नुट् आगम होता
है। जैसे [illegible] ग्रामणीनाम्। और सुधी शब्द में यह विशेष है कि।

---

१ नदीसंज्ञा [illegible]
२ वेदिः। वेदी। [illegible]
[illegible]दिभ्यः। वेद्याः। वेदेः [illegible]
३ (आम्) [illegible]
४ कौमुदी[illegible] [illegible]

भलादि विभक्तियों के परे अनन्त भसंज्ञक अंगके अकार का लोप हो। इस से सकारोत्तर अकार का लोप हो गया । जैसे । अस्थन्—आ । स्, न्, टा के आकार में मिल के । अस्था । अस्थ्ने । अस्थ्नः । अस्थ्नः । अस्थ्नोः । अस्थ्नाम् । स्थ न्—ङि ॥ ७५ ॥

४८०—विभाषा ङिश्योः ॥ ७६ ॥ अ० ६ । ४ । १३६

ङि और शि विभक्ति के परे भ संज्ञक अनन्त अङ्ग के अकार का लोप विकल्प करके हो । अस्थ्नि । अस्थनि । अस्थ्नोः । झलादि विभक्तियों के परे वारि शब्द समान जानना चाहिये । अस्थि आदि शब्दों की व्यवस्था कुछ वेद में विशेष है ।

४८१—छन्दस्यपि दृश्यते ॥ ७७ ॥ अ० ७ । १ । ७६ ॥

वेद में भी अस्थि आदि शब्दों में उदात्त अनङ् आदेश देखने में आता है यहां प्रयोजन यह है कि । अनङ् आदेश जिस नियम से कहा है । उस से अन्य भी देखने में आता है । जैसे । इन्द्रो दधीचो अस्थभिः । भद्रं पश्येमाक्षभिः । दध्ना जुहोति । इत्यादि ॥ ७७ ॥

४८२—ई च द्विवचने ॥ ७८ ॥ अ० ७ । १ । ७७ ॥

द्विवचन विभक्ति के परे अस्थि आदि शब्दों को उदात्त ईकार आदेश वेद में होता है । अक्षी ते इन्द्र पिङ्गले । अक्षीभ्याम् । दधीभ्याम् । सक्थीभ्याम् । अक्षीभ्यां सेनास्थिभ्याम् । (१) इत्यादि ॥ ७८ ॥

इकारान्तनियतस्त्रीलिङ्गवेदिशब्द ॥

वेदिः । वेदी । वेदयः । वेदिम् । वेदी । वेदीः । वेद्या । वेदिभ्याम् । वेदिभिः । वेदि–ङे । इस अवस्था में ॥

४८३—ङिति ह्रस्वश्च ॥ ७९ ॥ अ० १ । ४ । ६ ॥

स्त्रीलिङ्ग के वाचक ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द और जिन के स्थान में इयङ् उवङ् होते हैं ऐसे जो दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त शब्द हैं उन की नदी संज्ञा विकल्प करके हो । दूसरे पक्ष में ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्दों की घि संज्ञा हो जाती है । इस कारण वेदिशब्द की (नदी) और (घि) दोनों संज्ञा होती हैं । प्रथम नदीसंज्ञा के पक्ष में ॥ ७९ ॥

सुधी–सु । सुधीः । (१) सुधी–औ ॥ ८२ ॥

१८७–न भूसुधियोः ॥ ८३ ॥ अ० ६ । ४ । ८५ ॥

अजादि विभक्ति के परे भू और सुधी शब्द को यणादेश न हो । यणादेश के निषेध होने से इयङ् उवङ् आदेश होते हैं । सुधियौ । सुधियः । सुधियम् । सुधियौ । सुधियः । सुधिया । सुधिये । सुधियः । सुधियः । सुधियाम् । सुधियि । सुधियोः । सुधीषु । संबोधन में यहां भी कुछ विशेष नहीं । भू शब्द का उदाहरण आगे आवेगा । सुधी और भू शब्द का वेद में यह विशेष है कि ॥ ८३ ॥

१८८–छन्दस्युभयथा ॥ ८४ ॥ अ० ६ । ४ । ८६ ॥

वैदिक प्रयोग विषय में अजादि विभक्तियों के परे भू और सुधी शब्द को यणादेश विकल्प करके हो । सुध्यौ । सुधियौ । सुध्यः । सुधियः । इत्यादि । सेनानी आदि शब्द यदि स्त्रीलिंग के विशेषण हों तो इन के प्रयोगों में कुछ विशेष नहीं है और नपुंसकलिंग हों तो इन के प्रयोग वारि शब्द के समान होते हैं क्योंकि नपुंसक लिंग में उक्त शब्द ह्रस्व इकारान्त हो जाते हैं । अब जो शब्द नियत स्त्रीलिंग ईकारान्त हैं उन के विषय में लिखते हैं ॥ ८४ ॥

अथ नियत ईकारान्त स्त्री लिंग कुमारी शब्द ॥

कुमारी–सु । यहां उकार की इत्संज्ञा और लोप तथा ङ्यन्त से परे सु (२) का लोप हो कर । कुमारी । कुमारी–औ ॥ ८४ ॥

४८९–दीर्घाज्जसि च ॥ ८५ ॥ अ० ६ । १ । १०४ ॥

दीर्घ से परे जस् या इजादि विभक्ति हों तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश न हो । यहां कुमारी दीर्घ ईकारान्त शब्द है इस से पूर्वसवर्ण दीर्घ का निषेध होकर यणादेश होता है । जैसे । कुमार्यौ । कुमार्यः । दीर्घ ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों का जस् विभक्ति के परे वेद में यह विशेष है ॥ ८५ ॥

४९०–वा छन्दसि ॥ ८६ ॥ अ० ६ । १ । १०५ ॥

जो दीर्घ से परे जस् हो तो उस को पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश विकल्प करके हो । जैसे । कुमारीः । कुमार्यः । वधूः । वध्वः । इत्यादि । कुमारीम् । कुमार्यौ । कुमारीः । कुमार्या । कुमारीभ्याम् । कुमारीभिः । कुमारी–ङे । यहां ॥ ८६ ॥

४९१–यूस्त्र्याख्यौ नदी ॥ ८७ ॥ अ० १ । ४ । ३ ॥

जो स्त्रीलिंग के वाचक ईकारान्त शब्द हैं उन को नदी संज्ञा हो । (२)

---

१ सुष्ठु ध्यायतीति सुधी [illegible] , सुष्ठु ध्यायंति वा सुष्ठु [illegible] [illegible] ।
२ हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् ।
३ [illegible] (आङ् नदी) इस से आडागम हो जाता ।

जैसे । धात्वन्त । परिभूः । उणादि प्रत्ययान्त । कर्पूः । नियतस्त्रीवाचक प्रत्ययान्त ब्रह्मबन्धूः इत्यादि । उन में से धात्वन्त (परिभू) शब्द के प्रयोग पुंलिङ्ग में दिखलाते हैं । परिभू–सु । परिभूः । परिभू–औ । यहां । (१) उवङ् आदेश होके परिभुवौ । परिभुवः । परिभुवम् । परिभुवौ । परिभुवः । परिभुवा । परिभूभ्याम् । परिभूभिः । परिभुवे । परिभूभ्याम् । परिभूभ्यः । परिभुवः । परिभूभ्याम् । परिभूभ्यः । परिभुवः । परिभुवोः । परिभुवाम् । परिभुवि । परिभुवोः । परिभूषु । यहां संबोधन में कुछ विशेष नहीं । वर्षाभू, दृन्भू, कारभू, पुनर्भू, इन चार शब्दों के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं । वर्षाभूः । वर्षाभू–औ ॥

५००—वर्षाभ्वश्च ॥ ९६ ॥ अ० ६ । ४ । ८४ ॥

अजादि सुप् विभक्तियों के परे वर्षाभू शब्द के ऊकार को यणादेश हो । वर्षाभ्वौ । वर्षाभ्वः । वर्षाभ्वम् । वर्षाभ्वौ । वर्षाभ्वः । वर्षाभ्वा । वर्षाभूभ्याम् । वर्षाभूभिः । वर्षाभ्वे । वर्षाभूभ्याम् । वर्षाभूभ्यः । वर्षाभ्वः । वर्षाभूभ्याम् । वर्षाभूभ्यः । वर्षाभ्वः । वर्षाभ्वोः । वर्षाभ्वाम् । वर्षाभ्वि । वर्षाभ्वोः । वर्षाभूषु । हे वर्षाभूः । हे वर्षाभ्वौ । हे वर्षाभ्वः । दृन्भूः । दृन्भू—औ । इस अवस्था में ॥ ८६ ॥

५०१—वा०—दृन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः ॥ ९७ ॥

अजादि सुप् विभक्तियों के परे दृन्, कार, पुनर् ये हैं पूर्व जिस के ऐसे भू शब्द के ऊकार को यणादेश हो । जैसे । दृन्भ्वौ । दृन्भ्वः । करभूः । करभ्वौ । करभ्वः । पुनर्भूः । पुनर्भ्वौ । पुनर्भ्वः । इत्यादि । वेद में पुनर्भू आदि शब्दों के प्रयोगों में उवङ् और यण् (२) दोनों आदेश होते हैं । जैसे । पुनर्भुवौ, पुनर्भ्वौ, पुनर्भुवः, पुनर्भ्वः, पुनर्भुवम्, पुनर्भ्वम्, इत्यादि, उक्त ऊकारान्त शब्द विशेष्य लिङ्ग के आश्रय से तीनों लिङ्गों में हो सकते हैं, ऊकारान्त अनियत स्त्रीवाची को स्त्रीलिङ्ग में कुछ विशेष कार्य्य नहीं होते हैं, यदि वे नपुंसकलिङ्ग में हों तो उन को (३) ह्रस्वादेश होकर वे प्रयोग विषय में वसु शब्द के समान हो जाते हैं और उणादि प्रत्ययान्त, कर्पू, इत्यादिकों में यदि कोई पुंलिङ्ग (४) समझा जाय तो उस के प्रयोग (परिभू) शब्द के समान समझना चाहिये । और नियत स्त्रीलिङ्ग ऊङ् प्रत्ययान्त, ब्रह्मबन्धूः । ब्रह्मबन्धू–औ, यहां यण् होके, ब्रह्मबन्ध्वौ, ब्रह्मबन्ध्वः, ब्रह्मबन्धू —अम् यहां (५) पूर्वरूप एकादेश होके, ब्रह्मबन्धूम्,

---

१ (उवङ्) अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ।
२ (यण् । उवङ्) (छन्दस्युभयथा) ।
३ (ह्रस्व) ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ।
४ (कर्पू) यह शब्द को भाषा में पुंलिङ्ग और कहीं कहीं में स्त्रीलिङ्ग है ।
५ (पूर्वरूप) अमि पूर्वः ।

५१७—उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ॥११३॥ अ०७।१।७०॥

जो सर्वनामस्थान परे हो तो धातुरहित उगित् प्रातिपदिक और अञ्चु को नुम् का आगम हो। प्रानुच्—सु इस अवस्था में (हल्ङ्या०) इस से लोप होकर ॥११३॥

५१८—संयोगान्तस्य लोपः ॥११४॥ अ० ८। २। २३॥

संयोगान्त पद के अन्त्य वर्ण का लोप हो। इस से चकार का लोप होके ॥११४॥

५१९—क्विन्प्रत्ययस्य कुः ॥ ११५ ॥ अ०८। २। ६२॥

क्विन् प्रत्यय जिस से कहा हो उस को पदान्त में कवर्गादेश (१) हो। इस से नकार को अनुनासिक (ङ) आदेश होजाता है। जैसे। प्राङ्। प्रत्यङ्। इत्यादि। प्रानुच्—औ। यहां नकार (२) को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण होके। प्राञ्चौ। प्राञ्चः। प्राञ्चम्। प्राञ्चौ। प्र—अच्—अस्। इत्यादि सर्वनामस्थान भिन्न विभक्तियों के परे भसंज्ञा होकर ॥ ११५ ॥

५२०—अचः ॥ ११६ ॥ अ० ६। ४। १३८॥

भसंज्ञक अञ्चु धातु के अकार का लोप हो। जैसे। प्र—च्—अस्। यहां ॥११६॥

५२१—चौ ॥ ११७ ॥ अ० ६। ३। १३८॥

चु शब्द मात्र अञ्चु (३) धातु परे हो तो पूर्व को दीर्घ हो। इस से प्र शब्द को दीर्घ हो के। प्राचः। प्राचा। प्राच्—भ्याम्। यहां (४) चकार को (क्) और ककार को ग् होके। प्राग्भ्याम्। प्राग्भिः। प्राचे। प्राग्भ्याम्। प्राग्भ्यः। प्राचः। प्राग्भ्याम्। प्राग्भ्यः। प्राचः। प्राचोः। प्राचाम्। प्राचि। प्राचोः। प्राक्षु। इसी प्रकार। प्रत्यङ्। प्रत्यञ्चौ। प्रत्यञ्चः। प्रत्यञ्चम्। प्रत्यञ्चौ। प्रतीचः। यहां (चौ) इस से दीर्घादेश होता है। इत्यादि सब चकारान्त शब्दों के प्रयोग समझने चाहिये। परन्तु उक्त शब्दों में से। (उदच्) और (क्रुञ्च्) (५) के रूप सर्वनामस्थान भिन्न अजादि विभक्तियों में कुछ विशेष होते हैं ॥ ११७ ॥

५२२—उद ईत् ॥ ११८ ॥ अ० ६। ४। १३९॥

उद् उपसर्ग से परे भसंज्ञक अच् धातु के अकार को ईकार आदेश हो। उदीचः। उदीचा। उदीचे। उदीचः। उदीचः। उदीचोः। उदीचाम्। उदीचि। उदीचोः।

१ क्विनः कुरिति [illegible] । क्विन्प्रत्ययस्य [illegible] पदान्ते कुत्वमित्यर्थः। [illegible] जो पद पर है। यहां [illegible] का यही प्रयोजन है कि जिस [illegible] धातु से क्विन् प्रत्यय का विधान [illegible] उस के पदान्त में कवर्गादेश हो जाय।
२ (न—अनुस्वार) नश्चापदान्तस्य झलि। [illegible] (अनुस्वार—परसवर्ण) [illegible]
३ (चु) [illegible] अञ्चु धातु का [illegible]
४ (च्—क्) चोः कुः। [illegible] (क्—ग्) [illegible]
५ (क्रुञ्च्) यहां [illegible]

उदक्षु । ऋत्विग् दधृक्० । इस सूत्र में निपातन होने से क्रुञ्च् शब्द को उपधा के नकार का लोप नहीं होता । क्रुङ् । सर्वनामस्थान में क्रुञ्च् शब्द प्राञ्च् शब्द के तुल्य है । क्रुञ्चौ । क्रुञ्चः । क्रुञ्चम् । क्रुञ्चौ । क्रुञ्च्-शस् । यहां भी कुछ विशेष नहीं । क्रुञ्चः । क्रुञ्चा । क्रुञ्च्-भ्याम् । यहां च को (क्) और अनुस्वार को परसवर्ण ङकार हो के ककार का लोप (१) हो जाता है । क्रुङ्भ्याम् । क्रुङ्भिः । क्रुञ्चे । क्रुङ्भ्याम् । क्रुङ्भ्यः । क्रुञ्चः । क्रुङ्भ्याम् । क्रुङ्भ्यः । क्रुञ्चः । क्रुञ्चोः । क्रुञ्चाम् । क्रुञ्चि । क्रुञ्चोः । क्रुङ्क्षु ॥

छकारान्त स्त्रीलिङ्ग वा पुल्लिङ्ग प्राछ् (२) शब्द ॥

प्राछ्-सु । यहां ॥ ११८ ॥

५२३-व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ॥ ११९ ॥ अ० ८ । २ । ३६ ॥

झल् परे वा पदान्त हो तो व्रश्च, भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, राज, भ्राज, इन) तथा छकारान्त, और शकारान्त शब्दों को षकारादेश हो । जैसे । प्राष्-सु । हां (१) ष के स्थान में ड् होके । प्राड्-सु । सु का लोप और ड् के स्थान में विकल्प) चर् हो के । प्राट् । प्राड् । दो प्रयोग होते हैं । प्राछ्—औ । यहां दीर्घ से पर ४) छकार को तुगागम हो कर तकार को चकार हो जाता है । प्राच्छौ । च्छः । प्राच्छम् । प्राच्छौ । प्राच्छः । प्राच्छा । प्राछ्-भ्याम् । यहां पूर्ववत् छकार ा (ष्) और ष के स्थान में ड् होके । प्राड्भ्याम् । प्राड्भिः । प्राच्छे । ाड्भ्याम् । प्राड्भ्यः । प्राच्छः । प्राड्भ्याम् । प्राड्भ्यः । प्राच्छः । प्राड्भ्याम् । ाड्भ्यः । प्राच्छः । प्राच्छोः । प्राच्छाम् । प्राच्छि । प्राच्छोः । प्राड्—सु । यहां (१) ड्कार को टकार होके । प्राट्सु । डकार से परे सकार को धुट् (१) का आगम ो विकल्प करके होता है ऐसे प्राट्त्सु प्राट्सु सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं है ॥

जकारान्त पुल्लिङ्ग ऋत्विज् (७) शब्द ॥

ऋत्विज्—सु । यह शब्द क्विन् प्रत्ययान्त है इस कारण इस को पदान्त में (८) कवर्गादेश हो जाता है । इस कवर्ग को विकल्प करके चर् और दूसरे पक्ष में जश् होके । ऋत्विक् । ऋत्विग् । ऋत्विजौ । ऋत्विजः । ऋत्विजम् । ऋत्विजौ । ऋत्विजः ।

ऋत्विजा । ऋत्विग्भ्याम् । ऋत्विग्भिः । ऋत्विजे । ऋत्विग्भ्याम् । ऋत्विग्भ्यः । ऋत्विजः । ऋत्विग्भ्याम् । ऋत्विग्भ्यः । ऋत्विजः । ऋत्विजोः । ऋत्विजाम् । ऋत्विजि । ऋत्विजोः । ऋत्विज्-सु । यहां कुत्व होने से जकार को ग आदेश हो कर (ग्) (१) को (क्) और सु के (स्) को (ष्) आदेश हो जाता है । जैसे । ऋत्विक्षु । सम्बोधन में यहां भी कुछ विशेष नहीं है । इसी प्रकार (वणिज्) भुरिज् । (२) उशिज् । वणिज् । इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी समझने चाहियें । परन्तु कोई २ जकारान्त शब्दों के प्रयोगों में कुछ विशेष भी कार्य्य होता है । जैसे परिव्राज् । इस शब्द के पदान्त में सर्वत्र जकार को षकारादेश होता है । षकार के स्थान में (ट् ड्) पूर्ववत् होके । परिव्राट् । परिव्राड् । परिव्राड्भ्याम् । परिव्राड्भिः । परिव्राजे । परिव्राड्भ्याम् । परिव्राड्भ्यः । इत्यादि पूर्ववत् जानो । परिव्राट्सु । परिव्राट्त्सु । यहां भी सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं । इसी प्रकार । विश्वभ्राज् । सम्राज् । विश्वराज् । विराज् । यवभृज् । इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी जानने चाहिये । परन्तु युज् । (३) और अवयाज् इन दो शब्दों में कुछ विशेष है । युज्-सु ॥ ११८ ॥

५२४-युजेरसमासे ॥ १२० ॥ अ० ७ । १ । ७१ ॥

सर्वनामस्थान विभक्तियों के परे युज् शब्द को नुम् का आगम हो (जैसे) युन्ज्-सु । यहां अन्यकार्य्य प्राङ् शब्द के तुल्य समझना चाहिये । युङ् । युञ्जौ । युञ्जः । युञ्जम् । युञ्जौ । युजः । युजा । युग्भ्याम् । युग्भिः । युजे । युग्भ्याम् । युग्भ्यः । युजः । युग्भ्याम् । युग्भ्यः । युजः । युजोः । युजाम् । युजि । युजोः । युक्षु । इन उक्त शब्दों में जहां कहीं सम्बोधन की योग्यता हो वहां प्रथमा विभक्ति के तुल्य ही सम्बोधन में भी प्रयोग समझने चाहिये ॥ अवयाज्-सु । (४) इस को सब विभक्तियों में पदसंज्ञा होती है ॥ १२० ॥

५२५-वा०-श्वेतवाहादीनां डस् पदस्य ॥१२१॥ अ० ३।२।७१॥

श्वेतवाहादि प्रातिपदिकों को पदान्त में डस् आदेश हो । श्वेतवाहादिकों में अवयाज् शब्द भी है प्रथमा विभक्ति के एक वचन में इस के याज् भाग को ड हो कर (अवयस्) यहां ॥ १२१ ॥

५२६-अत्वसन्तस्य चाधातोः ॥१२२॥ अ० ६ । ४ । १४ ॥

जो सम्बुद्धि भिन्न सुविभक्ति परे हो तो धातु रहित अत्वन्त और असन्त शब्द की उपधा को दीर्घादेश हो । अवयाः । अवयाजौ । अवयाजः । अवयाजम् ।

---

१ (ग्—क्) चोः कुः । सन्धि० ११४ । (स्—ष्) आदेशप्रत्यययोः ।
२ (भुरिज्) इत्यादि शब्दों का (चोः कुः) सन्धि० १८८ ।
३ (युज्) यह युक्त होने वाले का नाम है ।
४ यहां अवपूर्वक यज धातु से (श्वेतवह) इस सूत्र से विण् प्रत्यय होता है ।

राजभिः । राज्ञे । राजभ्याम् । राजभ्यः । राज्ञः । राजभ्याम् । राजभ्यः । राज्ञः । राज्ञोः । राज्ञाम् । राजन्-ङि । यहां (विभाषा ङिश्योः) इस से अकार का लोप विकल्प से होकर दो प्रयोग बनजाते हैं । राज्ञि । राजनि । संबोधनमें । हे राजन् । हे राजानौ । हे राजानः । इसी प्रकार । [illegible] । तक्षन् । प्लीहन् । क्लेदन् । [illegible] । मूर्धन् । मज्जन् । [illegible] । ध्यामन् । सुत्रामन् । वरिमन् । गरिमन् । दलिमन् । प्रथिमन् । म्रदिमन् । महिमन् । सुदामन् । सुधीवन् । घृतपावन् । भूरिदावन् । इत्यादि शब्दों के रूप भी समझने चाहिये । और जिन नकारान्त शब्दों में कुछ विशेष कार्य होता है उन को यहां लिखते हैं ॥

पुल्लिङ्ग नकारान्त आत्मन् शब्द ॥

आत्मा । आत्मानौ । आत्मानः । आत्मानम् । आत्मानौ । इस शब्द में इतना विशेष है कि । शस् । टा , ङे , ङसि , ङस् , ओस् , आम् , ङि , ओस् । इन विभक्तियों में भसंज्ञा के होने से ॥ १२४ ॥

५२९-न संयोगाद्वमन्तात् ॥ १२५ ॥ अ० ६ । ४ । १३७ ॥

जो वकारान्त और मकारान्त संयोग से परे अन् हो तो तदन्त भसंज्ञक अकार का लोप न हो । जैसे । आत्मनः । आत्मना । आत्मने । आत्मनः । आत्मनः । आत्मनोः । आत्मनाम् । आत्मनि । आत्मनोः । इसी प्रकार । सुधर्मन् । [illegible] अश्मन् । [illegible] । परिज्मन् । यज्वन् । सुपर्वन् । अथर्वन् । मातरिश्वन् । इत्यादि शब्दों के रूप भी जानने चाहिये । परन्तु नकारान्त पुल्लिङ्ग अर्यमन् और पूषन् शब्द के रूपों में इतना विशेष है । कि जहां कहीं समास होकर ये दोनों नपुंसकलिङ्ग हो जावें वहां प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में ॥ १२५ ॥

५३०-इन्हन्पूषार्यम्णां शौ ॥ १२६ ॥ अ० ६ । ४ । १२ ॥

इन् हन् पूषन् और अर्यमन् ये जिन के अन्त में हों उन अङ्गों की उपधा को शि विभक्ति के परे दीर्घ हो जावे । यह सूत्र नियमार्थ है अर्थात् जो सर्वत्र सर्वनामस्थान में नकारान्त की उपधा को दीर्घादेश प्राप्त था सो न हो किन्तु शि के परे हो हो । जैसे । बहुपूषाणि । बह्वर्यमाणि ॥ १२६ ॥

पठन्। पठन्तौ। पठन्तः। पठन्तम्। पठन्तौ। पठतः। आगे मरुत् शब्द के समान प्रयोग जानने चाहिये। इसी प्रकार। पचत्। कुर्वत्। गच्छत्। पृषत्। हसत्। इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी समझने चाहिये। महत् शब्द में कुछ विशेष है। जैसे। महत्-सु यहां पूर्ववत् नुम् का आगम हो के। महन्त्-सु। इस अवस्था में। १२३।

५२८—सान्तमहतः संयोगस्य ॥ १२४ ॥ अ० ६ । ४ । १० ॥

जो संबुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान परे हो तो सकारान्तसंयोगी नकार को औ महत् शब्द की उपधा को दीर्घ हो। यहां भी पूर्ववत् तकार का लोप और दी हो के। महान्। महान्तौ। महान्तः। महान्तम्। महान्तौ। आगे के प्रयो महत् शब्द के समान जानने चाहिये। मतुप् प्रत्ययान्त तकारान्त शब्दों को असन्त शब्दों के समान संबुद्धि भिन्न सु विभक्ति के परे (१) दीर्घ होता है। गोमान्। यवमान्। धनवान्। अश्ववान्। विद्यावान्। इत्यादि। आगे सब विभक्तियों में रूप पठत् शब्द के समान समझना चाहिये। गोमता। गोमद्भ्याम्। इत्यादि। संबोधन में। हे गोमन्। हे यवमन्। हे धनवन्। इत्यादि।

दकारान्तस्त्रीलिङ्ग सम्पद् (२) शब्द ॥

सम्पद्-सु। यहां भी (हल्ङ्या०) इस सूत्र से लोप और विकल्प से चर् होकर दो प्रयोग होते हैं। सम्पद्। सम्पत्। सम्पदौ। सम्पदः। इत्यादि। इसी प्रकार। शरद्। भसद्। दृषद्। विपद्। आपद्। प्रतिपद्। स्त्रीलिङ्ग और वेदविद्। काष्ठभिद्। नखच्छिद् इत्यादि दकारान्त शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में समान समझने चाहिये॥ जैसे शरत्। शरद्। शरदौ। शरदः। इत्यादि। और वेदवित्। वेदविद्। वेदविदौ। वेदविदः। इत्यादिवत्॥

नकारान्त पुल्लिङ्ग राजन् शब्द ॥

राजन्-सु। यहां (३) दीर्घ और (४) नलोप होकर। राजा। राजानौ। राजानः। राजानम्। राजानौ। राजन्-अस्। यहां (५) अल्लोप होकर। राजन्-अस्। नकार को (६) ञकारादेश होकर। राज्ञः। राज्ञा। राजन्-भ्याम्। यहां भी [illegible] का लोप होके। राजभ्याम्। अब यहां नलोप के पश्चात् (सुपि च) इस ५२ दीर्घादेश क्यों न हो। सो यह नलोप के असिद्ध (७) होने से नहीं होता

जो सम्बुद्धि [illegible] चाहातो।
[illegible]ादि ऐश्वर्य का द्योतक है।
ो उपधा को दीर्घ। [illegible] चाहचुको।

१ (नु—क) [illegible] प्रातिपदिकान्तस्य।
२ (सुरिज्) इत्यादि शब्दों से।
३ (नुम्) यह युक्त होने वाले का मे १११।
४ यहां पदपूर्वक धन धातु से (चांयक[illegible]) [illegible] १११

५४१–अष्टाभ्य औश् ॥ १३७ ॥ अ० ७ । १ । २१ ॥

जिसको आकारादेश किया हो ऐसे अष्टन् शब्द से परे जस् और शस् विभक्ति को औकारादेश हो । वृद्धि एकादेश होकर । अष्टौ । अष्टौ । द्वितीय पक्षमें ॥ १३७ ॥

५४२–ष्णान्ता षट् ॥ १३८ ॥ अ० १ । १ । २४ ॥

षकारान्त और नकारान्त संख्यावाची शब्द षट्संज्ञक हों । षट्संज्ञा होकर ॥ १३८ ॥

५४३–षड्भ्यो लुक् ॥ १३९ ॥ अ० ७ । १ । २२ ॥

षट् संज्ञक अर्थात् षकारान्त और नकारान्त संख्यावाची शब्दों से परे जस् और शस् विभक्ति का लुक् हो । षट्तिष्ठन्ति । षट्पश्य । षड्भिः । अष्टाभिः । षड्भ्यः । अष्टाभ्यः । षड्भ्यः । अष्टाभ्यः । अष्टन्-आम् । इस अवस्था में ॥ १३९ ॥

५४४–षट्चतुर्भ्यश्च ॥ १४० ॥ अ० ७ । १ । ५५ ॥

षट् संज्ञक और चतुर् शब्द से परे आम् विभक्ति को नुट् का आगम हो । नुट् होकर । अष्टन्–आम् । इस अवस्था में ॥ १४० ॥

५४५–नोपधायाः ॥ १४१ ॥ अ० ६ । ४ । ७ ॥

नुट्सहित आम् विभक्ति परे हो तो नान्तसंज्ञक की उपधा को दीर्घ हो जैसे । अष्टान्-आम् । नलोप होकर । अष्टानाम् । षट्सु । अष्टासु । पञ्च । पञ्च । पञ्चभिः । पञ्चभ्यः । पञ्चभ्यः । पञ्चानाम् । पञ्चसु । इसी प्रकार । सप्तन् । नवन् । दशन् । इत्यादि । षट् संज्ञक शब्दों के प्रयोग समझने चाहिये ॥ अब नकारान्तों में प्रतिदिवन् शब्द में कुछ विशेष है । प्रतिदिवा । प्रतिदिवानौ । प्रतिदिवानः । प्रतिदिवानम् । प्रतिदिवानौ । प्रतिदिवन्–शस् । यहां (अल्लोपोऽनः) इस से अवस्था में अकार का लोप होके ॥ १४१ ॥

५४६–हलि च ॥ १४२ ॥ अ० ८ । २ । ७७ ॥

५४७—पथिमथ्यृभुक्षामात् ॥ १४३ ॥ अ० ७ । १ । ८५

सु विभक्ति के परे पथिन् । मथिन् । ऋभुक्षिन् इन शब्दों को आकारादेश। यहां नकार के स्थान में आकारादेश होके । पथि-आ-सु । इस अवस्था में ॥

५४८—इतोऽत्सर्वनामस्थाने ॥ १४४ ॥ अ० ७ । १ । ८६ ।

सर्वनामस्थानविभक्तियों के परे पथिन् आदि शब्दों के इकार को अकारादेश हो । पथ् अ आ—सु । इस अवस्था में ॥ १४४ ॥

५४९—थो न्थः ॥ १४५ ॥ अ० ७ । १ । ८७ ॥

पथिन् और मथिन् शब्द के थकार को सर्वनामस्थान विभक्तियों के परे न्थ आदेश हो । इस से न्थ आदेश होकर। पन्थ अ आ-सु । यहां अकार और आकार को दीर्घ एकादेश होके । पन्थाः । पथिन्- औ । यहां इकार को अकार होकर। पन्थानौ । पन्थानः । पन्थानम् । पन्थानौ । पथिन्-शस् । १४५ ।

५५०—भस्य टेर्लोपः ॥ १४६ ॥ अ० ७ । १ । ८८ ॥

भ संज्ञक पथिन् आदि शब्द की टि अर्थात् इन्भाग का लोप हो । जैसे पथ्-अस् । पथः । पथा । पथिभ्याम् । पथिभिः । पथे । पथिभ्याम् । पथिभ्यः पथः । पथिभ्याम् । पथिभ्यः । पथः । पथोः । पथाम् । पथि । पथोः । पथिषु । इसी प्रकार मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्द के रूप भी समझने चाहिये । इतीकन्ताः ।

अथ पकारान्त अनियतलिङ्ग सुप्शब्द ॥

सुप्-सु । यहां (हल्ङ्याब्०) इस सूत्र सेसकार का लोप होके सुप् । सुब् । सुप्-औ । सुपौ । सुपः । सुपम् । सुपौ । सुपः । सुपा । भ्याम् आदिझलादि विभक्ति में पकार को (१) बकार होजाता है । सुब्भ्याम् । सुब्भिः । सुपे । सुब्भ्याम् सुब्भ्यः । सुपः । सुब्भ्याम् । सुब्भ्यः । सुपः । सुपोः । सुपाम् । सुपि । सुपोः सुप्सु । इसी प्रकार । तिप् । मिप् । कप् । शप् । आदि शब्दोंके प्रयोग भी समझना चाहिये । परन्तु अप् शब्द में कुछ विशेष है ॥

पकारान्त नियतस्त्रीलिङ्गबहुवचनान्त अप् शब्द ॥

अप् शब्द से सातों विभक्तियों के बहुवचन ही आते हैं । अप्-जस् । यहां (२) दीर्घ हो के । आपः । अप्-शस् । यहां कुछ विशेष नहीं । अपः । अप्-भिस्

॥ १४६ ॥

१ (ग—
२ (अरिम्) [illegible] अष्टा० ... सन्धि० १८८ ।
३ (युज्) यह युज [illegible]
४ यहां अवपूर्वक यज [illegible]

५५१—अपो भि ॥ १४७॥ अ० ७ । ४ । ४८ ॥

भकारादि प्रत्यय के परे अप् शब्द के अन्त को तकारादेश हो । तकार के स्थान में दकार हो कर । अद्भिः । अद्भ्यः । अद्भ्यः । अपाम् । अप्सु ॥

भकारान्त नियतस्त्रीलिङ्ग ककुभ् शब्द ॥

ककुभ्—सु । यहां सु के सकार का लोप होके भकार के स्थान में विकल्प कर के झलों को चर् होते हैं जैसे । ककुब् । ककुप् । ककुभौ । ककुभः । ककुभम् । ककुभौ । ककुभः । ककुभा । ककुब्भ्याम् । ककुब्भिः । ककुभे । ककुब्भ्याम् । ककुब्भ्यः । ककुभः । ककुब्भ्याम् । ककुब्भ्यः । ककुभः । ककुभोः । ककुभाम् । ककुभि । ककुभोः । ककुप्सु ॥ इसीप्रकार त्रिष्टुभ् । अनुष्टुभ् आदिशब्दों के प्रयोग समझने चाहिये ॥१४७॥

रेफान्त नियत स्त्रीलिङ्ग गिर् शब्द ॥

गिर्—सु । यहां भी सकार का लोप होकर ॥

५५२—र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ॥ १४८॥ अ० ८ । २ । ७६ ॥

जो पदान्तमें रेफ वकारान्त धातु की उपधा इक् उस को दीर्घ हो । गीः। गिरौ । गिरः । गिरम् । गिरौ । गिरः । गिरा । गीर्भ्याम् । गीर्भिः । गिरे । गीर्भ्याम् । गीर्भ्यः । गिरः । गीर्भ्याम् । गीर्भ्यः । गिरः । गिरोः । गिराम् । गिरि । गिरोः । गिर्—सु । यहां खर् प्रत्याहार के परे र के स्थान में (२) विसर्जनीय पाते हैं इसलिये यह उत्तर सूत्र नियमार्थ है ॥ १४८ ॥

५५३—रोः सुपि ॥ १४९ ॥ अ० ८ । ३ । १६ ॥

सुप् अर्थात् सप्तमी बहुवचन के परे रेफ के स्थान में विसर्जनीय हों तो रु के रेफ ही को हों ॥ इस से (गिर्) इसके रेफ को विसर्जनीय न हुए । उपधा को दीर्घ और (३) सकार को मूर्धन्यादेश होके । गीर्षु ॥ इसी प्रकार धुर्। पुर्। तुर् । भुर् । झुर् । तुर् । इत्यादि शब्दों के प्रयोग समझने चाहिये । परन्तु रेफान्त शब्दों में चतुर् शब्द के प्रयोग विशेष होते हैं । इस शब्द से बहुवचन विभक्ति ही आती हैं । और तीनों लिंगों में इसका प्रयोग किया जाता है । चतुर्—जस् ॥ १४९ ॥

१ (ककुभ्) यह दिशा का नाम है । (२—खरवसानयो०) (३—आदेशप्रत्यययोः) इस सूत्र से... (चर्—विकल्प का बदाने ।

५५४–चतुरनडुहोरामुदात्तः ॥ १५० ॥ अ० ७ । १ । ९८॥

जो सर्वनामस्थान विभक्ति परे होतो चतुर् और अनडुह्शब्द को आम् का आगम और यह उदात्त भी हो। आम् आगम उसे परे होकर। चतु-आम्‌र्-जस्। यणादेश विसर्जनीय और रुत्वादि कार्य्य होकर। चत्वारः। चतुर्-शस् चतुरः। पुल्लिङ्ग में ऐसे प्रयोग होते हैं। नपुंसकलिङ्ग में जस् और शस् विभक्ति के स्थान में शि आदेश हो जाता है। चत्वारि। चत्वारि। स्त्रीलिङ्ग में त्रि और चतुर् शब्द को तिसृ और चतसृ आदेश हो जाते हैं। यह सब व्यवस्था ऋकारान्त विषय में कह चुके हैं। चतुर्भिः। चतुर्भ्यः। चतुर्भ्यः। चतुर्—आम्। यहां आम् विभक्ति को नुट् (१) का आगम होकर ॥ १५० ॥

५५५–रषाभ्यां नो णः समानपदे॥ १५१ ॥ अ० ८। ४। १।

एकपद में रेफ षकार से परे नकार को णकारादेश हो। इस से णकार और उसको द्वित्व (२) हो जाता है। चतुर्णाम्। चतुर्षु। उक्त त्रि और चतुर् शब्द किसी शब्द के साथ बहुव्रीहि समास में हों तो सब वचनों में होते हैं। जैसे प्रियचत्वाः। प्रियचत्वारौ। प्रियचत्वारः। प्रियचत्वारम्। प्रियचत्वारौ। प्रियचतुरः प्रियचतुरा। प्रियचतुर्भ्याम्। प्रियचतुर्भिः। प्रियचतुरे। प्रियचतुर्भ्याम्। प्रियचतुर्भ्यः प्रियचतुरः। प्रियचतुर्भ्याम्। प्रियचतुर्भ्यः। प्रियचतुरः। प्रियचतुरोः। प्रियचतुराम्। प्रियचतुरि। प्रियचतुरोः। प्रियचतुर्षु। संबुद्धि के परे (अम् संबुद्धौ) इस सूत्र से अम् का आगम होकर। हे प्रियचत्वाः। हे प्रियचत्वारौ। हे प्रियचत्वारः। त्रिशब्द के प्रयोग इकारान्त में नहीं लिखे संख्यावाची के सम्बन्ध से यहां लिखते हैं ॥१५१॥

इकारान्त संख्यावाची नियत बहुवचनान्त त्रिशब्द ॥

त्रि—जस्। बहुवचन में (जसि च) इस से गुण होके (त्रयः) नपुंसकलिङ्ग [जस्] और शस् विभक्ति को शि आदेश, नुम्‌का आगम और दीर्घ होके। त्रीणि [त्री]णि। त्रिभिः। त्रिभ्यः। त्रिभ्यः। त्रि—आम्। आम् विभक्ति के परे नुट् का [आ]गम होके। त्रि—नाम्। यहां ॥

५५६–त्रेस्त्रयः ॥ १५२ ॥ अ० ७ । १ । ५३ ॥

नुट्‌सहित आम् विभक्ति परे होतो त्रि शब्द को त्रय आदेश हो। त्रयाणाम्। १५२ ॥

(१–षट्) षट्‌चतुर्भ्यश्च।
(२ अचो रहाभ्यां द्वे। सन्धि० ११० ॥

वकारान्त नियतस्त्रीलिङ्ग (१) दिव् शब्द ॥

दिव्–सु यहां ॥

५५७–दिव औत् ॥ १५३ ॥ अ० ७ । १ । ८४ ॥

सुविभक्ति के परे दिव् शब्द को औकारादेश हो । इस से वकार के स्थान में औ हो कर दि–औ–स, यणादेश होके । द्यौः । दिवौ । दिवः । दिवम् । दिवौ । दिवः । दिवा । दिव्–भ्याम् ॥ १५३ ॥

५५८–दिव उत् ॥ १५४ ॥ अ० ६ । १ । १३० ॥

पदान्त में दिव् शब्द के वकार को उत् आदेश हो । वकार को उकार और इ को यणादेश हो कर । द्युभ्याम् । द्युभिः । दिवे । द्युभ्याम् । द्युभ्यः । दिवः । द्युभ्याम् । द्युभ्यः । दिवः । दिवोः । दिवाम् । दिवि । दिवोः । द्युषु ॥ १५४ ॥

शकारान्त स्त्रीलिङ्ग (२) दिश् शब्द ॥

दिश्–सु । पदान्त में (१) कुत्व होकर । दिक् । दिग् । दिशौ । दिशः । दिशम् । दिशौ । दिशः । दिशा । दिग्भ्याम् । दिग्भिः । दिशे । दिग्भ्याम् । दिग्भ्यः । दिशः । दिग्भ्याम् । दिग्भ्यः । दिशः । दिशोः । दिशाम् । दिशि । दिशोः दिक्–सु । यहां भी प्रत्यय के सकार को मूर्द्धन्य षकार होकर । दिक्षु । इसी प्रकार विश् । लिश् । एतादृश् । दृश् । कीदृश् । ईदृश् । सदृश् । तादृश् । यादृश् । एतादृश् । त्यादृश् । इत्यादि शब्दों के प्रयोग समझने चाहिये । वेद में विशेष यह है कि ॥

५५९–दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि ॥ १५५ ॥ अ० ७ । १ । ८३ ॥

वेद में दृगन्त स्ववस् और स्वतवस् शब्दों को सु विभक्ति के परे नुम् का आगम हो । जैसे । ईदृङ् । कीदृङ् । यादृङ् । तादृङ् । सदृङ् । इत्यादि स्ववस् और स्वतवस् इन दोनों के प्रयोग सकारान्तों में देखलेना । परन्तु इन तादृशान्त शब्दों में यदि कोई शब्द नपुंसकलिङ्ग में भी आवे तो उस के प्रयोग इस प्रकार होंगे ॥

शकारान्त नपुंसकलिङ्ग सदृश् शब्द ॥

सदृक् । सदृग् । सदृशी । सदृंशि । फिर भी । सदृक् । सदृग् । सदृशी । सदृंशि सदृशा । इत्यादि पूर्ववत् ॥ १५५ ॥

---

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

सकारान्त नियत पुल्लिङ्ग चन्द्रमस् शब्द ॥

चन्द्रमस्-सु । यहां (१) दीर्घ होकर । चन्द्रमाः । चन्द्रमसौ । चन्द्रमसः । [चन्द्र]-
मसम् । चन्द्रमसौ । चन्द्रमसः । चन्द्रमसा । चन्द्रमस्-भ्याम् । यहां (२) सकार
और स को उत् आदेश होकर । चन्द्रमोभ्याम् । चन्द्रमोभिः । चन्द्रमसे । चन्द्रमो-
भ्याम् । चन्द्रमोभ्यः । चन्द्रमसः । चन्द्रमोभ्याम् । चन्द्रमोभ्यः । चन्द्रमसः । चन्द्रमसोः ।
चन्द्रमसाम् । चन्द्रमसि । चन्द्रमसोः । चन्द्रमस्सु । चन्द्रमःसु । इसीप्रकार । जातवे-
दस् । विश्वयशस् । द्रविणोदस् । विश्ववेदस् । विश्वभोजस् । अङ्गिरस् । नोधस् ।
उरोधस् । पयोधस् । वेधस् । नृचक्षस् । इत्यादि पुल्लिङ्ग शब्दों के प्रयोग समझने
चाहिये। पूर्व जितने शब्द लिखे हैं वे सब असुन् प्रत्ययान्त हैं । असुन् प्रत्ययान्त
पुल्लिङ्ग शब्दों में विशेष यह है कि ॥

सकारान्त पुल्लिङ्ग उशनस् शब्द ॥

उशनस्-सु । यहां अन्त्य को (३) अनङ् आदेश अङ्मात्र की इत्संज्ञा और
एकादेश होकर । उशनन् सु । यहां (४) नान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ और [ह]-
ल्ङ्यादि का लोप होके । उशना । और संबुद्धि में हे उशनन् । हे (५) उशन् । हे उशनः ।
हे उशनसौ । हे उशनसः । अन्य सब प्रयोग चन्द्रमस् शब्द के समान जानो । इसीके स-
मान । अनेहस् । पुरुदंशस् । इन दोनों के भी प्रयोग जानने चाहिये । परन्तु सं-
बुद्धि में जो उशनस् शब्द के तीन प्रयोग लिखे हैं । वैसे इन दोनों के नहीं होंगे
क्योंकि उशनस् शब्द को संबुद्धि में भी विकल्प करके अनङादेश और नलोप
कहा है । इनदोनों को नहीं । सकारान्त शब्द बहुत प्रकार के होते हैं उन
में असुन् प्रत्ययान्तपुल्लिङ्ग शब्दों को इसरीति से जानना चाहिये ॥

अथ सकारान्त पुल्लिङ्ग विद्वस् शब्द ॥

विद्वस्-सु । यहां (६) नुम् का आगम हो के । विद्वन्-स्-सु । इस अवस्था में
(७) दीर्घ, हल्ङ्या० और संयोगान्त लोप होकर । विद्वान् । विद्वांसौ । विद्वांसः ।
[हे विद्वन्] । विद्वांसौ । विद्वस्-शस् । यहां ॥

असुन् प्रत्ययान्त दो स्वरवाले शब्द प्रायः नपुंसक लिङ्ग में आते हैं । इनमें
ना भेद है कि । पयस्-सु । सु लोप हो कर पयः । पयस्-औ । यहां औ के स्था
में (१) शी होकर । पयसी । पयस्-जस् । यहां भी जस् के स्थान में (२) शि और
का आगम होकर । पयांसि । फिर भी । पयः । पयसी । पयांसि । अन्य प्रयोग,
न्द्रमस् शब्द के समान समझने चाहिये । इसी प्रकार । मनस् । भूयस् । पाथस्
वचस् । अम्भस् । एनस् । इत्यादि शब्दों के प्रयोग विचारने योग्य हैं । स्ववस्
स्वतवस् । इन दो सकारान्त शब्दों का वेद विषय में सु विभक्ति के परे नुम् (३)
का आगम हो जाता है जैसे स्ववान् । स्वतवान् ॥ १५० ॥

५६२-वा० स्ववःस्वतवसोर्मास उषसश्च तइष्यते ॥१५८॥ अ० ७ । ४ । ४८ ॥

भकारादि प्रत्यय परे हों तो वैदिकप्रयोग विषय में स्ववस् । स्वतवस् । मास्
उषस् । इन शब्दों को तकारादेश हो । जैसे । स्ववद्भिः । स्ववद्भ्यः । स्वतवद्भिः ।
स्वतवद्भ्यः । माद्भिः । उषद्भिः । इत्यादि ॥ एक प्रकार के सकारान्त शब्द इस्
उस् प्रत्ययान्त होते हैं । जैसे । वपुस् । यजुस् । अरुस् । धनुस् । आयुस् । ज्योति-
स् । अर्चिस् । शोचिस् । बर्हिस् । हविस् । सर्पिस् । इत्यादि सकारान्त शब्दों में
कोई विशेष सूत्र नहीं घटते । और इन शब्दों के अन्त्य औपदेशिक सकार (४)
को पीछे मूर्द्धन्यादेश हो जाता है । ये शब्द केवल नपुंसकलिङ्ग में ही आते हैं प-
रन्तु लिङ्गानुशासन की रीति से अर्चिस् और छदिस् इन शब्दों के प्रयोग स्त्री
लिङ्ग में भी होते हैं ॥ १५८ ॥

सकारान्त नपुंसकलिङ्ग यजुस् शब्द ॥

यजुस्-सु । यहां पयस् शब्दके समान सब कार्य होकर । यजुः । यजुषी । यजूं-
षि । फिरभी । यजुः । यजुषी । यजूंषि । यजुषः । यजुषा । यजुस्-भ्याम् । यहां (५)
सकार को रु होके अन्यकार्यों की प्राप्ति न होने से रेफ ऊपर चढ़ जाता है । यजु-
र्भ्याम् । यजुर्भिः । यजुषे । यजुर्भ्याम् । यजुर्भ्यः । यजुषः । यजुर्भ्याम् । यजुर्भ्यः ।
यजुषः । यजुषोः । यजुषाम् । यजुषि । यजुषोः । यजुष्षु । यजुःषु । यथा इसन्त ।
ज्योतिः । ज्योतिषी । ज्योतींषि । फिर भी । ज्योतिः । ज्योतिषी । ज्योतींषि ।

१ (औ—शी) नपुंसकाच्च ।
२ (जस्—शि) जश्शसोः शिः । (नुम्) उगिदचां सर्वनामस्थाने॰ ।
३ (नुम्) दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि ॥
४ (स—मूर्द्धन्य—ष) आदेशप्रत्यययोः ॥
५ (स—रु) ससजुषो रुः ।

ज्योतिषा । ज्योतिर्भ्याम् । ज्योतिर्भिः । ज्योतिषे । ज्योतिर्भ्याम् । ज्योतिर्भ्यः । ज्योतिषः । ज्योतिर्भ्याम् । ज्योतिर्भ्यः । ज्योतिषः । ज्योतिषोः । ज्योतिषाम् । ज्योतिषि । ज्योतिषोः । ज्योतिष्षु । ज्योतिःषु । स्त्रीलिङ्ग में इतना भेद है कि । छदिः । छदिषी । छदिषः । फिर भी । छदिः । छदिषी । छदिषः । आगे यजुस् और ज्योतिस् शब्द के समान जानो । इति सकारान्तः ॥

षकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रावृष् शब्द ॥

प्रावृष्-सु । यहां (१) षकार को डकार और विकल्पसे चर् हो कर । प्रावृट् । प्रावृड् । प्रावृषौ । प्रावृषः । प्रावृषम् । प्रावृषौ । प्रावृषः । प्रावृषा । प्रावृड्भ्याम् । प्रावृड्भिः । प्रावृषे । प्रावृड्भ्याम् । प्रावृड्भ्यः । प्रावृषः । प्रावृषोः । प्रावृषाम् । प्रावृषि । प्रावृषोः । प्रावृट्त्सु । प्रावृट्सु । इसी प्रकार । विप्रुष् । त्विष् । रुष् । इत्यादि शब्दों के प्रयोग जानने और ब्रह्मद्विष् आदि पुल्लिङ्ग शब्दों के प्रयोग भी प्रावृष् शब्दके समान समझने चाहिये । परन्तु । आशिष् । शब्द में कुछ विशेष है । आशिष्-सु । यहां धातु की उपधा के इक् को दीर्घ होकर । आशीः । आशिषौ । आशिषः । आशिषम् । आशिषौ । आशिषः । आशिषा (२) आशीर्भ्याम् । आशीर्भिः । आशिषे । आशीर्भ्याम् । आशीर्भ्यः । आशिषः । आशीर्भ्याम् ।

संख्यावाची बहुवचनान्त षष् शब्द ॥

इस से बहुवचन विभक्ति ही आती है । षष्-जस् । षष्-शस् । यहां (३) जस् और शस् का लुक् होकर । षट् २ । षड्भिः । षड्भ्यः । षड्भ्यः । षष्-आम् । यहां (४) नुट् का आगम हो कर । षष्-नाम् । षकार को ड् होके षड्नाम् । यहां (५) अनाम् इस प्रतिषेध से ष्टुत्वनिषेध न हुआ किन्तु टवर्ग डकार से परे तवर्ग नकार को णकार और डकार को परसवर्ण हो कर । षण्णाम् । षट्त्सु । षट्सु । इति षान्ताः ॥

अथ हकारान्त पुल्लिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग गोदुह् शब्द ॥

गोदुह्-सु ।

---

१ [illegible]
२ [illegible]
३ [illegible]
४ [illegible]
५ [illegible]

असुन् प्रत्ययान्त दो स्वरवाले शब्द प्रायः नपुंसक लिङ्ग में आते हैं। इनमें इतना भेद है कि। पयस्-सु। सु लोप होकर पयः। पयस्-औ। यहां औ के स्थान में (१) शी होकर। पयसी। पयस्-जस्। यहां भी जस् के स्थान में (२) शि और नुम् का आगम होकर। पयांसि। फिर भी। पयः। पयसी। पयांसि। अन्य प्रयोग, चन्द्रमस् शब्द के समान समझने चाहिये। इसी प्रकार। मनस्। भूयस्। पाथस्। वचस्। अम्भस्। एनस्। इत्यादि शब्दों के प्रयोग विचारने योग्य हैं। स्ववस्। स्वतवस्। इन दो सकारान्त शब्दों को वेद विषय में सु विभक्ति के परे नुम् (३) का आगम हो जाता है जैसे स्ववान्। स्वतवान्॥ १५७॥

५६२-वा० स्ववःस्वतवसोर्मास उषसश्च तइष्यते॥१५८॥

अ० ७। ४। ४८॥

भकारादि प्रत्यय परे हों तो वैदिकप्रयोग विषय में स्ववस्। स्वतवस्। मास्। उषस्। इन शब्दों को तकारादेश हो। जैसे। स्ववद्भिः। स्ववद्भ्यः। स्वतवद्भिः। स्वतवद्भ्यः। माद्भिः। उषद्भिः। इत्यादि॥ एक प्रकार के सकारान्त शब्द इस् उस् प्रत्ययान्त होते हैं। जैसे। वपुस्। यजुस्। अरुस्। धनुस्। आयुस्। ज्योतिस्। अर्चिस्। शोचिस्। बर्हिस्। हविस्। सर्पिस्। इत्यादि सकारान्त शब्दों में कोई विशेष सूत्र नहीं घटते। और इन शब्दों के अन्त्य औपदेशिक सकार (४) को पीछे मूर्द्धन्यादेश हो जाता है। ये शब्द केवल नपुंसकलिङ्ग में ही आते हैं परन्तु लिङ्गानुशासन की रीति से अर्चिस् और छदिस् इन शब्दों के प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में भी होते हैं॥ १५८॥

सकारान्त नपुंसकलिङ्ग यजुस् शब्द॥

यजुस्-सु। यहां पयस् शब्द के समान सब कार्य होकर। यजुः। यजुषी। यजूंषि। फिरभी। यजुः। यजुषी। यजूंषि। यजुषः। यजुषा। यजुस्-भ्याम्। यहां (५) [illegible] को रु होके अन्यकार्यों की प्राप्ति न होने से रेफ ऊपर चढ़ जाता है। यजुर्भ्याम्। यजुर्भिः। यजुषे। यजुर्भ्याम्। यजुर्भ्यः। यजुषः। यजुर्भ्याम्। यजुर्भ्यः। [illegible]। यजुषोः। यजुषाम्। यजुषि। यजुषोः। यजुष्षु। यजुःषु। यथा इसन्त। [illegible]। ज्योतिषी। ज्योतींषि। फिर भी। ज्योतिः। ज्योतिषी। ज्योतींषि।

१ (औ—शी) नपुंसकाच्च।
२ (जस्—शि) जश्शसोः शिः। (नुम्) उगिदचां सर्वनामस्थाने०।
३ (नुम्) स्ववस्स्वतवसां छन्दसि॥
४ (स्—मूर्द्धन्य—ष्) आदेशप्रत्यययोः॥
५ (स्—रु) ससजुषो रुः।

५६३—दादेर्धातोर्घः ॥ १५९ ॥ अ० ८ । २ । ३२॥

झल् परे हो वा पदान्त में दकारादि धातु के हकार को घकारादेश हो यहां पदान्त में घकार होकर ॥ १५८ ॥

५६४—एकाचोबशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः॥१६०॥अ०८।२।३

स, ध्व, परे हो वा पदान्त में एकाच् धातु का अवयव जो झषन्तबश् उसे भष् आदेश हों। यहां पदान्त में दकार को घकार होकर गोधुघ्—स।(१ घकार को जश् (ग्) और उस को विकल्प चर् होकर। गोधुक्। गोधुग्। गोदुहौ। गोदुहः। गोदुहम्। गोदुहौ। गोदुहः। गोदुहा। गोधुग्भ्याम्। गोधुग्भिः। गोदुहे। गोधुग्भ्याम्। गोधुग्भ्यः। गोदुहः। गोधुग्भ्याम्। गोधुग्भ्यः। गोदुहः। गोदुहोः। गोदुहाम्। गोदुहि। गोदुहोः। गोधुक्षु। सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं होता। गुडलिह् इस शब्द के प्रयोगों में इतना विशेष है कि हकार को घकारादेश नहीं होता। गुडलिट्। गुडलिड्। गुडलिड्भ्याम्। गुडलिट्त्सु। गुडलिट्सु। मित्रद्रुह्। उष्णुह्। घृतस्निह्। उत्स्नुह्। इन चार शब्दों में विशेष यह है कि ॥ १६० ॥

५६५—वाद्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ॥ १६१ ॥ अ० ८ । २ । ३३॥

जो झल् परे वा पदान्त में होतो द्रुह् मुह् स्नुह् स्निह् ये जिन के अंत में हों उनको विकल्प करके घकारादेश हो जिस पक्ष में घकार होता है वहां गोदुह् शब्द के समान प्रयोग बनते हैं। और जहां हकार बना रहता है वहां गुडलिह् शब्द के समान प्रयोग समझने चाहिये ॥१६१॥

नियत स्त्रीलिङ्ग उपानह् शब्द ॥

उपानह्—स। यहां ॥

५६६—नहो धः ॥ १६२ ॥ अ० ८ । २ । ३४ ॥

जो झल् परे वा पदान्त में होतो नह् धातु के हकार को धकारादेश हो। धकार को दकार और विकल्प चर् होकर। उपानत्। उपानद्। उपानहौ। उपानहः। उपानहम्। उपानहौ। उपानहः। उपानहा। उपानद्भ्याम्। उ[illegible]। उपानहे। उपानद्भ्याम्। उपानद्भ्यः। उपानहः। उपानद्भ्याम्। उपानद्भ्यः। उपानहः। उपानहोः। उपानहाम्। उपानहि। उपानहोः। उ[illegible]। इसी प्रकार। पयोमुह् आदि शब्दों के प्रयोग समझने चाहिये ॥१६२॥

हकारान्तनियत पुल्लिङ्ग अनडुह् शब्द ॥

१ (घ—जश्—द्)झलां जशोऽन्ते(विकल्प चर्) वावसाने।

माभ्याम् , माभ्यः , मासः , मासोः , मासाम् , मासि , मासोः , मासु, मास्सु , और वेद में भकारादि विभक्तियों के परे इस हलन्त मास् शब्द के सकार (१) को दकारादेश होजाता है , जैसे , माद्भ्याम् माद्भिः , माद्भ्याम्, माद्भ्यः , इत्यादि ॥ हृदय शब्द को हृद् ॥ हृदः , हृदा , हृद्भ्याम् , हृद्भिः, हृदे , हृद्भ्याम्, हृद्भ्यः , हृदः , हृद्भ्याम् , हृद्भ्यः , हृदः , हृदोः , हृदाम् , हृदि , हृदोः , हृत्सु ॥ निशा शब्द को निश् ॥ निशः , निशा , निश्—भ्याम् यहां (२) शकार को ष् और उस को डकारादेश होकर , निड्भ्याम् , निड्भिः निशे , निड्भ्याम् , निड्भ्यः , निशः , निड्भ्याम् , निड्भ्यः , निशः, निशोः निशाम् । निशि । निशोः । निट्सु । निट्सु ॥ आसन शब्द को असन् । आदेश असः । असा । असभ्याम् । असभिः । असे । असभ्याम् । असभ्यः । असः असभ्याम् । असभ्यः । असः । असोः । अस्नाम् , अस्नि । असनि । (३) असोः असत्सु ॥ यूष् शब्द को यूषन् । दोष् शब्द को दोषन् । यकृत् को यकन् । शकृत् को शकन् । उदक् को उदन् , आस्य शब्द को आसन् , यूषन् आदि सब शब्दों के प्रयोग असन् शब्द के समान जानो , पाद ,दन्त , मास , इन तीन शब्दों के प्रयोग दूसरे पक्ष में अकारान्त पुलिङ्ग पुरुष शब्द के समान , हृदय , उदक , आसन , इनतीनों के अकारान्त नपुंसकलिंग धन शब्द के समान , नासिका और निशा शब्द के प्रयोग कन्या शब्द के समान , असन् शब्द के प्रयोग कलिन् शब्द के समान , यूष् शब्द के प्रयोग प्रावृष् शब्द के समान , दोष् शब्द के प्रयोग आशिष् शब्द के समान , और यकृत् शकृत् शब्दों के प्रयोग उदश्वित् शब्द के समान समझ लेना चाहिये ॥ अब इसके आगे सर्वनामवाची शब्द लिखेंगे ॥ सर्वादि शब्द तीनों लिङ्गों में आते हैं , प्रथम पुलिङ्ग में , सर्व—सु , सर्वः , . . , सर्व—जस् ॥१६४ ॥

५६९—जसः शी ॥ १६५ ॥ अ० ७ । १ । १७ ॥

जो अकारान्त सर्वनाम से परे जस् होवे तो उसको शी आदेश होजावे , शकार की इत्संज्ञा और पूर्व पर के स्थान में गुण एकादेश होकर, सर्वे,सर्वम्,सर्वौ, स· सर्वान् , सर्वेण , सर्वाभ्याम् , सर्वैः , सर्व-ङे ॥ १६५ ॥

५७०—सर्वनाम्नः स्मै ॥ १६६ ॥ अ० ७ । १ । १४ ॥

जो अदन्तसर्वनाम से परे ङे विभक्ति होवे तो उस को स्मै आदेश हो जावे ,

१ (सू—द) स्वः स्वतवसोर्मास उषसश्च छन्दसि त इष्यते । यह वार्त्तिक प्रथम स्वतवस् शब्दपर लिखचुके हैं
२ (सू—ष) व्रश्च, भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, राज, भ्राज, च्छशां षः । (सू—ड)झलां जशोऽन्ते । -

। सर्वस्मै । सर्वाभ्याम् । सर्वेभ्यः । सर्व-ङसि ॥ १६६ ॥

५७१-ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ॥ १६७ ॥ अ० ७ । १ । १५ ॥

जो अकारान्त सर्वनाम से परे ङसि और ङि विभक्ति हों तो इन को क्रम स्मात् और स्मिन् आदेश हो । सर्वस्मात् । सर्व-ङस् । यहां (१) स्य आदेश कर । सर्वस्य । सर्वयोः । सर्व- आम् ॥ १६७ ॥

५७२-आमि सर्वनाम्नः सुट् ॥ १६८ ॥ अ० ७ । १ । ५२ ॥

जो अवर्णान्त सर्वनाम से परे आम् विभक्ति हो तो उस को सुट् का आगम हो । सर्व-साम् । यहां अंग को (२) एकादेश और सुट् के सकार को मूर्द्धन्यादेश होकर । सर्वेषाम् । सर्व-ङि । इस सूत्र से ङि को स्मिन् आदेश होकर । सर्वस्मिन् । सर्वयोः । सर्वेषु । नपुंसकलिङ्ग में । सर्वम् । सर्वे । सर्वाणि । फिर भी । सर्वम् । सर्वे । सर्वाणि । आगे सब विभक्तियों में पुलिङ्ग के समान जानना । स्त्रीलिङ्ग में टाप् होकर अकारान्त सर्वादि सब शब्द आकारान्त होकर प्रयोगविषय में कन्या शब्द के तुल्य होते हैं । जैसे । सर्वा । सर्वे । सर्वाः । सर्वाम् । सर्वे । सर्वाः । सर्वया । सर्वाभ्याम । सर्वाभिः । सर्वा-ङे ॥ १६८ ॥

कतरत् । कतरद् । इसी प्रकार । कतमत्। इतरत् । अन्यत् । अन्यतरत् । इतर शब्द का वेद में कुछ विशेष है ॥ १७० ॥

५७५–नेतराच्छन्दसि ॥ १७१ ॥ अ० ७ । १ । २६ ॥

वैदिक प्रयोगों में जो नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमान इतर शब्द से परे सु और अम् विभक्ति होवे तो उस को अद्ड् आदेश न हो। जैसे । इतरम् २ ॥ १७१ ॥

५७६–वा०-एकतरात् सर्वत्र ॥ १७२ ॥

सर्वत्र अर्थात् वेद और लोक में जो नपुंसकलिङ्गस्थ एकतर शब्द से परे सु और अम् विभक्ति हों तो उन को अद्ड न हो। जैसे। एकतरन्तिष्ठति एकतरं पश्य, त्व शब्द अन्य का पर्यायवाची है । इस में कुछ विशेष नहीं । नेम शब्द में विशेष यह है कि ॥ १७२ ॥

५७७–प्रथमचरमतयाल्पार्द्धकतिपयनेमाश्च ॥ १७३ ॥ अ० १ । १।३३ ॥

जो जस्‌विभक्ति के परे प्रथम । चरम । तयप् प्रत्ययान्त । अल्प। अर्द्ध । कतिपय । नेम । ये शब्द हों तो इन की सर्वनामसंज्ञा विकल्प करके हो। नेम शब्द का सर्वादि गण में पाठ होने से प्राप्तविभाषा है । प्रथमादि को की सर्वनाम संज्ञा में अपूर्वविधान विकल्प है । इसलिये जिस पक्ष में सर्वनामसंज्ञा होती है वहां सर्वशब्द के समान जस् विभक्ति के स्थान में शी आदेश हो जाता और जहां सर्वनामसंज्ञा नहीं होती वहां पुरुष शब्द के तुल्य प्रयोग जस् विभ । में भी होते हैं । जैसे प्रथमे । प्रथमाः । चरमे । चरमाः । तयप्प्रत्ययान्त द्वितये । द्वितयाः । त्रितये । त्रितयाः । अल्पे । अल्पाः । अर्द्धे । अर्द्धाः । कतिपये। कतिपयाः । नेमे । नेमाः । आगे प्रथमादि शब्दों के प्रयोग पुरुष शब्द के समान और नेम शब्द के सर्व शब्द के समान समझना चाहिये । सम और सिम शब्दों के कुछ विशेष प्रयोग नहीं किन्तु सर्व शब्द के समान ही हैं ॥ १७३ ॥

५७८–पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ॥ १७४ ॥ अ० १ । १ । ३४ ॥

जस् विभक्ति के परे संज्ञाभिन्न व्यवस्था में पूर्व । पर । अवर । दक्षिण । उत्तर। अपर । अधर । ये शब्द हों तो इनकी सर्वनामसंज्ञा विकल्प कर के हो । और व्यवस्था में तो नित्य ही होजाये । जैसे । पूर्वे। प्रथमादि शब्दों के समान इन के भी रूप होते हैं। जैसे पूर्वे। पूर्वाः । परे । पराः । अवरे । अवराः । दक्षिणे। दक्षिणाः । उत्तरे । उत्तराः । अपरे । अपराः । अधरे । अधराः । संज्ञा

और व्यवस्था अर्थ होगा वहां तो पूर्वादिकों की सर्वनामसंज्ञा हो न हो गी और पुरुष शब्द के समान प्रयोग होंगे ॥ १७४ ॥

५७९–स्वमज्ञाति धनाख्यायाम् ॥ १७५ ॥ अ० १।१।३५ ॥

जस् विभक्तिपरे हो तो ज्ञाति अर्थात् बन्धु और धन के पर्यायवाची स्व शब्द को छोड़ के अन्य अर्थों में इस को सर्वनामसंज्ञा विकल्पकरके हो। स्वे पुत्राः। स्वे पितरः। स्वाः पितरः। इस के अन्य सब प्रयोग सर्व शब्द के समान जानो। और जहां ज्ञाति और धन के वाची स्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती वहां पुरुष शब्द के समान प्रयोग हो जाते हैं ॥ १७५ ॥

५८०–अन्तरम्बहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥ १७६ ॥ अ० १।१।३६॥

बहिर्योग जो कुछ अलग हो और उपसंव्यान जो मिला हो। बहिर्योग और उपसंव्यान अर्थ में जस् विभक्ति परे हो तो अन्तर शब्द को सर्वनामसंज्ञा विकल्प करके हो। अन्तरे। अन्तरा वा गृहाः। अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः। सर्वनामवाची पूर्वादि नव शब्दों में जो विशेष है सो लिखते हैं ॥ १७६ ॥

५८१–पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ॥ १७७ ॥ अ० ७। १ । १६ ॥

पूर्वादि नव शब्दों से परे जो ङसि और ङि विभक्ति हों तो उन के स्थान में स्मात् और स्मिन् आदेश विकल्प करके हों। जिस पक्ष में उक्त आदेश नहीं होते वहां पुरुष शब्द के समान रूप होजाते हैं। जैसे। पूर्वस्मात्। पूर्वात्। पूर्वस्मिन्। पूर्वे। परस्मात्। परात्। परस्मिन्। परे। अवरस्मात्। अवरात्। अवरस्मिन्। अवरे। दक्षिणस्मात्। दक्षिणात्। दक्षिणस्मिन्। दक्षिणे। उत्तरस्मात्। उत्तरात्। उत्तरस्मिन्। उत्तरे। अपरस्मात्। अपरात्। अपरस्मिन्। अपरे। अधरस्मात्। अधरात्। अधरस्मिन्। अधरे। स्वस्मात्। स्वात्। स्वस्मिन्। स्वे। अन्तरस्मात्। अन्तरात्। अन्तरस्मिन्। अन्तरे। अब इस के आगे सर्वाद्यन्तर्गत त्यदादि शब्दों के भी प्रयोग तीनों लिङ्ग में दिखलाते हैं। पुल्लिङ्ग त्यद् शब्द। त्यद्—सु ॥ १७७ ॥

५८२–त्यदादीनामः ॥ १७८ ॥ अ० ७ । २ । १०२ ॥

जो सु आदि विभक्तिपरे हों तो त्यदादि शब्दों के अन्त को अकारादेश हो। यहां दकार को अकार और दोनों अकारों को एकादेश होकर। त्य-सु। इस अवस्था में ॥ १७८ ॥

५८३–तदोः सः सावनन्त्ययोः ॥ १७९ ॥ ७ । २ । १०६॥

सु विभक्ति परे होतो त्यदादि शब्दों के आदि वा मध्य में जो तकार

इमे। इमम्। इमौ। इमान्। इदम्-टा। यहां भी (१) मकार को अका- देश और एकादेश होकर ॥ १८३ ॥

५८९—अनाप्यकः ॥ १८४ ॥ अ० ७। २। ११२ ॥

आप् अर्थात् टा और ओस् विभक्ति परे हों तो ककाररहित इदम् शब्द के इद् भाग को अन आदेश हो। टा के स्थान में इन होकर। अनेन। ककाररहित व- चन का प्रयोजन यह है कि। इमकेन यहां अन आदेश न हो। अगले सूत्र में हल् वचन के होने से इस सूत्र करके अन आदेश अजादि विभक्तियों में होता है सो तृतीयादि अजादि विभक्तियों में भी टा और ओस् के परे ही जानना चाहिये अन्यत्र नहीं। इद-भ्याम् ॥ १८४ ॥

५९०—हलि लोपः ॥ १८५ ॥ अ० ७। २। ११३ ॥

तृतीयादि हलादि विभक्ति परे होतो इदम् शब्द के इद् भाग का लोप हो। अ-भ्याम्। अदन्त (२) अङ्ग को दीर्घ होकर। आभ्याम्। अ-भिस्। यहां भी अदन्त शब्दों के समान भिस् विभक्ति को ऐस् आदेश प्राप्त है इस लिये ॥ १८५ ॥

५९१—नेदमदसोरकोः ॥ १८६ ॥ अ० ७। १। ११ ॥

जो ककाररहित इदम् और अदस् शब्द से परे भिस् विभक्ति हो तो इस को ऐस् आदेश न हो। फिर (३) एकारादेश होकर। एभिः। ककाररहित इस लि- कहा है कि। इमकैः। अमुकैः। अस्मै। आभ्याम्। एभ्यः। अस्मात्। आभ्याम्। एभ्यः। अस्य। इदम्-ओस्। यहां भी पूर्वसूत्र से अन आदेश होकर। अनयोः। एषाम्। अस्मिन्। अनयोः। एषु। जब इदम् शब्द अन्वादेश में आता है तब कुछ प्रयोग विशेष होते हैं ॥ १८६ ॥

५९२—इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ ॥ १८७ ॥ अ० २। ४। ३२ ॥

अन्वादेश विषय में तृतीयादि विभक्ति परे हों तो इदम् शब्द के स्थान में अ- नुदात्त अश् आदेश हो। अन्वादेश के भी रूप जैसे पूर्व लिख चुके वैसेही होंगे परन्तु स्वर में भेद होगा। जहां तृतीयादि हलादि विभक्तियों में इद्भाग का लोप होगा वहां। आभ्याम्। अस्मै। ऐसा स्वर होगा। और जहां अन्वादेश में अश् आदेश होगा वहां। आभ्याम्। अस्मै। ऐसा होगा (द्वितीयाटौस्स्वेनः) इस उक्त सूत्र से द्वितीया टा ओस् इन तीन विभक्तियों में जैसे एतत् शब्द को उत्तर वाक्य में एन आदेश और पूर्व वाक्य में एतत् शब्द का प्रयोग आता है वैसे यहां

१ (मकारदेश) त्यदादीनामः (एकादेश) अतोगुणे।
२ (अदन्त अंग को दीर्घ) अतो दीर्घो यञि।
३ (एकारादेश) बहुवचने झल्येत्।

ो पूर्ववाक्य में इदम् शब्दका प्रयोग और उत्तरवाक्य में एन आदेश का प्रयोग किया जाता है ॥ १८७ ॥

नपुंसकलिङ्गइदम् शब्द ॥

इस में इतना विशेष है कि इदम् के मकार को म और सुविभक्ति को अम् होके । इदम् । इमे । इमानि । फिर भी । इदम् । इमे । इमानि । आगे पुंलिङ्ग के सदृश प्रयोग होंगे ॥

स्त्रीलिङ्ग इदम् शब्द ॥

इदम्-सु । यहां मकारादेश का निषेध होकर ॥

५९३-यःसौ ॥ १८८ ॥ अ० ७ । २ । ११० ॥

सुविभक्ति परे हो तो इदम् शब्दके दकार को यकारादेश होके । इयम् । आगे इस को अदन्त के होने से टाप् होकर कन्या शब्द के समान जानो । जैसे इमे । इमाः । इमाम् । इमे । इमाः । इद--टा । (१) अन आदेश होके । अनया यहां भी । भ्याम् आदि हलादि विभक्तियों में (२) इद भाग का लोप होजाता है । आभ्याम् । आभिः । अस्यै । आभ्याम् । आभ्यः । अस्याः । आभ्याम् । आभ्यः । अस्याः । अनयोः । आसाम् । अस्याम् । अनयोः । आसु ॥ १८८ ॥

पुंलिङ्ग अदस् शब्द ॥

अदस्-सु ।

५९४ अदस औ सुलोपश्च ॥ १८९ ॥ अ० ७ । २ । १०७ ॥

जो सु विभक्ति परे हो तो अदस् शब्दके सकार को औ आदेश और सुविभक्ति का लोप होजावे । अदस्-औ यहां (३) दकार को सकारादेश होकर । असौ । अदस्-औ यहां से आगे औ आदि विभक्तियों में (४) अकारादेश होकर अद सर्वत्र रहजाता है, अद-औ ॥ १८९ ॥

५९५-अदसो सेर्दादु दो मः ॥ १९० ॥ अ० ८ । २ । ८० ॥

सकार भिन्न अदस् शब्दके दकार से परे वर्ण को उवर्ण आदेश और दस के दकार को मकारादेश होजावे । अमु-औ । यहां पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होके । अमू । अद-जस् । सर्व शब्द के समान अदन्त सर्वनाम से परे जस् को शी और पूर्व पर के स्थान में गुण एकादेश होकर । अदे । यहां ॥ १९० ॥

---

१ ([illegible]) [illegible]
२ ([illegible]) [illegible]
३ ([illegible]) [illegible]
४ [illegible]

५९६-एत ईद्बहुवचने ॥ १९१ ॥ अ० ८ । २ । ८१ ॥

अदस् शब्द के दकार से परे जो एकार उसको ईकारादेश और दकार को मकारादेश हो । अमी । असु-अम् । अमुम् । अमू । अमून् । अमुना । अमूभ्याम् । अदस्-भिस् (१) यहां भिस् को ऐस् का निषेध एकार को बहुवचन में ईकार और दकार को मकारादेश होकर । अमीभिः । अमुष्मै । अमूभ्याम् । अमीभ्यः । अमुष्मात् । अमूभ्याम् । अमीभ्यः । अमुष्य । अमुयोः । अमीषाम् । अमुष्मिन् । अमुयोः । अमीषु ॥ १९१ ॥

नपुंसकलिङ्ग अदस् शब्द ॥

अदस्—सु । यहां (२) सु और अम् का लुक् सकार को रुत्व और रु को विसर्जनीय होके । अदः । असु—औ । अमू । अमूनि । फिर भी । अदः । अमू । अमूनि । आगे । पुल्लिङ्ग के समान जानो ॥

स्त्रीलिङ्ग अदस् शब्द ॥

अदस्—सु । पूर्ववत् । असौ । अदा—औ । इस अवस्था में वृद्धि एकादेश दकार से परे औकार को दीर्घ ऊकार और दकार को मकारादेश होकर । अमू । अमूः । अमूम् । अमू । अमूः । अदा-टा । यहां आकार को एकार और उस को अय् आदेश होकर । अदया । इस अवस्था में दकार से परे अकार को उकार और दकार को मकारादेश होकर । अमुया । अमूभ्याम् । अमूभिः । अमुष्यै । अमूभ्याम् । अमूभ्यः । अमुया । अमूभ्याम् । अमूभ्यः । अमुष्याः । अमुयोः । अमुष्याम् । अमूषाम् । अमुयोः । अमूषु ॥

सर्वनाम पुल्लिङ्ग एक शब्द ॥

एकः । एकौ । एके । एकम् । एकौ । एकान् । एकेन । एकाभ्याम् । एकैः । एकस्मै । एकाभ्याम् । एकेभ्यः । एकस्मात् । एकाभ्याम् । एकेभ्यः । एकस्य । एकयोः । एकेषाम् । एकस्मिन् । एकयोः । एकेषु ॥ नपुंसक लिङ्ग में । एकम् । एके । एकानि । फिर भी एकम् । एके । एकानि । आगे पुल्लिङ्ग के समान ॥

स्त्रीलिङ्ग एक शब्द

सर्वा शब्द के समान । जैसे । एका । एके । एकाः । एकाम् । एके । एकाः । एकया । एकाभ्याम् । एकाभिः । एकस्यै । एकाभ्याम् । एकाभ्यः । एकस्याः । एकाभ्याम् । एकाभ्यः । एकस्याः । एकयोः । एकासाम् । एकस्याम् । एकयोः । एकासु ॥

---

१ (भिस् को ऐस् का निषेध) नेदमदसोरकोः ।
२ (सु-अम् का लुक्) स्वमोर्नपुंसकात् । (स्—रु) ससजुषोरुः ।

पुल्लिङ्ग संख्यावाची द्वि शब्द ॥

इस शब्द के नियत द्विवचनान्त ही प्रयोग किये जाते हैं। द्वि-औ। त्यदादि के में होने से अकारादेश होकर वृद्धि एकादेश हो जाता है। द्वौ। द्वौ। द्विभ्याम्। अकारादेश और दीर्घ होकर। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वयोः। द्वयोः। नपुंसक और स्त्रीलिङ्ग में प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में। द्वे। द्वे। ऐसे प्रयोग होंगे। आगे पुल्लिङ्ग के तुल्य जानो ॥

सर्वनामवाची युष्मद् और अस्मद् शब्द ॥

इन दोनों शब्दों के तीनों लिंग और सातों विभक्तियों में एक प्रकार के प्रयोग होते हैं इसलिये इन के प्रयोग साथ २ ही लिखते हैं युष्मद्-सु। अस्मद्-सु ॥

५९७-मपर्यन्तस्य ॥ १९२ ॥ अ० ७। २। ९१ ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे युष्मद् और अस्मद् शब्द को जो आदेश कहें वे मपर्यन्त को हों ॥ १८२ ॥

५९८-त्वाहौ सौ ॥ १९३ ॥ अ० ७। २। ९४ ॥

जो सु विभक्ति परे हो तो युष्मद् अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त के स्थान में क्रम से त्व और अह आदेश हों युष्म् अस्म् को आदेश होकर त्व-अद्-सु। अह-अद्-सु ॥ १८३ ॥

५९९-शेषे लोपः ॥ १९४ ॥ अ० ७। २। ९० ॥

शेष अर्थात् आदेश होकर जो अद् भाग बचा है उस का लोप हो। जैसे त्व-सु। अह-सु ॥ १८४ ॥

६००-ङे प्रथमयोरम् ॥ १९५ ॥ अ० ७। १। २८ ॥

जो युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे ङे और प्रथमा द्वितीया विभक्ति हों तो इन के स्थान में अम् आदेश हो। जैसे। त्व-अम्। अह-अम्। पूर्वरूप एकादेश होकर। त्वम्। अहम्। युष्मद्-औ। अस्मद्-औ ॥ १८५ ॥

६०१-युवावौ द्विवचने ॥ १९६ ॥ अ० ७। २। ९२ ॥

द्विवचन विभक्तियों के परे युष्मद् अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त के स्थान में क्रम से युव, आव, आदेश हों। जैसे। युव-अद्-औ। आव-अद्-औ। अद्भाग का लोप होके। युव-औ। आव-औ ॥ १८६ ॥

६०२—प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ॥ १९७॥अ०७।२।८८॥

जो भाषा अर्थात् लौकिक प्रयोगविषय में प्रथमा विभक्ति का द्विवचन परे हो तो युष्मद् अस्मद् शब्द को आकारादेश हो। जैसे। युवाम्। आवाम्। भाषा के कहने से वेद में आकारादेश नहीं होता। युवाम्। आवाम्। ऐसे ही प्रयोग होते हैं। युष्मद्– जस्। अस्मद्– जस्॥ १८०॥

६०३—यूयवयौ जसि ॥ १९८ ॥ अ० ७। २। ९३॥

जो जस् विभक्ति परे होतो युष्मद् अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त के स्थान में क्रम से यूय वय आदेश हों। शेष अद् भाग का लोप और जस् को (१) अम् आदेश होकर। यूयम्। वयम्। युषद्–अम्। अस्मद्–अम्॥ १८८॥

६०४—त्वमावेक वचने ॥ १९९ ॥ अ० ७। २। ९७॥

एकवचन विभक्तियों में युषद् अस्मद् शब्द के मपर्यन्त के स्थान में क्रम से त्व, म, आदेश हों। त्व–अद्– अम्। म–अद्–अम्॥ १८८॥

६०५—द्वितीयायां च ॥ २०० ॥ अ० ७। २। ८७॥

द्वितीया विभक्ति के परे युषद् अस्मद् शब्दों को आकारादेश हो। अन्त्य द को आकार और दोनों को सवर्णदीर्घ एकादेश होकर। त्वाम्। माम्। ...द्–औ। अस्मद्–औ। यहां मपर्य्यन्त को युव, आव, दकार को आकार, औ के स्थान में अम् और पूर्व सवर्णदीर्घ एकादेश होकर। युवाम्। आवाम्। युषद् –शस्। अस्मद्–शस्। यहां भी दकार को आकार और पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होके॥ २००॥

६०६—शसो न ॥ २०१ ॥ अ० ७। २। २९॥

युषद् अस्मद् शब्द से परे जो शस् उस के सकार को नकारादेश हो। जैसे। युष्मान्। अस्मान्। युषद्–टा। अस्मद्–टा। यहां एकवचन में युषद्। अस्मद् के मपर्यन्त को त्व, म आदेश होके। त्व– अद्–टा। म–अद्–टा॥ २०१॥

६०७—योऽचि ॥ २०२ ॥ अ० ७। १। ८९॥

अनादेश अर्थात् जिस को कोई आदेश न हुआ हो वह अजादि विभक्ति परे हो तो युषद् अस्मद् शब्द को यकारादेश हो। अन्त्य दकार को य् और अकार को पूर्वसवर्ण एकादेश होकर। त्वया। मया। द्विवचन में।		। आव–अद्–भ्याम्। यहां॥ २०२॥

१ (जस् को—अम् आदेश) के प्रथमयोरम्।

६०८—युष्मदस्मदोरनादेशे ॥ २०३ ॥ ७ । २ । ८६ ॥

जिस को कोई आदेश न हुआ हो यह हलादि विभक्ति परे हो तो युष्मद् अस्मद् शब्द को आकारादेश हो । दकार को आकार और दीर्घ एकादेश होके युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्माभिः । अस्माभिः । युष्मद्—ङे ॥ २०३ ॥

६०९—तुभ्यमह्यौ ङयि ॥ २०४ ॥ अ० ७ । २ । ९५ ॥

ङे विभक्ति परे हो तो युष्मद् अस्मद् शब्द के मपर्यन्त को तुभ्य और मह्य आदेश क्रम से हों । विभक्ति को अम् १ आदेश और अद्भाग का लोप होके । तुभ्यम् । मह्यम् । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्मद् —भ्यस् । अस्मद्—भ्यस् ॥ २०४ ॥

६१०—भ्यसोऽभ्यम् ॥ २०५ ॥ अ० ७ । १ । ३० ॥

युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे भ्यस् विभक्ति को अभ्यम् आदेश हो । अद्भाग का लोप होकर । युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् । युष्मद्-ङसि । अस्मद्-ङसि यहां एकवचन में मपर्यन्त को त्व, म आदेश और अद्भाग का लोप होकर ॥ २०५ ॥

६११—एकवचनस्य च ॥ २०६ ॥ अ० ७ । १ । ३२ ॥

जो युष्मद् अस्मद् से परे पञ्चमी विभक्ति का एकवचन हो तो उस को अत् आदेश हो, त्व-अत् , म अत् २ । पररूप गुण एकादेश होकर । त्वत् । मत् । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्मद् भ्यस् । अस्मद् भ्यस् । यहां अद्भाग का लोप हो के ॥ २०६ ॥

६१२—पञ्चम्या अत् ॥ २०७ ॥ अ० ७ । १ । ३१ ॥

जो युष्मद् अस्मद् शब्द से पर पञ्चमी विभक्ति का भ्यस् हो तो उस को अत् आदेश हो । पररूप एकादेश हो के । युष्मत् । अस्मत् । युष्मद्—ङस् । अस्मद् ङस् ॥ २०७ ॥

६१३—तवममौ ङसि ॥ २०८ ॥ अ० ७ । २ । ९६ ॥

ङस् विभक्ति के परे युष्मद् अस्मद् शब्द के मपर्यन्त को तव और मम आदेश हों । यहां भी अद्भाग का लोप होकर । तव-ङस् । मम-ङस् ॥ २०८ ॥

६१४—युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ॥२०९॥ अ० ७ । १ । २७ ॥

जो युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे ङस् विभक्ति हो तो उस को अश् आदेश होवे अश् आदेश में शकार इसलिये है कि सकार के स्थान में अकार हो जाय पररूप एकादेश होके , तव, मम , युष्मद्-ओस्, अस्मद्-ओस्, यहां

द्विवचन में मपर्य्यन्त को युव आव और (१) दकार को यकारादेश होकर। युवयोः। आवयोः। युष्मद्-आम्। अस्मद्-आम्। यहां सर्वनामसंज्ञा के होने से (२) सुट् और अद्भाग का लोप होकर ॥ २०९ ॥

६१५-साम आकम् ॥ २१०॥ अ० ७। १। ३३॥

जो युष्मद् अस्मद् शब्द से परे सुट्सहित षष्ठीका बहुवचन आम् विभक्ति हो तो उसको आकम् आदेश हो। फिर एकादेश होकर। युष्माकम्। अस्माकम्। युष्मद्-ङि। अस्मद्-ङि, यहां भी एकवचन में मपर्य्यन्त को त्व, म और दकार को यकारादेश होके, त्वयि, मयि, युवयोः, आवयोः, युष्मद्-सु, अस्मद्-सु यहां दकार को आकार (३) आदेश होके, युष्मासु, अस्मासु, अब इन दो शब्दों में विशेष इतना है कि ॥ २१० ॥

६१६-युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ ॥ २११ ॥ अ० ८। १। २०॥

षष्ठी चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के साथ वर्त्तमान पद से परे जो युष्मद् अस्मद् पद हों तो उन के स्थान में क्रम से वाम् और नौ आदेश हों, और वे कहे नियमानुसार अनुदात्त भी हो जावें, यहां वाम् और नौ द्विवचन अस्मद् के स्थान में समझे जाते हैं, जैसे, षष्ठी द्विवचन, युष्मद्-ओस्, अस्मद्-ओस्, ग्रामो वां स्वम्, जनपदो नौ स्वम्, यहां युवयोः, आवयोः, ऐसा प्राप्तथा, चतुर्थीस्थ, ग्रामो वां दीयते, जनपदो नौ दीयते, यहां युवाभ्याम्, आवाभ्याम्, प्राप्त हैं, द्वितीयास्थ, माणवको वां पश्यति, यहां युवाम्, आवाम्, प्राप्त हैं, इस सूत्र में स्थ ग्रहण इसलिये है कि इष्टो मया युष्मत्पुत्रः, यहां समास में षष्ठी का लुक् होने से आदेश और अनुदात्त भी नहीं हुआ ॥ २११ ॥

६१७-बहुवचनस्य वस्नसौ ॥ २१२ ॥ अ० ८। १। २१॥

जो षष्ठी चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के साथ वर्त्तमान पद से परे बहुवचनान्त युष्मद् अस्मद् पद हों तो उन के स्थान में वस् और नस् आदेश हों। जैसे षष्ठीस्थ, विद्या वो धनम्, राज्यं नो धनम्, यहां युष्माकम्, अस्माकम्, ऐसा प्राप्तथा, चतुर्थीस्थ, नमो वः पितरः, शन्नो भवतु, यहां युष्मभ्यम्, अस्मभ्यम् पाता है, द्वितीयास्थ, बालो वः पश्यति, मानो वधीः। यहां युष्मान्, अस्मान्, प्राप्तथा ॥ २१२ ॥

१ (द्वे॰ य) शेऽपि॥
२ (सुट्) आमि सर्वनाम्नः सुट्॥
३ (द्वे॰ आ) युष्मदस्मदोरनादेशे॥

हुआ है, सप्नेन, ऐसा प्राप्त था, अयाट्, सनः सिन्धुमिव नावया, यहां तृतीया के एकवचन को भयाट् हुआ है, नावा, ऐसा प्राप्त है ॥ २२४ ॥

अब लिङ्गानुशासनविषयक प्रत्ययों का संकेत करते हैं ॥

अष्टाध्यायी और उणादिस्थ प्रत्ययोंका परिगणन कि जिन के तीनों लिङ्ग में प्रयोग होते हैं, तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप्, ण्यत्, ण्वुल्, तृच्, ल्यु, णिनि, अच्, क, श, क, ष्वुन्, थकन्, ल्युट्, वुन्, अण्, क, टक्, अच्, ट, इन्, खश्, खच्, अण्, ड, णिनि, टक्, ख्युन्, खिष्णुच्, खुकञ्, क्विन्, कञ्, क्विप्, ण्वि, ड्युट्, विट्, कप्, णिवन्, विच्, मनिन्, क्वनिप्, वनिप्, क्विप्, णिनि, क्विप्, इनि, क्वनिप्, डा, ङ्वनिप्, अट्न्, निष्ठा, कानच्, क्वसु, शतृ, शानच्, शानन्, चानश्, शतृ, तृन्, इष्णुच्, क्नु, क्रु, घिनुण्, वुञ्, युच्, उकञ्, षाकन्, इनि, आलुच्, रु, क्मरच्, घुरच्, कुरच्, क्वरप्; ऊक, र, उ, कि, किन्, नजिङ्, आरु, क्रु, लुकन्, कुकन्, ..., क्विप्, ष्ट्रन्, इत्र, क्त, ण्वुल्, अण्, खल्, यच्, इतने कृत् प्रत्ययान्त, और तद्धित सब तीनों लिङ्गों मे आते हैं, नियत पुल्लिङ्ग प्रत्यय, घञ्, ..., घप्, अप् प्रत्ययान्तों में भयादि शब्दों को छोड़कर, अथुच्, नङ्, नन्, ..., घ, ड, डर्, इक, इकवक, घञादि प्रत्ययान्त शब्द कर्त्तृभिन्न सब कारक और भाव में नियत पुल्लिङ्ग ही आते हैं, परन्तु नङ् प्रत्ययान्तों में, याच्ञा शब्द को छोड़ के, क्योंकि यह केवल स्त्रीलिङ्ग में ही आता है नियत नपुंसकलिङ्ग के प्रत्यय, क्त, ल्युट्, प्रत्यय कर्त्तृभिन्न कारक और भाव में ये सब नपुंसकलिङ्ग में ही आते हैं, नियत स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय, क्तिन्, क्यप्, श, अ, अङ्, युच्, इञ्, ण्वुच्, अनि, ये कर्त्तृभिन्न कारक और भाव में आते हैं, तथा टाप्, ङीप्, डाप्, ङीष्, ऊङ्, ङीन्, ति, इतने प्रत्ययान्त शब्द नियत स्त्रीलिङ्ग में आते हैं ॥ अब आगे उणादिप्रत्ययान्त शब्द और लिङ्गानुशासन तथा अर्द्धर्चादि की लिङ्ग व्यवस्थादि लौकिक, वैदिक प्रयोगों की व्यवस्था से जान लेना ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृतव्याख्यासहितो नामिकः समाप्तः ॥

वसुकालांकचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले । चतुर्दश्यां बुधे वारे नामिकः पूरितो मया ॥ १ ॥

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

चतुर्थो भागः ॥

॥ कारकीयः ॥

॥ पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां ॥

तृतीयो भागः ॥

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चम्पुस्तकम् ॥

अजमेर नगरे वैदिक यन्त्रालये ।

पण्डित भीमसेन शर्मण प्रबन्धेन

मुद्रितम् ॥

संवत् १९५५ आश्विन शुक्ल ६

तृतीय वार १००० पुस्तक छपे { } मूल्य ।) डाक महसूल ॥

॥ भूमिका ॥

मैं ने कारकीय ग्रंथ इसलिये बनाया है कि जिससे पढ़ाने और पढ़ने वालों को सुगमता से कारक सन्धि बोध होके वेदादि शास्त्रों का वाक्यार्थ बोध सुगमता से होवे मनुष्य जितना अर्थ कारकों से जान सकता है उतना अन्यप्रकारों से नहीं क्योंकि यह कारकसमूह क्रिया द्रव्य और गुण वाची शब्दों के संबन्ध से समस्त वाक्यों के अर्थों का प्रकाशक है । उच्यतेऽर्थस्य विज्ञानाय विज्ञापनाय वा यतद्वाक्यम् । जो अर्थ के जानने और जनाने के लिये कहा जाता है वह वाक्य कहाता है जो मनुष्य आठोंकारकों की विद्या को यथावत् जानलेता है वह वाक्यार्थों में सुबोध होता है जिस लिये कारक संज्ञा के आधीनही प्रथमा आदि विभक्तियों का विधान अष्टाध्यायी में है इसलिये इस ग्रंथ में कारक सूत्रों के साथ विभक्ति विधायक सूत्रों को भी लिख के उदाहरण प्रत्युदाहरण लिखे हैं यहां एक उदाहरण वा प्रत्युदाहरण को जान और जना के उसके सदृश असंख्यात उदाहरणों को अध्यापक लोग जानलें और विद्यार्थियों को भी जना देवें कि जिस से सद्यः संस्कृत बोल दूसरे के संस्कृत को समझ और वेदादि शास्त्रों के वाक्यार्थ ज्ञान के व्यवहार में भी बहुत उपकार होवे जैसे किसी से किसी ने पूछा कि (त्वं कस्मादागच्छसि) तूं कहां से आता है वह उतर देवे कि (नगरात्) नगर से इस एकही पद से कारक का जानने हारा (अहमागच्छामि) इन दोनों पदों के कहे विना भी पूरा वाक्यार्थ जानलेता है कारकों के बोधही से मनुष्य कारक विषयों का विद्वान् होसकता है इत्यादि प्रयोजनों के लिये कारकों का जानना जनाना सब को उचित है । इस ग्रन्थ में अ० संकेत से अष्टाध्यायी । १ अध्याय । २ से पाद । और ३ से सूत्र समझ लेना ॥

इति भूमिका ॥

दूध की प्राप्ति नहीं होसकती। परन्तु इस पृच्छति क्रिया के साथ लड़के और दो- ग्धि क्रिया के साथ साक्षात् गाय का सम्बन्ध नहीं है किन्तु पन्था और दूध का है। करण उस को कहते हैं कि जिस से कर्ता अपने कर्त्तव्य कर्म को कर सके इस के दो भेद हैं गौण और मुख्य, गौण करण उस को कहते हैं कि जो साधारणता से क्रिया की सिद्धि का निमित्त हो। जैसे। हस्ताभ्यां फूत्कारादिनाग्निः प्रज्वलति। इत्यादि यहां अग्नि की जलन क्रिया का निमित्त हाथों की फूकनादि क्रिया हैं। मुख्य करण का- रक उस को कहते हैं कि साक्षात् सम्बन्ध से कर्त्तव्य कर्म की सिद्धि में यथावत् उपयुक्त हो जिस के विना वह कर्म कभी न होसके। जैसे—इन्धनैरग्निः प्रज्वलति। अग्निनौदनं पचति। इत्यादि यहां अग्नि को जलाने में इन्धन और चावल के पकानेमें अग्निही मुख्य साधक है। संप्रदान उस को कहते हैं जिस से किसी का अभीष्ट सिद्ध किया जाय। जैसे विद्यार्थिने विद्यान्ददाति। अध्यापकाय धनं प्रयच्छति। अतिथयेऽन्नादिकं ददाति। इत्यादि। यहां विद्यादान कर्म से विद्यार्थी, धनदान क्रिया से आचार्य और अन्नादि पदार्थ के देने से अतिथि का अभीष्ट सिद्ध किया जाता है इस लिये ये संप्रदान हैं। अपादान उस को कहते हैं कि जहां प्राप्त का त्याग और अप्राप्त देश की प्राप्ति की जाय जैसे गृहादागच्छति गच्छति वा गुरुकुलादागच्छति गच्छति वा। ग्रामादागच्छति गच्छति वा *। इत्यादि। यहां पढ़ने के लिये प्राप्त घर को छोड़ कर अप्राप्तपाठशाला और पढ़ के गुरुकुलनिवासरूपदेश को छोड़ कर जन्म भूमि को प्राप्त होना प्रयो- ... छोड़ने रूप क्रिया के कर्म की अपादान संज्ञा है अर्थात् जिस का वियोग ... को प्राप्त होना होता है। शेष कारक उस को कहते हैं कि, जो अर्थ अपादा- संज्ञाओं से गृहीत न हो। जैसे। यस्य प्रशस्तभाग्यशालिनो यज्ञदत्तस्य पुत्रः पठति। पठनक्रिया के कर्त्ता पुत्र का सम्बन्धी यज्ञदत्तपिता है जिस का पुत्र पढ़े वह भाग्य- है। वेदस्य मन्त्रस्यार्थं जानाति। वेद के मंत्र के अर्थ को जानता है। यहां मंत्र का

* यहां ग्रामादागच्छति। ग्रामादागच्छतः। ग्रामादागच्छन्ति। इत्यादि सब वच- ... तीनों पुरुष के प्रयोग होते हैं क्योंकि एक स्थान से एक और अनेक का भी सम्भव है। और कई स्थानों से एक पुरुष का आना नहीं बनता इसी कारण अ- ... में सब वचन नहीं होते। और जहां अनेक स्थानों से अनेकों का ... होगा वहां अपादान में भी सब वचन होंगे। ग्रामाभ्यामागच्छतो ग्रामेभ्य आग- च्छन्ति। इत्यादि।

वेद और अर्थ का शेष मंत्र है । अयसः कुठारेण वृक्षं छिनत्ति । लोह के कुल्हाड़े से वृक्ष को काटता है यहां लोहा कुल्हाड़े का शेषार्थ है । आप्तस्याऽध्यापकस्य विद्यार्थिने ददाति । निष्कपट सत्यवादी पूर्णविद्यावान् पढ़ाने हारे पण्डित के विद्यार्थी को देता है । यहां विद्यार्थी का शेष पढ़ाने हारा है । राज्ञो ग्रामादागच्छति । राजा के गाम से आता है यहां गाम का शेष कारक राजा है । राज्ञः पुरुषस्य पुत्रो दर्शनीयोऽस्ति । राजा के पुरुष का पुत्र देखने में सुन्दर है । गुरोः कुले निवसति । विद्यार्थी पढ़ने के लिये गुरु के कुल में निवास करता है । यहां अधिकरण कारक कुल शब्द का शेष गुरु है । राज्ञो मंत्री देवदत्तं ग्रामं गमयति । इत्यादि । राजा का मंत्री देवदत्त को ग्राम में भेजता है । यहां हेतु कारक मंत्री का शेष राजा है । इसीप्रकार शेष कारक को सब से बड़ा जानो क्योंकि यह सब के साथ व्यापक रहता है । इस के विना कोई कारक नहीं रहता चाहे शेष का प्रयोग हो वा न हो । अधिकरण उस को कहते हैं कि जो आधेय का आधार रूप अर्थ हो सो तीन प्रकार का होता है । तद्यथा । अधिकरणं नाम त्रिः प्रकारकं भवति । व्यापकमौपश्लेषिकं वैषयिकमिति ॥ अ० ६ । पा० १ । सू० ७२ । आ० २ । व्यापक, औपश्लेषिक, वैषयिक, व्यापक अधिकरण उस को कहते हैं कि जिस का योग सब व्यक्ति और अवयवों में रहे जैसे । दिक्कालाकाशेषु पदार्थाः सन्ति । ईश्वरे सर्वं जगद्वर्त्तते । * इत्यादि । दिशा, काल और आकाश में सब पदार्थ रहते और सब जगत् ईश्वर में है औपश्लेषिक उस को कहते हैं जहां आधार और आधेय का संयोग हो जैसे । खट्वायां शेते । गृहे निवसति इत्यादि । यहां खाट और सोने वाले और घर तथा घर में रहने वाले का स्पर्श मात्र संयोग है । वैषयिक उस को कहते हैं कि जिस में जो रहे जैसे । धर्मे प्रतिष्ठते । विद्यायां यतते । † इत्यादि, मनुष्य की धर्म में वर्त्तने से प्रतिष्ठा और जो विद्या में यत्न करता है वह ज्ञानी होता है । और हेतु कारक उस को कहते हैं कि जो अर्थ क्रिया करने हारे का प्रेरक हो जैसे । देवदत्तो विद्यामर्जते । गुरुरेनं विद्यामध्यापयति । विचक्षणो धर्मं करोति । उपदेशेनं धर्मं कारयति । इत्यादि, यहां पढ़ने हारे विद्यार्थी के पढ़ने के लिये

* जैसे । तिलेषु तैलम् । दधनि घृतम् । इत्यादि भी व्यापक अधिकरण में गिने जाते हैं क्योंकि तिलों के सब अवयवों में तेल और दही के सब अवयवों में घृत व्यापक है दिशा आदि के उदाहरण सामान्य और ये विशेष हैं ॥

† प्रतिष्ठा का विषय धर्म और विद्या प्रयत्न का विषय है ॥

पैत्र कारक शब्द का अधिकार समझा जावेगा। क्रिया और द्रव्य का संयोग और क्रिया की सिद्धि करने वाले को कारक कहते हैं ॥

स्वतंत्रः कर्त्ता ॥ २ ॥ अ० १ । ४ । ५४ ॥

(स्व) आप (तंत्रः) प्रधान (स्वतंत्र) जो आप ही क्रिया के करने में प्रधान हो उस की कर्तृकारक संज्ञा है ॥

तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥ ३ ॥ अ० १ । ४ । ५५ ।

जो वह स्वतंत्र प्रेरणा करने वाला हो तो उस की हेतु और कर्त्ता दोनों संज्ञा होती हैं ॥

* प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ॥ ४ । अ० । २ । ३ । ४६ ॥

जो जिस अर्थ के साथ समर्थ होता है उस को प्रातिपदिकार्थ कहते हैं। इस के अर्थमात्र, लिङ्ग अर्थात् स्त्री, पुरुष, नपुंसक मात्र, परिमाण, अर्थात् तोल मात्र, औ: वचन–एक दो बहुत मात्र, इन अर्थों में प्रथमा विभक्ति होती है। इसी सूत्र के भाष्य में लिखा है कि तिङ्समानाधिकरणे प्रथमेत्येतल्लक्षणं करिष्यते। अस्ति भवति आदि तिङन्त क्रियाओं के साथ जिस का समानाधिकरण हो उस को (उक्त) कथित, और अभिहित कहते हैं उसी में प्रथमा विभक्ति होती है। इस से भिन्न कारकों में [illegible] आदि होती हैं सो आगे कहेंगे। कर्त्ता और हेतु कारक के उदाहरण मात्र में। देवदत्तो ग्रामं गच्छति। यज्ञदत्तो देवदत्तं ग्रामं गमयति। देवदत्त। यज्ञदत्तो देवदत्तेनौदनं पाचयति। इत्यादि। यहां गच्छति, पचति क्रिया में देवदत्त स्वतंत्र होने से कर्त्ता और यज्ञदत्त की प्रेरणा का कर्म है उ: क्रियाओं के साथ समानाधिकरण होने से उस में प्रथमा विभक्ति होती मात्र के कहने से उच्चैः। नीचैः इत्यादि में भी प्रथमा विभक्ति हो जा: त्र में। कुमारी। यहां जो प्रातिपदिकार्थ युवा अवस्था है उस से स्त्रीत्व

* प्रातिपदिकार्थ उस को कहते हैं कि जो उस शब्द की सत्तामात्र हो और शब्द का विशेष संबंध होता है इसी लिये लिङ्ग आदि का ग्रहण है इस शब्द में जो पुरुष व्यक्ति के साथ सामान्य सम्बन्ध है वही प्रा: [illegible] र पुरुषपन अर्थात् स्त्री से अलग होना है यह प्रातिपदिकार्थ [illegible] है ॥

है * इस लिये ग्राम वेद और यज्ञ की कर्म संज्ञा हो के द्वितीया विभक्ति होजाती है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना। अनभिहित का प्रयोजन यह है कि। पठ्यते वेदः। यहां वेद शब्द के अभिहित होने से द्वितीया न हुई ॥ ७ ॥

वा०—† समया निकषा हा प्रति योगेपूपसंख्यानम् ॥ ८ ॥

समया निकषा हा प्रति इन चार अव्ययों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। समया ग्रामम्। निकषा ग्रामम्। हा देवदत्तम्। देवदत्तं प्रति। यहां सर्वत्र देवदत्त और ग्राम शब्द में द्वितीया विभक्ति हुई है ॥ ८ ॥

वा०—अपरआह। द्वितीयाऽभिधानेऽभितः परितः समया निकषाऽध्यधि धिग्योगेपूपसंख्यानम् ॥ ९ ॥

समया और निकषा शब्द पूर्ववार्त्तिक में आचुके हैं इन के उक्त उदाहरण जानने। अभितः परितः अध्यधि धिक् इन शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होवे। अभितो ग्रामम्। परितो ग्रामम्। अध्यधि ग्रामम्। धिग्जाल्मम् ॥ ९ ॥

का०—अपर आह। उभसर्वतसोः कार्य्या धिगुपर्य्यादिषु त्रिषु॥ द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥ १० ॥

उभयतस् सर्वतस् धिक् उपर्य्युपरि अध्यधि अधोधो इन के योग में भी द्वितीया विभक्ति होवे। जैसे। उभयतो ग्रामम्। सर्वतो ग्रामम्। धिग्जाल्मम्। उपर्य्युपरि ग्रामम्। अध्यधि ग्रामम्। अधोऽधोग्रामम्। और इन के योग से अन्यत्र जहां किसी सूत्र वार्त्तिक से द्वितीया विधान न हो वहां भी इसी कारिका के प्रमाण से होती है। जैसे, बुभुक्षितन्न प्रतिभाति किञ्चित् इत्यादि। यहां प्रति के योग में द्वितीया हुई है ॥ १० ॥

---

* जो पदार्थ अत्यन्त इष्ट नहीं होता उस की सिद्धि के लिये शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि आदि की यथार्थ प्रवृत्ति नहीं होती फिर उस की कर्म संज्ञा भी नहीं हो सकती ॥

† यहां अनभिहित कर्म नहीं है इस लिये यह [illegible]

सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ॥ १५ ॥ अ० २ । ३ । ७॥

जो अत्यन्त संयोग अर्थ में दो कारकों के बीच काल और मार्गवाची शब्द हों तो उन से सप्तमी और पञ्चमी विभक्ति हों । अद्य देवदत्तो भुक्त्वा द्व्यहाद् भोक्ता। द्व्यहे भोक्ता इहस्थोऽयमिष्वासः क्रोशाल्लक्ष्यं विध्यति क्रोशे लक्ष्यं विध्यति। इत्यादि ॥ १५ ॥

गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ॥ १६ ॥ अ० २ । ३ । १२ ॥

जिन की चेष्टा क्रिया विदित होती हो ऐसे गत्यर्थक धातुओं के मार्ग रहित अनभिहित कर्म में द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति हों । ग्रामं गच्छति । ग्रामाय गच्छति। ग्राममेति ग्रामायैति † । गत्यर्थक धातुओं का ग्रहण इस लिये है कि । कटं करोति । यहां चतुर्थी न हो । कर्म ग्रहण इस लिये है कि । अश्वेन गच्छति । यहां करण में द्वितीया और चतुर्थी नहीं । चेष्टा ग्रहण इस लिये है कि । मनसा गृहं गच्छति । यहां चेष्टा के न होने से चतुर्थी नहीं होती और अनध्वनि ग्रहण इस लिये है कि । अध्वानं गच्छति । यहां चतुर्थी न हो ॥ १६ ॥

वा०—अध्वन्यर्थग्रहणम् ॥ १७ ॥

अध्व के पर्य्यायवाची शब्दों का भी निषेध में ग्रहण होना चाहिये । जैसे । अध्वानं गच्छति । यहां चतुर्थी नहीं होती वैसे ही । पन्थानं गच्छति । इत्यादि में भी चतुर्थी न हो ॥ १७ ॥

वा०—आस्थितप्रतिषेधश्च ॥ १८ ॥

मार्गवाची मुख्य शब्दों का निषेध होना चाहिये । क्योंकि उत्पथेन पन्थानं गच्छति । पथे गच्छति । † यहां चतुर्थी का निषेध न हो जावे ॥ १८ ॥

† यहां अनभिहित कर्म्म में (कर्म्मणि द्वितीया) इससे द्वितीया ही पाती है उस का यह अपवाद है ॥

मार्गवाची मुख्य शब्द यों नहीं है कि गड़ बड़ ... शुद्ध मार्ग है । शुद्ध मार्ग का चलना गौण है ॥

हो उस की अप्राप्ति अर्थात् जिसका विधान पूर्व अपादान आदि कारकों में कुछ भी न किया हो तो इस सूत्र से कर्म संज्ञा हो। जैसे। गां दोग्धि पयः। याच। पौरवं गां याचते। रुध। गामवरुणद्धि व्रजम्। प्रच्छ। माणवकं पन्थानं पृच्छति। भिक्ष। पौरवं गां भिक्षते। चिञ्। वृक्षमवचिनोति फलानि। ब्रूञ्। पुत्रं धर्मं ब्रूते। शासु। सन्तानं धर्मं शास्ति। प्रश्न। जहां कर्म कारक में लकारादि प्रत्यय विधान हैं वे जहां दो कर्म हों वहां किस कर्म में होने चाहिये ॥ २१ ॥ उत्तर।

का०– कथिते लादयश्चेत्स्युः षष्ठीं कुर्यात्तदा गुणे ॥ अकारकं ह्यकथितात्कारकं चेत्तु नाकथा ॥ २२ ॥

विचार करते हैं कि जो कथित प्रधान कर्म में लकारादि प्रत्यय किये जावें तो गौण अर्थात् अकथित कर्म में षष्ठी विभक्ति होनी चाहिये। जैसे। दुह्यते गोः पयः। याच्यते पौरवस्य कम्बलः। क्योंकि जो अकथित है वह कारक नहीं किन्तु जो कथित है वही कारक है जिस २ में लकारादि प्रत्यय होते हैं उस २ कथित कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है और जो अकथित है कि जिस में किसी विभक्ति की प्राप्ति नहीं उस के शेष होने से वहां षष्ठी हो जाती है ॥ २२ ॥

का०—कारकं चेद्विजानीयाद्यां यां मन्येत सा भवेत् ॥ २३ ॥

और जिस को अकथित जानते हो उस को जो कारक जानो तो जिस २ कारक संज्ञा में उस की प्रवृत्ति हो सकती हो वही विभक्ति उस में करनी चाहिये। जो उस अकथित की अपादान संज्ञा हो सकती हो तो वहां पञ्चमी विभक्ति करनी चाहिये। जैसे। दुह्यते गोः पयः। याच्यते पौरवात्कम्बलः ॥ २३ ॥

पूर्वकारिका से जो कथित कर्म में लकारादि प्रत्ययों का विधान किया सो किसी २ का मत है। अब तीसरी कारिका से पाणिनि जी का मत दिखलाते हैं ॥

कथितेऽभिहिते त्वविधिस्त्वमतिर्गुणकर्मणि लादिविधिः स द्युव्रचेष्टितयुक्तिषु चाप्यगुणे तदनल्पमतेर्वचनं स्मरत ॥ २४ ॥

कथित कर्म में लकारादि प्रत्यय होते हैं यह तुम्हारी बुद्धि से तुमने विधान । परन्तु पाणिनि जी के मत से तो गौण अर्थात् अकथित कर्म में लका-

संकेत उन लोगों की ओर है कि जिन का मत प्रथम कारिका में क- दि प्रत्ययों का होना दिखलाया है ॥

रादि प्रत्यय होने चाहिये जैसे (गतिबुद्धि०) इस आगे के सूत्र में गौण कर्म में लकारादि प्रत्यय होते हैं वैसे यहां भी हों । गौर्दुह्यते पयः । गौर्दोग्धव्या पयः । गौर्दुग्धा पयः । गौःसुदोहा पयः । इत्यादि । जहां अप्रधान गौ कर्म में लकारादि प्रत्यय होते हैं वहां अभिहित होने से प्रथमा और पयः के अनभिहित होने से द्वितीया विभक्ति होती है । तथा (ध्रुवयुक्ति) अकर्मक और (चेष्टितयुक्ति) गत्यर्थक धातुओं के (अगुणे) कथित कर्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहिये । जैसे अकर्मक--आसितव्यो देवदत्तो यज्ञदत्तेन । गत्यर्थक । अजा नेतव्या ग्रामम् । महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि कहते हैं कि हे वैयाकरण लोगो ! अगाध बुद्धि वाले पाणिनि आचार्य्य का यह मत है तुम लोग जानो । अब जो मत अन्य बहुत आचार्य्यों का है सो चौथी कारिका से दिखाते हैं ॥ २४ ॥

का०-प्रधानकर्मण्याख्येये लादीनाहुर्द्विकर्मणाम् ॥ अप्रधाने दुहादीनां ण्यन्ते कर्तुश्च कर्मणः ॥ २५ ॥

जो द्विकर्मक धातु हैं उनके प्रधान कथित कर्म्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहिये । जैसे । अजां नयति ग्रामम् । अजा नीयते ग्रामम् । अजा नीता ग्रामम् । यहां प्रधान कथित अजा कर्म्म है उस में लकारादि के होने से प्रथमा विभक्ति और ग्राम में अनभिहित होने से द्वितीया होती है । तथा दुहादि अर्थात् जो धातु प्रथम कारिका में गिनाये हैं उन के अकथित अर्थात् गौण कर्म्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहिये इस के उदाहरण दे चुके हैं और ण्यन्तावस्था में जिन धातुओं के जिस कर्त्ता की कर्म्म संज्ञा होती है । उन के उसी कर्म्म में लकारादि प्रत्यय होने चाहिये । जैसे । यज्ञदत्तो गच्छति ग्रामम् । यहां यज्ञदत्त गमधातु का प्रथम स्वतन्त्र कर्त्ता और ग्राम कर्म है। जब उस का ण्यन्तावस्था में प्रयोजक कर्त्ता देवदत्त होता है तब यज्ञदत्त की कर्म्म संज्ञा हो जाती है । देवदत्तो यज्ञदत्तं ग्रामं गमयति । यहां अप्रधान यज्ञदत्त है उसी में लकार होने से । देवदत्तेन यज्ञदत्तो ग्रामङ्गम्यते । यहां गौण कर्म्म यज्ञदत्त में प्रथमा विभक्ति होती है और ग्राम में द्वितीया होजाती है । यह चौथी कारिका में जो लकारादि प्रत्यय विधान में व्यवस्था की है सो बहुत ऋषि लोगों का सिद्धान्त है । इससे यही व्यवस्था सब से बलवान् है ॥ २५ ॥

जो प्रथम कारिका में कहे हैं उन से भिन्न द्विकर्मक धातु कितने हैं सो पांचवीं कारिका से दिखाते हैं ॥

न्तावस्था में कर्म संज्ञक होवे। पश्यति रूपतर्कः कार्षापणम्। दर्शयति रूपतर्कं कार्षापणम्। यहां रूपतर्क शब्द की कर्म्म संज्ञा होती है ॥ ३१ ॥

वा०—आदिखादिनीवहीनां प्रतिषेधः ॥ ३२ ॥

आदि खादि इन दो धातुओं के प्रत्यवसानार्थ होने और नी वहि इन दो के गत्यर्थक होने से कर्म्म संज्ञा प्राप्त है इस लिये प्रतिषेध किया है। अद। अत्ति देवदत्तः। आदयति देवदत्तेन। यहां अण्यन्त धातु के कर्त्ता देवदत्त की कर्म्म संज्ञा न होने से द्वितीया विभक्ति न हुई ॥ ३२ ॥

तथा बहुत आचार्य्यों का ऐसा मत है कि ॥

अपर आह। वा०—सर्वमेव प्रत्यवसानकार्यमदेर्न भवतीति वक्तव्यं परस्मैपदमपि। इदमेकमिष्यते। क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्य इति ॥ ३३ ॥

प्रत्यवसानार्थ धातुओं को जितना कार्य होता है उस में से अद धातु को कुछ भी न हो। तथा निगरणार्थ मान के जो परस्मैपद * प्राप्त है वह भी न हो। अत्ति देवदत्तः। आदयते देवदत्तेन। यहां आत्मने पद होता है। प्रत्यवसानार्थ का एक कार्य अद धातु को होना चाहिये (इदमेषां जग्धम् †) खादति देवदत्तः। खादयति देवदत्तेन। यहां भी अणि के कर्ता देवदत्त शब्दकी कर्म्म संज्ञा न हुई। नी। नयति भारं देवदत्तः। नाययति भारं देवदत्तेन। यहां नी धातु के कर्ता देवदत्त की कर्म्म संज्ञा न होने से उस में द्वितीया न हुई। वह। वहति भारं देवदत्तो वाहयति भारं देवदत्तेन। यहां सर्वत्र णिच् में कर्ता की कर्म्म संज्ञा नहीं होती परन्तु वह धातु में इतना विशेष है कि ॥ ३३ ॥

---

* परस्मैपद (निगरणचलनार्थेभ्यश्च) ॥ अ० १। ३। ८७ ॥ इस सूत्र में निगरणार्थ शब्द प्रत्यवसानार्थ का पर्य्याय वाची है और प्रत्यवसान तथा निगरण इन दोनों का शब्द भेद होने से (परस्मैपदमपि) यह कहा है नहीं तो प्रत्यवसान के कहने से हो ही जाता ॥

† (जग्धम्) यहां अद धातु के प्रत्यवसानार्थ होने से अधिकरण कारक में क्त प्रत्यय विधान है सो प्रत्यवसान से सब कार्य्यों के निषेध में इस का भी निषेध पाया था (एषाम्) यह कर्म्म में षष्ठी और (जग्धम्) अधिकरण में क्त प्रत्यय है [illegible] निषेध का निषेध किया है ॥

मास प्रथम कर्म है आणि के कर्त्ता देवदत्त की कर्म संज्ञा होके द्वितीया वि
हो गई है॥ ३६ ॥

हृक्रोरन्यतरस्याम् ॥ ३७ ॥ अ० १ । ४ । ५३ ॥

हृ और कृ धातु का जो अणयन्तावस्था का कर्त्ता है वह णयन्तावस्था में वि
ल्प करके कर्म संज्ञक हो। जैसे अभ्यवहारयति सैंधवान्सैन्धवैर्वा । विकारयति सैन्धवा
सैन्धवैर्वा ꠶ ॥ ३७ ॥

वा०—हृक्रोर्वावचनेऽभिवादिदृशोरात्मनेपद उपसंख्यानम्॥३८॥

जो अभि पूर्वक वद् और दृश धातु का अणि में कर्त्ता है वह णयन्तावस्था मे
कर्म संज्ञक विकल्प करके हो आत्मने पद में । जैसे । अभिवदति गुरुं देवदत्तः । अभि
वादयते गुरुं देवदत्तेन देवदत्तं वा । पश्यन्ति भृत्या राजानं दर्शयते भृत्यैराजा दर्शयते
भृत्यान् राजा । यहां अभि पूर्वक वद धातु शब्दकर्मक और दृश धातु बुद्ध्यर्थक है वहां
तो पूर्व सूत्र से कर्म संज्ञा प्राप्त थी । अन्य अर्थ में नहीं । इस वार्तिक से सर्वत्र वि-
कल्प करके हो जाती है इसी से यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा कहाती है ॥ ३८ ॥

(कारक ३ तीसरा)

साधकतमं करणम् ॥ ३९ ॥ अ० १ । ४ । ४२ ॥

जो क्रिया की सिद्धि करने में मुख्य साधक हो वह कारक करण संज्ञक हो
इसका फल ॥ ३९ ॥

कर्त्तृकरणयोस्तृतीया ॥ ४० ॥ अ० । २ । ३ । १८ ॥

अनभिहित कर्त्ता और करण कारक में तृतीया विभक्ति हो, कर्त्ता जैसे । देवद
त्तेन कृतम् । देवदत्तेन क्रियते । देवदत्त ने किया यहां देवदत्त कर्त्ता और दात्रे

꠶ धातुओं के अनेकार्थ होने से कई अर्थों में कर्मसंज्ञा प्राप्त है और कई में नहीं।
जैसे । अभ्यव और आङ् पूर्वक हृ धातु प्रत्यवसानार्थक है वहां प्राप्त है अन्यत्र नहीं
तथा विपूर्वक कृ धातु शब्दकर्मक और कहीं अकर्मक है यहां प्राप्त अन्यत्र अप्राप्त इस
प्रकार यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है।

संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि * ॥ ४५ ॥ अ० २ । ३ । २२ ॥

संपूर्वक ज्ञा धातु के अनभिहित कर्म में तृतीया विभक्ति विकल्प कर के होवे। पक्ष में द्वितीया हो । मात्रा संजानीते बालः । मातरं संजानीते बालः ॥ ४५ ॥

हेतौ ॥ ४६ ॥ अ० २ । ३ । २३ ॥

हेतु वाची शब्द में तृतीया विभक्ति हो । विद्यया यशः † विद्या से कीर्त्ति होती और । धनेन दानम् । धन से दान होता है इत्यादि ॥ ४६ ॥

वा०—निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायदर्शनम् ॥ ४७ ॥

निमित्तकारण और हेतु इन तीन शब्दों और इन के संबन्धी शब्दों से सब विभक्ति बहुल करके होती हैं । जैसे । किं निमित्तं वसति । पठति । गच्छति । आयाति । करोति । तिष्ठति । इत्यादि । केन निमित्तेन । कस्मै निमित्ताय । कस्मान्निमित्तात्। कस्य निमित्तस्य । कस्मिन्निमित्ते च । कारण । जैसे । किङ्कारणम् । केन कारणेन। कस्मै कारणाय । कस्मात् कारणात् । कस्य कारणस्य । कस्मिन् कारणे च वसति। हेतु । को हेतुः । कं हेतुम् । केन हेतुना । कस्मै हेतवे । कस्माद्धेतोः । कस्य हेतोः। कस्मिन् हेतौ च वसतीत्यादि ‡ ॥ ४७ ॥

अकर्त्तर्य्यृणे पञ्चमी ॥ ४८ ॥ अ० २ । ३ । २४ ॥

ऋण अर्थ में कर्त्ता भिन्न हेतु वाची शब्दों से पञ्चमी विभक्ति हो । जैसे। (शताद्बद्धः) इत्यादि । ऋणी को सौ रुपये ऋण होने के कारण ऋण वाले ने बांधा । यहां अकर्त्तरि ग्रहण इस लिये है कि । शतेन बन्धितः । यहां सौ रुपयों से

---

* यहां अनभिहित कर्म में द्वितीया ही प्राप्त है तृतीया नहीं इस कारण यह अप्राप्त विभाषा है । और उसी द्वितीया का अपवाद यह तृतीया समझी जाती है पक्ष में द्वितीया भी होती है ॥

† हेतु उस को कहते हैं कि जिसके साथ जिसका प्रयोग हो उसका निमित्त कारण समझा जावे यहां भी विद्या यश का निमित्त कारण है ॥

‡ निमित्त कारण और हेतु शब्दों से सब वचन यथायोग्य सब कर्त्ता और क्रिया भी होती हैं परन्तु मुख्य प्रयोजन आप्त लोगों के प्रयोग विषय में साधुत्व करने के लिये यह वचन है ॥

बंधवाया । इस प्रयोजक कर्त्ता की विवक्षा होने से पञ्चमी विभक्ति न हुई ॥ ४८ ॥

विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् ॥ ४९ ॥ अ० २ । ३ । २५ ॥

स्त्रीलिङ्ग को छोड़ के पुलिङ्ग वा नपुंसक लिङ्ग में वर्तमान जो गुण वाची हेतु शब्द उस से विकल्प करके पञ्चमी विभक्ति हो । जैसे । मौढ्याद्बद्धः । मौढ्येन बद्धः । इत्यादि । यह मूर्ख जन अपनी मूर्खता से आप ही बंधा है । यहां स्त्री लिङ्ग का निषेध इस लिये किया है कि । प्रज्ञया मुक्तः । इत्यादि । यहां पंचमी विभक्ति न हो ॥ ४९ ॥

षष्ठी हेतुप्रयोगे ॥ ५० ॥ अ० २ । ३ । २६ ॥

हेतु शब्द के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति हो । जैसे । विद्याया हेतोर्गुरुकुले वसति इत्यादि । विद्या ग्रहण के हेतु से यह ब्रह्मचारी गुरुकुल में बसता है ॥ ५० ॥

सर्वनाम्नस्तृतीया च ॥ ५१ ॥ अ० २ । ३ । २७ ॥

सर्वनाम वाची विशेषण सहित हेतु शब्द के प्रयोग में तृतीया और षष्ठी विभक्ति हों । जैसे । केन हेतुना कस्य हेतोर्वा वसति । इत्यादि यह जन किस हेतु से बसता है ॥ ५१ ॥ अब करण संज्ञा में जो विशेष सूत्र है सो लिखते हैं ॥

दिवः कर्म च ॥ ५२ ॥ अ० १ । ४ । ४३ ॥

* पूर्व सूत्र से नित्य करण संज्ञा प्राप्त थी उस का बाधक यह सूत्र है । जो दिवु धातु के प्रयोग में साधकतम अर्थात् क्रिया की सिद्धि में मुख्य हेतु कारक है वह कर्म संज्ञक और चकार से करण संज्ञक भी हो । जैसे । अक्षानक्षैर्वा दीव्यति इत्यादि । † पासों से खेलता है ॥ ५२ ॥

परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् ॥ ५३ ॥ अ० १ । ४ । ४४॥

---

* (पूर्वसूत्र) साधकतमं करणम् ॥

† इत्यादि सूत्रों के उदाहरणों में केवल करण संज्ञा होके तृतीया विभक्ति प्राप्त थी उस के ये सूत्र अपवाद हैं बहुव्यापक उत्सर्ग और अल्प व्यापक अपवाद संज्ञक, उत्सर्ग सूत्रों ही के विषय में अपवाद सूत्र प्रवृत्त होते और अपवाद सूत्रों के विषय में उत्सर्ग सूत्र प्रवृत्त नहीं होते किन्तु अपवाद विषयों को छोड़ के उत्सर्ग सूत्रों की प्रवृत्ति होती है ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये ॥

यहां भी (साधक०) इस पूर्व सूत्र से नित्य करण संज्ञा पाती थी सो
से करण और पक्ष में संप्रदान संज्ञा की है। परिक्रयण अर्थात् जो सब प्रक
रीदने अर्थ में साधकतम कारक है वह संप्रदान संज्ञक विकल्प करके हो औ
में करण संज्ञक हो। जैसे। शताय शतेन वा परिक्रीणाति। इत्यादि सौ रुपैयों
रीदता है ॥ ५३ ॥ (कारक ४ चौथा)

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ॥ ५४ ॥ अ० १। ४। ३

अत्यन्त इष्ट पदार्थ समझ के जिस के लिये देने का अभिप्राय किया जाय
कारक संप्रदान संज्ञक होवे। इसका फल ॥ ५४ ॥

चतुर्थी संप्रदाने ॥ ५५ ॥ अ० २। ३। १३ ॥

संप्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति हो जैसे। शिष्याय विद्यां ददाति *। इत्यादि
आचार्य शिष्य को विद्या देता है ॥ ५५ ॥

वा०—†चतुर्थीविधाने तादर्थ्य उपसंख्यानम् ॥ ५६ ॥

तादर्थ्य अर्थात् जिस कार्य के लिये कारण वाची शब्द का प्रयोग किया हो उ
कार्य वाची शब्द से चतुर्थी विभक्ति होवे। जैसे। यूपाय दारु। कुण्डलाय हिरण्य
म्। इत्यादि। यह खंभा के लिये काष्ठ और कुंडल के लिये सोना है ॥ ५६ ॥

वा०—क्लृपि संपद्यमाने ॥ ५७ ॥

जो क्लृप धातु का उत्पन्न होने वाला कारक है उस में चतुर्थी विभक्ति हो जैसे।
मूत्राय कल्पते यवागू। विद्यायै कल्पते बुद्धिमान्। इत्यादि। मूत्र के उत्पन्न करने
में यवागू। और विद्या पढ़ने के लिये बुद्धिमान् समर्थ होता है ॥ ५७ ॥

वा०—उत्पातेन ज्ञाप्यमाने ॥ ५८ ॥

---

* यहां अत्यन्त इष्ट पदार्थ विद्या है इसी से उस की कर्म संज्ञा हो के द्विती-
[illegible]। और विद्या जिस शिष्य के लिये देने का अभिप्राय है उसी की संप्रदान
चतुर्थी होती है ॥

† से आगे चतुर्थी विधान प्रकरण में जितने सूत्र वार्त्तिक लिखें गे उन में
होने से चतुर्थी प्राप्त नहीं क्योंकि यहां कर्म से किसी का अभि-
इसी लिये यह सब [illegible] है ॥

आकाश से बिजली के चमकने और ओले पत्थर आदि गिरने को उत्पात कहते हैं। उस उत्पात से जो बात जानी जावे वहां चतुर्थी विभक्ति होवे जैसे—वाताय कपिला विद्युदातपायाति लोहिनी। कृष्णा सर्वविनाशाय दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ॥ १ ॥ पीली बिजली जो चमके तो वायु अधिक चले इत्यादि ॥ ५८ ॥

वा०—हितयोगे च ॥ ५९ ॥

हित शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति हो। जैसे। हितमरोचकिने पाचनम्। इत्यादि। जिस की रुचि भोजन पर न हो उस के लिये पाचन ओषध हित कारी है ॥५९॥

क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः ॥ ६० ॥ अ० २।३।१४ ॥

अनभिहित कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति पाती थी उस का अपवाद यह सूत्र है। जहां क्रिया के लिये क्रिया हो वहां अप्रयुज्यमान धातु के अनभिहित कर्म कारक में चतुर्थी विभक्ति हो जैसे (वृकेभ्यो व्रजति) वृकान् हन्तुं व्रजति। इत्यादि। भेड़ियों को मारने जाता है यहां जो वृकों को मारना क्रिया है सो हन धातु अप्रयुज्यमान है। यहां कर्म ग्रहण इस लिये है कि। (वृकेभ्यो व्रजत्यश्वेन) अश्व शब्द में चतुर्थी न हो। और स्थानिग्रहण इस लिये है कि। वृकान् हन्तुं व्रजति। यहां प्रयुज्यमान के होने से चतुर्थी विभक्ति नहीं हुई ॥ ६० ॥

तुमर्थाच्च भाववचनात् ॥ ६१ ॥ अ० । २ । ३ । १५ ॥

जहां अप्रयुज्यमान क्रियार्थोपपद धातु के कर्म का वाची तुमर्थभाववचन प्रातिपदिक हो वहां उस से चतुर्थी विभक्ति हो। जैसे। इष्टये व्रजति *। इष्टिं कर्त्तुं व्रजति। इत्यादि। पौर्णमासी आदि में होम करने को जाता है। यहां तुमर्थ ग्रहण इस लिये है कि। पाकं करोति। यहां चतुर्थी न हो ॥ ६१ ॥

नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधाऽलं वषड्योगाच्च ॥ ६२ ॥

अ० २ । ३ । १६ ॥

नमस्, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, और वषट्, इन शब्दों के योग में चतुर्थी

* यहां इष्टि शब्द क्रियार्थोपपद करोति धातु का भाव वचन कर्म है और व्रजन क्रिया इष्टि संपादन के लिये है इसी से इस को क्रियार्थो क्रिया कहते हैं।

विभक्ति होवे । नमस्ते रुद्र मन्यवे । स्वस्ति शिष्याय । अग्नये स्वाहा । स्वधा पितृ
अलं मल्लो मल्लाय । वषडिन्द्राय । इत्यादि † ॥ ६२ ॥

वा०-अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणं कर्तव्यम् ॥ ६३ ॥

अलं शब्द से सामर्थ्य वाचक का ग्रहण होना चाहिये । क्योंकि ‡ । अलं
ते कन्याम् । यहां भूषण अर्थ में चतुर्थी विभक्ति न हो और प्रभुर्मल्लो मल्ला
प्रभवति मल्लो मल्लाय । यहां अलं के पर्याय वाची प्रभु और प्रभवति शब्द के
ग में भी चतुर्थी विभक्ति हो जावे ॥ ६३ ॥

मन्य*कर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ॥ ६४ ॥
अ० २ । ३ । १७ ॥

इस सूत्र में मन्य निर्देश दिवादि गण के मन धातु का किया है । जहां मन्य
धातु के अप्राणि वाची अनभिहित कर्म में तिरस्कार अर्थ विदित होता हो तो वहां
विकल्प कर के चतुर्थी विभक्ति हो पक्ष में द्वितीया । त्वां तृणं मन्ये । त्वां तृणाय म
न्ये । इत्यादि–मैं तुझ को तृण की तुल्य मानता हूं यह तिरस्कार है । यहां दिवादि
विकरण के ग्रहण से । (त्वां तृणं मन्वे) यहां चतुर्थी नहीं होती । यहां मन्य कर्म
ग्रहण इस लिये है कि (त्वां तृणं जानामि) यहां चतुर्थी न हो । अनादर ग्रहण
इस लिये है कि (वाचं मन्ये सरस्वतीम्) यहां चतुर्थी न हो और अप्राणि ग्रहण इस

† प्राण के लिये (नमः) अन्न । अग्नि में (स्वाहा) संस्कृत हवि । पितरों
अर्थात् पिता आदि ज्ञानियों से (स्वधा) अर्थात् अपने योग्य सुशिक्षा । मल्ल को
जीतने में मल्ल ही समर्थ । इन्द्र बिजली की विद्या ग्रहण करने के लिये उत्तम क्रिया
अच्छी होती है ॥

‡ पूर्व सूत्र में जो अलं -शब्द पढ़ा है उसी का शेष यह वार्तिक है । अ
शब्द के चार अर्थ हैं । भूषण । पर्याप्ति अर्थात्सामर्थ्य, समाप्ति और निषेध । इ
न सब अर्थों में इस के योग में चतुर्थी प्राप्त थी सो नियम हो गया कि पर्याप्ति अर्थ
हो तो और सामर्थ्य वाची शब्दों के योग में भी हो जावे ॥

लिये है कि (काकं मन्ये त्वाम्) इत्यादि में चतुर्थी विभक्ति न हो ॥ ६४ ॥

वा०—मनावादिष्विति वक्तव्यम् ॥ ६५ ॥

जो इस सूत्र में अप्राणी का ग्रहण किया है उस के स्थान में वार्तिक रूप अनावादिषु ऐसा न्यास करना चाहिये । क्योंकि कहीं २ प्राणी वाची मन्य धातु के कर्म्म में भी चतुर्थी होती है । जैसे । न त्वा श्वानं मन्ये। न त्वा शुने मन्ये । इत्यादि । मैं तुझे कुत्ते के समान भी नहीं मानता ॥ ६५ ॥ संप्रदान संज्ञा में कर्म ग्रहण इस लिये है कि (स्नातकाय कन्यां ददाति) इत्यादि । ब्रह्मचर्य्यव्रत से पूर्णविद्या पढ़े हुए सुशील पुरुष को कन्या देता है । यहां कन्या की संप्रदान संज्ञा न हो जावे । यं और स इन दो शब्दों का ग्रहण इस लिये है कि । अप्राप्त की संप्रदान संज्ञा न हो जावे । तथा अभि और प्र ग्रहण इस लिये हैं कि सब काल में संप्रदान संज्ञा हो जावे । अर्थात् दिया था देता है और देगा अन्यथा अभि प्र न हों तो वर्तमान काल ही में संप्रदान संज्ञा होती अन्यत्र नहीं ॥ ६५ ॥

वा०—कर्मणः करणसंज्ञा वक्तव्या संप्रदानस्य च कर्मसंज्ञा ॥ ६६ ॥

इस वार्तिक से कर्म्म की तो करण और संप्रदान की कर्म संज्ञा होती है। जैसे । पशुना रुद्रं यजेत । पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः । इत्यादि । रुद्र अर्थात् मध्य विद्वान् को पशु देता है । यहां पशु तो कर्म है उस की करण संज्ञा होके तृतीया विभक्ति हो गई। रुद्र नाम किसी मध्यम विद्वान् को पशु देता है ॥ ६६ ॥

रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ॥ ६७ ॥ अ० १ । ४ । ३३ ॥

जो रुच्यर्थक धातुओं के प्रयोग में तृप्त होने वाला कारक है वह संप्रदान संज्ञक हो । जैसे-ब्रह्मचारिणे रोचते विद्या । इत्यादि । ब्रह्मचारी अर्थात् नियम पूर्वक विद्या पढ़ने वाला मनुष्य विद्या से प्रसन्न और तृप्त होता है यहां प्रीयमाण ग्रहण इस लिये है कि । विद्या शब्द की संप्रदान संज्ञा न हो ॥ ६७ ॥

श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः ॥ ६८ ॥ अ० १ । ४ । ३४ ॥

श्लाघ ह्नुङ् स्था और शप इन धातुओं के प्रयोग में जिस को जानने की इच्छा

की जावे वह कारक संप्रदान संज्ञक होवे । जैसे--पुत्राय श्लाघते । जाराय न्हुते । द्यायै तिष्ठते । दुष्टाय शपते * । इत्यादि यह स्त्री पुत्र की प्रशंसा । व्यभिचारी दूर करती । विद्या के लिये खड़ी । और दुष्ट को शाप देती । यहां ज्ञीप्स्यमानग्रह इस लिये है कि जिस को जनावे उसी की संप्रदान संज्ञा होवे धर्म की न हो जाय जैसे । पिता पुत्राय धर्म श्लाघते । इत्यादि ॥ ६८ ॥

धारेरुत्तमर्णः ॥ ६९ ॥ अ० १ । ४ । ३५ ॥

जो किसी को ऋण देवे वह उत्तमर्ण कहाता है । जो णयन्त धृ धातु के प्रयोग में उत्तमर्ण कारक है वह संप्रदान संज्ञक हो । जैसे । (देवदत्ताय शतं सहस्रं वा धारयति) इत्यादि । देवदत्त के सौ वा हजार रुपैये ऋण यज्ञदत्त धराता है। यहां देवदत्त ऋण का देने वाला होने से उत्तमर्ण और यज्ञदत्त लेने वाला होने से अधमर्ण कहाता है। यहां शेष कारक के होने से षष्ठी विभक्ति पाती थी उस का अपवाद संप्रदान संज्ञा के चतुर्थी विभक्ति हो जाती है । उत्तमर्ण ग्रहण इस लिये है कि उस सौ वा हजा की संप्रदान संज्ञा न होजाय ॥ ६९ ॥

स्पृहेरीप्सितः ॥ ७० ॥ अ० १ । ४ । ३६ ॥

जो स्पृह धातु के प्रयोग में ईप्सित अर्थात् जिस पदार्थ के ग्रहण की इच्छा होती है वह संप्रदान संज्ञक हो । जैसे (धनाय स्पृहयति) इत्यादि। भोगी मनुष्य धन मिलने की इच्छा करता है । यहां धन उस को इष्ट है इस से धन की संप्रदान संज्ञा हो के चतुर्थी विभक्ति हो गई । ईप्सित ग्रहण इस लिये है कि भोग के कर्त्ता की संप्रदान संज्ञा न हो जाय ॥ ७० ॥

† क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः ॥ ७१ ॥ अ० । १ । ४ । ३७ ॥

क्रुध, द्रुह, ईर्ष्य, असूय, इन के तुल्यार्थ धातुओं के प्रयोग में जिस के प्रति कोप किया जाय वह कारक संप्रदान संज्ञक हो । जैसे । क्रुध, । दुष्टाय क्रुध्यति । द्रुह । ...रे द्रुह्यति । ईर्ष्य । सपत्न्यार्ईर्ष्यति । असूय । विदुषेऽसूयति ... दुष्ट पर क्रोध

* यहां दुष्ट को पुकारना है वह उसी को ...

† यह सूत्र कर्मसंज्ञा का अपवाद है ॥

शत्रु से द्रोह । स्वपति की दूसरी स्त्री से अप्रीति और मूर्ख जन विद्वान् की निन्दा करता है । यहां जिस के प्रति कोप हो इस का ग्रहण इस लिये है कि (भिक्षुको भिक्षुकमीर्ष्यति) इत्यादि में संप्रदान संज्ञा न हो ॥ ७१ ॥

क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म ॥ ७२ ॥ अ० १ । ४ । ३८ ॥

पूर्व से संप्रदान संज्ञा प्राप्त थी उस का बाधक यह सूत्र है । उपसर्ग युक्त क्रुध और द्रुह धातु के प्रयोग मे जिस के प्रति कोप हो वह कारक कर्म संज्ञक हो । जैसे दुष्टमभिक्रुध्यत्यभिद्रुह्यति वा । इत्यादि । यहां उपसर्ग युक्त का ग्रहण इस लिये है कि । दुष्टाय क्रुध्यति द्रुह्यति वा । इत्यादि में कर्म संज्ञा न हो जाय ॥ ७२ ॥

राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः ॥ ७३ ॥ अ० १ । ४ । ३९ ॥

राध और ईक्ष धातु के प्रयोग में जिस का विविध प्रकार का प्रश्न हो वह कारक संप्रदान संज्ञक हो । जैसे । (शिष्याय विद्या राध्नोति–ईक्षते वा गुरुः) इत्यादि आचार्य विद्यार्थी के लिये विद्या को सिद्ध और प्रत्यक्ष कराता है यहां राध और ईक्ष धातु का ग्रहण इस लिये है कि इन के योग से अन्यत्र संप्रदान संज्ञा न हो । यस्य ग्रहण इस लिये है कि विप्रश्न की संप्रदान संज्ञा न हो जावे ॥ ७३ ॥

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता ॥ ७४ ॥ अ० १ । ४ । ४० ॥

जो प्रति और आङ् पूर्वक श्रु धातु के प्रयोग में पूर्व का कर्त्ता कारक हो वह संप्रदान संज्ञक होवे, जैसे । पूर्व देवदत्तो विद्यां याचते । देवदत्ताय विद्यां प्रतिशृणोत्याशृणोति वा विद्वान् । इत्यादि । प्रथम देवदत्त विद्या को चाहता है उस को विद्वान् सुनाता है पूर्वस्य ग्रहण इस लिये है कि विद्वान् की संप्रदान संज्ञा न हो जावे यहां प्रति और आङ् का ग्रहण इस लिये है कि ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा और आरम्भ से अन्त तक पढ़ना और पढ़ाना चाहिये ॥ ७४ ॥

अनुप्रतिगृणश्च ॥ ७५ ॥ अ० १ । ४ । ४१ ॥

जो अनु और प्रति पूर्वक गृ धातु के प्रयोग में पूर्व का कर्त्ता कारक हो तो वह सम्प्रदान संज्ञक हो जैसे । [illegible] विद्यामनुगृणाति प्रतिगृणाति वा इत्यादि [illegible] के लिये विद्या का उपदेश करता इस सूत्र में चकार पूर्व के कर्त्ता की अनुवृत्ति के लिये है । यह संप्रदान कारक पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

कारक ५ पांचवां ॥

ध्रुवमपायेऽपादानम् ॥ ७६ ॥ अ० । १ । ४ । २४ ॥

ध्रुव उस को कहते हैं कि जो पदार्थों के पृथक् होने में निश्चल रहे वह कारक अपादान संज्ञक हो । इस का फल ॥ ७६ ॥

अपादाने पञ्चमी ॥ ७७ ॥ अ० । २ । ३ । २८ ॥

अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति हो। जैसे—ग्रामादागच्छति । वृक्षात्पर्णं पतति । इत्यादि । ग्राम से मनुष्य आता है। वृक्ष से पत्ते गिरते हैं यहां ग्राम और वृक्ष निश्चल हैं उन में पञ्चमी हो जाती है (प्रश्न) जहां वियोग के बीच में दोनों चलायमान हों वहां किस की अपादान संज्ञा समझनी चाहिये । जैसे रथात्प्रवीतात्पतितः । धावतस्त्रस्ताद्वाऽश्वात्पतितः।भागते हुए रथ से गिरा।भागते वा डरते हुए घोड़े से गिरा। यहां रथ और घोड़े की अपादान संज्ञा नहीं होनी चाहिये क्योंकि वे तो चलायमान और गिरा हुआ मनुष्य निश्चल होता है । उत्तर । जिस रथ वा घोड़े के स्थल पीठ से गिरता है वह निश्चल है उसकी अपादान संज्ञा की है ॥ ७७ ॥

वा०—पञ्चमीविधाने ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम् ॥ ७८ ॥

जहां ल्यबन्त क्रिया का लोप हो वहां उस के कर्म में पंचमी विभक्ति हो । जैसे । * प्रासादात्प्रेक्षते । प्रासादमारुह्य प्रेक्षते । यहां ल्यबन्त आरुह्य क्रिया का लोप हुआ है उस के प्रसाद कर्म में पंचमी विभक्ति होती है ॥ ७८ ॥

वा०—अधिकरणे च ॥ ७९ ॥

जो ल्यबन्त क्रिया का लोप होतो उस के अधिकरण में पञ्चमी विभक्ति हो । जैसे । आसनात्प्रेक्षते । आसन उपविश्य प्रेक्षते । शयनात्प्रेक्षते इत्यादि। आसन और शय्या पर बैठके देखता है । यहां शयन और आसन उपविश्य क्रिया के अधिकरण हैं । उन में सप्तमी की प्राप्ति होने से उसी का यह अपवाद है ॥ ७९ ॥

वा०— प्रश्नाख्यानयोश्च † ॥ ८० ॥

---

* यहां अपादान संज्ञा के न होने से पञ्चमी किसी सूत्र से प्राप्त नहीं थी किन्तु कर्म में द्वितीया प्राप्त थी उस का यह अपवाद है ॥

† यहां से ले के आगे इस पंचमी विधान प्रकरण में जितने सूत्र वार्त्तिक लिखे हैं वे सब अपूर्व विधायक समझने चाहिये क्योंकि वहां किसी से कोई विभक्ति का विधान नहीं किया है ॥

प्रश्न और आख्यान वाची शब्द से पञ्चमी विभक्ति हो। जैसे। कुतो भवान् पाटलिपुत्राद्वसाति। यहां कुतः शब्द में प्रश्न वाची के होने से और पाटलिपुत्र शब्द में आख्यान के होने से पञ्चमी विभक्ति हुई है ॥ ८० ॥

वा०–यतश्चाध्वकालनिर्माणम् ॥ ८१ ॥

जहां से मार्ग और काल का परिमाण किया जाय वहां पञ्चमी विभक्ति हो। मार्गनिर्माण। जैसे। गवीधुमत. सांकाश्यं चत्वारि योजनानि। गवीधुमान् नगर से सांकाश्य नगर चार योजन सोलह कोश दूर है। यहां गवीधुमान् से मार्ग का परिमाण होने से वहां पंचमी विभक्ति हो गई। काल निर्माण। कार्त्तिक्या आग्रहायणीमासे। यहां कार्त्तिकी शब्द में पञ्चमी विभक्ति हो गई ॥ ८१ ॥

वा०–तद्युक्तात्कालेसप्तमी ॥ ८२ ॥

जो काल के निर्माण में पञ्चमी विभक्ति की है उस से उत्तर कालवाची शब्द से सप्तमी विभक्ति हो। जैसे। कार्त्तिक्या आग्रहायणीमासे। यहां मास शब्द में सप्तमी हुई है ॥ ८२ ॥

वा०–अध्वनः प्रथमा च ॥ ८३ ॥

मार्ग के निर्माण में जो पञ्चमी विभक्ति की है उस से उत्तर मार्ग वाची शब्द से प्रथमा और सप्तमी दोनों विभक्ति हों। जैसे। गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि। गवीधुमतः सांकाश्यं चतुर्षु योजनेषु। यहां मार्ग वाची योजन शब्द से प्रथमा और सप्तमी विभक्ति हुई हैं ॥ ८३ ॥

अन्याराादितरर्त्तेदिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ॥ ८४ ॥
अ० । २ । ३ । २९ ॥

अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिशावाची शब्द। अञ्चूत्तरपद। आच् और आहि प्रत्ययान्त अव्यय। इन शब्दों के योग में पंचमी विभक्ति होवे। जैसे (अन्य) अन्यो देवदत्ताद्यज्ञदत्तः (आरात्) आराच्छूद्राद्ब्राह्मणः (इतर) स्वस्मादितरं न गृह्णीयात् (ऋते) ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः (दिग्वाचीशब्द) पूर्वो ग्रामात्कूपः (अञ्चूत्तरपद) प्राग्ग्रामात् तड़ागम् (आच्) दक्षिणा कूपाद्वृत्तः। आहि। दक्षिणाहि ग्रामात् दी इत्यादि। यहां दिक् शब्द के ग्रहण से अञ्चूत्तरपद के उदाहरण भी सिद्ध हो जाते फिर अञ्चूत्तरपद ग्रहण इस लिये है कि आगे के सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त है उस को बाध कर पञ्चमी ही हो जावे ॥ ८४ ॥

षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ॥ ८५ ॥ अ० २ । ३ । ३० ॥

अतसुन् प्रत्ययान्त शब्दों के अर्थों में वर्त्तमान जो अव्यय शब्द है उस के योग में षष्ठी विभक्ति हो । जैसे । दक्षिणतो ग्रामस्य वाटिका । उपरि ग्रामस्य गोशाला इत्यादि । यहां ग्राम शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई है ॥ ८५ ॥

एनपा द्वितीया ॥ ८६ ॥ अ० २ । ३ । ३१ ॥

अतसर्थ प्रत्ययों में एनप् प्रत्यय के योग में पूर्व सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी उस का अपवाद यह सूत्र है कि एनप् प्रत्ययान्त अव्यय के योग में द्वितीया हो जैसे । दक्षिणेन ग्रामं मुंजाः । इत्यादि ग्राम से दाहिनी ओर मूंज का वन है ॥ ८६ ॥

पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ॥ ८७ ॥
अ० २ । ३ । ३२ ॥

पृथक् विना नाना इन तीन अव्यय शब्दों के योग में विकल्प कर के तृतीया विभक्ति हो पक्ष में पंचमी । जैसे । पृथक् स्थानेन । पृथक् स्थानात् । विना घृतेन । विना घृतात् । नाना पदार्थेन । नाना पदार्थात् । यहां जो सिद्धान्तकौमुदी में द्वितीया विभक्ति की अनुवृत्ति कर के उदाहरण दिये हैं वे इसी सूत्र के महाभाष्य से विरुद्ध होने से अशुद्ध हैं ॥ ८७ ॥

करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्ववचनस्य ॥ ८८ ॥
अ० २ । ३ । ३३ ॥

करण कारक में वर्त्तमान जो अद्रव्य वाची स्तोक अल्प कृच्छ्र और कतिपय शब्द उन से तृतीया और पंचमी विभक्ति हों । जैसे—स्तोकेन तोकाद्वामुक्तः । अल्पेनाल्पाद्वा मुक्तः । कृच्छ्रेण कृच्छ्राद्वा मुक्तः । कतिपयेन कतिपयाद्वा मुक्तः । इत्यादि थोड़े किंचित् कष्ट और कुछ दिनों में छूट गया यहां असत्व वचन का ग्रहण इस लिये है कि अल्पेन जलेन तृप्तः । थोड़े जल से तृप्त हुआ इत्यादि में पंचमी विभक्ति न हो यहां करण ग्रहण इस लिये है कि (अल्पं त्यजति) थोड़े को छोड़ता है इत्यादि में तृतीया पंचमी विभक्ति न हों ॥ ८८ ॥

दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ॥ ८९ ॥ अ० २ । ३ । ३४ ॥

दूर और समीपवाची और इन के पर्याय वाची शब्दों के योग में विकल्प कर ।

के पष्ठी और पक्ष में पंचमी हों जैसे (दूरं विप्रकृष्टं वा ग्रामस्य) दूरं विप्रकृष्टं वा ग्रामाद् वनम् । अन्तिकं समीपं वा ग्रामस्य ग्रामाद्वाऽऽरामाः । इत्यादि गाम के दूर जंगल और समीप बाग हैं । यहां विकल्प की अनुवृत्ति इस लिये है कि पक्ष में पंचमी विभक्ति हो जावे ॥ ८९ ॥

दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च ॥ ९० ॥ अ० २ । ३ । ३५ ॥

दूर और समीप वाची तथा इन के पर्याय शब्दों से द्वितीया विभक्ति हो चकार से विकल्प कर के पष्ठी और पक्ष में पंचमी भी हो । दूरं दूरस्य दूराद्वा ग्रामस्य । विप्रकृष्टं विप्रकृष्टस्य विप्रकृष्टाद्वा ग्रामस्य पर्वताः । अन्तिकमन्तिकस्यान्तिकाद्वा ग्रामस्य गिरीपाः । समीपं समीपस्य समीपाद्वा ग्रामस्य वाटिकाः । इत्यादि । अब अपादान संज्ञा में जो विशेष सूत्र हैं उन्हें लिखते हैं ॥ ९० ॥

भीत्रार्थानां भयहेतुः ॥ ९१ ॥ अ० १ । ४ । २५ ॥

जो भयार्थ और रक्षार्थ धातुओं के प्रयोग में भय का हेतु कारक है उस की अपादान संज्ञा हो । जैसे । वृकेभ्यो बिभेति । वृकेभ्य उद्विजते । चोरेभ्यस्त्रायते। चोरेभ्यो रक्षति । * इत्यादि । भेड़ियों से डरता और चोरों से रक्षा करता है । यहां भय हेतु का ग्रहण इस लिये है कि । गृहे बिभेति । गृहे त्रायते इत्यादि में पंचमी विभक्ति न हो ॥ ९१ ॥

पराजेरसोढः ॥ ९२ ॥ अ १ । ४ । २६॥

परापूर्वक जि धातु के प्रयोग में असोढ अर्थात् जिसको न सह सके वह कारक अपादान संज्ञक हो । जैसे । अध्ययनात् पराजयते । बलवतो धर्मात्मनो निर्बलोऽधर्मी पराजयते । इत्यादि यहां असोढ ग्रहण इस लिये है कि (शत्रून् पराजयते) इत्यादि में अपादान संज्ञा हो कर पंचमी न हो ॥ ९२ ॥

वारणार्थानामीप्सितः ॥ ९३ ॥ अ० १ । ४ । २७ ॥

वारण उस को कहते है कि कुछ काम करते हुए को वहां से हटा देना । वारणार्थक धातुओं के प्रयोग में जो अत्यन्त इष्ट कारक है उसकी अपादान संज्ञा हो ।

* यहां वृक और चोर भय के हेतु हैं इस कारण उन की अपादान संज्ञा हो कर पंचमी विभक्ति होती है ॥

जैसे । सस्येभ्यो गां वारयति निवर्त्तयति निषेधति वा इत्यादि, धान्य के खेतों से गौओं को हटाता है । इस कारण खेत अत्यन्त इष्ट हुए । यहां ईप्सित ग्रहण इस लिये है कि. गोष्ठे गां वारयति । इत्यादि में अपादान संज्ञा न हो ॥ ९३ ॥

अन्तर्द्धौ येनादर्शनमिच्छति ॥ ९४ ॥ अ० १ । ४ । २८॥

अन्तर्द्धि अर्थात् छिप जाने अर्थ में जिस से ऐसी इच्छा करे कि मुझ को वह न देखे वह कारक अपादान संज्ञक हो । जैसे । उपाध्यायाद्बालोऽन्तर्द्धत्ते । इत्यादि पढ़ने हारे से लड़का छिपता है, यहां अन्तर्द्धि ग्रहण इस लिये है कि (दुष्टान्न दिदृक्षते) इत्यादि में अपादान संज्ञा न हो इच्छति ग्रहण इस लिये है कि देखने की इच्छा न हो और सामने से दिखाता हो तो भी अपादान संज्ञा न हो ॥ ९४ ॥

आख्यातोपयोगे ॥९५ ॥अ० १ । ४ । २९ ॥

जो उपयोग अर्थात् नियम पूर्वक पढ़ने में पढ़ाने वाला कारक है उस को अपादान संज्ञा हो । उपाध्यायादधीते । इत्यादि वेतन लेने वाले से पढ़ता है । यहां उपयोग ग्रहण इस लिये है कि (नटस्य वचः शृणोति) इत्यादि में नियम पूर्वक विधान के न होने से अपादान कारक संज्ञा न हो ॥ ९५ ॥

जनिकर्त्तुः प्रकृतिः ॥ ९६ ॥ अ० १ । ४ । ३० ॥

जन धातु का जो कर्त्ता उस की प्रकृति अर्थात् जो कारण है वह अपादान संज्ञक हो जैसे । अग्नेर्धूमो जायते * अव्यक्तात्कारणाद्व्यक्तं कार्यं जायते । अग्नि से धूआ और सूक्ष्म अदृश्य नित्यस्वरूप कारण से स्थूल, दृश्य, अनित्य रूप कार्य उत्पन्न होता है । यहां प्रकृति ग्रहण इस लिये है कि (पुत्रो मे गौरो जायते) इत्यादि में कारण की अपेक्षा न होने से अपादान संज्ञा नहीं होती ॥ ९६ ॥

भुवः प्रभवः ॥ ९७ ॥ अ० १ । ४ । ३१ ॥

प्रभव उस को कहते हैं कि जहां से कोई पदार्थ उत्पन्न हुआ हो । जो भू धातु के कर्त्ता का प्रभव कारक है वह अपादान संज्ञक हो । हिमवतो गङ्गा प्रभवति ।

* यहां जन धातु का कर्त्ता धूम है उस की प्रकृति कारण अग्नि है इस से उस

जो प्रतियत्न अर्थ में वर्तमान कृञ् धातु हो तो उस के शेष कर्म में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे। एधोदकस्योपस्कुरुते †। ‡पाककर्ता इन्धन जल तथा अन्य सब भोजन की सामग्री समीप धर के पाक बनावे ॥ १०१ ॥

रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः ॥ १०२ । अ० २ । ३ । ५४ ॥

यहां भाववचन शब्द से कर्तृस्थभावक रुजार्थ धातु समझे जाते हैं। जिन धातुओं के कर्त्ता में धातु का अर्थ रहता है ऐसे रुजार्थक धातुओं में से ज्वर धातु को छोड़ के उन के शेष कर्म‡में षष्ठी हो। जैसे। चोरस्य रुजति। चोरस्यामयति। इत्यादि यहां रुजार्थ ग्रहण इस लिये है कि। ग्रामं गच्छति। इत्यादि में षष्ठी न हो और भाववचन ग्रहण इस लिये है कि। नदी कूलानि रुजति। यहां कर्मस्थ भावक रुज धातु के कर्म में षष्ठी न हो और ज्वर धातु का निषेध इस लिये है कि। बालं ज्वरयति ज्वरः। यहां कर्म में षष्ठी न हो ॥ १०२ ॥

वा०–अज्वरिसंताप्योरिति वक्तव्यम् ॥ १०३ ॥

जहां ज्वर धातु के कर्म में षष्ठी का निषेध किया है वहां संपूर्वक तापि धातु का भी समझना चाहिये। जैसे (चोरं सन्तापयति दुष्कर्म) यहां इस वार्त्तिक से षष्ठी का निषेध हो के द्वितीया हुई ॥ १०३ ॥

आशिषि नाथः ॥ १०४ ॥ अ० । २ । ३ । ५५ ॥

जो आशीर्वचन अर्थ में वर्त्तमान नाथ धातु हो तो उस के शेष कर्मकारक में षष्ठी विभक्ति होवे। जैसे। (सर्पिषो नाथते) (मधुनो नाथते) * यहां आशिष् शब्द से इच्छा ली जाती है। इस लिये कर्म वाची सर्पिष् शब्द में षष्ठी विभक्ति हुई।

---

† यहां प्रतियत्न अर्थ में ही कृञ् धातु को सुट् का आगम कहा है। एधोदक शब्द कृञ् धातु का कर्म है उस में द्वितीया प्राप्त है सो न हो ॥

‡ शेष कर्म के कहने से प्रयोजन यह है कि जिस कर्म में द्वितीया की विवक्षा न हो ॥

* घी चाहता है ऐसा कहना है यहां घी और [illegible] ॥

अनुपसर्ग दिवु धातु के कर्म कारक में नित्य षष्ठी विभक्ति प्राप्त है सो द्वि हो इस लिये यह सूत्र है ॥ १०९ ॥

प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासंप्रदाने ॥ ११० ॥ अ० २ । ३ ।

जो वह हविष् कर्म, देवता अर्थात् दिव्य गुण होने के लिये दिया जाता प्रपूर्वक दिवादि गण वाला इष धातु और ब्रू धातु इन के हविष् कर्म में ब्राह्म न्य विषय में षष्ठी विभक्ति हो । जैसे । इन्द्राग्निभ्यां छागस्य हविषो वपाया मेद ष्य । इन्द्राग्निभ्यां छागस्य हविषो वपाया मेदसोऽनुब्रूहि * । यहां हविष् कर्म है षष्ठ्यन्त पद उस के विशेषण हैं । यहां । छागं हविर्वपां मेदः प्रेष्य । ऐसा प्र सो इससूत्र से षष्ठी विभक्ति हो गई । यहां प्र पूर्वक इष और ब्रू धातु काग्रहण लिये है कि । अग्नये छागं हविर्वपां मेदो जुहुधि । इत्यादि के कर्म में षष्ठी नहो विषग्रहण इस लिये है कि । अग्नये समिधः प्रेष्य । यहां समिध् कर्म में षष्ठी न और देवतासंप्रदान ग्रहण इस लिये है कि । बालाय पुरोडाशं प्रेष्य। यहां देवता के होने से षष्ठी न हुई ॥ ११० ॥

वा०—हविषोऽप्रस्थितस्येति वक्तव्यम् ॥ १११ ॥

सूत्र से जो हविष् कर्म में षष्ठी कही है सो प्रस्थित विशेषण हो तो न हो कि तु द्वितीया ही हो (इन्द्राऽग्निभ्यां छागं हविर्वपां मेदः प्रस्थितं प्रेष्य) यहां प्रस्थि विशेषण के होने से षष्ठी न हुई ॥ १११ ॥

चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ॥ ११२ ॥ अ० २ । ३ । ६२॥

पूर्वसूत्रों में ब्राह्मण शब्द से ऐतरेय आदि वेद व्याख्यानों का ग्रहण होता है और यहां छन्दः शब्द से वेदों का ग्रहण होता है इस लिये इस सूत्र में छन्द ग्रहण किया है । वेद विषय में चतुर्थी के अर्थ में षष्ठी विभक्ति बहुल करके हो जैसे। दार्वा घाटस्ते वनस्पतीनाम् । यहां वनस्पतिभ्यः ऐसा प्राप्त था ॥ ११२ ॥

वा०—षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्या ॥ ११३ ॥

षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति कहना चाहिये । या खर्वेण पिबति । तस्यै खर्वो जायते । तस्याः खर्वो जायत इति प्राप्ते । इत्यादि । यहां तस्यै शब्द में षष्ठी के स्थान चतुर्थी हुई है ॥ ११३ ॥

* अग्ना के अर्थ खाने पीने की वस्तु के योग से बिजुली और अग्नि से उत्पन्न

जो (ण्वुल्) और (अ) ये स्त्री प्रत्यय जिन के अन्त में हों उन शब्दों के प्र योग में कर्त्ता में भी षष्ठी विभक्ति अर्थात् दोनों में एक साथ हो जावे। जैसे। भेदिका देवदत्तस्य काष्ठानाम्। चिकीर्षा विष्णुमित्रस्य कटस्य ॥ ११८ ॥

वा०—शेषे विभाषा + ॥ ११९ ॥

शेष कृदन्त स्त्री प्रत्यय के योग में कर्त्ता में विकल्प कर के षष्ठी विभक्ति हो और कर्म में तो सूत्र ही से नित्य विधान है। जैसे। शोभना खलु पाणिनेः सूत्रस्य कृतिः। शोभना खलु पाणिनिना सूत्रस्य कृतिः। इत्यादि ॥ ११९ ॥

क्तस्य च वर्त्तमाने ‡ ॥ १२० ॥ अ० २। ३। ६७ ॥

जो वर्त्तमान काल में क्त प्रत्ययान्त शब्द है उस के संबन्ध में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे। राज्ञां मतः। राज्ञां बुद्धः। राज्ञां पूजितः। यह विद्वान् राजाओं का मान्य जाना और सत्कृत है यहां क्त ग्रहण इस लिये है कि। गुरुं भजमानः। यहां कर्म में षष्ठी न हो और वर्त्तमान ग्रहण इस लिये है कि (ग्रामं गतः) यहां भूतकाल के होने से षष्ठी न हो ॥ १२० ॥

वा०—क्तस्य च वर्त्तमाने नपुंसके भावउपसंख्यानम् * ॥ १२१ ॥

जो नपुंसक भाव में क्तप्रत्ययान्त है उस के कर्त्ता में षष्ठी विभक्ति हो। जैसे। छात्रस्य हसितम्। नटस्य भुक्तम्। मयूरस्य नृत्तम्। इत्यादि, विद्यार्थी का हसना। नटका भोजन। मोरका नाचना, देखो ॥ १२१ ॥

अधिकरणवाचिनश्च ॥ १२२ ॥ अ० २। ३। ६८ ॥

+ यह अप्राप्त विभाषा यों समझनी चाहिये कि शेष स्त्री प्रत्यय के योग में कर्तृ वाची शब्द से किसी सूत्र कर के षष्ठी प्राप्त नहीं प्रत्युत (उभयप्रा०) इस से कर्म का नियम होने से कर्ता का निषेध तो है ॥

‡ क्त प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा होने से आगे (नलोका०) इस सूत्र कर के षष्ठी का निषेध प्राप्त है इस लिये यह सूत्र उस का पुरस्तात् अपवाद है ॥

* पूर्वसूत्र में वर्त्तमान के कहने से नपुंसक भाव में प्राप्ति नहीं इस लिये यह भी (नलोका०) इसी वक्ष्यमाण सूत्र का अपवाद समझना ठीक है ॥

जो अव्यय के योग में षष्ठी का निषेध किया है। वहां तोसुन् और कसुन् प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी का निषेध न हो। जैसे। तोसुन्। पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः। कसुन्। पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्। इत्यादि ॥ १२५ ॥

वा०—द्विषः शतुर्वावचनम् * ॥ १२६ ॥

द्विष धातु से शतृ प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी विभक्ति विकल्प करके हो। जैसे। चोरस्य द्विषन्। चोरं द्विषन्। तृन् प्रत्याहार में शतृ प्रत्यय के होने से निषेध प्राप्त था। उसका विकल्प करने के लिये यह तीसरा वार्त्तिक है ॥ १२६ ॥

अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ॥ १२७ ॥ अ० । २ । ३ । ७० ॥

अक और इन् प्रत्ययान्त शब्द के कर्म में षष्ठी विभक्ति न हो ॥ १२७ ॥

वा०—अकस्य भविष्यतीनआधमर्ण्ये च † ॥ १२८ ॥

अकन्त के योग में भविष्यत् काल और इन के योग में आधमर्ण्य तथा भविष्यत् काल अर्थ लगते हैं। जैसे। यवान् लावको व्रजति। यहां अक के योग में केवल भविष्यत् ही है और। ग्रामं गमी। यहां इन्नन्त के योग में भविष्यत्काल में और (शतं दायी) (सहस्रं दायी) यहां आधमर्ण्य है। इत्यादि। यहां भविष्यत् और आधमर्ण्य में निषेध इस लिये है कि। (यवानां लावकः) यहां षष्ठी का निषेध न हो किन्तु षष्ठी हो जावे ॥ १२८ ॥

कृत्यानां कर्त्तरि वा ॥ १२९ ॥ अ० । २ । ३ । ७१ ॥

कृत्य प्रत्ययान्त के कर्त्ता में विकल्प करके षष्ठी और पक्ष में तृतीया होवे जैसे। ब्राह्मणेन ब्राह्मणस्य वा पठितव्यम्। देवदत्तेनदेवदत्तस्य वा आसितव्यम्। इत्यादि। यहां कर्त्तरि ग्रहण इस लिये है कि (वक्तव्यः श्लोकः) यहां कर्म में षष्ठी न हो। इस सूत्र में महाभाष्यकारने योग विभाग करके दो अर्थ किये हैं। एक

* इस वार्त्तिक में अप्राप्त विभाषा इस लिये है कि (नलोका०) इस से सर्वथा षष्ठी का निषेध हो चुका है उस को यह विकल्प से विधान किया है।

† यह भी वार्त्तिक (कर्तृकर्म०) इसी का अपवाद है। क्योंकि कर्म में षष्ठी

दूसरा आधार बनता जाता है। परिपूर्ण परमेश्वर में पहुंच के समाप्ति हो जाती है जो आधार कारक है वह अधिकरण संज्ञक हो। इस का फल ॥ १३२ ॥

सप्तम्यधिकरणे च ॥ १३३ ॥ अ० २ । ३ । ३६ ॥

अधिकरण तीन प्रकार का होता है। इस को प्रमाण सहित पूर्व लिख चुके हैं। अधिकरण में और चकार से दूर वाची तथा समीप वाची शब्दों से भी सप्तमी विभक्ति होवे। जैसे। व्यापक। दध्नि घृतम्। तिलेषु तैलम् *। इत्यादि। औपश्लेषिक। कटे शेते। खट्वायां शेते। पीठ आस्ते †। इत्यादि। वैषयिक। खे शकुनयः। श्रोत्रे शब्दो विबध्यते ‡। इत्यादि। आकाश के विषय यहां ख शब्द में सप्तमी विभक्ति हुई है अब आगे वार्त्तिक लिखेंगे ॥ १३३ ॥

वा०—सप्तमीविधाने क्तस्येन्विषयस्य कर्म्मण्युपसंख्यानम् ॥ १३४ ॥

क्त प्रत्ययान्त शब्द से जहां इन् प्रत्यय होता है वहां कर्म कारक में सप्तमी विभक्ति हो। जैसे। अधीती व्याकरणे *। परिगणिती याज्ञिके। इत्यादि ॥१३४॥

वा०—साध्वसाधुप्रयोगे च † ॥ १३५ ॥

साधु और असाधु शब्द के प्रयोग में भी सप्तमी विभक्ति हो। जैसे। साधुर्देवदत्तो मातरि। असाधव आर्येषु दस्यवः। इत्यादि ॥ १३५ ॥

---

* दही और तिलों के सब अवयवों में घी और तेल व्याप्त रहता है इस कारण इस को व्यापक कहते हैं ॥

† चटाई खटिया और आसन पर बैठने वाले का उस से अति निकट सम्बन्ध होता है इस लिये इस अधिकरण को औपश्लेषिक कहते हैं ॥

‡ पक्षियों के उड़ने का विषय आकाश और कान का विषय शब्द है इस कारण यह वैषयिक अधिकरण कहाता है ॥

* यहां अधीत शब्द क्त प्रत्ययान्त इन् विषयक है उस के कर्म व्याकरण शब्द में सप्तमी होती है ॥

† यहां से जो वार्त्तिक हैं वे किसी के अपवाद नहीं। किन्तु अपूर्व विधायक हैं। किसी सूत्र वा वार्त्तिक से सप्तमी प्राप्त नहीं है ॥

(गोषु दुह्यमानासु गतो दुग्धास्वागतः †) यहां मात्रेण ग्रहण इस लिये है कि (जटिलः स भुङ्क्ते) इत्यादि में सप्तमी न हो ॥ १४० ॥

षष्ठी चानादरे ॥ १४१ ॥ अ० २ । ३ । ३८ ॥

अनादर अर्थ में जिस क्रिया से क्रिया का लक्षण किया जाय वहां षष्ठी विभक्ति और चकार से सप्तमी भी हो जैसे। आहूयमानस्याहूयमाने वा गतः आहूयमान अर्थात् बुलाते हुए का तिरस्कार करके चला गया यहां आहूयमान शब्द में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हुई हैं ॥ १४१ ॥

स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च ‡ ॥१४२

अ० २ । ३ । ३९ ॥

स्वामिन् ईश्वर अधिपति दायाद साक्षिन् प्रतिभू और प्रसूत इन शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हों । जैसे । स्वामिन् । गवां स्वामी गोषु स्वामी । ईश्वर । पृथिव्या ईश्वरः । पृथिव्यामीश्वरः । अधिपति । ग्रामस्याधिपतिः । ग्रामेऽधिपतिः । दायाद । क्षेत्रस्य क्षेत्रे वा दायादः । साक्षिन् । देवदत्तस्य देवदत्ते वा साक्षी। प्रतिभूः । धनस्य धने वा प्रतिभूः । प्रसूत । गवां प्रसूतः । गोषु प्रसूतः । इस सूत्र में स्वामिन् आदि शब्दों के योग में शेष कारक के होने से सर्वत्र षष्ठी प्राप्त थी सो सप्तमी भी हो जावे इस लिये यह सूत्र है ॥ १४२ ॥

आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् ॥ १४३ ॥

अ० २ । ३ । ४० ॥

जो आसेवा अर्थ में वर्त्तमान आयुक्त और कुशल शब्द हैं उन के योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति हों । जैसे । आयुक्तः पठनस्य पठने वा । कुशलो लेखनस्य लेखने वा । यहां आसेवा ग्रहण इस लिये है कि । आयुक्तो वृषभः शकटे इत्यादि में षष्ठी न हो अधिकरण में सप्तमी तो प्राप्त ही थी षष्ठी होने के लिये यह सूत्र है ॥ १४३ ॥

---

† यहां दोहन रूप क्रिया से गमन क्रिया का लक्षण किया जाता है इस से दोहन क्रिया में सप्तमी हुई ॥

‡ यह चकार षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियों का आकर्षण होने के लिये है ॥

यतश्च निर्द्धारणम् ॥ १४४ ॥ अ० २ । ३ । ४१॥

जो समुदाय वाची जाति आदि शब्दों से एक का पृथक् करना है उस को निर्द्धारण कहते हैं जिस से निर्द्धारण अर्थात् किसी को पृथक् किया जावे उस से षष्ठी सप्तमी विभक्ति हों। जैसे। ब्राह्मणानां ब्राह्मणेषु वा देवदत्तः श्रेष्ठतमः। इस से यहां ब्राह्मण शब्द में षष्ठी सप्तमी हो गई ॥ १४४ ॥

पञ्चमी विभक्ते ॥ १४५ ॥ अ० २ । ३ । ४२ ॥

पूर्व सूत्र से निर्द्धारण अर्थ में षष्ठी सप्तमी विभक्ति प्राप्त है। उस का अपवाद यह सूत्र है। निर्द्धारण में जिस का विभाग किया जाय उस में पंचमी विभक्ति हो जैसे। पाटलिपुत्रेभ्यः सांकाश्या आढ्यतराः। इत्यादि जो पूर्वसूत्र से निर्द्धारण होता है वह समुदाय से एक ही का पृथक् भाव समझना और इस सूत्र से एक ही से दूसरे का विभाग होता है ॥ १४५ ॥

साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः ॥ १४६॥ अ० २।३।४३॥

जो पूजा अर्थात् सत्कार पूर्वक सेवा करने अर्थ में वर्त्तमान साधु और निपुण शब्द हों तो इन के प्रयोग में सप्तमी विभक्ति होवे परन्तु प्रति के योग में इस अर्थ में भी न हो जैसे। मातरि साधुः। पितरि साधुः। मातरि निपुणः। पितरि निपुणः। इत्यादि। यहां अर्चा ग्रहण इस लिये है कि। साधुर्देवदत्तस्य पुत्रः। इत्यादि में न हो जाय। प्रति का निषेध इस लिये है कि। साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति। यहां प्रति के योग में सप्तमी न हो ॥ १४६ ॥

वा०–अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् ॥ १४७ ॥

जो प्रति के योग में सप्तमी का निषेध किया है सो प्रति आदि अन्य शब्दों के योग में भी समझा जावे जैसे। साधुर्देवदत्तो मातरं परि। मातरमनु। इत्यादि के योग में भी सप्तमी विभक्ति न हो ॥ १४७ ॥

प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ॥ १४८ ॥ अ० २। ३। ४४॥

जो अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति प्राप्त है उस का अपवाद यह सूत्र है। प्रसित और उत्सुक शब्दों के योग में तृतीया और सप्तमी विभक्ति हो जैसे। केशैः

केशेषु वा प्रसितः । मात्रा मातरि वा प्रसितः । सत्येन सत्ये वा प्रसितः । प्रसित कह
ते हैं जो उस में अतिप्रसक्त हो । गानेन गाने वोत्सुकः । उत्सुक कहते हैं जो किसी
को मिलने की इच्छा कर रहा हो ॥ १४८ ॥

नक्षत्रे च लुपि ॥ १४९ ॥ अ० २ । ३ । ४५ ॥

यहां उस नक्षत्रवाची शब्द का ग्रहण है कि जहां काल अर्थ में प्रत्यय का लुप् हो
जाता है । लुबन्त नक्षत्र से तृतीया और सप्तमी विभक्ति हों जैसे । पुष्येण पुष्ये वा कार्य-
मारभेत । इत्यादि पुष्य नक्षत्र जिस दिन हो उस दिन कार्य्य का आरम्भ करे ॥ १४
अब जो अधिकरण संज्ञा के विशेष वार्तिक सूत्र हैं सो लिखते हैं ॥

अधिशीङ्स्थासां कर्म ॥ १५० ॥ अ० १ । ४ । ४६ ॥

अधिकरण संज्ञा का अपवाद यह सूत्र है जो अधि पूर्वक शीङ् स्था और आस ध
तु का आधार कारक है वह कर्म संज्ञक हो । कर्म्म कारक में द्वितीया कह चुके हैं
से । खट्वामधिशेते । भूमिमधिशेते । खाट और भूमि में सोते हैं जैसे। सभामधितिष्ठ
सभामध्यास्ते । सभा में बैठा है यहां अधि उपसर्ग का ग्रहण इस लिये है कि । ख
ट्वायां शेते । सभायामास्ते । इत्यादि में न हो ॥ १५० ॥

अभिनिविशश्च ॥ १५१ ॥ अ० १ । ४ । ४७ ॥

यहां मण्डूकप्लुत गति मान के (परिक्रयणे०) इस सूत्र से विकल्प की अनु-
वृत्ति आती है जो अभि और नि पूर्वक विश धातु का आधार कारक है वह विकल्प
करके कर्म संज्ञक हो पक्ष में अधिकरण संज्ञा हो जावे यह कर्मप्रवचनीय गति और
उपसर्ग संज्ञा का अपवाद है । नह्यपवादविषयमुत्सर्गोऽभिनिविशते । नह्यपवादविषय
उत्सर्गोऽभिनिविशते । यहां अपवाद विषय शब्द से कर्म संज्ञा पक्ष में द्वितीया और
अधिकरण संज्ञा पक्ष में सप्तमी विभक्ति हो जाती है । तथा सन्मार्गमभिनिविशते । स
न्मार्गेऽभिनिविशते । इत्यादि ॥ १५१ ॥

उपान्वध्याङ्वसः ॥ १५२ ॥ अ० १ । ४ । ४८ ॥

यह सूत्र भी अधिकरण संज्ञा का अपवाद है । जो उप, अनु, अधि, और आ-
ङ् पूर्वक वस धातु का आधार कारक है वह कर्म संज्ञक हो । ([illegible]

पञ्चम्यपाङ्परिभिः ॥ १६२ ॥ अ० । २ । ३ । १० ॥

कर्मप्रवचनीय संज्ञक अप, आङ्, और परि, शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है । जैसे । (अप ग्रामाद्वृष्टो मेघः) (परि ग्रामाद्वा) ग्राम को छोड़ के मेघ वर्षा अर्थात् ग्रामपर नहीं वर्षा । मर्य्यादावचनमें आङ् (आ समुद्रादार्य्यावर्त्तः) समुद्रपर्य्यन्त आर्य्यावर्त्त की अवधि है । यहां वर्जन ग्रहण इस लिये है कि (पण्डितमप वदति) मर्य्यादा ग्रहण इस लिये है कि (आगच्छन्ति वैयाकरणाः) यहां मर्य्यादा अर्थ के न होने से कर्मप्रवचनीय संज्ञा न हुई । तथा वचन ग्रहण इस लिये है कि अभिविधि अर्थ में भी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होवे (आकुमारमाकुमारेभ्यो यशः पाणिनेः) यहां अभिविधि अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो के दो प्रयोग बनते हैं कारण यह है कि कर्मप्रवचनीय संज्ञक आकार का पञ्चमी विभक्ति के साथ विकल्प कर के अव्ययीभाव * समास होता है जिस पक्ष में समास होजाता है वहां पञ्चमी विभक्ति के स्थान में † अम् आदेश होता है और जहां अव्ययीभाव समास नहीं होता वहां पञ्चमी विभक्ति बनी रहती है ॥ १६२ ॥

लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्य्यनवः ॥ १६३ ॥ अ० । १ । ४ । ९० ॥

जिस से अर्थ जाना जाय वह लक्षण उस को इस प्रकार का कहना इत्थंभूताख्यान भाग–अंश वीप्सा–व्याप्ति इन अर्थों के जनाने वाले जो प्रति, परि, और अनु, शब्द हैं वे कर्मप्रवचनीय संज्ञक हों जैसे लक्षण (वृक्षं प्रति वृक्षं परि वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्) वृक्ष के सामने ऊपर और पश्चात् बिजली चमकती है । इत्थंभूताख्यान । परमात्मानं धर्मं च प्रति । परमात्मानं परि । परमात्मानमनु साधुरयं मनुष्यो वर्त्तते । सत्यप्रेम भक्ति से युक्त हो के यह मनुष्य परमात्मा और धर्म का उपासक है । भाग । यदत्र मां प्रति स्यात् । मां परि स्यात् । मामनु स्यात् । यहां जो कुछ मेरा भाग हो वह मुझको भी मिले इत्यादि । यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के दो प्रयोजन हैं एक तो द्वितीया का होना दूसरा षत्व का निषेध । जैसे । वीप्सा । वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति । परि सिञ्चति । अनु सिञ्चति । प्रश्न । परि शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति प्राप्त है सो क्यों नहीं हो

* (अव्ययीभाव समास—विकल्प) आङ्मर्य्यादाऽभिविध्योः ॥ अ० २ । १ । १३ ॥
† (पञ्चमी के स्थान में–अम्) नाऽव्ययीभावादतोम्त्वपञ्चम्याः ॥ अ० २ । ४ । ८३ ॥

हीने ॥ १५७ ॥ अ० । १ । ४ । ८६ ॥

इस सूत्र में हीन शब्द छोटे का वाची है । सो एक की अपेक्षा में एक और बड़ा होता ही है जो हीन अर्थ में वर्त्तमान अनु हो तो उस की संज्ञा हो जैसे । (अनु यास्कं नैरुक्ताः) (अनु गोतमं नैयायिकाः) (यनं वैयाकरणाः) यहां यास्क आदि शब्दों की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से ब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है ॥ १५७ ॥

उपोऽधिके च ॥ १५८ ॥ अ० । १ । ४ । ८७ ॥

जो अधिक और चकार से हीन अर्थ में भी वर्त्तमान उप शब्द हो तो उ कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो, इस का फल ॥ १५८ ॥

यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ॥ १५९ ॥ अ० । २ । ३ । ९ ॥

द्वितीया विभक्ति का अपवाद यह सूत्र है । जिस से अधिक और जिस श्वर वचन अर्थात् बहुतों के बीच में अधिक सामर्थ्य कहना हो वहां कर्मप्रवचनीय शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति हो । जैसे । प्रजायामुपराजः * । अधिक ग्रहण लिये है कि । उपशाकटायनं वैयाकरणाः † । यहां न हो इत्यादि ॥ १५९ ॥

अपपरी वर्जने ॥ १६० ॥ अ० । १ । ४ । ८८ ॥

वर्जन कहते हैं निषेध को जो वर्जन अर्थ में वर्त्तमान अप और परिशब्द हैं कर्मप्रवचनीय संज्ञक हों ॥ १६० ॥

आङ् मर्य्यादावचने ॥ १६१ ॥ अ० । १ । ४ । ८९ ॥

मर्य्यादा उस को कहते हैं कि यहां तक यह वस्तु है उस का कहना वचन कहाता है, जो मर्य्यादा वचन अर्थ में वर्त्तमान आङ् शब्द है उस की कर्म चनीय संज्ञा हो-इन दोनों का फल ॥ १६१ ॥

---

* यहां प्रजा के बीच राजा का अधिक सामर्थ्य है इस लिये उप की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो कर उस के योग में प्रजा शब्द से सप्तमी विभक्ति हुई है ॥

† शाकटायन से अन्य वैयाकरण न्यून हैं । यहां अधिक अर्थ के न होने से द्वितीया ही होती है ॥

सुः पूजायाम् ॥ १६८ ॥ अ० । १ । ४ । ९४ ॥

जो पूजा अर्थात् सत्कार अर्थ में वर्त्तमान सु शब्द है उस की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो । जैसे (सुस्तुतम्) (सुस्मृतम्) अच्छी स्तुति और स्मरण आप ने किया यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से उपसर्गकार्य्य षत्व नहीं हुआ । पूजा ग्रहण इस लिये है कि (सुषिक्तं किं त्वया) क्या तूने अच्छा सींचा इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होती ॥ १६८ ॥

अतिरतिक्रमणे च ॥ १६९ ॥ अ० । १ । ४ । ९५ ॥

जो अतिक्रमण अर्थात् उल्लङ्घन (च) और पूजा अर्थ में वर्त्तमान अति शब्द हो तो वह कर्म्मप्रवचनीय संज्ञक होवे जैसे । अतिक्रमण । अतिसिक्तमेव भवता । ठीक २ नहीं सींचा किन्तु कीच कर दी । पूजा (अतिसेवितो गुरुस्त्वया) तू ने गुरु की अति सेवा की । यह पूजा कहाती है । इस का फल यह है कि षत्व का निषेध हो जाता है यहां इन दो अर्थों का ग्रहण इस लिये है कि (सुष्टुतं मया) कोई अभिमान करता है कि मैं ने बड़ी अच्छी स्तुति की इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा के न होने से षत्व का निषेध न हुआ ॥ १६९ ॥

अपिःपदार्थसंभावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु॥१७०॥अ०।१।४।९६॥

जो पदार्थ । संभावना । अन्ववसर्ग । गर्हा और समुच्चय इन पांच अर्थों में वर्त्तमान पद उस के योग में अपि शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो । जैसे । (सर्पिषोऽपि स्यात्) कुछ घृत भी होना चाहिये । (सम्भावना—सम्भव होना) अपिसिञ्चेद्वृक्षशतम् । सम्भव है कि यह मनुष्य सौ वृक्ष तक सींच सके । अन्ववसर्ग आज्ञा करना । अपिसिञ्च । तू सींच । गर्हा निन्दा करना । धिक् ते जन्म यत्पाषाणानपि स्तौषि । तेरे मनुष्य जन्म को धिक्कार है । जो तू पत्थरों की भी स्तुति करता है । समुच्चय क्रियाओं का इकट्ठा होना । अपिसेवस्व । अपिस्तुहि । सेवन भी कर स्तुति भी कर । इन सब अर्थों में अपि शब्द की उपसर्ग संज्ञा न होने के लिये कर्मप्रवचनीय संज्ञा की है कि जिस से उक्त प्रयोगों में मूर्द्धन्य षकार न हो जावे यहां पदार्थादि अर्थों का ग्रहण इस लिये है कि (अपिहृत्य) इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा होके षत्व का निषेध न हो ॥ १७० ॥

तीं । उत्तर । जहां पञ्चमी का विधान है वहां जो वर्जन अर्थ वाले अप और परि कृत्र पढ़े हैं उन्हीं का ग्रहण होता है अन्य का नहीं ॥ १६३ ॥

अभिरभागे ॥ १६४ ॥ अ० । १ । ४ । ९१ ॥

जो भाग को छोड़ के पूर्वसूत्र में कहे हुए अन्य लक्षण आदि तीन अर्थों में व र्तमान अभि शब्द हो तो वह कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो । लक्षणे । वृक्षमभि विद्योतते (इ त्थंभूताख्यान) साधुर्बालो मातरमभि (वीप्सा) वृक्षं वृक्षमभि सिञ्चति इत्यादि । य हां अभाग ग्रहण इस लिये है कि (यदत्रास्माकमभिष्यात्) इत्यादि । यहां कर्मप्र वचनीय संज्ञा के न होने से षत्व हो जाता है ॥ १६४ ॥

प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः ॥ १६५ ॥ अ० । १ । ४ । ९२ ॥

प्रतिनिधि कहते हैं किसी की अनुपस्थिति में दूसरे तुल्य स्वभाव गुण कर्म वा प्र कृति वाले का स्थापन करना और प्रतिदान अर्थात् एक वस्तु के बदले में दूसरी व देना है जो इन दो अर्थों में वर्तमान प्रति शब्द हो तो उस की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है इस का फल ॥ १६५ ॥

प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ॥ १६६ ॥ अ० । २ । ३ । ११ ॥

जिस से प्रतिनिधि और प्रतिदान हों वहां कर्मप्रवचनीय के योग में पंचमी विभक्ति हो जैसे । अभिमन्युरर्जुनात्प्रति । अभिमन्यु को अर्जुन के स्थान में रखना यही प्रतिनि धि कहाता है प्रतिदान (तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्) तिलों के बदले उड़द देता है । यह प्रतिदान कहाता है । यहां इन दोनों अर्थ का ग्रहण इस लिये है कि । शा स्त्राणि प्रत्येति । इत्यादि में प्रति शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा न हो ॥ १६१ ॥

अधिपरी अनर्थकौ ॥ १६७ ॥ अ० । १ । ४ । ९३ ॥

धातु का जो अर्थ है उस से पृथक् अर्थ के कहने वाले न हों ऐसे जो अधि और परि शब्द हैं उन की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो (कुतोऽध्यागच्छति) (कुतः पर्यागच्छ ते) यहां पञ्चमी विभक्ति तो अपादान संज्ञा के होने से सिद्ध ही है । फिर कर्मप्र वचनीय संज्ञा करने का प्रयोजन यह है कि गति और उपसर्ग संज्ञा न हों । यहां अ नर्थक ग्रहण इस लिये है कि । अंशानधिकुरुते । इत्यादि में कर्मप्रवचनीय संज्ञा न हो के द्वितीया विभक्ति हो ॥ १६० ॥

विज्ञप्तिः ॥

यथादर्शं संशोधितेऽप्यस्मिन् ग्रन्थे क्वचिद्दृष्टिदोषादिना दूष्यं यदि ज्ञायेत तर्हि निर्मत्सरा विद्वांसस्तत्संशोध्य पठन्त्विति ॥

भीमसेन शर्मणः

अधिरीश्वरे ॥ १७१ ॥ अ० । १ । ४ । ९७॥

इस सूत्र में ईश्वर शब्द से समर्थ मनुष्य का ग्रहण समझना चाहिये सो [illegible] अर्थ में वर्त्तमान अधि शब्द है उस की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो (अधिग्रामे क्षत्रि[illegible] यह क्षत्रिय ग्राम में समर्थ अर्थात् उस का अधिष्ठाता है । यहां कर्मप्रवचनीय सं[illegible] होने से * सप्तमी विभक्ति हो जाती है । यहां ईश्वर ग्रहण इस लिये है कि । ([illegible] ग्रामधिशेते) यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा के नहीं होने से द्वितीया विभक्ति हुई है॥१७[illegible]

विभाषा कृञि ॥ १७२ ॥ अ० । १ । ४ । ९८ ॥

जो कृञ् धातु के प्रयोग में युक्त अधि शब्द होतो वह विकल्प करके कर्म[illegible] [illegible]चनीय संज्ञक हो । (अधिकृत्वा) (अधिकृत्य) यहां जिस पक्ष में कर्मप्रव[illegible] [illegible]ज्ञा होती है वहां † समास के न होने से क्त्वा के स्थान में ल्यप् नहीं होता । [illegible] [illegible]जिस पक्ष में कर्मप्रवचनीय संज्ञा नहीं होती उस में समास हो के क्त्वा के स्थान में [illegible] [illegible]देश होजाता है इस के अन्य भी बहुत प्रयोजन हैं ॥ १७२ ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीव्याख्याकृतोऽष्टाध्याय्यां कारकीयोऽयं ग्रन्थः सम[illegible]

वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे नभस्यस्यासिते दले ।
अष्टम्यां बुधवारेऽयं ग्रन्थः पूर्त्तिं गतः शुभः ॥ १ ॥

संवत् १९३८ भाद्र वदी बुधवार के दिन यह कारकीय ग्रन्थ श्रीयुत स्वामी द[illegible] नन्द सरस्वती जी ने पूरा किया ॥ १ ॥

---

* (सप्तमी विभक्ति) यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी । यह सूत्र [illegible] लिख आये हैं ॥

† जहां कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है वहां गति संज्ञा नहीं होने से उस के न हो[illegible] ने से (गतिश्च) इस से समास भी नहीं होता समास के न होने से (समासेऽनञ्पूर्वे [illegible] क्त्वो ल्यप्) इस से ल्यप् भी नहीं होता ॥

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यः ।

पञ्चमो भागः ।

॥ सामासिकः ॥

॥ पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां ॥

चतुर्थो भागः ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः॥

पठनपाठनव्यवस्थायां सप्तमम्पुस्तकम्

अजमेर नगरे वैदिकयन्त्रालये

मुद्रितम् ॥

द्वितीयवार १००० | संवत् १९५५ | मूल्य ।≈) डाकव्यय)।

... के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम।

(१) मूल्य रोक भेजकर मंगावें, (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक दे भेजे जायंगे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़कर सब पुस्तकों पर अलग लाया जायगा २) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक रजिस्टरी कराकर भेजे जायंगे. मूल्य निचेलिखे पतेसे भेजें ॥

पुस्तक	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अंक १—१४६	८३)	
यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण	२४)	
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	२॥)	॥)
,, जिल्द की	३)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	‿)	)॥
सन्धिविषय	।॥)	)॥
नामिक	।‿)	)॥
कारकीय	।)	)॥
सामासिक	।‿)	)॥
स्त्रैणताद्धित	१)	‿)
अव्ययार्थ	‿)॥	)॥
सौवर	‿)॥	)॥
आख्यातिक	१।‿)	‿)॥
पारिभाषिक	॥)॥	)॥
धातुपाठ	।‿)	)॥
गणपाठ	।‿)	)॥
उणादिकोष	॥)	‿)
निघण्टु	।‿)	)॥
निरुक्त	१)	‿)॥
अष्टाध्यायीमूल	।‿)	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	॥)	)॥

पुस्तक	मू०
मेला चांदापुर नागरी	‿)
,, उर्दू	‿)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	॥)
आर्योद्देश्यरत्नमाला	‿)
गोकरुणानिधि	‿)
स्वामीनारायणमतखण्डन	
,, गुजराती	)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥
,, इंग्रेजी	)॥
शास्त्रार्थ फीरोजाबाद	॥)
शास्त्रार्थकाशी	‿)
आर्याभिविनय	।)
,, जिल्द की	।‿)
वेदान्तिध्वान्त निवारण	‿)
भ्रान्तिनिवारण	‿)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	॥)॥
,, जिल्द की	[illegible]
आर्यसमाज केनियमोपनि०	)॥
शतपथ ब्राह्मण (१ काण्ड)	॥)
सत्यार्थ प्रकाश ([illegible]	
,, जिल्द [illegible]	

जानने से सर्वत्र मिले हुए पद पदार्थ और वाक्यार्थ जानने में अति सुगमता होती है और समस्तपदयुक्त संस्कृत बोलना तथा दूसरे का कहा समझ भी सकता है यह भी व्याकरण विद्या को अवयव विद्या है जैसी कि संधिविषय और नामिक विद्या लिख आये । यहां जो पठन पाठन के लिये एक उदाहरण वा प्रत्युदाहरण लिखा है इसे देख इस के समान अन्य उदाहरण वा और प्रत्युदाहरण भी ऊपर से पढ़ने पढ़ाने चाहियें । इस के आगे प्रकृत जो कुछ लिखा जाता है वह सब (समर्थः पदविधिः) इस सूत्र के भाष्यस्थ वचन हैं ॥ जिस को जानने की इच्छा हो वह उक्त सूत्र के महाभाष्य में देख लेवे (सापेक्षमसमर्थं भवतीति) जो एक पद के साथ अपेक्षा करके युक्त हो वह समर्थ होता है और जो अनेक पदों के साथ आकर्षित होता है वह प्रायः समास के योग्य नहीं होता । जो सापेक्ष असमर्थ होता है ऐसा कहा जावे तो राजपुरुषो दर्शनीयः । यहां वृत्ति प्राप्त न होगी यह दोष नहीं, यहां प्रधान सापेक्ष है क्योंकि प्रधान सापेक्ष का भी समास होता है और जहां प्रधान सापेक्ष है वहां वृत्ति अर्थात् समास होगा । उदाहरणम् । देवदत्तस्य गुरुकुलम् । यह दोष नहीं । यहां षष्ठी समुदाय गुरुकुल की अपेक्षा करती है । जहां षष्ठी समुदाय की अपेक्षा नहीं करती वहां समास भी नहीं होता । किमोदनः शालीनाम् । यह कौन से शाली अर्थात् चावलों का ओदन है ऐसे अर्थ में तण्डुल मात्र की अपेक्षा करके यह षष्ठी नहीं है । इस लिये यह समुदाय अपेक्षा नहीं । इत्यादिक स्थलों में समास नहीं होता । समास समर्थों का होता है । समर्थ किस को कहते हैं । पृथक् २ अर्थवाले पदों के एकार्थीभाव को । यहां अगले वाक्यों में पृथक् २ अर्थ वाले पद हैं। जैसे—राज्ञः पुरुषः इस वाक्य में राज्ञः और पुरुषः ये दोनों पद अपने २ अर्थ के प्रतिपादन करने में समर्थ हैं । और समास होने से इन का एकार्थीभाव हो जाता है । यथा । राजपुरुष इत्यादि प्रयोगों में

ओ३म्

॥ अथ सामासिकः ॥

अथ सामासिकः*प्रारभ्यते । तत्र समासाश्चत्वारः । प्रथमोऽव्ययीभावः । द्वितीयस्तत्पुरुषः । तृतीयोबहुव्रीहिः । चतुर्थश्च द्वन्द्वः ॥

समर्थः पदविधिः † । २ । १ । १ ॥

‡ समर्थपदयोरयं विधिशब्देन सर्वविभक्त्यन्तः समासः । समर्थस्य विधिः समर्थविधिः । समर्थयोर्विधिः । समर्थविधिः । समर्थानांविधिः समर्थविधिः । समर्थाद्विधिः । समर्थविधिः । समर्थे विधिः । समर्थविधिः । पदस्यविधिः । पदविधिः । पदयोर्विधिः। पदविधिः । पदानांविधिः । पदविधिः । पदाद्विधिः । पदविधिः । पदेविधिः । पदविधिः । समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च समर्थविधयः ॥ पदविधिश्च पदविधिश्च पदविधिश्च पदविधिश्च पदविधयः। समर्थविधयश्च पदविधयश्च । समर्थःपदविधिः । पूर्वःसमास उत्तरपदलोपी याद्दच्छिकी च विभक्तिः । सामर्थ्यं द्विविधम् । एकार्थीभावः व्यपेक्षा च ॥

यह महाभाष्य का वचन है । जिस में भिन्न २ पदों का एकपद अनेक स्वरों का

---

*समासानां व्याख्यानो ग्रन्थः सामासिकः । जिस ग्रन्थ में समासों की व्याख्या हो उस का नाम सामासिक है ।

† यह सूत्र एक पद और अनेक पदों के सम्बन्ध में साधुत्व विधायक है ।

‡ जो यह आगे व्याख्या लिखी जाती है वह सब महाभाष्य की है ।

एकस्वर, अनेक विभक्तियों की एक विभक्ति हो जाती है उस को एकार्थीभाव और एकपद का अनेक पदों के साथ सम्बन्ध होने को व्यपेक्षा कहते हैं ॥ सो प्रत्ययविधान में और पराङ्गवद्भाव में भी जाननी चाहिये। समास का प्रयोजन यह है कि अनेक पदों का एकपद अनेक विभक्तियों की एकविभक्ति और अनेक स्वरों का एक स्वर होना। "वृत्तिस्तर्हि कस्मान्न भवति महत्कष्टं श्रित इति। सविशेषणानां वृत्तिर्न वृत्तस्य वा विशेषणं न प्रयुज्यत इति"। यहां महत् शब्द विशेषण और कष्ट विशेष्य है॥ फिर विशेषण सहित जो कष्ट है सो श्रित के साथ समास को प्राप्त नहीं होता और जो समास भी कर लें तो भी कष्ट का श्रित के साथ विशेषण का योग नहीं हो सकता। यहां वृत्ति नाम समास का है॥ इस के उदाहरण तथा प्रत्युदाहरण इस सूत्र के आगे कहेंगे॥

सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे ॥ २ । १ । २ ॥

जो आमन्त्रित पद परे हो तो पूर्व सुबन्त को पराङ्गवद्भाव स्वर विधि करने में होवे। अर्थात् आमन्त्रित पद का जो स्वर है वही पूर्व सुबन्त का स्वर हो जावे। संबोधन पद के परे सुबन्त पूर्व पद के स्थान में पराङ्गवत् अर्थात् संबोधन पद का जो स्वर है वही स्वर हो जाता है। कुण्डेनाटन्। परशुना वृश्चन्। मद्राणां राजन्। कश्मीराणां राजन्। मगधानां राजन्। सुबिति किम्। पीड्ये पीड्यमान। आमन्त्रित इति किम्। गेहे गार्ग्यः। परग्रहणं किम्। पूर्वस्य माभूत्। देवदत्तस्य कुण्डेनाटन्। स्वर इति किम्। कूपेसिञ्चन्। चर्मे नमन्॥

वा०—षत्वणत्वे प्रति पराङ्गवन्न भवति। वा०—सुबन्तस्य पराङ्गवद्भावे समानाधिकरणस्योपसंख्यानमनन्तरत्वात्॥

जैसे। तीक्ष्णया सूच्या सीव्यन्। तीक्ष्णेन परशुना वृश्चन्॥

वा०—अव्ययानां प्रतिषेधो वक्तव्यः॥

उच्चैरधीयान। नीचैरधीयान॥

प्राक् कडारात् समासः ॥ २ । १ । ३ ॥

जो इस सूत्र से आगे (कडाराः कर्मधारये) यह सूत्र है यहां तक समास का अधिकार मानना योग्य है॥

सह सुपा ॥ २ । १ । ४ ॥

सह ग्रहणं योगविभागार्थम् । सह सुप् समस्यते केन सह । समर्थेन । अनुव्यचलत् । अनुविशत् । ततः सुपा च सह सुप् समस्यते । उदाहरणम् । अनाकृपाणीयम् । पुनरुत्स्यूतम् । वासो देयं न पुनर्निष्कृतोरथः । अधिकारश्च लक्षणं च यस्य समासस्यान्यल्लक्षणं नास्ति इदं तस्य लक्षणं भविष्यति । ऐसा जानना कि जिस का लक्षण कोई सूत्र न होवे उस समास की सिद्धि करने वाला यह सूत्र है । यहां से आगे तीन पद का अधिकार है । सो ये हैं । सह । सुप् और पासु ॥

वा०-इवेन सह समासो विभक्त्यलोपः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च वक्तव्यम् ॥

जैसे । वाससी इव । कन्ये इव ॥

अव्ययीभाव. ॥ २ । १ । ५ ॥

यहां से आगे जो समास कहेंगे उस की अव्यय संज्ञा जानना चाहिये । पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः । अव्ययीभावसमास में पूर्वपद का अर्थ प्रधान होता है ॥

अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययाऽसम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथाऽऽनुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ॥ २ । १ । ६ ॥

[illegible] (सोलह) अर्थ हैं उन में वर्त्तमान जो [illegible] अव्ययीभाव संज्ञक हो । विभक्तिवचने [illegible] के साथ योग मानना (विभक्ति) स्त्रीन्व-

[illegible]) । १७ ॥

निमान [illegible] । उसके [illegible]

[illegible] [illegible] । सेनानी ।

[illegible]

[illegible] होता है । [illegible]

वा०—समीपवचने ॥

कुम्भस्य समीपम् । उपकुम्भम् । उपमणिकम् । उपराजम् ॥

नाऽव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः ॥ २ । ४ । ८३ ॥

अदन्त अव्ययीभाव समास से सुप् का लुक् न हो किन्तु उसको अम् आदेश हो जाय पञ्चमी को वर्जके । जैसे । उपराजम् । अधिराजम् । अनश्वेतिदृन् । उपमणिकं तिष्ठति । उपमणिकं पश्य । उपकुम्भं पश्यति । अपञ्चम्या इति किम् । उपकुम्भादानय ॥

तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् ॥ २ । ४ । ८४ ॥

अदन्त अव्ययीभाव समास से तृतीया और सप्तमी को अम् आदेश बहुल करके हो अर्थात् पक्ष में लुक् हो । जैसे । उपकुम्भं कृतम् । उपकुम्भेन कृतम् । उपकुम्भं निधेहि । उपकुम्भे निधेहि ॥ (समृद्धि) मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् । सुमगधं वर्त्तते । (व्यृद्धि) ऋद्धि का न होना "गवदिकानामृद्धेरभावः" दुर्गवदिकम् । दुर्यवनम् वर्त्तते (अर्थाभाव) वस्तु का अभाव । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् । निर्मशकम् वर्त्तते (अत्ययः) नाशः । अतीतानि हिमानि यं समयं निर्हिमम् । निःशीतं वर्त्तते (असंप्रति) अर्थात् इस समय न हो । संप्रति क्षुन्नास्ति । अतिक्षुधम् । अतितैसृकम् (शब्दप्रादुर्भाव) शब्द का प्रकाश होना । रथानां पश्चात् अनुरथं पादातम् । योग्यता । वीप्सा । पदार्थानतिवृत्तिः । सादृश्यं चेतियथार्थाः । अनुरूपं । यह रूप के योग्य है । अर्थमर्थम्प्रतीति प्रत्यर्थम् । पदार्थानतिवृत्ति । यथाशक्ति । यथाबलमित्यादि (आनुपूर्व्यम्) अनुक्रमम् । अनुज्येष्ठं प्रविशन्तु भवन्तः (यौगपद्य) एककालं सचक्रं धेहि युगपच्चक्रं धेहीत्यर्थः (सादृश्य) नाम समान । काले समानम् । सदृशः सख्या । ससखि (संपत्तिः) अर्थात् अच्छे प्रकार प्राप्ति । ब्रह्मणः संपत्तिः सब्रह्म । सक्षनम् देवदत्तस्य (साकल्य) नाम सब । तुषेण सह भुङ्क्ते सतुषम् । सतुसम् (अन्तवचन)

ग्रन्थान्ताधिके च ॥ ६ । ३ । ७९ ॥

जो ग्रन्थ उत्तर पद परे हो तो ग्रन्थान्त में तथा अधिक अर्थ में वर्तमान जो सह शब्द है उस को स आदेश हो । सज्योतिषमधीते । समुहूर्त्तम् । ससंग्रहं व्याकरणमधीते । अधिके । सद्रोणा खारी । समाषः कार्षापणः ॥

अव्ययीभावे चाकाले ॥ ६ । ३ । ८२ ॥

अव्ययीभाव समास में काल वाची भिन्न उत्तर पद परे हो तो सहको स आदेश हो । सचक्रम् । सवुसम् । अकाल इति किम् । सह पूर्वाह्णम् । समाप्यम् । साग्न्यधीते ।

यथा सादृश्ये ॥ २ । १ । ७ ॥

जो सादृश्य भिन्न अर्थ में अव्यय सो सुबन्त के संग समास को प्राप्त हो सो समास अव्ययीभाव संज्ञक हो । यथावृद्धं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व । ये ये वृद्धाःयथावृद्धम् । यथाऽध्यापकम् । असादृश्य इति किम् । यथा देवदत्त स्तथा यज्ञदत्तः ॥

यावदवधारणे ॥ २ । १ । ८ ॥

जो अवधारण अर्थ में वर्त्तमान अव्यय सो सुबन्त के संग समास पावे । यावदमत्रं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व । यावन्त्यमत्राणि संभवन्ति पञ्च षड् वा तावत आमन्त्रयस्व । अवधारण इति किम् । यावद्दत्तं तावद्भुक्तम् । नावधारयामि । कियन्मया भुक्तमिति ।

सुप्प्रतिना मात्रार्थे २ । १ । ९ ॥

मात्रा बिन्दुः स्तोक मल्पमिति पर्यायाः । जो मात्रार्थ में वर्त्तमान प्रति उस के साथ सुबन्त समास पावे सो अव्ययीभाव संज्ञक हो । अस्त्यत्र किञ्चिच्छाकम् । शाकप्रति । सूपप्रति । ओदनप्रति । मात्रार्थ इति किम् । वृक्षंप्रति विद्योतते विद्युत् । सुबिति वर्त्तमाने पुनः सुब्ग्रहणमव्ययनिवृत्त्यर्थम् ।

अक्षशलाकासंख्याः परिणा ॥ २ । १ । १० ॥

जो अक्ष शलाका और संख्या वाची शब्द एक द्वि त्रि इत्यादि परि के साथ समास को प्राप्त हों वह अव्ययीभाव संज्ञक समास है । अक्षेण परि क्रीडन्त इति अक्षपरि । शलाकापरि । एकपरि । द्विपरि । त्रिपरि ।

वा०—अक्षशलाकयोश्चैकवचनान्तयोरितिवक्तव्यम् ॥

इह माभूत् अक्षाभ्यां वृत्तमैक्षवृत्तम् ।

वा०—कितवव्यवहार इति वक्तव्यम् ॥

इह माभूत् । अक्षेणेदं न तथा वृत्तं शकटेन तथा पूर्वमिति ।

विभाषा ॥ २ । १ । ११ ॥

अधिकार । इस के आगे जो २ समास कहेंगे सो २ विभाषा करके होवें अर्थात् पक्ष में विग्रह भी रहेगा जहां २ वि० ऐसा संकेत करें वहां २ विकल्प जानना।

अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या ॥ २ । १ । १२ ॥

जो अप परि बहिस् और अञ्चु का सुबन्त के साथ समास विकल्प करके होता है वह अव्ययीभाव कहाता है । जैसे वि० अपत्रिगर्त्तं वृष्टो देवः । अपत्रिगर्तेभ्यो वा । ग्रामाद्बहिः बहिर्ग्रामम् । बहिर्ग्रामात् । बहिश्शब्दयोगे पञ्चमीभावस्यैतदेव ज्ञापकं।

आङ्मर्यादाभिविध्योः ॥ २ । १ । १३ ॥

जो मर्यादा और अभिविधि अर्थ में आङ् पञ्चम्यन्त सुबन्त के सङ्ग वि० समास को प्राप्त होता है सो समास अव्ययीभाव संज्ञक होवे । आपाटलिपुत्रं वृष्टो देवः। आ पाटलि पुत्रात् । अभिविधि । आकुमारं यशः पाणिनेः । आकुमारेभ्यः ।

लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये ॥ २ । १ । १४ ॥

जो आभिमुख्य अर्थ हो तो लक्षण अर्थात् चिह्नवाची सुबन्त के साथ अभि और प्रति वि० समास को प्राप्त हों वह अव्ययीभाव स० हो । जैसे । अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति । अग्निमभि । प्रत्यग्नि । अग्निं प्रति । आभिमुख्ये किम् । देवंप्रति गतः।

अनुर्यत्समया ॥ २ । १ । १५ ॥

समया नाम समीपता । जिस के समीप को अनु कहता हो उसी लक्षण वाची सुबन्त के साथ वि० समास पावे सो अव्ययीभाव संज्ञक हो । जैसे अनुवनमशनिर्गतः । अनुवृक्षम् । अनुरिति किम् । वनं समया । यत्समयेति किम् । वृक्षमनु विद्योतते विद्युत् ।

यस्य चायामः ॥ २ । १ । १६ ॥

आयामो दैर्घ्यम् । जिस के लम्बेपन को अनु कहता हो उसी लक्षणवाची सुबन्त के सङ्ग वि० समास पावे सो अव्ययीभाव संज्ञक हो । अनुगङ्गं वाराणसी । अनुयमुनम्मथुरा । यमुनाऽऽयामेन मथुराऽऽयामो लक्ष्यते । आयाम इति किम् । वृक्षमनु विद्योतते विद्युत् ॥

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च ॥ २ । १ । १७ ॥

जो तिष्ठद्गु आदि शब्द निपातन किये हैं वे अव्ययी

कालविशेषः । जैसे तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय, स तिष्ठद्गु काल. । वहद्गु । आयतगिवम् ।

वा०—खलेयवादीनि प्रथमान्तान्यन्यपदार्थे समस्यन्त इति वक्तव्यम्।

जैसे—खलेबुसम् । खलेयवम् । लूनयवम् । लूयमानयवम्। पूतयवम् । संहृितबुसम् । संहृियमाणबुसम् । एते कालशब्दाः । समभूमि । समपदाति । सुषमम् । विषमम् । निष्षमम् । दुष्षमम् । अपसमम् । आहृणम् । प्रस्थम्। प्रमृगम्। प्रदक्षिणम्। अपरदक्षिणम् । संप्रति । असंप्रति । पापसमम् । पुण्यसमम् ॥

वा०—इच् कर्मव्यतिहारे॥

दण्डादण्डि । मुसलामुसलि । नखानखि ॥

पारे मध्ये षष्ठ्या वा ॥ २ । १ । १८ ॥

जो पार और मध्य शब्द षष्ठ्यन्त सुबन्त के सङ्ग वि० समास पावें सो समास अव्ययीभाव संज्ञक हो। और एकारान्त निपातन भी किया है ॥ जैसे। पारं गङ्गायाः। पारे गङ्गम् । । मध्यंगङ्गायाः । मध्येगङ्गम् । षष्ठीसमास पक्षे । गङ्गापारम् । गङ्गामध्यम् । यहां फिर (वा) ग्रहण का प्रयोजन यह है कि । पक्ष में षष्ठी समास हो के वाक्य भी रह जावे । जैसे गङ्गाया पारम् । गङ्गाया मध्यम् ।

संख्या वंश्येन ॥ २ । १ । १९ ॥

जो वंश्य वाची सुबन्त के साथ संख्या वाची सुबन्त वि० समास पावे सो अव्ययीभाव संज्ञक हो जैसे । द्वौ मुनी व्याकरणस्य वंश्यौ । द्विमुनि व्याकरणस्य* । त्रिमुनि व्याकरणस्य † ॥

नदीभिश्च ॥ २ । १ । २० ॥

जो संख्या वाची सुबन्त नदीवाची सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त वि० होवें सो० । जैसे सप्तगङ्गम् । द्वियमुनम् । पञ्चनदम् । सप्तगोदावरम् ॥

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ॥ ५ । ४ । १०७ ॥

---

* दो मुनि अर्थात् पाणिनि और पतञ्जलि ।

† तीन मुनि अर्थात् पाणिनि पतञ्जलि और शाकटायन ।

अव्ययीभाव समास में शरत् आदि प्रातिपदिकों से टच् प्रत्यय होवे। जैसे। शरदः समीपम्। उपशरदम्। प्रतिशरदम्। उपविपाशम्। प्रतिविपाशम्। अव्ययीभाव इति किम्। परमशरत् ॥

अनश्च ॥ ५। ४। १०८॥

अन् जिस के अन्त में हो उस सुबन्त से समासान्त टच् प्रत्यय हो। जैसे। राज्ञः समीपं। उपराजम्। आत्मनि अधि इति अध्यात्मम्। प्रत्यात्मम्।

नपुंसकादन्यतरस्याम् ॥ ५। ४। १०९॥

अन्नन्त नपुंसक सुबन्त से अव्ययीभाव समास में समासान्त टच् प्रत्यय वि० हो। चर्म चर्म प्रति इति प्रतिचर्मम्। प्रतिचर्म। उपचर्मम्। उपचर्म ॥

नदी पौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः ॥ ५। ४। ११०॥

नदी, पौर्णमासी, आग्रहायणी, ये तीन प्रातिपदिक जिनके अन्त में हों उन समस्त समुदायों से अव्ययीभाव समास में समासान्त टच् प्रत्यय वि० हो। जैसे। नद्याः समीपं। उपनदम्। उपनदि। उपपौर्णमासम्। उपपौर्णमासि। उपाग्रहायणम्। उपाग्रहायणि।

झयः ॥ ५। ४। १११॥

झय् प्रत्याहार जिस के अन्त में हो उस सुबन्त से अव्ययी भाव समास में समासान्त टच् प्रत्यय वि० हो। जैसे। उपसमिधम्। उपसमित्। उपदृषदम्। उपदृषत्। अतिचुषम्। अतिचुत् ॥

गिरेश्च सेनकस्य ५। ४। ११२॥

सेनक आचार्य के मत में गिरि शब्दान्त प्रातिपदिक से अव्ययीभाव समास में समासान्त टच् प्रत्यय वि० हो। जैसे। अंतर्गिरम्। अन्तर्गिरि। उपगिरम्। उपगिरि। अव्ययीभाव समास में इतने समासान्त प्रत्यय होते हैं ॥

अन्यपदार्थे च सञ्ज्ञायाम् ॥ २। १। २१॥

जो संज्ञा हो तो अन्यपदार्थ में वर्त्तमान जो सुबन्त सो नदीवाची सुबन्त के साथ समास पावे। जैसे। उन्मत्तगङ्गं नाम देशः। लोहितगङ्गं नाम देशः। कृष्णगङ्गं नाम देशः। शनैर्गङ्गं नाम देशः। अन्यपदार्थे इति किम्। कृष्णवेणी। संज्ञायाम् इति किम्। शीघ्रगङ्गो देशः॥ इत्यव्ययीभावः समासः समाप्तः ॥

अथ तत्पुरुषः ॥

तत्पुरुषः ॥ २ । १ । २२ ॥

यहां से लेके बहुव्रीहि समास से पूर्व २ तत्पुरुष समास का अधिकार है ॥

उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः ॥

तत्पुरुष समास में उत्तर पद का अर्थ प्रधान होता है ॥

द्विगुश्च ॥ २ । १ । २३ ॥

द्विगु समास भी तत्पुरुष संज्ञक होता है "द्विगोस्तत्पुरुषत्वे समासान्ताः प्रयोजनम्"॥

समासान्ताः ॥ ५ । ४ । ६८ ॥

अब जो प्रत्यय कहेंगे वे समासान्त होंगे अर्थात् उनका समास के ही साथ म-
। किया जायगा। जैसे पञ्चरात्री । दशरात्री । पञ्चराजम् । दशराजम् । द्व्यहः।
ग्रहः । पञ्चगवम् । दशगवम् ॥

गोरतद्धितलुकि ॥ ५ । ४ । ९२ ॥

तद्धितलुक् को वर्ज के गो शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो। जैसे
मगवः । उत्तमगवः । पञ्चगवम् । दशगवम् । अतद्धितलुकीति किम् । पञ्चभिर्गोभिः
तः । पञ्चगुः । दशगुः । तद्धितग्रहणेन किम् । सुब्लुकि प्रतिषेधो माभूत् । जैसे राज-
वमिच्छति । राजगवीयति । लुग्ग्रहणात्किम् । तद्धित एव माभूत् । पञ्चभ्यो गोभ्य
गगतं पञ्चगवरूप्यम् । पञ्चगवमयम् ॥

ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे ॥ ५ । ४ । ७४ ॥

जो अक्ष सम्बन्धी अर्थ न हो तो ऋक् । पुर् । अप् । धुर् । और पथिन् ये
नेन के अन्त में हों उन प्रातिपदिकों से समासान्त अकार प्रत्यय हो । जैसे—अविद्य-
ाना ऋक् यस्मिन्सोऽनृचो ब्राह्मणः । बह्वृचः । ब्राह्मणपुरम् । नान्दीपुरम् । द्विर्गता
आपो यस्मिन् तद् द्वीपम् । अन्तरीपम् । समीपम् । राज्ञान्धूः । राजधुरा ।
महापुरा । देवपथः । जलपथः । अनक्ष इति किम् । अक्षस्य धूः । अक्षधूः ।
दृढधूरक्षः ॥

अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः ॥ ५ । ४ । ७५ ॥

जो प्रति । अनु । और अव पूर्वक सामन् और लोमन् प्रातिपदिक हों तो उन से समासान्त अच् प्रत्यय हो । प्रतिसामम् । अनुसामम् । अवसामम् । प्रतिलोमम् । अनुलोमम् । अवलोमम् ॥

अक्ष्णोऽदर्शनात् ॥ ५ । ४ । ७६ ॥

दर्शन भिन्न अर्थ में अक्षि शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय हो । जैसे । पुष्कराक्षम् । उदुम्बराक्षः । अदर्शनादिति किम् । ब्राह्मणाक्षि ॥

ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः ॥ ५ । ४ । ७८ ॥

ब्रह्मन् और हस्तिन् शब्द से परे जो वर्चस् उस से समासान्त अच् प्रत्यय हो। जैसे । ब्रह्मणो वर्चः । ब्रह्मवर्चसम् । हस्तिनो वर्चः । हस्तिवर्चसम् ॥

वा०— पल्यराजभ्यांचेति वक्तव्यम् ॥

पल्लवर्चसम् । राजवर्चसम् ॥

अवसमन्धेभ्य स्तमसः ॥ ५ । ४ । ७९ ॥

अव । सम् । और अन्ध शब्द से परे जो तमस् उस से समासान्त अच् प्रत्यय हो । जैसे । अवगतं नाम प्राप्तं तमः । अवतमसम् । सम्यक्तमः । सन्तमसम् । अन्धन्तमः । अन्धतमसम् ।

श्वसो वसीयः श्रेयसः ॥ ५ । ४ । ८० ॥

जो श्वस् शब्द से परे वसीयस् और श्रेयस् शब्द हों तो उन में समासान्त अच् प्रत्यय हों । श्वोवसीयसम् । श्वःश्रेयसम् ॥

अन्ववतप्ताद्रहसः ॥ ५ । ४ । ८१ ॥

अनुरहसम् । अवरहसम् । तप्तरहसम् ॥

प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात् ॥ ५ । ४ । ८२ ॥

जो प्रति से परे सप्तमीस्थ उरस् उस से समासान्त अच् प्रत्यय हो । जैसे । उरसि प्रति । प्रत्युरसम् । सप्तमीस्थादिति किम् । प्रतिगत ·

अनुगवमायामे ॥ ५ । ४ । ८३ ॥

यहां आयाम अर्थ में अनुगव अच् प्रत्ययान्त निपातन किया है । गोरनु । अनुगवम् यानम् । आयाम इति किम् । गवां पश्चादनुगु ॥

द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः ॥ ५ । ४ । ८४ ॥

जो वेदी के प्रमाण से अधिक द्विगुण वा त्रिगुण वेदी हो सो कहिये द्विस्तावा । त्रिस्तावा । ये वेदी के नाम हैं ॥

उपसर्गादध्वनः ॥ ५ । ४ । ८५ ॥

उपसर्ग से परे जो अध्वन् उस से समासान्त अच् प्रत्यय हो । जैसे । प्रगतोऽध्वानम् । प्राध्वोरथः । प्राध्वं शकटम् । निरध्वम् । प्रत्यध्वम् । उपसर्गादितिकिम् परमाध्वा । उत्तमाध्वा ॥

तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः ॥ ५ । ४ । ८६ ॥

जो तत्पुरुष समास में अङ्गुलि शब्दान्त हो तो उस से समासान्त अच् प्रत्यय हो संख्यादि जैसे । द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य तद्द्व्यङ्गुलम् । त्र्यङ्गुलम् । यहां तद्धितार्थ में समास और मात्रच् प्रत्यय का लोप जानना । अव्ययादि–निर्गतमङ्गुलिभ्योनिरङ्गुलम् । अत्यङ्गुलम् । तत्पुरुषस्येतिकिम् । पञ्चाङ्गुलिः । अत्यङ्गुलिः पुरुषः । (द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे) इस सूत्र से पूर्व २ तत्पुरुष का अधिकार जानना ।

अहस्सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः । ५ । ४ । ८७ ॥

अहन् । सर्व । एकदेश वाची । संख्यात और पुण्य । चकार से संख्या और अव्यय इन से भी उत्तर जो रात्रि उस से समासान्त अच् प्रत्यय हो । अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थं द्रष्टव्यम् । अहश्चरात्रिश्च । अहोरात्रः । एकदेशे पूर्वरात्रः । अपररात्रः । पूर्वापरावरेति समासः । संख्याता रात्रिः । संख्यातरात्रः । पुण्यारात्रिः । पुण्यरात्रः । द्वे रात्री समाहृते । द्विरात्रः ॥

अह्नोऽह्न एतेभ्यः ॥ ५ । ४ । ८८ ॥

(एतेभ्यः) अर्थात् । संख्या । अव्यय । और सर्व एकदेश इत्यादि शब्दों से परे जो अहन् उसको अह्न आदेश हो । संख्यायास्तावत् । जैसे द्वयोरह्नोर्भवो द्व्यह्नः ।

ऽयह्नः । अह्नरति क्रान्तः । अत्यह्नः । निरह्नः । सर्वं च तदहश्च । सर्वाह्नः । पूर्वञ्च तदह
पूर्वाह्णः । अपराह्णः । संख्याताह्नः ।

न संख्यादेः समाहारे ॥ ५ । ४ । ८९ ॥

जो समाहार में वर्त्तमान और संख्यादि तत्पुरुष उस से परे अहन् शब्द को
ह्न आदेश न हो । जैसे—द्वे अहनी समाहृते । द्व्यहः । त्र्यहः इत्यादि । समाहा
ति किम् । द्वयोरन्होर्भवः द्व्यह्नः । त्र्यह्नः । तद्धितार्थे इति समासे कृतेऽण आगत
द्विगोरिति लुक् ॥

उत्तमैकाभ्याञ्च ॥ ५ । ४ । ९० ॥

उत्तम । अर्थात् पुण्य । और एक इन से परे अहन् को अह्न आदेश न हो।
जैसे—पुण्याहः । एकाहः ॥

राजाहस्सखिभ्यष्टच् ॥ ५ । ४ । ९१ ॥

राजन् अहन् और सखि इन प्रातिपदिकों से परे समासान्त टच् प्रत्यय हो। जैसे।
महाराजः । मद्रराजः । परमाहः । उत्तमाहः । देवसखः । रामसखः । मत्रसखः ॥

अग्राख्यायामुरसः ॥ ५ । ४ । ९३ ॥

अग्राख्या अर्थ में उरस् शब्दान्त तत्पुरुष समास से टच् प्रत्यय हो । जैसे। अ
श्वानामुरः । अश्वोरसम् । हस्त्युरसम् । अग्राख्यायामिति किम् । देवदत्तस्योरः । दे
वदत्तोरः ॥

अनोश्मायस्सरसां जातिसञ्ज्ञयोः ॥ ५ । ४ । ९४ ॥

जाति और संज्ञा के विषय में अनस् अश्मन् अयस् और सरस् शब्दान्त तत्पुरु
से समासान्त टच् प्रत्यय हो । जैसे । उपानसमिति जातिः । महानसमितिसंज्ञा । अमृ
ताश्ममिति जातिः । पिण्डाश्म इतिसंज्ञा । कालायसमितिजातिः । लोहितायसमिति
संज्ञा । मण्डूकसरसमिति जातिः । जलसरसमिति संज्ञा । जातिसंज्ञयोरिति किम् ।
सदनः । सदश्मा । उत्तमायः । सत्सरः ॥

ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः ॥ ५ । ४ । ९५ ॥

ग्राम और कौट से उत्तर जो तक्षन् उससे टच् प्रत्यय हो । ग्रामस्य तक्षा । ग्राम
तक्षः । कौटस्य तक्षा । कौटतक्षः । ग्रामकौटाभ्यामिति किम् । राजतक्षा ॥

अतेः शुनः ॥ ५ । ४ । ९६ ॥

अति से उत्तर श्वन् तदन्त जो तत्पुरुष उससे समासान्त टच् प्रत्यय हो। जैसे। अतिक्रान्तः श्वानमतिश्वः । वराहो जववानित्यर्थः । अतिश्वः सेवकः । सुष्ठु स्वामिभक्त इत्यर्थः ॥

उपमानादप्राणिषु ॥ ५ । ४ । ९७ ॥

प्राणि भिन्न अर्थ में उपमान वाची श्वन् शब्द से टच् प्रत्यय हो । जैसे । आकर्षः श्वेव आकर्षश्वः । फलकश्वः । उपमितं व्याघ्रादिभिरिति समासः । उपमानादितिकिम् । नश्वा । अश्वा । लोष्ठः । अप्राणिष्विति किम् । वानरः श्वेव वानरश्वा ॥

उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः ॥ ५ । ४ । ९८ ॥

उत्तर, मृग और पूर्व, चकार से उपमान पूर्वक जो सक्थिन् तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो । उत्तरसक्थम् । मृगसक्थम् । पूर्वसक्थम् ।उपमान । फलकमिव सक्थि । फलकसक्थम् ॥

नावो द्विगोः ॥ ५ । ४ । ९९ ॥

नौ शब्दान्त द्विगु से समासान्त टच् प्रत्यय हो । द्वे नावौ समाहृते द्विनावम् । त्रिनावम् । द्वे नावौ धनमस्य द्विनावधनः । पञ्चनावप्रियः । द्वाभ्यान्नौभ्यामागतं द्विनावरूप्यम् । द्विनावमयम् । द्विगोरिति किम् । राजनौः । अतद्धितलुकीत्येव । पञ्चभिर्नौभिः क्रीतः । पञ्चनौः । दशनौः ॥

अर्द्धाच्च ॥ ५ । ४ । १०० ।

जो अर्द्ध से परे नौ शब्द हो तो उस से समासान्त टच् प्रत्यय हो । अर्द्धं नावः अर्द्धनावम् ॥

खार्य्याः प्राचाम् ॥ ५ । ४ । १०१ ॥

प्राचीन आचार्य्यों के मत में अर्द्ध से उत्तर खारी शब्द और खारी शब्दान्त द्विगु इन से समासान्त टच् प्रत्यय हो । अर्द्धं खार्य्याः । अर्द्धखारम् । अर्द्धखारी । द्वे खार्य्यौ समाहृते । द्विखारम् । द्विखारि । त्रिखारम् । त्रिखारि ॥

द्वित्रिभ्यामञ्जलेः ॥ ५ । ४ । १०२ ॥

द्वि और त्रि शब्द से परे जो अञ्जलि उस से समासान्त टच् प्रत्यय हो ।

द्वावञ्जली समाहृतौ । द्व्यञ्जलम् । त्र्यञ्जलम् । द्विगोरित्येव । द्वयोरञ्जलिः । द्व्यञ्जलिः । अतद्धितलुकीत्येव । द्वाभ्यामञ्जलिभ्यां क्रीतः । द्व्यञ्जलिः । त्र्यञ्जलिः । प्रधानमित्येव । द्व्यञ्जलिप्रियः ॥

अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि ॥ ५ । ४ । १०३ ॥

नपुंसक लिङ्ग वाची जो अनन्त और असन्त तत्पुरुष उस से समासान्त टच् प्रत्यय हो । वेद के विषय में । हस्तिचर्मे जुहोति । वृषभचर्म्मेऽभिषिञ्चति । असन्तात् । देवच्छन्दसानि । मनुष्यच्छन्दसानि । अनसन्तादिति किम् । बिल्वदारु जुहोति । नपुंसकादिति किम् । सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसम् । अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि वा वचनम् । ब्रह्मसाम । देवच्छन्दः । ब्रह्मसामम् । देवच्छन्दसम् ॥

ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् ॥ ५ । ४ । १०४ ॥

ब्रह्मन् शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो जानपद की आख्या अर्थ में। सुराष्ट्रेषु ब्रह्मा । सुराष्ट्रब्रह्मः । अवन्तिब्रह्मः । पञ्चालब्रह्मः । जानपदाख्यायामिति किम्। देवब्रह्मा नारदः ॥

कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम् ॥ ५ । ४ । १०५ ॥

कु और महत् से परे जो ब्रह्मन् शब्द सो अन्त में जिस के उस तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो । कुब्रह्मः । कुब्रह्मा । महाब्रह्मः । महाब्रह्मा । ब्राह्मणपर्यायो ब्रह्मन्शब्दः ॥

द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ॥ २ । १ । २४ ॥

द्वितीयान्त समर्थ जो सुबन्त सो श्रित अतीत पतित गत अत्यस्त प्राप्त और आपन्न इन सुबन्तों के संग वि० समास पावे । सो समास तत्पुरुष संज्ञक हो * कष्टं श्रितः । कष्टश्रितः । नरकाश्रितः । कान्तारमतीतः । कान्तारातीतः । नरकं पतितः । नरकपतितः । ग्रामं गतः । ग्रामगतः । व्यसनमत्यस्तः । व्यसनात्यस्तः । सुखं प्राप्तः । सुखप्राप्तः । सुखमापन्नः । सुखापन्नः । समर्थग्रहणं किमर्थम् । पश्य देवदत्त कष्टं श्रितो विष्णुमित्रो गुरुकुलम् । यहां कष्ट शब्द का संबन्ध पश्य क्रिया के साथ है इस लिये समास नहीं होता ॥

*यहां से आगे द्वितीया

वा०-श्रितादिषु गमिगाम्यादीनामुपसङ्ख्यानम् ॥

ग्रामं गमी । ग्रामगमी । ग्रामं गामी । ग्रामगामी । ओदनं बुभुक्षुः । ओदनबुभुक्षुः ।

स्वयं क्तेन ॥ २ । १ । २५ ॥

स्वयं सुबन्त क्तान्त सुबन्त के संग वि० जो समास हो सो समास तत्पुरुष संज्ञक हो । जैसे । स्वयंधौतौ पादौ । स्वयंविलीनमाज्यम् । एकपद्यमैकस्वर्यं च समासत्वाद् भवति॥

खट्वाक्षेपे ॥ २ । १ । २६ ॥

क्षेप नाम निंदा का है । द्वितीयान्त खट्वा सुबन्त, क्तान्त सुबन्त के संग वि० समास को प्राप्त हो सो समास तत्पुरुष संज्ञक हो । जैसे । खट्वारोहणं चेह विमार्गप्रस्थानस्योपलक्षणम् सर्वएवायमविनीतः खट्वारूढ इत्युच्यते । खट्वारूढो जाल्मः । खट्वाप्लुतः । अपथप्रस्थित इत्यर्थः । क्षेप इति किम् । खट्वामारूढः ॥

सामि ॥ २ । १ । २७ ॥

यह सामि अव्यय अर्द्ध का पर्याय है । जैसे-सामिकृतम् । सामिपीतम् । सामिभुक्तम् ॥

कालाः ॥ २ । १ । २८ ॥

जो द्वितीयान्त काल वाचि सुबन्त शब्द क्तान्त सुबन्त के साथ समास वि० पावे सो तत्पुरुष संज्ञक हो । जैसे । षण्मुहूर्त्ताश्चराचराः । ते कदाचिदहर्गच्छन्ति । कदाचिद्रात्रिम् । अहरतिसृता मुहूर्त्ताः । अहस्संक्रान्ताः । रात्र्यतिसृता मुहूर्त्ताः । रात्रिसंक्रान्ताः । मासप्रमितश्चन्द्रमाः । मासं प्रमातु मारब्धः प्रतिपच्चन्द्रमा इत्यर्थः ॥

अत्यन्तसंयोगे च । २ । १ । २९ ॥

द्वितीयान्त काल वाची सुबन्त, सुबन्त के संग समास पावे अत्यन्त संयोग अर्थ में । अत्यन्त संयोग नाम सर्वसंयोग का है । जैसे । मुहूर्त्तं सुखम् । मुहूर्त्तसुखम् । सर्वरात्रकल्याणी । सर्वरात्रशोभना ॥

तृतीयातत्कृतार्थेन गुणवचनेन * । २ । १ । ३० ॥

जो तृतीयान्त सुबन्त (तत्कृतेन) अर्थात् तृतीयार्थकृतगुणवचन के साथ

---

*यहां से आगे तृतीया तत्पुरुष समास का आरम्भ जानो ॥

समास हो। तथा तृतीयान्त सुबन्त, अर्थ सुबन्त के संग भी समास हो सो तृ
तत्पुरुष हो, उपादानेन विकलः। उपादानविकलः। किरिणा काणः। किरिका
शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः। धान्येनार्थः। धान्यार्थः। तत्कृतेनेतिकिम्। अ
काणः। गुणवचनेनेतिकिम्। गोभिर्वपावान्। समर्थग्रहणं किम्। त्वं तिष्ठ शंकुल
खण्डो धावति मुसलेन।

पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः ॥ २ । १ । ३१

तृतीयान्त सुबन्त का पूर्व सदृश सम ऊनार्थ कलह निपुण मिश्र और श्लक्
सुबन्तों के साथ समास हो सो तृतीया तत्पुरुष हो। जैसे। मासेन पूर्वः मासपूर्वः
संवत्सरपूर्वः। पित्रा सदृशः पितृ सदृशः। पित्रा समः। पितृसमः। माषेणोनम्। माषोनम्
कार्षापणोनम्। मासविकलम्। कार्षापणविकलम्। असिकलहः। वाक्कलहः
वाग्निपुणः। शास्त्रनिपुणः। गुडमिश्रः। तिलमिश्रः। आचारश्लक्ष्णः॥

वा०—पूर्वादिष्ववरस्योपसंख्यानम् ॥

मासेनावरः। मासावरः। संवत्सरावरः॥

कर्तृकरणे कृता बहुलम् ॥ २ । १ । ३२ ॥

कर्त्ता और करण अर्थ में जो तृतीयान्त सुबन्त सो कृदन्त के साथ कहीं २ समास
को प्राप्त होते हैं। वह तृतीया तत्पुरुष समास होता है। जैसे अहिना दष्टः। अहि-
दष्टः। देवदत्तेन कृतम्। देवदत्तकृतम्। नखैर्निर्भिन्नः। नखनिर्भिन्नः। कर्तृकरणे किम्।
भिक्षाभिरुषितः। बहुलग्रहणं किम्। दात्रेण लूनवान्। परशुना छिन्न इह समासो न भ-
वति। इह च भवति। पादहारको गलेचोपकः॥

कृत्यैरधिकार्थवचने ॥ २ । १ । ३३ ॥

कर्त्ता और करणकारक में जो तृतीयान्त सो कृत्य प्रत्ययान्त सुबन्त के सङ्ग वि०
समास को प्राप्त हो, अधिकार्थ वचन हो तो। स्तुति निन्दा युक्त वचन को अधिकार्थ
वचन कहते हैं। वह तृतीया तत्पुरुष समास कहाता है। जैसे। कर्त्ता। काकपेया नदी।
श्वलेह्यः कूपः। करण। बाष्पच्छेद्यानि तृणानि। घनाघात्यो गुणः। कण्टकद्यो दुग्।
वा० कृत्यग्रहणे यण्ण्यतोर्ग्रहणम्। इह मा भूत्। काकैः पातव्या इति॥

ो तृतीया तत्पुरुष हो। जिस से अन्न का संस्कार किया जाय उस को व्यञ्जन कहते हैं। जैसे। दध्ना उपसिक्त ओदनः। दध्योदनः। क्षीरोदनः॥

भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ॥ २। १। ३५॥

मिश्रीकरण वाची तृतीयान्त सुबन्त भक्ष्यवाची सुबन्त के सङ्ग में वि० समास पावे सो तृतीया तत्पुरुष हो। जैसे। गुडेन मिश्रा धानाः। गुडधानाः। घृतेन मिश्रं शाकम्। घृतशाकम्॥

ओजः सहोम्भस्तमसस्तृतीयायाः॥ ६। ३। ३॥

जो तृतीयान्त ओजस् सहस् अम्भस् तमस् शब्दों से परे तृतीया का अलुक् हो। जो उत्तर पद परे हो तो। जैसे—ओजसा कृतम्। सहसा कृतम्। अम्भसा कृतम्। तमसा कृतम्॥

वा०— पुंसानुजो जनुषान्धो विकृताक्ष इतिचोपसङ्ख्यानम्॥

पुंसानुजः। जनुषान्धः। विकृताक्षः॥

मनसः सञ्ज्ञायाम्॥ ६। ३। ४॥

जो सञ्ज्ञा विषय में उत्तरपद परे हो तो तृतीयान्त मनस् से परे तृतीया का अलुक् हो। जैसे। मनसादत्ता। मनसागुप्ता। मनसारामः॥

आज्ञायिनि च॥ ६। ३। ५॥

जो आज्ञायिन् उत्तर पद परे हो तो तृतीयान्त मनस् से परे तृतीया का अलुक् हो। जैसे। मनसाज्ञायी॥

आत्मनश्च पूरणे॥ ६। ३। ६॥

आत्मनाषष्ठः। आत्मनापञ्चमः॥

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः॥ २। १। ३६॥

जो तदर्थ अर्थात् विकृतिवाची चतुर्थ्यन्त सुबन्त, अर्थ बलि हित सुख और रक्षित सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हो सो चतुर्थी तत्पुरुष कहावे * जैसे। यूपाय दारु। यूपदारु। कुण्डलाय हिरण्यम् कुण्डलहिरण्यम्। इह न भवति। रन्धनाय स्थाली। अवहननायोलूखलमिति॥

---

* यहां से चतुर्थी तत्पुरुष समास का आरम्भ समझना।

वा०—अर्थेन नित्यसमासवचनं सर्वलिङ्गता च वक्तव्या॥

जैसे । ब्राह्मणार्थं पयः । ब्राह्मणार्था यवागूः। ब्राह्मणार्थः कम्बलः । कृमिभ्यो बलिः। कृमिबलिः । गोहितम् । मनुष्यहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् । अश्वरक्षितम्॥

वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः ॥ ६ । ३ । ७॥

जो उत्तरपद परे हो तो । वैयाकरणों की आख्या अर्थात् संज्ञा विषय में आत्म शब्द से परे चतुर्थी का अलुक् हो । आत्मनेभाषा । आत्मनेपदम् ॥

परस्य च ॥ ६ । ३ । ८॥

जो वैयाकरणों की आख्या अर्थ में उत्तरपद परे हो तो पर शब्द से परे च-तुर्थी का अलुक् हो । जैसे—परस्मैपदम् । परस्मैभाषा ॥

पञ्चमी भयेन ॥ २ । १ । ३७ ॥

जो पञ्चमचन्त सुबन्त, भय सुबन्त के सङ्ग समास को प्राप्त हो सो पञ्चमी त-त्पुरुष हो † जैसे । वृकेभ्यो भयम् । वृकभयम् । चोरभयम् । दस्युभयम् ॥

वा०—भयभीतभीतिभीभिरिति वक्तव्यम् ॥

जैसे । वृकेभ्यो भीतः । वृकभीतः । वृकभीतिः । वृकभीः ॥

अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः ॥ २ । १ । ३८॥

जो पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक, अपेत अपोढ मुक्त पतित और अपत्रस्त इन सुबन्तों के साथ समास होता है सो पञ्चमी तत्पुरुष हो । जैसे । सुखादपेतः सुखापेतः । दुः-खापेतः । कल्पनापोढः । कृच्छ्रान्मुक्तः । चक्रमुक्तः । वृक्षपतितः । नरकापत्रस्तः । अ-ल्पशः अर्थात् पञ्चमी अल्पशः समास पावे । सब पञ्चमी नहीं । इस से प्रासादात् पतितः । भोजनादपत्रस्तः । इत्यादि में नहीं होता ॥

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन ॥ २ । १ । ३९ ॥

जो स्तोक अन्तिक दूर और इनके तुल्य पञ्चम्यन्त हैं वे क्तान्त सुबन्त के साथ समास पावें सो पञ्चमी तत्पुरुष हो ॥

अलुगुत्तरपदे ॥ ६ । ३ । १ ॥

अलुक् और उत्तरपद । इन दो पदों का अधिकार किया है ॥

---

† यहां से पञ्चमी तत्पुरुष का आरम्भ है ॥

पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ॥ ६ । ३ । २ ॥

स्तोक आदि प्रातिपदिकों से परे उत्तरपद हो तो पञ्चमी विभक्ति का लुक् न हो। जैसे। स्तोकान्मुक्तः। स्वल्पान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। समीपादागतः अभ्याशादागतः। दूरादागतः। विप्रकृष्टादागतः। कृच्छ्रान्मुक्तः। कृच्छ्राल्लब्धः। क्लेशान्मुक्तः॥

वा०-शतसहस्रौ परेणेति वक्तव्यम् ॥

शतात्परे परश्शताः। सहस्रात्परे परस्सहस्राः। राजदन्तादित्वात्परनिपातः। निपातनात् सुडागमः॥

सप्तमी शौण्डैः ॥ २ । १ । ४० ॥

जो सप्तम्यन्त सुबन्त शौण्ड आदि सुबन्तों के साथ वि० समास को प्राप्त हो सो सप्तमी तत्पुरुष हो * जैसे। अक्षेषु शौण्डः। अक्षशौण्डः। अक्षधूर्तः। अक्षकितवः॥

सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ॥ २ । १ । ४१ ॥

जो सिद्ध,शुष्क,पक्व,और बन्ध, सुबन्तों के सङ्ग सप्तम्यन्त सुबन्त का समास होता है। सो सप्तमी तत्पुरुष होता है। जैसे। सांकाश्यसिद्धः ग्रामसिद्धः। आतपशुष्कः। छायाशुष्कः। पयःपक्वः। तैलपक्वः। घृतपक्वः। स्थालीपक्वः। चक्रबन्धः। गृहबन्धः॥

ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ॥ २ । १ । ४२ ॥

वा०-ध्वाङ्क्षेणेत्यर्थग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥

जो क्षेप अर्थात् निन्दा अर्थ में सप्तम्यन्त सुबन्त, ध्वाङ्क्षवाची सुबन्त के साथ समास पावे सो सप्तमी तत्पुरुष हो। जैसे। तीर्थेध्वाङ्क्ष इव तीर्थध्वाङ्क्षः। अनवस्थित इत्यर्थः। तीर्थकाकः। तीर्थवायसः। क्षेप इति किम्। तीर्थे ध्वाङ्क्षस्तिष्ठति॥

कृत्यैर्ऋणे । २ । १ । ४३॥

ऋण अर्थ जाना जाय तो सप्तम्यन्त सुबन्त कृत्य प्रत्ययान्त के साथ समास पावे। मासे देयमृणम्। मासदेयम्। सम्वत्सरदेयम्। पूर्वाह्णे गेयं साम। प्रातरध्येयोऽनुवाकः। ऋण इति किम्। मासे देया भिक्षा।

---

* यहां से आगे सप्तमी तत्पुरुष का अधिकार चला है॥

वा०–अर्थेन नित्यसमासवचनं सर्वलिङ्गता च वक्तव्या

जैसे । ब्राह्मणार्थं पयः । ब्राह्मणार्था यवागूः । ब्राह्मणार्थः कम्बलः । कृमिभ्यो बलि कृमिबलिः । गोहितम् । मनुष्यहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् । अश्वरक्षितम् ॥

वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः ॥ ६ । ३ । ७ ॥

जो उत्तरपद परे हो तो । वैयाकरणों की आख्या अर्थात् संज्ञा विषय में आत्म शब्द से परे चतुर्थी का अलुक् हो । आत्मनेभाषा । आत्मनेपदम् ॥

परस्य च ॥ ६ । ३ । ८ ॥

जो वैयाकरणों की आख्या अर्थ में उत्तरपद परे हो तो पर शब्द से परे च तुर्थी का अलुक् हो । जैसे–परस्मैपदम् । परस्मैभाषा ॥

पञ्चमी भयेन ॥ २ । १ । ३७ ॥

जो पञ्चमचन्त सुबन्त, भय सुबन्त के सङ्ग समास को प्राप्त हो सो पञ्चमी त त्पुरुष हो । जैसे । वृकेभ्यो भयम् । वृकभयम् । चोरभयम् । दस्युभयम् ॥

वा०–भयभीतभीतिभीभिरिति वक्तव्यम् ॥

जैसे । वृकेभ्यो भीतः । वृकभीतः । वृकभीतिः । वृकभीः ॥

अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः ॥ २ । १ ।

जो पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक, अपेत अपोढ मुक्त पतित और अपत्रस्त साथ समास होता है सो पञ्चमी तत्पुरुष हो । जैसे । सुखा पेतः । कल्पनापोढः । कृच्छ्रान्मुक्तः । चक्रमुक्तः । वृक्षपतितः ल्पशः अर्थात् पञ्चमी अल्पशः समास पावे । सब पञ्चमी नहीं पतितः । भोजनादपत्रस्तः । इत्यादि में नहीं होता ॥

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन ॥ २ ।

जो स्तोक अन्तिक दूर और इनके तुल्य पञ्चम्यन्त हैं वे समास पावें सो पञ्चमी तत्पुरुष हो ॥

अलुगुत्तरपदे ॥ ६ । ३ । १ ॥

अलुक् और उत्तरपद । इन दो पदों का अधिकार

वा०-हृद्द्युभ्यां ङेः ॥

जो उत्तर पद परे हो तो हृद् और दिव् से परे सप्तमी का अलुक् हो। जैसे। हृदिस्पृक्। दिविस्पृक् ॥

कारनाम्नि च प्राचां हलादौ ॥ ६ । ३ । १० ॥

कारनाम हलादि उत्तरपद परे हो तो प्राचीनों के मत में हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् हो। जैसे। मूपेशाणः। मुकुटेकार्षापणम्। हलेद्विपदिका। हलेत्रिपदिका। कारनाम्नीतिकिम्। अभ्यर्हिते पशु.। प्राचामिति किम्। यूपे पशुः। यूपपशुः। हलादाविति किम्। अविकटे उरणः। अविकटोरणः। हलदन्तादित्येव। नद्यां दोहनी। नदीदोहनी ॥

मध्याद्गुरौ । ६ । ३ । ११ ॥

मध्येगुरु ॥

वा०-अन्ताच्चेति वक्तव्यम् ॥

अन्तेगुरुः ॥

अमूर्द्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे ॥ ६ । ३ । १२ ॥

जो कामवर्जित उत्तर पद परे हो तो मूर्द्ध और मस्तक भिन्न हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् हो। जैसे। कण्ठे कालो यस्य स। कण्ठे कालः। उरसि लोमा। उदरे मणिः। अमूर्द्धमस्तकादिति किम्। मूर्द्धशिखः। मस्तकशिखः। अकाम इति किम्। मुखे कामो यस्य। मुखकामः। स्वाङ्गादिति किम्। अक्षशौण्डः। हलदन्तादिति किम्। अङ्गुलित्राणः। जङ्घावलि.।

बन्धे च विभाषा ॥ ६ । ३ । १३ ॥

जो घञन्त बन्ध उत्तरपद परे हो तो विकल्प करके हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् हो। जैसे। हस्ते बन्धः। हस्तबन्धः। चक्रे बन्धः। चक्रबन्धः ॥

तत्पुरुषे कृति बहुलम् ॥ ६ । ३ । १४ ॥

तत्पुरुष समास में कृदन्त उत्तर पद परे हो तो सप्तमी का अलुक् बहुल करके हो। अर्थात कहीं २ हो। स्तम्बेरमः। कर्णेजपः। न च भवति। कुरुचरः। मद्रचरः ॥

प्रावृट्शरत्कालदिवां जे ॥ ६ । ३ । १५ ॥

जो ज उत्तर पद परे हो तो । प्रावृट् । शरत् । काल । दिव । इनसे परे सप्तमी अलुक् हो । जैसे । प्रावृषिजः । शरदिजः । कालेजः । दिविजः ॥

विभाषा वर्षक्षरशरवरात् ॥ ६ । ३ । १४ ॥

इन शब्दों से परे वि० सप्तमी का अलुक् हो । वर्षेजः । वर्षजः । क्षरेजः । क्षरजः । शरेजः । शरजः । वरेजः । वरजः ॥

घकालतनेषु कालनाम्नः ॥ ६ । ३ । १७ ॥

जो * घ संज्ञक प्रत्यय, काल और तन प्रत्यय परे हों तो सप्तमी का अलुक् हो । जैसे—पूर्वाह्णेतरे । पूर्वाह्णेतमे । पूर्वाह्णतरे । पूर्वाह्णतमे । पूर्वाह्णेकाले । पूर्वाह्णकाले । पूर्वाह्णेतने । पूर्वाह्णतने । कालनाम्न इति किम् । शुक्लतरे । शुक्लतमे । हलदन्तादिति किम् । रात्रितरायाम् ॥

शयवासवासिष्वकालात् ॥ ६ । ३ । १८ ॥

जो शय, वास, वासि, ये उत्तर पद परे हों तो वि० सप्तमी का अलुक् हो । खेशयः । खशयः । ग्रामे वासः । ग्रामवासः । ग्रामे वासी । ग्रामवासी । अकालादिति किं पूर्वाह्णशयः । हलदन्तादित्येव । भूमिशयः ॥

नेन्सिद्धबध्नातिषु च ॥ ६ । ३ । १९ ॥

जो इन प्रत्ययान्त सिद्ध और बध्नाति ये उत्तर पद परे हों तो सप्तमी का अलुक् न हो अर्थात् लुक् हो । स्थण्डिलशायी । सांकाश्यसिद्धः । चक्रबन्धकः । चक्रबन्धकः ॥

स्थे च भाषायाम् ॥ ६ । ३ । २० ॥

जो स्थ उत्तर पद परे हो तो लोक में सप्तमी का अलुक् न हो । जैसे । समस्थः विषमस्थः । भाषायामिति किम् । कृष्णोस्याखरेष्ठः ॥

पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन ॥ २ । १ । ४९ ॥

पूर्व काल यह अर्थ का ग्रहण है। पूर्वकाल। एक। सर्व। जरत्। पुराण। नव और केवल। सुबन्त शब्द, समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास पावे * जैसे। पूर्वं स्नातः पश्चादनुलिप्तः। स्नातानुलिप्तः। कृष्टसमीकृतम्। दग्धप्ररूढम्। एका चासौ शाटी च। एकशाटी। सर्वे च ते वेदाश्च सर्ववेदाः। जरचासौ वैद्यश्च जरद्वैद्यः। पुराणान्नम्। नवान्नम्। केवलान्नम्। समानाधिकरणेनेति किम्। एकस्याः शाटी॥

दिक्संख्ये संज्ञायाम्॥ २। १। ५०।

संज्ञा के विषय में दिक् और संख्या वाची शब्द समानाधिकरण के साथ समास पावें। समानाधिकरण की अनुवृत्ति पाद की समाप्ति पर्यन्त जाननी। पूर्वेषुकामशमी। अपरेषुकामशमी। संख्या। पञ्चाम्राः। सप्तर्षयः। संज्ञायामिति किम्। उत्तराः वृक्षाः। पञ्च ब्राह्मणाः॥

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च॥ २। १। ५१॥

दिग् वाची शब्द और संख्या वाची शब्द तद्धित अर्थ में तथा उत्तर पद परे हो तो समाहार अर्थ में समानाधिकरण के साथ समास को प्राप्त हों। पूर्वस्यां शालायां भवः। पौर्वशालः। औत्तरशालः। आपरशालः। उत्तरपदे। पूर्वा शाला प्रिया यस्य स पूर्वशालाप्रियः। अपरशालाप्रियः। संख्यातद्धितार्थे। पाञ्चनापितिः। पाञ्चकपालः। उत्तरपदे। पञ्चगवधनः। समाहारे। पञ्चकपालानि समाहृतानि यस्मि स्तत्पञ्चकपालं गृहम्। पञ्चफली। दशपूली। पञ्चकुमारि। दशकुमारि। दशग्रामी। अष्टाध्यायी॥

संख्यापूर्वो द्विगुः॥ २। १। ५२॥

जो तद्धितार्थोत्तरपद समाहार में संख्या पूर्व समास है सो द्विगु संज्ञक होता है। पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः। दशकपालः। द्विगोर्लुगनपत्ये इति लुक्। ऐसे ही समासान्त तथा ङीप् इत्यादि कार्य्य जानने चाहिये। पञ्चनावप्रियः। नावचक्रनी॥

कुत्सितानि कुत्सनैः॥ २। १। ५३॥

जो कुत्सित वाची सुबन्त का कुत्सन वचन सुबन्तों के साथ समास हो सो तत्पुरुष संज्ञक हो। जैसे। वैयाकरणखसूचिः। निष्प्रतिभ इत्यर्थः। याज्ञिककितवः। मीमांसक

---

* यह समास बहुधा प्रथमा विभक्ति में आता है इस लिये इसका तत्पुरुष और कर्मधारय समास भी कहते हैं॥

याजनतृष्णापरः । मीमांसकदुर्दुरूढः । नास्तिकः । कुत्सितानीति किम् । वैयाकरणश्चौर कुत्सनैरिति किम् । कुत्सितो ब्राह्मणः ॥

पापाणके कुत्सितैः ॥ २ । १ । ५४ ॥

जो पाप और अणक सुबन्त का कुत्सित सुबन्तों के साथ समास हो सो समानाधिकरण हो । जैसे । पापनापितः । पापकुलालः । अणकनापितः । अणककुलालः ॥

उपमानानि सामान्यवचनैः ॥ २ । १ । ५५ ॥

जो (स० *) उपमान वाची सुबन्त का सामान्य वचन सुबन्तों के साथ समास हो सो० । शस्त्रीविश्यामा । शस्त्रीश्यामा देवदत्ता । कुमुदश्येनी । हंसगद्गदा । घनश्यामः । घनश्यामो देवदत्तः । उपमानानीति किम् । देवदत्ता श्यामा । सामान्यवचनैरिति किम् । पर्वता इव बलाहकाः ॥

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥ २ । १ । ५६ ॥

जो उपमित अर्थात् उपमेय वाची सुबन्त का व्याघ्रादि सुबन्तों के साथ समास हो । सो० । पुरुषोऽयं व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्रः । पुरुषसिंहः । सिंह इव ना नृसिंहः । सामान्याप्रयोग इति किम् । पुरुषो व्याघ्र इव शूरः ॥

विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ॥ २ । १ । ५७ ॥

जो विशेषण वाची सुबन्त का विशेष्यवाची समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास हो । सो० । नीलञ्च तदुत्पलञ्च । नीलोत्पलम् । रक्तोत्पलम् । बहुलवचनं व्यवस्थार्थम् । क्वचिन्नित्यसमास एव । कृष्णसर्पः । लोहितशालिः । क्वचिन्न भवत्येव रामो जामदग्न्यः । अर्जुनः कार्त्तवीर्य्यः । क्वचिद्विकल्पः । नीलमुत्पलम् । नीलोत्पलम् ॥

पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च॥ २ । १ ।५८॥

पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम और वीर । जो इन सुबन्तों का समानाधिकरण सुबन्तों के साथ समास हो सो० । पूर्वश्चासौ पुरुषश्च पूर्वपुरुषः । अपरपुरुषः । प्रथमपुरुषः । चरमपुरुषः । जघन्यपुरुषः । समानपुरुषः । मध्यपुरुषः मध्यमपुरुषः । वीरपुरुषः ॥

---

* इस संकेत से समानाधिकरण तत्पुरुष जानना ॥

श्रेण्यादयः कृतादिभिः ॥ २ । १ । ५९ ॥

श्रेणि आदि सुबन्तों का कृत आदि सुबन्तों के साथ समास हो । सो० ।

वा०—श्रेण्यादिषु च्व्यर्थवचनम् ॥

जैसे । अश्रेणयः । श्रेणयः कृताः श्रेणीकृता वणिजो वसन्ति । च्व्यन्तानान्तु कुगति-प्रादय इत्यनेन नित्यसमास ॥

क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् ॥ २ । १ । ६० ॥

जो नञ् रहित क्तान्त सुबन्त का नञ् विशिष्ट क्तान्त सुबन्त समानाधिकरण के साथ समास हो सो० । जैसे । कृतं च तदकृतम् । कृताकृतम् । भुक्ताभुक्तम् । पीतापीतम् । उदितानुदितम् । अशितानशितेन जीवति । क्लिष्टाक्लिष्टेन वर्त्तते ॥

वा०—कृतापकृतादीनामुपसंख्यानम् ॥

कृतापकृतम् । भुक्तविभुक्तम् । पीतविपीतम् । गतप्रत्यागतम् । यातानुयातम् । क्रयाक्रयिका । पुटपुटिका । फलाफलिका । मानोन्मानिका ॥

वा०—समानाधिकरणाधिकारे शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानमुत्तरपदलोपश्च ॥

शाकप्रधानः पार्थिवः शाकपार्थिवः । कुतपसौश्रुतः । अजातौल्वलिः ॥

सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः ॥ २ । १ । ६१ ॥

जो सत्, महत्, परम, उत्तम, उत्कृष्ट, सुबन्तों का पूज्यमान सुबन्तों के साथ समास हो सो० । जैसे । सत्पुरुषः । महापुरुषः । परमपुरुषः । उत्तम पुरुषः । उत्कृष्टपुरुषः । पूज्यमानैरिति किम् । उत्कृष्टो गौः कर्दमात् ॥

वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम् ॥ २ । १ । ६२ ॥

जो वृन्दारक नाग कुञ्जर सुबन्तों के साथ पूज्यमान अर्थों के वाचक सुबन्त के साथ समास हो। सो० । गोवृन्दारकः । अश्ववृन्दारकः । गोनागः । अश्वनागः । गोकुञ्जरः । पूज्यमानमिति किम् । सुसीमो नागः ॥

कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने ॥ २ । १ । ६३ ॥

जो जाति के परिप्रश्न अर्थ में वर्त्तमान कतर कतम प्रत्ययान्त सुबन्त का स नाधिकरण सुबन्त के साथ समास हो सो० । जैसे । कतरकठः । कतरकलापः । तमकठः । कतमकलापः । जातिपरिप्रश्न इति किम् । कतरो भवतोर्देवदत्तः । कतमो वतां देवदत्तः ॥

किं क्षेपे ॥ २ । १ । ६४ ॥

किम् शब्द का क्षेप अर्थ में सुबन्त के साथ समास हो सो० । जैसे । किंराजा यो न रक्षति । किं सखा योऽभिद्रुह्यति । किं गौः यो न वहति ॥

किमः क्षेपे ॥ ५ । ४ । ७० ॥

क्षेप अर्थ में जो किं शब्द उस से समासान्त प्रत्यय न हो* ॥

पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्बष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जातिः ॥२ । १ । ६५ ॥

जो पोटा, युवति, स्तोक, कतिपय, गृष्टि, धेनु, वशा, वेहद्, वष्कयणी, प्रवक्तृ, श्रोत्रिय, अध्यापक, धूर्त्त, इन सुबन्तों का जाति वाची सुबन्तों के साथ समास होता है वह तत्पुरुष हो । जैसे । इभा चासौ पोटाच । इभपोटा । इभयुवतिः । अग्निस्तोकः । उदश्वित्कतिपयम् । गोगृष्टिः । गोधेनुः । गोवशा । गोवेहत् । गोवष्कयणी । कठप्रवक्ता । कठश्रोत्रियः कठाध्यापकः । कठधूर्त्तः । जातिरिति किम् । देवदत्तः प्रवक्ता ॥

प्रशंसावचनैश्च ॥ २ । १ । ६६ ॥

जाति वाची सुबन्त, प्रशंसा वाची सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हो सो० । जैसे । गोप्रकाण्डम् । अश्वप्रकाण्डम् । गोमतल्लिका । गोमचर्चिका । अश्वमचर्चिका । जातिरिति किम् । कुमारीमतल्लिका ॥

युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः ॥ २ । १ । ६७ ॥

खलति, पलित, वलिन और जरती, इन सुबन्तों के साथ युवन् सुबन्त समास को प्राप्त हो सो तत्पुरुष हो । युवाखलतिः । युवखलतिः । युवतिः खलती । युवखलतिः । युवा पलितः । युवपलितः । युवतिःपलिता । युवपलिता । युवा वलिनः । युववलिनः । युवतिर्वलिना । युववलिना । युवाजरन् । युवजरन् । युवतिर्जरती । युवजरती ॥

---

* किंराजा आदि उदाहरणों में टच् प्रत्यय न हुआ ।

कृत्यतुल्याख्या अजात्या ॥ २ । १ । ६८ ॥

कृत्य प्रत्ययान्त और तुल्य तथा तुल्य के समानार्थ जो सुबन्त, सो जातिवर्जित सुबन्त के साथ समास पावे सो समानाधिकरण तत्पुरुष कर्मधारयसमास हो । जैसे । भोज्यं च तदुष्णञ्च । भोज्योष्णम् । भोज्यलवणम् । पानीयशीतम् । तुल्याख्या । तुल्यश्वेतः । तुल्यमहान् । सदृशश्वेतः । सदृशमहान् । अजात्येति किम् । रक्षणीयो मनुष्यः ॥

वर्णो वर्णेन ॥ २ । १ । ६९ ॥

वर्ण विशेषवाची समानाधिकरण, सुबन्त के साथ वर्ण विशेषवाची सुबन्त समास पावे सो० । कृष्णसारङ्गः । लोहितसारङ्गः * कृष्णशबलः । लोहितशबलः ॥

कुमारः श्रमणादिभिः ॥ २ । १ । ७० ॥

कुमार शब्द, श्रमण आदि सुबन्तों के साथ समास पावे सो० । कुमारी श्रमणा । कुमारश्रमणा । कुमारीप्रव्रजिता । कुमारप्रव्रजिता । कुमारीकुलटा । कुमारकुलटा । इत्यादि ॥

चतुष्पादो गर्भिण्या ॥ २ । १ । ७१ ॥

चतुष्पाद्वाची सुबन्त, गर्भिणी सुबन्त के साथ समास पावे सो तत्पुरुष हो । जैसे । गोगर्भिणी । अजागर्भिणी । महिषीगर्भिणी ॥

वा०—चतुष्पाज्जातिरिति वक्तव्यम् ॥

इह माभूत् । कालाक्षी गर्भिणी । स्वस्तिमती गर्भिणी । चतुष्पाद इति किम् ब्राह्मणी गर्भिणी ॥

मयूरव्यंसकादयश्च । २ । १ । ७२ ॥

मयूरव्यंसक आदि शब्द निपातन किये हैं सो० । जैसे । मयूरव्यंसकः । छात्रव्यंसकः ॥

इति समानाधिकरणः कर्म्मधारयस्तत्पुरुषः समासः ॥

अथैकाधिकरणस्तत्पुरुषः ॥

पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे ॥ २ । २ । १ ॥

पूर्व अपर अधर उत्तर ये सुबन्त, एकदेश वाची अर्थात् अवयव वाची सुबन्त के साथ समास पावें। एक *अधिकरण अर्थात् एक द्रव्य वाच्य हो तो। षष्ठी समास का अपवादोऽयं योगः। पूर्वं कायस्य पूर्वकायः। अपरकायः। अधरकायः। उत्तरकायः। एकदेशिनेति किम्। पूर्वं नाभेः कायस्य। एकाधिकरण इति किम्। पूर्वं छात्राणामामन्त्रय।

अर्द्धं नपुंसकम् ॥ २।२।२ ॥

जो नपुंसक लिङ्ग अर्द्ध शब्द, एक देशी एकाधिकरण सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो सो तत्पुरुष हो। जैसे। अर्द्धं पिप्पल्याः। अर्द्धपिप्पली। अर्द्धकौशातकी। नपुंसकमिति किम्। ग्रामार्द्धः। नगरार्द्धः। एकदेशिनेत्येव। अर्द्धं ग्रामस्य देवदत्तस्य। एकाधिकरण इत्येव। अर्द्धं पिप्पलीनाम् ॥

द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्य्याण्यन्यतरस्याम् ॥ २।२।३ ॥

द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुर्य्य ये सुबन्त, एकदेशि एकाधिकरण सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों सो तत्पुरुष हो। द्वितीयं भिक्षायाः। द्वितीयभिक्षा। षष्ठीसमास पक्षे। भिक्षाद्वितीयं वा। तृतीयं भिक्षायाः। तृतीयभिक्षा। भिक्षातृतीयं वा। चतुर्थं भिक्षायाः। चतुर्थभिक्षा। भिक्षाचतुर्थं वा। एकदेशिनेत्येव। द्वितीयं भिक्षायाः भिक्षुकस्य। एकाधिकरण इत्येव। द्वितीयं भिक्षाणाम् ॥

प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ॥ २।२।४ ॥

प्राप्त और आपन्न सुबन्त, द्वितीयान्तसुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों। जैसे। प्राप्तो जीविकाम्। प्राप्तजीविकः। जीविकाप्राप्त इति वा। आपन्नो जीविकाम्। आपन्नजीविकः। जीविकापन्न इति वा ॥

कालाः परिमाणिना ॥ २।२।५ ॥

कालवाची सुबन्त, परिमाण वाची सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो सो तत्पुरुष हो। जैसे। मासो जातोऽस्य स मासजातः। संवत्सरजातः। द्व्यहजातः। त्र्यहजातः ॥

नञ् ॥ २।२।६ ॥

नञ् समर्थ सुबन्त के साथ समास पावे सो नञ् तत्पुरुष हो। जैसे। न ब्राह्मणः अब्राह्मणः। अवृषलः ॥

*अनेक शब्द सम्बन्ध हो के एकही पदार्थ के वाचक हों।

तस्मान्नुडचि ॥ ६ । ३ । ७४ ॥

तस्मात् नाम लोप हुये नञ् के नकार से परे अनादि उत्तरपद को नुट् का आगम हो । नअन् । अनन् । न अश्वः । अनश्वः । न उष्ट्रः । अनुष्ट्रः । इत्यादि ॥

नञस्तत्पुरुषात् ॥ ५ । ४ । ७१ ॥

जो नञ् से परे राज आदि शब्द सो अन्त में जिस तत्पुरुष के उस से समासान्त प्रत्यय न हों । अराजा । असखा । अगौः । तत्पुरुषादिति किम् । अनृचो माणवकः । अधुरं शकटम् ॥

पथो विभाषा ॥ ५ । ४ । ७२ ॥

जो नञ् से परे पथिन् शब्द सो जिस तत्पुरुष के अन्त में हो उस से समासान्त प्रत्यय विकल्प कर के हो । अपथम् । अपन्थाः ॥

ईषदकृता ॥ २ । २ । ७ ॥

जो सुबन्त ईषत् शब्द कृत् वर्जित सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हो वह तत्पुरुष समास हो ॥

वा०—ईषद्गुणवचनेनेति वक्तव्यम् ॥

ईषत्कडारः । ईषत्पिङ्गलः । ईषद्विकारः । ईषदुन्नतः । ईषत्पीतम् । गुणवचनेनेति किम् । ईषद् गार्ग्यः । *

षष्ठी ॥ २ । २ । ८ ॥

षष्ठ्यन्त सुबन्त,समर्थ सुबन्त के साथ वि० समास पावे । सो षष्ठी तत्पुरुष जानो । राज्ञः पुरुषः । राजपुरुषः । राज्ञोः पुरुषौ । राजपुरुषौ । राज्ञां पुरुषाः । राजपुरुषाः । राज्ञः पुरुषौ पुरुषा वा । ब्राह्मणकम्बलः ॥

वा०— कृद्योगा च षष्ठी समस्यत इति वक्तव्यम् ॥

जैसे—इध्मप्रव्रश्चनः । पलाशशातनः । किमर्थमिदमुच्यते । प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यत इति वक्ष्यति तस्यायं पुरस्तादपकर्षः ॥

---

* यहां तक तत्पुरुष समास का प्रकरण आया इस के आगे षष्ठी तत्पुरुष का प्रकरण समझना चाहिये ॥

याजकादिभिश्च ॥ २ । २ । ९ ॥

षष्ठ्यन्त याजक आदि शब्द, सुबन्तों के साथ समास पावें सो षष्ठी०। जैसे। ब्राह्मणयाजकः। क्षत्रिययाजकः ॥

षष्ठ्या आक्रोशे। ६। ३। २१ ॥

आक्रोशे अर्थात् निन्दा अर्थ में उत्तर पद परे हो तो षष्ठी का अलुक् हो। जैसे। चौरस्य कुलम्। आक्रोश इति किम्। ब्राह्मणकुलम् ॥

वा०—षष्ठीप्रकरणे वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु यथासंख्यमलुग्वक्तव्यः ॥

जैसे। वाचोयुक्तिः। दिशोदण्डः। पश्यतोहरः ॥

वा०—आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकामुष्यकुलिकेति चालुग् वक्तव्यः।

अमुष्याअपत्यम्। आमुष्यायणः। नडादित्वात् फक्। अमुष्य पुत्रस्य भावः। आमुष्यपुत्रिका। मनोज्ञादित्वाद् वुञ्। तथा आमुष्यकुलिकेति ॥

वा०—देवानां प्रिय इत्यत्र च षष्ठ्या अलुग्वक्तव्यः ॥

जैसे—देवानां प्रियः ॥

वा०-शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः संज्ञायां षष्ठ्या अलुग् वक्तव्यः॥

जैसे। शुनः शेपः। शुनः पुच्छः। शुनो लाङ्गूलः ॥

वा०—दिवश्च दासे षष्ठ्या अलुग् वक्तव्यः ॥

दिवोदासाय गायति ॥

पुत्रेऽन्यतरस्याम् ॥ ६। ३। २२ ॥

पुत्र उत्तर पद परे हो तो आक्रोश अर्थ में षष्ठी का अलुक् विकल्प करके हो। जैसे। दास्याः पुत्रः। दासीपुत्रो वा। आक्रोश इति किम्। ब्राह्मणीपुत्रः ॥

ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः ॥ ६। ३। २३ ॥

ऋकारान्त विद्यासम्बन्धी और ऋकारान्त योनि सम्बन्धियों से परे षष्ठी का

अलुक् हो, जैसे । होतुरन्तेवासी । होतुः पुत्रः । पितुरन्ते वासी । पितुः पुत्रः । ऋत इति किम् । आचार्य्यपुत्रः । मातुलपुत्रः ॥

विभाषा स्वसृपत्योः ॥ ६ । ३ । २४ ॥

ऋकारान्त विद्या सम्बन्धी और ऋकारान्त योनि सम्बन्धियों से स्वसृ तथा पति उत्तर पद परे हो तो वि० षष्ठी का अलुक् हो । जैसे । मातुः ष्वसा । मातुः स्वसा । मातृष्वसा । पितुःस्वसा । पितुःष्वसा । पितृष्वसा । दुहितुः पतिः । दुहितृपतिः । ननान्दुः पतिः । ननान्दृपतिः ॥

नित्यं क्रीडाजीविकयोः ॥ २ । २ । १७ ॥

क्रीडा और जीविका अर्थ में षष्ठी सुबन्त के साथ नित्य समास पावे । जैसे (क्रीडा) उद्दालकपुष्पभञ्जिका । वारणपुष्पप्रचायिका (जीविका) दन्तलेखकः । पुस्तकलेखकः । क्रीडाजीविकयोरिति किम् । ओदनस्य भोजकः ॥ *

कुगतिप्रादयः ॥ २ । २ । १८ ॥

कु अव्यय गति संज्ञक और प्रादि गणस्थ शब्द समर्थ सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों । जैसे । कु । कुत्सितः पुरुषः । कुपुरुषः । गति । उररीकृतम् । यदूरीकरोति । प्रादयः ।

वा०—दुर्निन्दायाम् ॥ दुष्पुरुषः ॥

वा०—स्वतीपूजायाम् ॥

सु और अति ये पूजा अर्थ में ही समास को प्राप्त हों । शोभन पुरुष । सुपुरुषः । अतिपुरुषः ॥

वा०—आङीषदर्थे ॥

आपिङ्गलः । आकडारः । दुष्कृतम् । अतिस्तुतम् । आबद्धम् ॥

वा०—प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया ॥

प्रगत आचार्यः । प्राचार्यः । प्रान्तेवासी ॥

---

* यहां तक षष्ठी तत्पुरुष भाषा इस के आगे पुनस्तत्पुरुष का प्रकरण चला है

वा०—अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया ॥

अतिक्रान्तः खट्वाम् । अतिखट्वः । अतिमालः ॥

वा०—अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया ॥

अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलः ॥

वा०—पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या ॥

परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः । अलं कुमार्य्यै । अलंकुमारिः ॥

वा०—निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या ॥

निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बिः । निर्वाराणसिः । निष्क्रान्तः सभायाः । निःसभः ॥

वा०—प्रादिप्रसङ्गे कर्म्मप्रवचनीयानां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् । साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति ॥

उपपद मतिङ् ॥ २ । २ । १९ ॥

जो तिङ् वर्जित उपपद है सो समर्थ सुबन्त के साथ नित्य समास को प्राप्त हो सो तत्पुरुष समास हो । जैसे—कुम्भकारः । नगरकारः । इत्यादि ॥

न पूजनात् ॥ ५ । ४ । ६९ ॥

पूजन वाची से परे समासान्त प्रत्यय न हो । जैसे । सुराजा । अतिराजा । सुसखा । अतिसखा । सुगौः । अतिगौः ॥

अमैवाव्ययेन ॥ २ । २ । २० ॥

जो उपपद अव्यय के साथ समास हो तो अम् अव्यय ही के साथ हो अन्य से सङ्ग नहीं । स्वादुंकारं भुङ्क्ते । लवणंकारं भुङ्क्ते । संपन्नंकारं भुङ्क्ते । अमैवेति किम् । नेह भवति कालो भोक्तुम् । एवकारकरणमुपपदविशेषणार्थम् । अमैव यत्तुल्यविधानमुपपदं तस्य समासो यथा स्यात् । अमा चान्येन च यत्तुल्यविधानं तस्य माभूत् । अग्रेभुक्त्वा । अग्रेभोजम् ॥

तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् ॥ २ । २ । २१ ॥

(उपदंशस्तृतीयायाम्) । यहां से ले के जो उपपद हैं वे अम् अव्यय के साथ

वि० समास को प्राप्त हों सो तत्पुरुष समास हो। मूलकोपदंशं भुङ्क्ते। मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते। उच्चैःकारं समाचष्टे। उच्चैःकारेण वा। अमैवेत्येव॥

वा०—पर्य्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु॥

पर्य्याप्तो भोक्तुम्। प्रभु र्भोक्तुम्। समर्थो भोक्तुम्॥

क्त्वा च॥ २। २। २२॥

तृतीया प्रभृति शब्द क्त्वा प्रत्यय के साथ समास को प्राप्त वि० हों। उच्चैःकृत्य। उच्चैःकृत्वा॥

*शेषो बहुव्रीहिः॥ २। २। २३॥

शेषः अर्थात् उक्त समासों को छोड़ के जो आगे समास कथन करते हैं सो बहुव्रीहि है। यह अधिकार सूत्र भी है॥

अनेकमन्यपदार्थे॥ २। २। २४॥

जो अन्य पद के अर्थ में वर्त्तमान अनेक सुबन्त, सो सुबन्त के सङ्ग समास को प्राप्त हो उसको बहुव्रीहि जानो। † विशाले नेत्रे यस्य स विशालनेत्रः। बहु धनं यस्य स बहुधनो बहुधनको वा पुरुषः। एक प्रथमा विभक्ति के अर्थ को छोड़ कर सब विभक्ति के अर्थों में बहुव्रीहि समास होता है। प्राप्तमुदकं यं ग्रामम्। स प्राप्तोदको ग्रामः। ऊढो रथो येन स ऊढरथोऽनड्वान्। उपहृतमुदकं यस्मै। स उपहृतोदकोऽतिथिः। उद्धृत ओदनो यस्याः। सा उद्धृतौदना स्थाली। अच् अन्तो यस्य स अजन्तो धातुः। वीराः पुरुषा यस्मिन् ग्रामे स वीरपुरुषो ग्रामः। परन्तु प्रथमा के अर्थ में नहीं होता है। वृष्टे मेघे गतः। अनेकग्रहणं किम्। बहूनामपि यथा स्यात्। सुसूक्ष्मजटकेशः। इत्यादि॥

वा०—बहुव्रीहिः समानाधिकरणानामिति वक्तव्यम्॥

व्यधिकरणानां माभूत्। पञ्चभिर्भुक्तमस्य॥

---

* यहां तक कुगति और प्रादि प्रयुक्त तत्पुरुष समास आया इस के आगे बहुव्रीहि का अधिकार चला है।

† इस बहुव्रीहिसमास के विग्रह में प्रथमा और अन्य पदार्थ में द्वितीया आदि विभक्तियों के प्रयोग होते हैं जैसे नेत्र शब्द प्रथमा और यत् शब्द से षष्ठी हुई है वैसे सर्वत्र समझो॥

वा०-अव्ययानां च बहुव्रीहि र्वक्तव्यः ॥

उच्चैर्मुखः । नीचैर्मुखः ॥

वा०-सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च ॥

कण्ठे स्थितः कालो यस्य कण्ठेकालः । उरसिलोमा । उष्ट्रस्य मुखमिव मुखं स उष्ट्रमुखः । खरमुखः ॥

वा०-समुदायविकारषष्ठ्याश्चबहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्चेति वक्त

केशानां संघातः । केशसंघातः । केशसंघातश्चूडाऽस्य स केशचूडः । सुवर्णविका ऽलंकारोऽस्य स सुवर्णाऽलंकारः ॥

वा०-प्रादिभ्यो धातुजस्योत्तरपदलोपश्च वा बहुव्रीहि र्वक्तव्यः ।

प्रपतितं पर्णमस्य । प्रपर्णः । प्रपतितं पलाशमस्य । प्रपलाशः ॥

वा०-नञोऽस्त्यर्थानां बहुव्रीहिर्वा चोत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः॥

अविद्यमानः पुत्रो यस्य सोऽपुत्रः । अविद्यमाना भार्य्या यस्य । सोऽभार्यः। अवि- द्यमानभार्य्यः ॥

वा०-सुबधिकारेऽस्तिक्षीरादीनां बहुव्रीहि र्वक्तव्यः ॥

अस्तिक्षीरा ब्राह्मणी । अस्त्यादयो निपाताः ॥

स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपू- रणीप्रियादिषु ॥ ६ । ३ । ३४ ॥

भाषितः पुमान् येन स भाषितपुंस्कः तस्मात् । भाषित पुंलिङ्ग से परे ऊङ्वर्जित जो स्त्री शब्द उसको पुंवत् हो अर्थात् उसका पुंलिङ्ग के सदृश रूप होता है समाना- धिकरण स्त्रीलिङ्ग वाची उत्तरपद परे होतो । परन्तु पूर्णी तथा प्रियादि को छोड़ के। दर्शनीया भार्या यस्य । स दर्शनीयभार्यः । रूपवद्भार्यः । रलवच्चूडः । पूर्णा विद्या यस्याः सा पूर्णविद्या । विदिता नीतिर्यया सा विदितनीतिः । मुदिदिता वाणी यस्याः सा मुदि- दितवाणी । स्त्रिया इति किम् । ग्रामणि ब्राह्मणकुलं दृष्टिरस्य । ग्रामणिदृष्टिः । भाषि- तपुंस्कादिति किम् । खट्वाभार्यः । अनूङिति किम् । ब्रह्मबन्धूभार्यः । समानाधिकरण

इति किम् । कल्याणया माता । कल्याणीमाता । स्त्रियामिति किम् । कल्याणीप्रधान मेषाम् । कल्याणीप्रधाना इमे । अपूरणीति किम् । कल्याणी पञ्चमी यासां ताः । कल्याणीपञ्चमा रात्रयः । कल्याणीदशमाः ॥

वा०–प्रधानपूरणीग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥

इह माभूत् । कल्याणपञ्चमीकः पक्ष इति । अप्रियादिष्विति किम् । कल्याणीप्रियः ॥

दिङ् नामान्यन्तराले ॥ २ । २ । २६ ॥

जो अन्तराल अर्थ में दिक् नाम सुबन्त शब्द, सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों सो बहुव्रीहि समास है । मध्य कोण को अन्तराल कहते हैं दक्षिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं दिक् सा दक्षिणपूर्वा दिक् । पूर्वोत्तरा । उत्तरपश्चिमा । पश्चिमदक्षिणा ॥

संख्यया व्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः सङ्ख्येये ॥ २ । २।२५॥

जो संख्येय में वर्त्तमान अव्यय, आसन्न, दूर, अधिक और सङ्ख्या, सुबन्त के साथ समास पावे वह समास बहुव्रीहि हो (अव्यय) दशानां समीपे उपदशाः । उपविंशाः । आसन्नदशाः । अदूरग्रामा वृत्ताः । अधिकविंशाः । (संख्या) द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः । त्रिचतुराः । द्विदशाः । संख्ययेति किम् । पञ्च ब्राह्मणाः । अव्ययासन्नादूराधिकसंख्या इति किम् । ब्राह्मणाः पञ्च । संख्येय इति किम् । अधिका विंशतिर्गवाम् ॥

बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात् ॥ ५ । ४ । ७३ ॥

जो संख्येय में वर्त्तमान बहुव्रीहि उस से समासान्त डच् प्रत्यय हो । जैसे । उपदशाः । उपविंशाः । उपत्रिंशाः । आसन्नदशाः । अदूरदशाः । संख्येय इति किम् । चित्रगुः । शबलगुः । अबहुगणादिति किम् । उपबहवः । उपगणाः ॥

वा०–डच्प्रकरणे संख्यायास्तत्पुरुषस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥

निस्त्रिंशार्थम् । निर्गतानि त्रिंशतः । निस्त्रिंशानि वर्षाणि देवदत्तस्य । निश्चत्वारिंशानि यज्ञदत्तस्य । निर्गतस्त्रिंशताङ्गुलिभ्यो निस्त्रिंशः खड्गः ॥

तत्र तेनेदमिति सरूपे ॥ २ । २ । २७ ॥

इदम् अर्थ में सप्तम्यन्त सरूप और तृतीयान्त सरूप, सुबन्त के साथ समास पावे सो बहुव्रीहि हो ॥

इच् कर्मव्यतिहारे ॥ ५ । ४ । १२७ ॥

कर्म के व्यतिहार अर्थ में जो बहुव्रीहि उस से समासान्त इच् प्रत्यय हो। ति्ष्ठद्गुप्रभृति में इच् पढ़ा भी है इसलिये अव्यय जानना। केशेषु केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि। दण्डैर्दण्डैःप्रहृत्येदं युद्धं प्रवर्त्तते तत् दण्डादण्डि ॥

अन्येषामपि दृश्यते ॥ ६ । ३ । १३७ ॥

जिस शब्द को दीर्घादेश विधान कहीं न किया हो उस को दीर्घत्व इस सूत्र से जानिये। केशाकेशि। दण्डादण्डि। इत्यादि ॥

द्विदण्ड्यादिभ्यश्च ॥ ५ । ४ । १२८ ॥

इच् प्रत्ययान्त द्विदण्डि,द्विमुसलि इत्यादि निपातन किये हैं ॥

तेन सहेति तुल्ययोगे ॥ २ । २ । २८ ॥

तुल्य योग अर्थ में सह शब्द तृतीयान्त सुबन्त के साथ समास पावे सो बहुव्रीहि

वोपसर्जनस्य ॥ ६ । ३ । ८२ ॥

जो उपसर्जन अर्थ में वर्त्तमान सह शब्द उस को स आदेश विकल्प करके पुत्रेण सहागतः पिता। सपुत्रः। सहपुत्रः। सच्छात्र आचार्यः। सहच्छात्रो वा। सकर्मकरः। सहकर्मकरो वा। तुल्ययोग इति किम्। सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी। उपसर्जनस्येति किम्। सहकृत्वा। सहयुध्वा ॥

प्रकृत्याशिष्यगोवत्सहलेषु ॥ ६ । ३ । ८३ ॥

आशीर्वाद अर्थ में उत्तरपद परे हो तो गो,वत्स और हल इन को वर्ज के सह शब्द प्रकृति करके रहे अर्थात् सभादेश नहो। स्वस्ति देवदत्ताय। सह पुत्राय। सहच्छात्राय। सहामात्याय। आशिषीति किम्। सानुगाय दस्यवे दण्डं दद्यात्। सहानुगाय वा। अगोवत्सहलेष्विति किम्। स्वस्ति भवते सगवे। सगवे। सहवत्साय। सहलाय। सहहलाय। सहलाय। वोपसर्जनस्येति पक्षे भवत्येव सभावः ॥

समानस्य छन्दस्यमूर्द्धप्रभृत्युदर्केषु ॥ ६ । ३ । ८४ ॥

जो मूर्द्ध प्रभृति और उदर्क वर्जित उत्तर पद परे होतो समान शब्द को स आदेश हो। अनुभ्राता सगर्भ्यः। अनुसखा सयूथ्यः। अमूर्द्धप्रभृत्युदर्केष्विति किम्। समानमूर्द्धा। समानप्रभृतयः। समानोदर्काः ॥

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् ॥ ५ । ४ । ११३ ॥

बहुव्रीहि समास में स्वाङ्ग वाची सक्थि और अक्षि शब्द से समासान्त षच् प्रत्यय हो जैसे। दीर्घसक्थः। कल्याणाक्षः। लोहिताक्षः। जो स्त्री हो तो षित् होने से ङीष् प्रत्यय होता है। दीर्घसक्थी। कल्याणाक्षी। इत्यादि। बहुव्रीहाविति किम्। परमसक्थि। परमाक्षि। सक्थ्यक्ष्णोरिति किम्। दीर्घजानुः। सुबाहुः। स्वाङ्गादिति किम्। दीर्घसक्थि शकटम्। स्थूलाक्षिरिक्षुः॥

अङ्गुलेर्दारुणि ॥ ५ । ४ । ११४ ॥

दारु अर्थ में अङ्गुलि शब्दान्त बहुव्रीहि समास से समासान्त षच् प्रत्यय हो। द्वे अङ्गुली यस्य द्व्यङ्गुलम्। त्र्यङ्गुलम्। चतुरङ्गुलं दारु। दारुणीति किम्। पञ्चाङ्गुलिर्हस्तः॥

द्वित्रिभ्यां ष मूर्द्ध्नः ॥ ५ । ४ । ११५ ॥

द्वि और त्रि से परे मूर्द्धन् शब्द से बहुव्रीहि समास में समासान्त षप्रत्यय हो। जैसे। द्विमूर्द्धः। त्रिमूर्द्धः। द्वित्रिभ्यामिति किम्। उच्चैर्मूर्द्धा॥

अप् पूरणीप्रमाण्योः ॥ ५ । ४ । ११६ ॥

जो पूरण प्रत्ययान्त और प्रमाणी शब्दान्त बहुव्रीहि उस से समासान्त अप् प्रत्यय हो। जैसे। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणाम्। ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। कल्याणीदशमा रात्रयः। स्त्रीप्रमाणी येषां ते स्त्रीप्रमाणाः। कुटुम्बिनः। भार्याप्रधाना इत्यर्थः॥

वा०—प्रधानपूरणीग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥

इह माभूत्। कल्याणीपञ्चमी अस्मिन् पक्षे कल्याणपञ्चमीकः॥

वा०—नेतुर्नक्षत्र उपसंख्यानम् ॥

मृगो नेता आसां रात्रीणां ता मृगनेत्रा रात्रयः पुष्यनेत्राः। नक्षत्र इति किम् देवदत्तनेतृकाः॥

वा०—छन्दसि च नेतुरुपसंख्यानम् ॥

बृहस्पतिनेत्रा देवाः। सोमनेत्राः॥

वा०—मासात् प्रत्ययपूर्वपदात् ठञ्विधिः ॥

पञ्चको मासोऽस्य पञ्चकमासिकः। कर्मकाराः। दशकमासिकाः॥

अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ॥ ५ । ४ । ११७ ॥

अन्तर् और बहिस् शब्द से परे जो लोमन् शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासा अप् प्रत्यय हो । जैसे । अन्तर्गतानि लोमान्यस्यान्तर्लोमः । प्रावारः । बहिर्गतानि लो मान्यस्य स बहिर्लोमः पटः ॥

अञ् नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात् ॥ ५ । ४ । ११८ ।

नासिकान्त बहुव्रीहि समास से अच् प्रत्यय हो और संज्ञा अर्थ में नासिका स्थान में नस् आदेश हो । द्रुरिव नासिकाऽस्य । द्रुणसः । वार्ध्रीणसः । गोनसः । सं ज्ञायामिति किम् । तुङ्गनासिकः । अस्थूलादिति किम् । अस्थूलनासिको वराहः ॥

खुरखराभ्यां नस् वक्तव्यः ॥

खुरणाः । खरणाः । पक्ष में अच्प्रत्यय भी इष्ट है । खुरणसः । खरणसः ॥

उपसर्गाच्च ॥ ५ । ४ । ११९ ॥

उपसर्ग से परे जो नासिका शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अच् प्रत्यय हो और नासिका को नस् आदेश भी हो । जैसे—उन्नता नासिका अस्य स उन्नसः । प्रगता नासिका अस्य । प्रणसः ॥

वा०—वेर्ग्रो वक्तव्यः ॥

वि पूर्वक नासिका के स्थान में ग्र आदेश और अच् प्रत्यय भी हो । विगता ना- सिका अस्य स विग्रः ॥

सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपद प्रोष्ठपदाः ॥ ५ । ४ । १२० ॥

इस में सुप्रात इत्यादि बहुव्रीहि समास और अच् प्रत्ययान्त निपातन किये हैं । जैसे । शोभनं प्रातरस्य । स सुप्रातः । शोभनं श्वोऽस्य सुश्वः । शोभनं दिवा अस्य सु- दिवः । शारिरिव कुक्षिरस्य शारिकुक्षः । चतस्रोऽश्रयोऽस्य स चतुरश्रः । एण्याइव पा- दावस्य । एणीपदः । अजस्येव पादावस्य । अजपदः । प्रोष्ठो गौस्तस्येव पादावस्य प्रोष्ठपदः ॥

नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम् ॥ ५ । ४ । १२१ ॥

— और सु इन से परे जो हलि और सक्थि तदन्त बहुव्रीहि से

मासान्त अच् प्रत्यय विकल्प करके हो । जैसे । अविद्यमाना हलिरस्य । अहलः । हलिः । दुर्हलः । दुर्हलिः । सुहलः । सुहलिः । अविद्यमानं सक्थ्यस्य । असक्थः । सक्थिः । दुःसक्थः । दुःसक्थिः । सुसक्थः । सुसक्थिः ।

नित्यमसिच् प्रजामेधयोः ॥ ५ । ४ । १२२ ॥

नञ् दुस् और सु से परे जो प्रजा और मेधा तदन्त बहुव्रीहि से नित्यही समासान्त असिच् प्रत्यय हो । जैसे । अविद्यमाना प्रजाऽस्य । अप्रजाः । दुष्प्रजाः । सुप्रजाः । अविद्यमाना मेधाऽस्य अमेधाः । दुर्मेधाः । सुमेधाः । नित्य ग्रहण इस लिये है कि पूर्वसूत्र के विकल्प से दो प्रयोग न हों ॥

बहुप्रजाश्छन्दसि ॥ ५ । ४ । १२३ ॥

बहुप्रजाः । यह वेद में निपातन किया है । छन्दसीति किम् । बहुप्रजो ब्राह्मणः।

धर्मादनिच् केवलात् ॥ ५ । ४ । १२४

केवल अर्थात् एकही शब्द से परे जो धर्म शब्द उस से समासान्त अनिच् प्रत्यय हो । जैसे । कल्याणो धर्मोऽस्य । कल्याणधर्मा । प्रियधर्मा । केवलादिति किम् । परमः स्वो धर्मोऽस्य । परमस्वधर्मः ॥

जम्भासुहरिततृणसोमेभ्यः ॥ ५ । ४ । १२५ ॥

सु, हरित, तृण और सोम शब्द से परे यह जम्भा शब्द निपातन किया है जम्भा नाम मुख्य दांतों का और खाने योग्य वस्तु का भी है । शोभनो जम्भोऽस्य सुजम्भा देवदत्तः । हरितजम्भा । तृणजम्भा । सोमजम्भा ॥

दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे ॥ ५ । ४ । १२६ ॥

दक्षिणेर्मा समासान्त निपातन किया है लुब्धयोग अर्थ में । लुब्धक नाम व्याध का है । दक्षिणेर्म व्रणमस्य दक्षिणेर्मा मृगः । ईर्मेव्रणमुच्यते । * दक्षिणमङ्गमीर्मं व्याधेनेत्यर्थः । लुब्धयोग इतिकिम् । दक्षिणेर्म शकटम् ॥

प्रसंभ्यां जानुनो ज्ञुः ॥ ५ । ४ । १२९ ॥

---

* जिस मृग के दक्षिण पार्श्व में बाण आदि से घाव किया हो उस को दक्षिणेर्मा कहते हैं क्योंकि ईर्म घाव का नाम है ॥

प्र और सम् से परे जानु शब्द को समासान्त ज्ञु आदेश हो। जैसे। प्रकृष्टे संहृष्टे च जानुनी अस्य। प्रज्ञुः। संज्ञुः॥

ऊर्ध्वाद् विभाषा॥ ५। ४। १३०॥

ऊर्ध्व शब्द से परे जानु शब्द को विकल्प करके ज्ञु आदेश हो। जैसे। ऊर्ध्वे जानुनी अस्य। ऊर्ध्वज्ञुः। ऊर्ध्वजानुः॥

ऊधसोऽनङ्॥ ५। ४। १३१॥

ऊधस् * शब्दान्त बहुव्रीहि को समासान्त अनङ् आदेश हो। जैसे। कुण्डमिवोधोऽस्याः कुण्डोध्नी। घटोध्नी गौः॥

वा०—ऊधसोऽनङि स्त्रीग्रहणं कर्त्तव्यम्॥

इह माभूत्। महोधाः। पर्जन्यः। घटोधो धैनुकम्॥

धनुषश्च॥ ५। ४। १३२॥

धनुष् शब्दान्त बहुव्रीहि को अनङ् आदेश हो। जैसे † शार्ङ्गं धनुरस्य शार्ङ्गधन्वा। गाण्डीवधन्वा। पुष्पधन्वा। अधिज्यधन्वा॥

वा संज्ञायाम्॥ ५। ४। १३३॥

संज्ञाविषय में धनुःशब्दान्त बहुव्रीहि को विकल्प करके अनङ् आदेश हो। जैसे। ‡ शतधनुः। शतधन्वा। दृढधनुः। दृढधन्वा॥

जायाया निङ्॥ ५। ४। १३४॥

जायान्त बहुव्रीहि को समासान्त निङ् आदेश हो। युवतिर्जायाऽस्य। युवजानिः। वृद्धजानिः॥

गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः॥ ५। ४। १३५॥

उत्, पूति, सु और सुरभि शब्दों से परे गन्ध शब्द को समासान्त इत् आदेश हो।

---

* थनों के ऊपर जो दूध का स्थान अर्थात् थन है उस को ऊधस् कहते हैं॥

† शार्ङ्ग आदि धनुष् के विशेष नाम हैं॥

‡ शतधनु आदि किसी पुरुष विशेष के नाम हैं॥

उद्गतो गन्धोऽस्य । उद्गन्धिः । पूतिगन्धिः । सुगन्धिः । सुरभिगन्धिः । एतेभ्य इति किम् । तीव्रगन्धो वातः ॥

वा०—गन्धस्येत्त्वे तदेकान्तग्रहणम् ॥

गन्ध शब्द को इत्त्व विधान में उसी का अवयव हो तो इत्त्व होता है यहां नहीं होता * । शोभनो गन्धोऽस्य सुगन्ध आपणः ॥

अल्पाख्यायाम् ॥ ५ । ४ । १३६ ॥

अल्प अर्थ में वर्त्तमान बहुव्रीहि समासान्त गन्ध शब्द को इत् आदेश हो । जैसे । सूपोऽल्पोऽस्मिन् सूपगन्धि भोजनम् । अल्पमस्मिन् भोजने घृतं घृतगन्धि । क्षीरगन्धि । तैलगन्धि । दधिगन्धि । तक्रगन्धि । इत्यादि ॥

उपमानाच्च ॥ ५ । ४ । १३७ ॥

उपमान वाची से परे गन्ध शब्द को इत् आदेश हो । पद्मस्येव गन्धोऽस्य पद्मगन्धि । उत्पलस्येव गन्धोऽस्य पुष्पस्य तदुत्पलगन्धि । करीषगन्धि । कुमुदगन्धि ॥

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ॥ ५ । ४ । १३८ ।

बहुव्रीहि समास में हस्ति आदि शब्दों को छोड़ के उपमान वाची शब्द से परे पाद शब्द के अकार का लोप हो । व्याघ्रस्येव पादावस्य शुनः स व्याघ्रपात् । सिंहपात् । अहस्त्यादिभ्य इति किम् । हस्तिपादः । कटोलपादः ॥

कुम्भपदीषु च ॥ ५ । ४ । १३९ ॥

कुंभपदी आदि शब्दों में पाद शब्द के अकार का लोप निपातन से किया है । कुंभपदी । शतपदी । अष्टापदी । इत्यादि ॥

संख्यासुपूर्वपदस्य च ॥ ५ । ४ । १४० ॥

बहुव्रीहि समास में संख्या और सु पूर्वक पाद शब्द के अकार का लोप हो । द्वौ पादावस्य । द्विपात् । त्रिपात् । चतुष्पात् । शोभनौ पादावस्य सुपात् ॥

---

*गन्ध शब्द सामान्य से गुण का [illegible] रा शब्द को द्रव्य की विवक्षा न हो [illegible] आदेश हो और [illegible] र पदार्थ समास [illegible] आदेश [illegible] दुकान ॥

वयसि दन्तस्य दतृ ॥ ५ । ४ । १४१ ॥

संख्या और सुपूर्वक बहुव्रीहिसमासान्त दन्त शब्द को दतृ आदेश हो। द्वौ दन्तावस्य । द्विदन् । त्रिदन् । चतुर्दन् । शोभना दन्ता अस्य । सुदन् कुमारः । वयसीति किम् । द्विदन्तो कुञ्जरः ॥

छन्दसि च ॥ ५ । ४ । १४२ ॥

वेद में बहुव्रीहि समासान्त दन्त शब्द को दतृ आदेश हो । जैसे-पत्रदत-लभेत । उभयदत आलभते ॥

स्त्रियां संज्ञायाम् ॥ ५ । ४ । १४३ ॥

जहां स्त्री की संज्ञा करना हो वहां बहुव्रीहि समासान्त दन्तशब्द को दतृ आदेश हो। अयोदती । फालदती । संज्ञायामिति किम् । समदन्ती । स्निग्धदन्ती ॥

विभाषा श्यावारोकाभ्याम् ॥ ५ । ४ । १४४ ॥

श्याव और अरोक शब्द से परे बहुव्रीहि समासान्त दन्त शब्द को विकल्प करके दतृ आदेश हो । श्यावा दन्ता अस्य । श्यावदन् । श्यावदन्तः । अरोकदन् । अरोकदन्तः । अरोक नाम दीप्तिरहित ॥

अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च ॥ ५ । ४ । १४५ ॥

अग्रान्तशब्द, शुद्ध, शुभ्र, वृष और वराह इनसे परे बहुव्रीहि समासान्त दन्तश-ब्द को विकल्प करके दतृ आदेश हो । जैसे । कुड्मलाग्रमिव दन्ता अस्य कुड्मला-ग्रदन् । कुड्मलाग्रदन्तः । शुद्धदन् । शुद्धदन्तः । शुभ्रदन् । शुभ्रदन्तः । वृषदन् । वृषदन्तः । वराहदन् । वराहदन्तः ॥

ककुदस्यावस्थायां लोपः ॥ ५ । ४ । १४६ ॥

अवस्था अर्थ में वर्त्तमान बहुव्रीहि समासान्त ककुद शब्द के अन्त का लोप हो। असंजातककुत् वत्सः । बाल इत्यर्थः । उन्नतककुत् । वृद्धवया वृष इत्यर्थः । स्थूलक-कुत् । बलवानित्यर्थः । अवस्थायामिति किम् । श्वेतककुदः ॥

त्रिककुत् पर्वते । ५ । ४ । १४७॥

पर्वत अर्थ में त्रिककुत् निपातन किया है । त्रीणि ककुदान्यस्य त्रिककुत् पर्वतः पर्वत इति किम् । त्रिककुदोऽन्यः ॥

उद्विभ्यां काकुदस्य ॥ ५ । ४ । १४८ ॥

उत् और विपूर्वक बहुव्रीहि समासान्त जो काकुद शब्द उस के अन्त का लोप हो। उद् गतं काकुदमस्य। उत्काकुत्। विकाकुत्। तालु काकुदमुच्यते ॥

पूर्णाद्विभाषा ॥ ५ । ४ । १४९ ॥

पूर्ण शब्द से परे बहुव्रीहि समासान्त जो काकुद उस के अन्त का लोप विकल्प करके हो। पूर्णकाकुत्। पूर्णकाकुदः ॥

सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ॥ ५ । ४ । १५० ॥

सुहृद् और दुर्हृद् निपातन मित्र और अमित्र अर्थों में किये हैं। शोभनं हृदयमस्य। सुहृन्मित्रम्। दुष्टं हृदयमस्य दुर्हृदमित्रः। मित्रामित्रयोरिति किम्। सुहृदयः कारुणिकः। दुर्हृदयश्चोरः ॥

उरःप्रभृतिभ्यः कप् ॥ ५ । ४ । १५१ ॥

उरस् आदि शब्द जिस के अन्त में हों उस बहुव्रीहि समास से समासान्त कप् प्रत्यय हो। जैसे। व्यूढमुरोऽस्य। व्यूढोरस्कः। प्रियसर्पिष्कः। अवमुक्तोपानत्कः ॥

इनः स्त्रियाम् ॥ ५ । ४ । १५२ ॥

इन् प्रत्ययान्त बहुव्रीहि समास से समासान्त कप् प्रत्यय हो। बहवो दण्डिनोऽस्यां शालायां। बहुदण्डिका शाला। बहुच्छात्रिका। बहुस्वामिका नगरी। बहुवाग्मिका सभा। स्त्रियामिति किम्। बहुदण्डी *। बहुदण्डिको वा राजा ॥

नद्यृतश्च ॥ ५ । ४ । १५३ ॥

नद्यन्त और ऋकारान्त बहुव्रीहि समास से कप् प्रत्यय हो। जैसे। बह्व्यः कुमार्यो ऽस्यां शालायां सा। बहुकुमारीका शाला। बहुब्रह्मबन्धूको देशः (ग्रामः). बहवः कर्त्तारोऽस्य। बहुकर्त्तृको यज्ञः ॥

न संज्ञायाम् ॥ ५ । ४ । १५५ ॥

---

* यहां शेषाद्विभाषा इस सूत्र से शेष अविहित समासान्त शब्दों से विकल्प करके कप् प्रत्यय हो जाता है ॥

बहुव्रीहि समास से संज्ञा विषय में समासान्त कप् प्रत्यय न हों। विश्वं यशोऽस्य स विश्वयशाः ॥

ईयसश्च ॥ ५। ४। १५६ ॥

ईयसन्त बहुव्रीहि समास
बह्व्यः श्रेयस्योऽस्य बहुश्रेयसी ।

वन्दिते भ्रातुः ॥ ५। ४। १५७ ॥

प्रशंसा अर्थ में भ्रातृ शब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय न हो। शोभनो भ्राताऽस्य । सुभ्राता । वन्दित इति किम् । मूर्खभ्रातृकः । दुष्टभ्रातृकः ॥

ऋतश्छन्दसि ॥ ५। ४। १५८ ॥

वैदिक प्रयोग विषय में ऋकारान्त बहुव्रीहि समास से कप् प्रत्यय न हो। पण्डिता माताऽस्य स पण्डितमाता । विद्वान्पिताऽस्य स विद्वत्पिता । विदुषी स्वसाऽस्य स विद्वत्स्वसा सुहोता ॥

नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे ॥ ५। ४। १५९ ॥

स्वाङ्गवाची नाडी और तन्त्री शब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय न हो। बह्व्यः नाड्योऽस्य । बहुनाडिः कायः । बहुतन्त्री ग्रीवा । स्वाङ्ग इति किम् । बहुनाडीकः स्तम्भः । बहुतन्त्रीका वीणा ॥

निष्प्रवाणिश्च ॥ ५। ४। १६० ॥

प्रवाणी नाम कोरी की शलाई का है। निर्गता प्रवाणी यस्मात्स निष्प्रवाणिः पटः। निष्प्रवाणिः कम्बलः । प्रत्यग्र इत्यर्थः ॥

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ ॥ २। २। ३५ ॥

बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त और विशेषण पद का पूर्वनिपात हो। सप्तमी। जैसे। कण्ठेकालः । उरसिलोमा । विशेषण । चित्रगुः । शबलगुः ॥

वा०—सर्वनामसंख्ययोरुपसंख्यानम् ॥

सर्वनाम और संख्यावाची शब्दों का पूर्वनिपात हो। सर्वश्वेतः । सर्वकृष्णः । द्विशुक्लः । द्विकृष्णः । विश्वदेवः । विश्वयशाः । त्रिगुणः । द्विभार्यः । अथ यत्र संख्या सर्वनाम्नोरेव बहुव्रीहिः । कस्य तत्र पूर्वनिपातेन भवितव्यम् । परत्वात् संख्यायाः । द्व्यन्यः । त्र्यन्यः ॥

वा०—वा प्रियस्य पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम् ॥

प्रिय शब्द का विकल्प करके पूर्व निपात हो । प्रियधर्मः । धर्मप्रियः ॥

वा०—सप्तम्याः पूर्वनिपाते गड्वादिभ्यः परवचनम् ॥

बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त शब्दों का पूर्वनिपात (सप्तमी वि०) इस सूत्र से कर चुके हैं सो गड्वादि शब्दों में न हो अर्थात् परनिपात हो । जैसे गडुकण्ठः । गडुशिराः ॥

निष्ठा ॥ २ । २ । ३६ ॥

निष्ठान्त शब्द का प्रयोग बहुव्रीहि समास में पूर्व हो, अधीता विद्या येन । अधीतविद्यः । प्रक्षालितहस्तपादः । कृतकटः । कृतधर्मः । कृतार्थः । संशितव्रतः ॥

वा०—निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परवचनम् ॥

जहां निष्ठान्त शब्दों का पूर्वनिपात किया है वहां जातिवाची कालवाची और सुखादि शब्दों का पूर्वनिपात न हो अर्थात् परप्रयोग किया जावे । जैसे । शार्ङ्गजग्धी । पलाण्डुभक्षिती । मासजातः । सम्वत्सरजातः । सुखजातः । दुःखजातः ॥

वा०—प्रहरणार्थेभ्यश्च परे निष्ठासप्तम्यौ भवत इति वक्तव्यम् ॥

शस्त्रवाची शब्दों से परे निष्ठान्त और सप्तम्यन्त शब्द होने चाहिये, असिरुद्यतो येन अस्युद्यतः । मुसलोद्यतः । दण्डपाणिः ॥

वाहिताग्न्यादिषु ॥ २ । २ । ३७ ॥

बहुव्रीहि समास में आहिताग्नि इत्यादि शब्दों में निष्ठान्त का पूर्व निपात विकल्प कर के हो । अग्निराहितो येन । अग्न्याहितः । आहिताग्निः । जातपुत्रः । पुत्रजातः । जातदन्तः । दन्तजातः । इत्यादि ॥

॥ अथ दस के आगे द्वन्द्वसमास का प्रकरण है ॥

॥ उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः * ॥

चार्थे द्वन्द्वः ॥ २ । २ । २९ ॥

जो चकार के अर्थ में वर्त्तमान अनेक सुबन्त, वे सुबन्त के साथ समास पावें सो द्वन्द्वसंज्ञकसमास हो । चकार के चार अर्थ हैं, समुच्चय । अन्वाचय । इतरेतर और समाहार । सो समुच्चय । और अन्वाचय इन अर्थों में असमर्थ होने से समास नहीं हो सकता और इतरेतर तथा समाहार अर्थों में द्वन्द्व समास हो, प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च तौ प्लक्षन्यग्रोधौ । धवश्च खदिरश्च पलाशश्च । ते धवखदिरपलाशाः ॥

द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे ॥ ५ । ४ । १०७ ॥

जो द्वन्द्व समाहार अर्थ में वर्त्तमान हो तो चवर्गान्त दान्त और हान्त द्वन्द्व समास से समासान्त टच् प्रत्यय हो । जैसे । वाक् च त्वक् च अनयोः समाहारः वाक्त्वचम् । स्रक् च त्वक् च । स्रक्त्वचम् । श्रीश्च स्रक् च । श्रीस्रजम् । इडूर्जम् । वागूर्जम् । समिधश्च दृषदश्च । समिद्दृषदम् । संपद्विपदम् । वाग्विप्रुषम् । छत्रोपानहम् । धेनुगोदुहम् । द्वन्द्वादितिकिम् । तत्पुरुषान् मा भूत् । पञ्चवाचः समाहृताः पञ्चवाक् । चुदषहान्तादिति किम् । वाक्समित् ॥

उपसर्जनं पूर्वम् ॥ २ । २ । ३० ॥

सब समासों में उपसर्जन संज्ञक का पूर्व प्रयोग करना चाहिये । कष्टं श्रितः । कष्टश्रितः । शङ्कुलाखण्डः इत्यादि ॥

राजदन्तादिषु परम् ॥ २ । २ । ३१ ॥

सब समासों में राजदन्त आदि शब्दों का परे प्रयोग होता है । दन्तानां राजा । राजदन्तः । अग्रेवणम् । लिप्तवासितम् ॥

द्वन्द्वे घि ॥ २ । २ । ३२ ॥

द्वन्द्व समास में घिसंज्ञकशब्द का पूर्वनिपात होता है । पटुश्च गुप्तश्च पटुगुप्तौ ॥

वा०—अनेकप्राप्तावेकस्य नियमः शेषेष्वनियमः ॥

जहां अनेकघिसंज्ञकों का पूर्वनिपात प्राप्त हो वहां एक घिसंज्ञक पूर्व प्रयोक्तव्य है । और जो शेष रहैं उन में कुछ नियम नहीं है । पटुमृदुशुक्लाः । पटुशुक्लमृदवः ॥

---

* द्वन्द्व समास में पूर्व पर सब शब्दों के अर्थ प्रधान रहते हैं ॥

वा०-ऋतुनक्षत्राणामानुपूर्व्येण समानाक्षराणां पूर्वनिपातो वक्तव्यः ॥

ऋतु और नक्षत्र जिस क्रम से पढ़े लिखे और समझे जाते हैं उनका उसी क्रम से पूर्व निपात होना चाहिये । जैसे । शिशिरवसन्तावुदगयनस्थौ । कृत्तिकारोहिण्यः । चित्रास्वाती ॥

वा०-अभ्यर्हितं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् ॥

जहां पूर्वापरनियमपठित शब्द हों उन और जहां साध्य और साधन वाची शब्दों का समास किया जाय वहां पूर्वापरनियमित शब्द और साधन वाची शब्दों का पूर्व निपात होता है । ऋग्यजुःसामाथर्वाणो वेदाः । इत्यादि । माता च पिता च । मातापितरौ । श्रद्धा च मेधा च । श्रद्धामेधे । दीक्षा च तपश्च । दीक्षातपसी ॥

वा०-लघ्वक्षरं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् ॥

जिस पद में थोड़ी मात्रा हों उस पद का द्वन्द्वसमास में पूर्व निपात होता है । कुशाश्च काशाश्च । कुशकाशम् । शरचापम् । शरशार्दम् । अपर आह ॥

वा०-सर्वत एवाभ्यर्हितं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् । लघ्वक्षरादपीति ॥

किन्हीं आचार्यों का ऐसा मत है कि सब विधियों का अपवाद होके अभ्यर्हित का ही पूर्वनिपात होना चाहिये । जैसे । दीक्षातपसी । श्रद्धातपसी ॥

वा०-वर्णानामानुपूर्व्येण पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम् ॥

ब्राह्मण आदिवर्णों का यथाक्रम पूर्वनिपात जानना चाहिये । ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः ॥

वा०-भ्रातुश्च ज्यायसः पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम् ॥

द्वन्द्व समास में बड़े भाई का पूर्वनिपात होता है। युधिष्ठिरार्जुनौ। रामलक्ष्मणौ॥

वा०-संख्याया अल्पीयस्याः पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम् ॥

द्वन्द्वसमास में अल्पसंख्यावाची शब्दों का पूर्वनिपात होता है । एकादश । द्वादश । द्वित्राः । त्रिचतुराः । नवतिशतम् ॥

वा०—धर्मादिषूभयं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् ॥

धर्म आदि शब्दों में दोनों पदों का पूर्वनिपात होता है। धर्मार्थौ। अर्थधर्मौ। कामार्थौ। अर्थकामौ। गुणवृद्धी। वृद्धिगुणौ। आद्यन्तौ। अन्तादी॥

अजाद्यदन्तम् ॥ २। २। ३३ ॥

जिस के आदि में अच् और अकार अन्त में हो उस पद का पूर्व निपात होता है। उष्ट्रखरौ। ईशकेशवौ। इन्द्ररामौ। द्वन्द्वे घ्यजाद्यदन्तं विप्रतिषेधेन। जहां अजादि अदन्त और घिसंज्ञक का द्वन्द्व समास हो वहां अजादि अदन्त का पूर्वनिपात होता है। जैसे। इन्द्राग्नी। इन्द्रवायू। तपरकरणं किम्। अश्वावृषौ। वृषाश्वे॥

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ॥ २। ४। २॥

प्राणि तूर्य * और सेना के अङ्गोंका जो द्वन्द्वसमास सो एकवचन हो (प्राण्यङ्ग) पाणी च पादौ च। पाणिपादम्। शिरोग्रीवम् (तूर्याङ्ग) मार्दङ्गिकपाणविकम्। वीणावादकपरिवादकम् (सेनाङ्ग) रथिकाश्वारोहम्। रथिकपादातम्॥

अनुवादे चरणानाम् ॥ २। ४। ३॥

अनुवाद † अर्थ में चरण वाचि सुबन्तों का जो द्वन्द्व समास सो एक वचन होता है। स्थेणोरद्यतन्यां चेति वक्तव्यम्। जहां स्था और इण् धातु का लुङ् लकार का प्रयोग हो वहां चरण वाचि सुबन्तों का द्वन्द्व एक वचन होता है। उदगात् कठकालापम्। प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम्। अनुवाद इति किम्। उदगुः कठकालापाः। प्रत्यष्ठुः कठकौथुमाः। स्थेणोरिति किम्। अनन्दिषुः कठकालापाः। अद्यतन्यामिति किम्। उद्यन्ति कठकालापाः। इस सूत्र में चरण शब्द उन लोगों का नाम है कि जो वेद की शाखाओं के निमित्त अर्थात् जिन के नाम से इस समय भी शाखा प्रसिद्ध हैं। जैसे। कठ। मुण्डक। चरक। सुश्रुत। इत्यादि॥

अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम् ॥ २। ४। ४॥

जो क्रतु वाची शब्द नपुंसक न हो तो अध्वर्यु नाम यजुर्वेद में विधान किये

---

* ढोल आदि बाजों का यह नाम है॥

† अनुवाद उसे कहते हैं जो पूर्व कहे प्रसंग को किसी प्रयोजन के लिये फिर

क्रतु नाम यज्ञ वाची सुबन्तों का द्वन्द्व समास एकवचन हो। जैसे। अर्काश्वमेधम्। सायान्हातिरात्रम्। अध्वर्युक्रतुरिति किम्। इषुवज्रौ। उद्भिद्बलिभिदौ। अनपुंसकमिति किम्। राजसूयवाजपेये। इह कस्मान्न भवति दर्शपौर्णमासौ। क्रतुशब्दः सोमयज्ञेषु रूढः॥

अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम्॥ २।४।५॥

जिन ग्रन्थों का पठन पाठन अतिसमीप होता हो उन सुबन्तों का द्वन्द्व समास एकवचन हो। पदकक्रमकम्। क्रमकवार्त्तिकम्। अष्टाऽध्यायीमहाभाष्यम्। अध्ययनतइति किम्। पितापुत्रौ। अविप्रकृष्टाख्यानामिति किम्। याज्ञिकवैयाकरणौ॥

जातिरप्राणिनाम्॥ २।४।६॥

प्राणिवर्जित जाति वाची सुबन्तों का द्वन्द्व समास एकवचन हो। आराशस्त्रि। धानाशष्कुलि। शय्यासनम्। जातिरिति किम्। नन्दकपाञ्चजन्यौ। अप्राणिनामिति किम्। ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः॥

विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः॥ २।४।७॥

भिन्न लिङ्ग नदी और भिन्न लिङ्ग देशवाची सुबन्तों का द्वन्द्वसमास एकवचन हो ग्राम को छोड़ के। उद्ध्यश्च इरावती च उद्ध्येरावति। गङ्गाच शोणश्च गङ्गाशोणम्। देश। कुरवश्च कुरुक्षेत्रं च। कुरुकुरुक्षेत्रम्। कुरुजाङ्गलम्। विशिष्टलिङ्ग इति किम्। गङ्गायमुने। मद्रकेकयाः॥

वा०—अग्रामइत्यत्र नगराणां प्रतिषेधो वक्तव्यः॥

जैसे ग्रामों के द्वन्द्व को एकवचन का निषेध है वैसे नगरों का होना चाहिये जैसे। मथुरापाटलिपुत्रम्॥

वा०—उभयतश्च ग्रामाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः॥

उभयत अर्थात् ग्राम और नगरों का अवयव जो द्वन्द्वसमास उस को एकवचन न हो। शौर्य्यं नाम नगरम् केतवता नाम ग्रामः। शौर्यं च केतवता च शौर्यकेतवते। जाम्बवं नगरं। शालूकिनी ग्रामः। जाम्बवशालूकिन्यौ॥

क्षुद्रजन्तवः॥ २।४।८॥

नकुलपर्य्यन्ताः क्षुद्रजन्तवः। क्षुद्रजन्तुवाचि सुबन्तों का जो द्वन्द्व समास

सो एकवचन हो, दंशमशकम् । यूकामक्षिकमत्कुणम् । क्षुद्रजन्तव इति किम् ब्राह्मणक्षत्रियौ ॥

येषां च विरोधः शाश्वतिकः ॥ २ । ४ । ९ ॥

जिन का वैरनित्य हो तद्वाचिसुबन्तों का द्वन्द्व एकवचन हो । मार्जारमूषकम् । अश्वमहिषम् । अहिनकुलम् । श्वशृगालम् । चकार ग्रहण का प्रयोजन यह है कि जब विभाषा वृक्षमृग० । यह सूत्र प्राप्त हो और येषां च विरोध० । यह भी तब नित्य ही एकवचन हो । अश्वमहिषम् । काकोलूकम् । शाश्वतिक इति किम् । देवासुराः ।

शूद्राणामनिरवसितानाम् ॥ २ । ४ । १० ॥

जिन शूद्रों के भोजन करे पीछे मांजे से भी पात्र शुद्ध न हों वे अनिरवसित कहाते हैं अनिरवसित शूद्रों का द्वन्द्व समास एकवचन हो । तक्षायस्कारम् । रजकतन्तुवायम् । अनिरवसितानामिति किम् । चण्डालमृतपाः ॥

गवाश्वप्रभृतीनि च ॥ २ । ४ । ११ ॥

यहां गवाश्वम् इत्यादि शब्द द्वन्द्व समास में एकवचन निपातन किये हैं । गवाश्वम् । गवाविकम् । गवैडकम् । अजाविकम् । अजैडकम् । गवाश्वप्रभृतिषु यथोच्चारितं द्वन्द्ववृत्तं द्रष्टव्यम् । रूपान्तरे तु नायं विधिर्भवतीति * । गोअश्वौ । पशुद्वन्द्वविभाषैव भवति ॥

विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यंजनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् ॥ २ । ४ । १२ ॥

वृक्ष मृग तृण धान्य व्यंजन पशु शकुनि अश्ववडव पूर्वापर अधरोत्तर इन सुबन्तों का द्वन्द्व समास परस्पर विकल्प करके एकवचन हो (वृक्ष) प्लक्षन्यग्रोधं प्लक्षन्यग्रोधाः । (मृग) रुरुपृषतम् । रुरुपृषताः । (तृण) कुशकाशम् । कुशकाशाः (धान्य) व्रीहियवम् व्रीहियवाः । (व्यञ्जन) दधिघृतम् । दधिघृते । (पशु) गोमहिषम् । गोमहिषाः (शकुनि) तित्तिरिकपिञ्जलम् । तित्तिरिकपिञ्जलाः । हंसचक्रवाकम् । हंसचक्रवाकाः । अश्ववडवम् । अश्ववडवौ । पूर्वापरम् । पूर्वापरे । अधरोत्तरम् । अधरोत्तरे ॥

---

* रूपान्तर अर्थात् जिस पक्ष में अवङ् आदेश नहीं होता वहां यह एकवचन विधि नहीं होता ॥

वा-बहुप्रकृतिः फलसेनावनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तुधान्य-तृणानाम् ॥

एषां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व एकवद्भवति * । न द्विप्रकृतिः । बदरामलके । रथिकाश्वारोहौ । प्लक्षन्यग्रोधौ । रुरुपृषतौ । हंसचक्रवाकौ । यूकालिक्षे । व्रीहियवौ । कुशकाशौ ॥

विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि ॥ २ । ४ । १३ ॥

जो भिन्न द्रव्य वाची और परस्पर विरुद्धार्थ सुबन्तों का द्वन्द्व, वह एक वचन विकल्प करके हो । शीतोष्णम् । शीतोष्णे । सुखदुःखम् । सुखदुःखे । जीवितमरणम् । जीवितमरणे । विप्रतिषिद्धमिति किम् । कामक्रोधौ । अनधिकरणवाचिनामिति किम् । शीतोष्णे उदके ॥

न दधिपयआदीनि ॥ २ । ४ । १४ ॥

दधिपय आदि शब्दों का द्वन्द्व एकवचन न हो । दधि च पयश्च ते दधिपयसी । सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिषी । ब्रह्म प्रजापती । शिववैश्रवणौ । इत्यादि ॥

अधिकरणैतावत्त्वे च ॥ २ । ४ । १५ ॥

अधिकरणवाची द्वन्द्व समास के एतावत्त्वनाम परिमाण अर्थ में एकवचन हो । चतुस्त्रिंशद्दन्तोष्ठाः । दश मार्दङ्गिकपाणविकाः ॥

विभाषा समीपे ॥ २ । ४ । १६ ॥

अधिकरण के एतावत्त्व के समीप अर्थ में एकवचन विकल्प करके हो । उपदशं दन्तोष्ठं । उपदशा दन्तोष्ठाः । उपदशं मार्दङ्गिकपाणविकं । उपदशा मार्दङ्गिकपाणविकाः ॥

स नपुंसकम् ॥ २ । ४ । १७ ॥

जिस द्विगु और द्वन्द्व को एकवद्भाव विधान किया है सो नपुंसक लिङ्ग होता है (द्विगु) पञ्चगवम् । दशगवम् (द्वन्द्व) पाणिपादम् । शिरोग्रीवम् । इत्यादि । परपद का लिङ्ग प्राप्त हुआ था उसका अपवाद यह सूत्र है ॥

अव्ययीभावश्च ॥ २ । ४ । १८ ॥

---

* बहुप्रकृति अर्थात् जहां बहुवचनान्त शब्दों का द्वन्द्व हो वहीं एकवचन हो [बदरामलके] यहां द्विवचनान्त के होने से एकवचन न हुआ ॥

अव्ययीभाव समास नपुंसक लिङ्ग हो ॥

वा०–पुण्यसुदिभ्यामह्नः क्लीवतेष्यते ॥

जैसे । पुण्यं च तदहश्च पुण्याहम् । सुदिनाहम् ॥

वा०– पथः संख्याव्ययादेः क्लीवतेष्यते ॥

संख्या और अव्यय जिस के आदि में हो ऐसे पथिन् शब्द को नपुंस
हो । त्रिपथम् । चतुष्पथम् । विपथम् । सुपथम् ॥

वा०–क्रियाविशेषणानां च क्लीवता वक्तव्या ॥

मृदु पचति । शोभनं पचति ॥

*** सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ॥ १ । २ । ६४ ॥**

जो तुल्य रूप शब्द हों उन का एकविभक्ति परे हो तो एकशेष तथा अन्
की निवृत्ति हो । वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षौ । वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षाः । इत्यादि
उदाहरण होते हैं । सरूपाणामिति किम् । प्लक्षन्यग्रोधाः । रूपग्रहणं किम् ।
प्यर्थे यथा स्यात् । अक्षाः । पादाः । माषा इति । एकग्रहणं किम् । द्विबह्वोः शे
भूत् । एकविभक्ताविति किम् । पयः पयो जरयति । वासो वासश्छादयति । ब्राह्म
ण्यां च कृतम् । ब्राह्मणाभ्यां च देहीति ॥

वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः ॥ १ । २ । ६५ ॥

जो तल्लक्षण अर्थात् वृद्धप्रत्ययान्त और युवप्रत्ययान्त ही का विशेष
विरूपता हो और मूल प्रकृति समान होवे तो वृद्धनाम गोत्र प्रत्ययान्त शब्द
युव प्रत्ययान्त शब्द का जब एक सङ्ग उच्चारण करें तब वृद्ध शेष रहे और युवा
निवृत्ति हो (उदाहरण) गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च तौ गार्ग्यौ । वात्स्यश्च वात्स्यायनश्
वात्स्यौ । वृद्धइति किम् । गर्गश्च गार्ग्यायणश्च गर्गगार्ग्यायणौ । यूनेति किम् । गा
र्ग्यश्च गर्गश्च गार्ग्यगर्गौ । तल्लक्षण इति किम् । गार्ग्यवात्स्यायनौ । एवकारः किमर्थः
भागवित्तिश्च भागवित्तिकश्च । भागवित्तिभागवित्तिकौ । कुत्सा और सौवीर वे दो
अर्थ भागवित्तिक शब्द में युव प्रत्ययान्त से भी अलग हैं ॥

---

* यहां से एकशेष द्वन्द्व का प्रकरण चला है ॥

स्त्री पुंवच्च ॥ १ । २ । ६६ ॥

जब वृद्धा स्त्री और युवा का एकसङ्ग उच्चारण करें तब वृद्धा स्त्री शेष रहे और युवा की निवृत्ति हो। पुंवत् अर्थात् स्त्री को पुंल्लिङ्ग के सदृश कार्य्य हो जो तल्लक्षणही विशेष होवे तो। गार्गी च गार्ग्यायणश्च गार्ग्यौ। वात्सी च वात्स्यायनश्च वात्स्यौ। दाक्षी च दाक्षायणश्च दाक्षी ॥

पुमान् स्त्रिया ॥ १ । २ । ६७ ॥

जो तल्लक्षण विशेष होवे तो स्त्री के साथ पुरुष शेष रहे स्त्री निवृत्त हो। जैसे। ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च। ब्राह्मणौ। कुक्कुटश्च कुक्कुटी च कुक्कुटौ। यहां तल्लक्षण विशेष इस लिये है कि कुक्कुटश्च मयूरीच कुक्कुटमयूर्य्यौ। यहां एक शेष न होवे। एवकार इस लिये है कि इन्द्रश्च इन्द्राणीचेन्द्रेन्द्राण्यौ। यहां इन्द्राणी शब्द में पुंयोग की आख्या स्त्रीत्व से पृथक् होने के कारण एक शेष न हो ॥

भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् ॥ १ । २ । ६८ ॥

भ्रातृ और पुत्र शब्द, यथाक्रम स्वसृ और दुहितृ के साथ शेष रहैं। भ्राता च स्वसा च। भ्रातरौ। पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ ॥

नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम् ॥ १ । २ । ६९ ॥

नपुंसकलिङ्गवाची शब्द नपुंसकभिन्नवाची शब्द के साथ एक शेष पावे। और नपुंसक को एकवचन भी विकल्प करके हो। शुक्लश्च कम्बलः शुक्ला च बृहतिका शुक्लं च वस्त्रं तदिदं शुक्लम्। तानीमानि शुक्लानि। अनपुंसक के साथ इस लिये कहा है कि शुक्लं च शुक्लं च शुक्लं च शुक्लानि। यहां एकवचन न हो ॥

पिता मात्रा ॥ १ । २ । ७० ॥

मातृ शब्द के साथ पितृ शब्द विकल्प करके शेष रहे। माता च पिता च पितरौ। मातापितराविति वा ॥

श्वशुरः श्वश्र्वा ॥ १ । २ । ७१ ॥

श्वशुर शब्द श्वश्रू शब्द के साथ विकल्प करके शेष रहे। श्वश्रूश्च श्वशुरश्च। श्वशुरौ। श्वश्रूश्वशुराविति वा ॥

त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् ॥ २ । १ । ७२ ॥

यहां नित्य ग्रहण पूर्व विकल्प की निवृत्ति के लिये हैं त्यद् आदि शब्द सब शब्दों के साथ शेष रहें । स च देवदत्तश्च तौ । यश्च देवदत्तश्च यौ । त्यदादीनामिथः यद्यत्परं तच्छिष्यते । सच यश्च यौ । यश्च कश्च कौ ॥

ग्राम्यपशुसंघेष्वतरुणेषु स्त्री ॥ १ । २ । ७३ ॥

ग्राम में रहने वाले पशुओं के समुदाय में स्त्री वाची शब्द पुरुष वाची शब्द के साथ शेष रहैं । पुमान् स्त्रिया । इस सूत्र से पुरुष वाची शब्द का शेष पाया था उस का अपवाद यह सूत्र है । महिषाश्च महिष्यश्च महिष्य इमाश्चरन्ति । गाव इमाश्चरन्ति । अजा इमाश्चरन्ति । ग्राम्यग्रहणं किम् । रुरव इमे। पृषता इमे । पशिवति किम् । ब्राह्मणाः । क्षत्रियाः । संघेष्विति किम् । एतौ गावौ चरतः । अतरुणेष्विति किम् । वत्सा इमे । बर्करा इमे ॥

वा०—अनेकशफेष्विति वक्तव्यम् ॥

अनेक शफ अर्थात् जिन पशुओं के खुर दो २ हों कि जैसे । गाय भैंस आदि उन्हीं में यह विधि हो । और यहां न होवे कि ।अश्वा इमे । गर्दभा इमे।घोड़े और गधे के खुर जुड़े होते हैं । इस के आगे सामान्य सूत्रों को लिखते हैं जिन में एक समास का नियम नहीं है ॥

प्रथमानिर्दिष्टं समासउपसर्जनम् ॥ १ । २ । ४३ ॥

समास विधायक सूत्रों में प्रथमा विभक्ति से जिस शब्द का उच्चारण किया हो वह उपसर्जन संज्ञक हो । द्वितीया समास में द्वितीया प्रथमानिर्दिष्ट और तृतीया समास में तृतीया प्रथमानिर्दिष्ट है । ऐसे ही और भी जानो । कष्टश्रितः । शङ्कुलया खण्डः ॥

उपसर्जनं पूर्वम् ॥ २ । २ । ३० ॥

इस सूत्र से उपसर्जन संज्ञक का पूर्व निपात होता है तथा अन्य भी उपसर्जन संज्ञा के बहुत प्रयोग हैं सो अपने २ प्रकरण में समझने चाहियें यहां समास में उनके लिखने की आवश्यकता नहीं ॥

एकविभक्ति चापूर्वनिपाते ॥ १ । २ । ४४ ॥

जिस पद को समास विधायक सूत्र में एक ही विभक्ति नियत हो सो उपसर्जन

संज्ञक हो । अपूर्वनिपाते । पूर्वनिपाताख्य जो उपसर्जन कार्य्य है उसको वर्जि के । निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या । यहां जैसे पञ्चम्यन्त ही पद का नियम है इसलिये उत्तर पद की उपसर्जन संज्ञा होती है । निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः । यहां उपसर्जन संज्ञा का प्रयोजन यह है कि स्त्री प्रत्यय को ह्रस्व हो जाता है । एक विभक्तीति किम् । राजकुमारी * । अपूर्वनिपात इति किम् । कौशाम्बीनिरिति । यहां कौशाम्बी की उपर्जन संज्ञा नहीं होती ॥

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ॥ १ । २ । ४८ ॥

गो इति स्वरूपग्रहणं स्त्रीति प्रत्ययग्रहणं स्वरितत्वात् । इसका अर्थ यह है कि जो चतुर्थ अध्याय में । स्त्रियाम् । इस अधिकार सूत्र करके प्रत्यय कहे हैं उन का यहां ग्रहण है । स्त्री शब्दान्त प्रातिपदिक को और उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिक को ह्रस्व हो । चित्रगुः । शबलगुः । निष्कौशाम्बिः । निर्वाराणसिः । अतिखट्वः । अतिमालः । उपसर्जनस्येति किम् । राजकुमारी । स्वरितत्वात् किम् । अतितन्त्रीः । अतिलक्ष्मीः । अतिश्रीः ॥

कडाराः कर्मधारये ॥ २ । २ । ३८ ॥

कर्मधारय समास में कडार शब्द का पूर्वनिपात विकल्प करके हो । जैसे । कडारजैमिनिः । जैमिनिकडारः । इत्यादि † ॥

परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ॥ २ । ४ । २६ ॥

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में परपद का लिङ्ग हो । द्वन्द्व । कुक्कुटमयूर्याविमे । मयूरीकुक्कुटाविमौ । तत्पुरुष । अर्द्धं पिप्पल्या अर्द्धपिप्पली । अर्द्धकौशातकी ॥

द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

द्विगु । प्राप्त । आपन्न । अलंपूर्वक । तथा गतिसंज्ञक इन समासों में पर पद का

---

* यहां एक विभक्ति का नियम इसलिये नहीं है कि जिस षष्ठ्यन्त की उपसर्जन संज्ञा होती है उस से सब विभक्ति आती हैं । जैसे । राज्ञः कुमारी । राज्ञोः कुमार्यौ । राज्ञां कुमार्य्यः । इत्यादि ॥

† जो प्राक्कडारात्समासः । इस सूत्र में समास का अधिकार किया था वह पूरा हो गया । अब इस के आगे समास में किस पद के लिङ्ग का प्रयोग होना चाहिये इस का आरम्भ हुआ है ॥

त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् ॥ २ । १ । ७२ ॥

यहां नित्य ग्रहण पूर्व विकल्प की निवृत्ति के लिये हैं त्यद् आदि शब्द सब श-ब्दों के साथ शेष रहें। स च देवदत्तश्च तौ। यश्च देवदत्तश्च यौ। त्यदादीनांदे यद्यत्परं तच्छिष्यते। सच यश्च यौ। यश्च कश्च कौ॥

ग्राम्यपशुसंघेष्वतरुणेषु स्त्री ॥ १ । २ । ७३ ॥

ग्राम में रहने वाले पशुओं के समुदाय में स्त्री वाची शब्द पुरुष वाची शब्द के साथ शेष रहैं। पुमान् स्त्रिया। इस सूत्र से पुरुष वाची शब्द का शेष पाया था उस का अपवाद यह सूत्र है। महिषाश्च महिष्यश्च महिष्य इमाश्चरन्ति। गाव इमाश्चरन्ति। अजा इमाश्चरन्ति। ग्राम्यग्रहणं किम्। रुरव इमे। पृषता इमे। पशुग्रहणं किम्। ब्राह्मणाः। क्षत्रियाः। संघेष्विति किम्। एतौ गावौ चरतः। अतरुणेष्विति किम्। वत्सा इमे। बर्करा इमे॥

वा०—अनेकशफेष्विति वक्तव्यम् ॥

अनेक शफ अर्थात् जिन पशुओं के खुर दो २ हों कि जैसे। गाय भैंस आदि उन्हीं में यह विधि हो। और यहां न होवे कि। अश्वा इमे। गर्दभा इमे। घोड़े और गधे के खुर जुड़े होते हैं। इस के आगे सामान्य सूत्रों को लिखते हैं कि जिन में एक समास का नियम नहीं है॥

प्रथमानिर्दिष्टं समासउपसर्जनम् ॥ १

समास विधायक सूत्रों में प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट शब्द वह उपसर्जन संज्ञक हो। द्वितीया समास में द्वितीया प्रथमानि[illegible] में तृतीया प्रथमानिर्दिष्ट है। ऐसे ही और भी जानो। कष्टश्रितः

उपसर्जनं पूर्वम् ॥ २ । २ । ३०

इस सूत्र से उपसर्जन संज्ञक का पूर्व निपात होता है [illegible] संज्ञा के बहुत प्रयोग हैं सो अपने २ प्रकरण में समझने [illegible] नके लिखने की आवश्यकता नहीं॥

एकविभक्ति चापूर्वनिपाते ॥ १ । २

जिस पद को समास विधायक सूत्र में एक ही विभक्ति

संज्ञक हो । अपूर्वनिपाते । पूर्वनिपाताख्य जो उपसर्जन कार्य्य है उसको वर्जि के । निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या । यहां जैसे पञ्चम्यन्त ही पद का नियम है इसलिये उत्तर पद की उपसर्जन संज्ञा होती है । निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः । यहां उपसर्जन संज्ञा का प्रयोजन यह है कि स्त्री प्रत्यय को ह्रस्व हो जाता है । एक विभक्तीति किम् । राजकुमारी * । अपूर्वनिपात इति किम् । कौशाम्बीनिरिति । यहां कौशाम्बी की उपर्जन संज्ञा नहीं होती ॥

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ॥ १ । २ । ४८ ॥

गो इति स्वरूपग्रहणं स्त्रीति प्रत्ययग्रहणं स्वरितत्वात् । इसका अर्थ यह है कि जो चतुर्थ अध्याय में । स्त्रियाम् । इस अधिकार सूत्र करके प्रत्यय कहे हैं उन का यहां ग्रहण है । स्त्री शब्दान्त प्रातिपदिक को और उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिक को ह्रस्व हो । चित्रगुः । शबलगुः । निष्कौशाम्बिः । निर्वाराणसिः । अतिखट्वः । अतिमालः । उपसर्जनस्येति किम् । राजकुमारी । स्वरितत्वात् किम् । अतितन्त्रीः । अतिलक्ष्मीः । अतिश्रीः ॥

कडाराः कर्मधारये ॥ २ । २ । ३८ ॥

कर्मधारय समास में कडार शब्द का पूर्वनिपात विकल्प करके हो । जैसे । कडारजैमिनिः । जैमिनिकडारः । इत्यादि † ॥

परवल्लिङ्गन्द्वतत्पुरुषयोः ॥ २ । ४ । २६ ॥

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में परपद का लिङ्ग हो । द्वन्द्व । कुक्कुटमयूर्याविमे । मयूरीकुक्कुटाविमौ । तत्पुरुष । अर्द्धं पिप्पल्या अर्द्धपिप्पली । अर्द्धकोशातकी ॥

द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

द्विगु । प्राप्त । आपन्न । अलंपूर्वक । तथा गतिसंज्ञक इन समासों में पर पद का

---

* यहां एक विभक्ति का नियम इसलिये नहीं है कि जिस पञ्चम्यन्त की उपसर्जन संज्ञा होती है उस से सब विभक्ति आती हैं । जैसे । राज्ञः कुमारी । राज्ञोः कुमार्य्यौ । राज्ञां कुमार्य्यः । इत्यादि ॥

† जो प्राक्कडारात्समासः । इस सूत्र में समास का अधिकार किया था वह पूरा हो गया । अब इस के आगे समास में किस पद के लिंग का प्रयोग होना चाहिये इस का आरम्भ हुआ है ॥

त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् ॥ २ । १ । ७२ ॥

यहां नित्य ग्रहण पूर्व विकल्प की निवृत्ति के लिये है त्यद् आदि शब्द स शब्दों के साथ शेष रहें । स च देवदत्तश्च तौ । यश्च देवदत्तश्च यौ । त्यदादीनां यद्यत्परं तच्छिष्यते । सच यश्च यौ । यश्च कश्च कौ ॥

ग्राम्यपशुसंघेष्वतरुणेषु स्त्री ॥ १ । २ । ७३ ॥

ग्राम में रहने वाले पशुओं के समुदाय में स्त्री वाची शब्द पुरुष वाची शब्द साथ शेष रहें । पुमान् स्त्रिया । इस सूत्र से पुरुष वाची शब्द का शेष पाया था उस अपवाद यह सूत्र है । महिषाश्च महिष्यश्च महिष्य इमाश्चरन्ति । गाव इमाश्चरन्ति अजा इमाश्चरन्ति । ग्राम्यग्रहणं किम् । रुरव इमे । पृषता इमे । पशिवति किम् । ब्राह्मणाः । क्षत्रियाः । संघेष्विति किम् । एतौ गावौ चरतः । अतरुणेष्विति किम् । वत्स इमे । बर्करा इमे ॥

वा०—अनेकशफेष्विति वक्तव्यम् ॥

अनेक शफ अर्थात् जिन पशुओं के खुर दो २ हों कि जैसे । गाय भैंस आदि उन्हीं में यह विधि हो । और यहां न होवे कि । अश्वा इमे । गर्दभा इमे । घोड़े और गधे के खुर जुड़े होते हैं । इस के आगे सामान्य सूत्रों को लिखते हैं जिन में एक समास का नियम नहीं है ॥

प्रथमानिर्दिष्टं समासउपसर्जनम् ॥ १ । २ । ४३ ॥

समास विधायक सूत्रों में प्रथमा विभक्ति से जिस शब्द का उच्चारण किया हो वह उपसर्जन संज्ञक हो । द्वितीया समास में द्वितीया प्रथमानिर्दिष्ट और तृतीया समास में तृतीया प्रथमानिर्दिष्ट है । ऐसे ही और भी जानो । कष्टश्रितः । शङ्कुलया खण्डः ॥

उपसर्जनं पूर्वम् ॥ २ । २ । ३० ॥

इस सूत्र से उपसर्जन संज्ञक का पूर्व निपात होता है तथा अन्य भी उपसर्जन संज्ञा के बहुत प्रयोग हैं सो अपने २ प्रकरण में समझने चाहियें यहां समास में उनके लिखने की आवश्यकता नहीं ॥

एकविभक्ति चापूर्वनिपाते ॥ १ । २ । ४४ ॥

जिस पद की समास विधायक सूत्र में एक ही विभक्ति नियत हो सो उपसर्जन

संज्ञक हो। अपूर्वनिपाते। पूर्वनिपातारूप जो उपसर्जन कार्य्य है उसको वर्ज के। निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या। यहां जैसे पञ्चम्यन्त ही पद का नियम है इसलिये उत्तर पद की उपसर्जन संज्ञा होती है। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः। यहां उपसर्जन संज्ञा का प्रयोजन यह है कि स्त्री प्रत्यय को ह्रस्व हो जाता है। एक विभक्तीति किम्। राजकुमारी *। अपूर्वनिपात इति किम्। कौशाम्बीनिरिति। यहां कौशाम्बी की उपर्जन संज्ञा नहीं होती॥

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ॥ १ । २ । ४८ ॥

गो इति स्वरूपग्रहणं स्त्रीति प्रत्ययग्रहणं स्वरितत्वात्। इसका अर्थ यह है कि जो चतुर्थ अध्याय में। स्त्रियाम्। इस अधिकार सूत्र करके प्रत्यय कहे हैं उन का यहां ग्रहण है। स्त्री शब्दान्त प्रातिपदिक को और उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिक को ह्रस्व हो। चित्रगुः। शबलगुः। निष्कौशाम्बिः। निर्वाराणसिः। अतिखट्वः। अतिमालः। उपसर्जनस्येति किम्। राजकुमारी। स्वरितत्वात् किम्। अतितन्त्रीः। अतिलक्ष्मीः। अतिश्रीः॥

कडाराः कर्मधारये ॥ २ । २ । ३८ ॥

कर्मधारय समास में कडार शब्द का पूर्वनिपात विकल्प करके हो। जैसे। कडारजैमिनिः। जैमिनिकडारः। इत्यादि †॥

परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ॥ २ । ४ । २६ ॥

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में परपद का लिङ्ग हो। द्वन्द्व। कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। तत्पुरुष। अर्द्धं पिप्पल्या अर्द्धपिप्पली। अर्द्धकौशातकी॥

द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

द्विगु। प्राप्त। आपन्न। अलंपूर्वक। तथा गतिसंज्ञक इन समासों में पर पद का

---

* यहां एक विभक्ति का नियम इसलिये नहीं है कि जिस पदार्थ की उपसर्जन संज्ञा होती है उस से सब विभक्ति आती हैं। जैसे। राज्ञः कुमारी। राज्ञोः कुमार्यौ। राज्ञां कुमार्य्यः। इत्यादि॥

† जो प्राक्कडारात्समासः। इस सूत्र से समास का अधिकार किया था वह पूरा हो गया। अब इस के आगे समास में किस पद के लिङ्ग का प्रयोग होना चाहिये इस का आरम्भ हुआ है॥

लिङ्ग न हो । पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पञ्चकपालः । प्राप्तो जीविकां प्राप्त-
जीविकः । आपन्नो जीविकाम् । आपन्नजीविकः । अलंकुमारि । अलंकुमारिः । [illegible]
निकः । गतिसमास । निष्क्रान्तः । कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बिः । निर्वाराणसिः ।

अचतुर विचतुर सुचतुर स्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्साम॥वाङ्मन-
साक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तंदिवरात्रिंदिवाहर्दिवसर-
जसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृ-
द्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः॥ ५ । ४ । ७७ ॥

द्वितीये चाऽनुपाख्ये ॥ ६ । ३ । ८० ॥

जो प्रत्यक्ष जाना जाय सो उपाख्य और जो इस से भिन्न है सो कहिये अनुपाख्य अर्थात् अनुमेय है जहां द्वितीय अनुपाख्य हो वहां सह शब्द को स आदेश हो । सप्तुद्धिः । साग्निः कपोतः । सपिशाचा वात्या । सराक्षसीका शाला । यहां अग्नि आदि साक्षात् नहीं होते किंतु अनुमानगम्य हैं ॥

ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु ॥ ६ । ३ । ८५ ॥

ज्योतिष्, जनपद, रात्रि, नाभि, नाम, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन, और बन्धु ये उत्तर पद परे होवें तो समान को स आदेश हो । समानं च तज्ज्योतिश्च सज्योतिः । समानं ज्योतिर्यस्मिन् स सज्योतिर्व्यवहारः । सजनपदः । सरात्रिः । सनाभिः । सनामा । सगोत्रः । सरूपः । सस्थानः । सवर्णः । सवयाः । सवचनः । सबन्धुः ॥

चरणे ब्रह्मचारिणि ॥ ६ । ३ । ८६ ॥

आचरण अर्थ में ब्रह्मचारी उत्तरपद परे हो तो समान शब्द को स आदेश हो । समानो ब्रह्मचारी । सब्रह्मचारी । जो एकवेद पढ़ने और आचार्य्य के समीप व्रत को धारण करता है वह सब्रह्मचारी कहाता है ॥

इदंकिमोरीश्की ॥ ६ । ३ । ९० ॥

जो दृक् दृश और वतु परे हों तो इदम् और किम् शब्द को ईश् और की आदेश हों । ईदृक् । ईदृशः । इयान् । कीदृक् । कीदृशः । कियान् ॥

वा०—दृक्षेचेति वक्तव्यम् ॥

दृक्ष उत्तर पद के परे भी इदं और किम् शब्द को ईश् और की आदेश हो जावें जैसे । ईदृक्षः । कीदृक्षः ॥

विश्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये ॥ ६ । ३ । ९२ ॥

जो अप्रत्यय अर्थात् क्विप् तथा क्विन् प्रत्ययान्त अञ्चति परे हो तो विश्वग्, देव और सर्वनाम की टि को अद्रि आदेश हो । विश्वगञ्चतीति विश्वद्र्यङ् । देवद्र्यङ् । सर्व- किम् । विश्वाची । अप्रत्यय इति किम् ।

वा०—छन्दसि स्त्रियां बहुलमिति वक्तव्यम् ॥

वेद विषयक स्त्री लिंग में विश्वग् आदि की टि को अद्रि आदेश बहुल करके हैं जैसे—विश्वाची च घृताची चेत्यत्र न भवति । कद्रीचीत्यत्र तु भवत्येव ॥

समः समि ॥ ६ । ३ । ९३ ॥

जो अप्रत्ययान्त अञ्चति परे हो तो सम् के स्थान में समि आदेश हो सम्यङ् सम्यञ्चौ । सम्यञ्चः ॥

तिरसस्तिर्यलोपे ॥ ६ । ३ । ९४ ॥

अप्रत्ययान्त लोप रहित अञ्चति उत्तरपद परे हो तो तिरस् के स्थान में तिरि आदेश हो । तिर्यङ् । तिर्यञ्चौ । तिर्यञ्चः । अलोप इति किम् । तिरश्चौ । तिरश्चे ॥

सहस्य सध्रिः ॥ ६ । ३ । ९५ ॥

जो अप्रत्ययान्त अञ्चति उत्तर पद परे हो तो सह शब्द को सध्रि आदेश हो । सध्र्यङ् । सध्र्यञ्चौ । सध्र्यञ्चः ॥

सध मादस्थयोश्छन्दसि ॥ ६ । ३ । ९६ ॥

वेद विषय में माद और स्थ उत्तरपद परे हों तो सह के स्थान में सध आदेश हो । सधमादो द्युम्न एकास्ताः । सधस्थाः ॥

द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽपईत् ॥ ६ । ३ । ९७ ॥

द्वि अन्तर् और उपसर्गों से परे अप् शब्द के आदि अक्षर के स्थान में ईत् आदेश होता है । द्वयोः पार्श्वयोरापो यस्मिन्नगरे तद्द्वीपम् । अन्तर्मध्ये आपो यस्मिन्ग्रामे सोऽन्तरीपः । अभिगता आपोऽस्मिन्सोऽभीपो ग्रामः । इत्यादि * ॥

ऊदनोर्देशे ॥ ६ । ३ । ९८ ॥

देश अर्थ में अनु उपसर्ग से परे अप् शब्द के अकार को ऊकार आदेश हो । अनूपो देशः । देश इति किम् । अन्वीपम् ॥

अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्यदुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु ॥ ६ । ३ । ९९ ॥

जो आशिष् । आशा । आस्था । आस्थित । उत्सुक । ऊति । कारक । राग और छ प्रत्यय परे हों तो जो षष्ठी तृतीया विभक्ति रहित अन्य शब्द उस को दुक् का आगम हो । अन्या आशीः । अन्यदाशीः । अन्या आशा । अन्यदाशा । अन्या आस्था । अन्यदास्था । अन्य आस्थितः । अन्यदास्थितः । अन्य उत्सुकः । अन्यदुत्सुकः । अन्याऊतिः । अन्यदूतिः । अन्यः कारकः । अन्यत्कारकः । अन्योरागः । अन्यद्रागः । अन्यास्मिन् भवः । अन्यदीयः । गहादिष्वन्य शब्दो द्रष्टव्यः । अषष्ठ्यतृतीयास्थस्येति किम् । अन्यस्य आशीः । अन्याशीः । अन्येन आस्थितः । अन्यास्थितः ॥

अर्थे विभाषा ॥ ६ । ३ । १०० ॥

अर्थ उत्तर पद परे हो तो अन्य शब्द को दुक् का आगम विकल्प करके हो । अन्योर्थः । अन्यदर्थः । पक्षे अन्यार्थः ॥

कोः कत्तत्पुरुषेऽचि ॥ ६ । ३ । १०१ ॥

जो अजादि उत्तर पद परे और तत्पुरुष समास हो तो कु शब्द के स्थान में कत् आदेश हो । कदजः । कदश्वः । कदुष्ट्रः । कदन्नम् । इत्यादि । तत्पुरुष इति किम् । कूष्ट्रो राजा । अचीति किम् । कुब्राह्मणः । कुपुरुषः ॥

वा०—कद्भावे त्रावुपसंख्यानम् ॥

जो कु शब्द को कत् आदेश कहा है सो त्रि शब्द के परे भी होवे । कुत्सितास्त्रयः । कत्त्रयः ॥

रथवदयोश्च ॥ ६ । ३ । १०२ ॥

रथ और वद उत्तरपद परे हों तो कुशब्द को कत् आदेश हो । कद्रथः । कद्वदः ॥

तृणे च जातौ ॥ ६ । ३ । १०३ ॥

जाति अर्थ में तृण उत्तरपद परे हो तो कु के स्थान में कत् आदेश हो कत्तृणा नाम जातिः । जाताविति किम् । कुत्सितानि तृणानि । कुतृणानि ॥

का पथ्यक्षयोः ॥ ६ । ३ । १०४ ॥

पथिन् और अक्ष उत्तर पद परे हों तो कुशब्द को का आदेश हो । कुत्सितः पन्थाः । कापथः । काक्षः ॥

वा०—छन्दसि स्त्रियां बहुलमिति वक्तव्यम् ॥

वेद विषयक स्त्री लिंग में विश्वग् आदि की टि को अद्रि आदेश बहुल करके हो। जैसे—विश्वाची च घृताची चेत्यत्र न भवति। कद्रीचीत्यत्र तु भवत्येव ॥

समः समि ॥ ६ । ३ । ९३ ॥

जो अप्रत्ययान्त अञ्चति परे हो तो सम् के स्थान में समि आदेश हो जैसे सम्यञ्चौ। सम्यञ्चः ॥

तिरसस्तिर्यलोपे ॥ ६ । ३ । ९४ ॥

अप्रत्ययान्त लोप रहित अञ्चति उत्तरपद परे हो तो तिरस् के स्थान में तिरि आदेश हो। तिर्यङ्। तिर्यञ्चौ। तिर्यञ्चः। अलोपइति किम्। तिरश्चौ। तिरश्चः।

सहस्य सध्रिः ॥ ६ । ३ । ९५ ॥

जो अप्रत्ययान्त अञ्चति उत्तर पद परे हो तो सह शब्द को सध्रि आदेश हो सध्र्यङ्। सध्र्यञ्चौ। सध्र्यञ्चः ॥

सध मादस्थयोश्छन्दसि ॥ ६ । ३ । ९६ ॥

वेद विषय में माद और स्थ उत्तरपद परे हों तो सह के स्थान में सध आदेश हो। सधमादो द्युम्न एकास्ताः। सधस्थाः ॥

द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽपईत् ॥ ६ । ३ । ९७ ॥

द्वि अन्तर् और उपसर्गों से परे अप् शब्द के आदि अक्षर के स्थान में ईत् आदेश होता है। द्वयोः पार्श्वयोरापो यस्मिन्नगरे तद्द्वीपम्। अन्तर्मध्ये आपो यस्मिन्ग्रामे सोऽन्तरीपः। अभिगता आपोऽस्मिन्सोऽभीपो ग्रामः। इत्यादि * ॥

ऊदनोर्देशे ॥ ६ । ३ । ९८ ॥

देश अर्थ में अनु उपसर्ग से परे अप् शब्द के अकार को ऊकार आदेश हो। अनूपो देशः। देश इति किम्। अन्वीपम् ॥

अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्यदुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु ॥ ६ । ३ । ९९ ॥

जो आशिष् । आशा । आस्था । आस्थित । उत्सुक । ऊति । कारक । राग और छ प्रत्यय परे हों तो जो षष्ठी तृतीया विभक्ति रहित अन्य शब्द उस को दुक् का आगम हो । अन्या आशीः । अन्यदाशीः । अन्या आशा । अन्यदाशा । अन्या आस्था । अन्यदास्था । अन्य आस्थितः । अन्यदास्थितः । अन्य उत्सुकः । अन्यदुत्सुकः । अन्याऊतिः । अन्यदूतिः । अन्यः कारकः । अन्यत्कारकः । अन्योरागः । अन्यद्रागः । अन्यस्मिन् भवः । अन्यदीयः । गहादिष्वन्य शब्दो द्रष्टव्यः । अषष्ठ्यतृतीयास्थस्येति किम् । अन्यस्य आशीः । अन्याशीः । अन्येन आस्थितः । अन्यास्थितः ॥

अर्थे विभाषा ॥ ६ । ३ । १०० ॥

अर्थ उत्तर पद परे हो तो अन्य शब्द को दुक् का आगम विकल्प करके हो । अन्योर्थः । अन्यदर्थः । पक्षे अन्यार्थः ॥

कोः कत्तत्पुरुषेऽचि ॥ ६ । ३ । १०१ ॥

जो अजादि उत्तर पद परे और तत्पुरुष समास हो तो कु शब्द के स्थान में कत् आदेश हो । कदजः । कदश्वः । कदुष्ट्रः । कदन्नम् । इत्यादि । तत्पुरुष इति किम् । कूष्ट्रो राजा । अचीति किम् । कुब्राह्मणः । कुपुरुषः ॥

वा०—कद्भावे त्रावुपसंख्यानम् ॥

जो कु शब्द को कत् आदेश कहा है सो त्रि शब्द के परे भी होवे । कुत्सितास्त्रयः । कत्त्रयः ॥

रथवदयोश्च ॥ ६ । ३ । १०२ ॥

रथ और वद उत्तरपद परे हों तो कुशब्द को कत् आदेश हो । कद्रथः । कद्वदः ॥

तृणे च जातौ ॥ ६ । ३ । १०३ ॥

जाति अर्थ में तृण उत्तरपद परे हो तो कु के स्थान में कत् आदेश हो कत्तृणा नाम जातिः । जाताविति किम् । कुत्सितानि तृणानि । कुतृणानि ॥

का पथ्यक्षयोः ॥ ६ । ३ । १०४ ॥

पथिन् और अक्ष उत्तर पद परे हों तो कुशब्द को का आदेश हो । कुत्सित पन्थाः । कापथ. । काक्षः ॥

वा०—छन्दसि स्त्रियां बहुलमिति वक्तव्यम् ॥

वेद विषयक स्त्री लिंग में विश्वग् आदि की टि को अद्रि आदेश बहुल करके। जैसे—विश्वाची च घृताची चेत्यत्र न भवति । कद्रीचीत्यत्र तु भवत्येव ॥

समः समि ॥ ६ । ३ । ९३ ॥

जो अप्रत्ययान्त अञ्चति परे हो तो सम् के स्थान में समि आदेश हो जैसे सम्यञ्चौ । सम्यञ्चः ॥

तिरसस्तिर्य्यलोपे ॥ ६ । ३ । ९४ ॥

अप्रत्ययान्त लोप रहित अञ्चति उत्तरपद परे हो तो तिरस् के स्थान में तिरि आदेश हो । तिर्यङ् । तिर्य्यञ्चौ । तिर्य्यञ्चः । अलोप इति किम् । तिरश्चः । तिरश्चे ।

सहस्य सध्रिः ॥ ६ । ३ । ९५ ॥

जो अप्रत्ययान्त अञ्चति उत्तर पद परे हो तो सह शब्द को सध्रि आदेश हो। सध्र्यङ् । सध्र्यञ्चौ । सध्र्यञ्चः ॥

सध मादस्थयोश्छन्दसि ॥ ६ । ३ । ९६ ॥

वेद विषय में माद और स्थ उत्तरपद परे हों तो सह के स्थान में सध आदेश हो । सधमादो द्युम्न एकास्ताः । सधस्थाः ॥

द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽपईत् ॥ ६ । ३ । ९७ ॥

द्वि अन्तर् और उपसर्गों से परे अप् शब्द के आदि अक्षर के स्थान में ईत् आदेश होता है । द्वयोः पार्श्वयोरापो यस्मिन्नगरे तद्द्वीपम् । अन्तर्मध्ये आपो यस्मिन्ग्रामे सोऽन्तरीपः । अभिगता आपोऽस्मिन्सोऽभीपो ग्रामः । इत्यादि * ॥

ऊदनोर्देशे ॥ ६ । ३ । ९८ ॥

देश अर्थ में अनु उपसर्ग से परे अप् शब्द के अकार को ऊकार आदेश हो। अनूपो देशः । देश इति किम् । अन्वीपम् ॥

अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्यदुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु ॥ ६ । ३ । ९९ ॥

---

* आदेः परस्य । इस से अप् शब्द के अकार के स्थान में ईत् आदेश होता है।

जो आशिष् । आशा । आस्था । आस्थित । उत्सुक । ऊति । कारक । राग और छ प्रत्यय परे हों तो जो षष्ठी तृतीया विभक्ति रहित अन्य शब्द उस को दुक् का आगम हो । अन्या आशीः । अन्यदाशीः । अन्या आशा । अन्यदाशा । अन्या आस्था । अन्यदास्था । अन्य आस्थितः । अन्यदास्थितः । अन्य उत्सुकः । अन्यदुत्सुकः । अन्याऊतिः । अन्यदूतिः । अन्यः कारकः । अन्यत्कारकः । अन्योरागः । अन्यद्रागः । अन्यास्मिन् भवः । अन्यदीयः । गहादिष्वन्य शब्दो द्रष्टव्यः । अषष्ठ्यतृतीयास्थस्येति किम् । अन्यस्य आशीः । अन्याशीः । अन्येन आस्थितः । अन्यास्थितः ॥

अर्थे विभाषा ॥ ६ । ३ । १०० ॥

अर्थ उत्तर पद परे हो तो अन्य शब्द को दुक् का आगम विकल्प करके हो । अन्योर्थः । अन्यदर्थः । पक्षे अन्यार्थः ॥

कोः कत्तत्पुरुषेऽचि ॥ ६ । ३ । १०१ ॥

जो अजादि उत्तर पद परे और तत्पुरुष समास हो तो कु शब्द के स्थान में कत् आदेश हो । कदन्नः । कदश्वः । कदुष्ट्रः । कदन्नम् । इत्यादि । तत्पुरुष इति किम् । कूष्ट्रो राजा । अचीति किम् । कुब्राह्मणः । कुपुरुषः ॥

वा०—कद्भावे त्रावुपसंख्यानम् ॥

जो कु शब्द को कत् आदेश कहा है सो त्रि शब्द के परे भी होवे । कुत्सितास्त्रयः । कत्त्रयः ॥

रथवदयोश्च ॥ ६ । ३ । १०२ ॥

रथ और वद उत्तरपद परे हों तो कुशब्द को कत् आदेश हो । कद्रथः । कद्वदः ॥

तृणे च जातौ ॥ ६ । ३ । १०३ ॥

जाति अर्थ में तृण उत्तरपद परे हो तो कु के स्थान में कत् आदेश हो कत्तृणा नाम जातिः । जाताविति किम् । कुत्सितानि तृणानि । कुतृणानि ॥

का पथ्यक्षयोः ॥ ६ । ३ । १०४ ॥

पथिन् और अक्ष उत्तर पद परे हों तो कुशब्द को का आदेश हो । कुत्सितः पन्थाः । कापथः । काक्षः ॥

वा०—छन्दसि स्त्रियां बहुलमिति वक्तव्यम् ॥

वेद विषयक स्त्री लिंग में विश्वग् आदि की टि को अद्रि आदेश बहुल करके जैसे—विश्वाची च घृताची चेत्यत्र न भवति । कद्रीचीत्यत्र तु भवत्येव ॥

समः समिः ॥ ६ । ३ । ९३ ॥

जो अप्रत्ययान्त अञ्चति परे हो तो सम् के स्थान में समि आदेश हो सम्यञ्चौ । सम्यञ्चः ॥

तिरसस्तिर्यलोपे ॥ ६ । ३ । ९४ ॥

अप्रत्ययान्त लोप रहित अञ्चति उत्तरपद परे हो तो तिरस् के स्थान में ति आदेश हो । तिर्यङ् । तिर्यञ्चौ । तिर्यञ्चः । अलोप इति किम् । तिरश्चौ । तिरश्चः

सहस्य सध्रिः ॥ ६ । ३ । ९५ ॥

जो अप्रत्ययान्त अञ्चति उत्तर पद परे हो तो सह शब्द को सध्रि आदेश हो सध्र्यङ् । सध्र्यञ्चौ । सध्र्यञ्चः ॥

सध मादस्थयोश्छन्दसि ॥ ६ । ३ । ९६ ॥

वेद विषय में माद और स्थ उत्तरपद परे हों तो सह के स्थान में सध आदेश हो । सधमादो द्युम्न एकास्ताः । सधस्थाः ॥

द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत् ॥ ६ । ३ । ९७ ॥

द्वि अन्तर् और उपसर्गों से परे अप् शब्द के आदि अक्षर के स्थान में ईत् आदेश होता है । द्वयोः पार्श्वयोरापो यस्मिन्नगरे तद्द्वीपम् । अन्तर्मध्ये आपो यस्मिन्ग्रामे सोऽन्तरीपः । अभिगता आपोऽस्मिन्सोऽभीपो ग्रामः । इत्यादि * ॥

ऊदनोर्देशे ॥ ६ । ३ । ९८ ॥

देश अर्थ में अनु उपसर्ग से परे अप् शब्द के अकार को ऊकार आदेश हो । अनूपो देशः । देश इति किम् । अन्वीपम् ॥

अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु ॥ ६ । ३ । ९९ ॥

* आदेः परस्य । इस से अप् शब्द के अकार के स्थान में ईत् आदेश होता है।

प्रत्यय के परे रुधातु के टि का लोप और मही शब्द को मयू आदेश हो जाता है इसी प्रकार और भी अश्वत्थ, कपित्थ आदि शब्दों की सिद्धि समझनी चाहिये ॥

वा०-दिक्शब्देभ्य उत्तरस्य तीरशब्दस्य तारभावो वा भवति ॥

दिशा वाची शब्दों से परे तीरशब्द को तार आदेश विकल्प करके हो। दक्षिणतीरम्। दक्षिणतारम्। उत्तरतीरम्। उत्तरतारम् ॥

वा०-वाचो वादे डत्वं च लभावश्चोत्तरपदस्येञि प्रत्यये भवति ॥

वाद उत्तर पद के परे वाक् शब्द को ड आदेश और इञ् प्रत्यय के परे उत्तर वाद शब्द को ल आदेश हो जावे। वाचं वदतीति वाड्वादः। तस्यापत्यं वाड्वालिः ॥

वा०-षषउत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेष्टुत्वं च भवति ॥

षट्शब्द को उ हो दतृ, दश और धा उत्तर पद परे हों तो और उत्तरपद के आदि को मूर्द्धन्य आदेश हो। षट् दन्ता अस्य षोडन्। षट् च दश च षोडश ॥

वा०-धासु वा षषउत्वं भवति उत्तरपदादेश्च ष्टुत्वम् ॥

पूर्वोक्त कार्य्य धा उत्तरपद में विकल्प करके हो। षोढा। षड्धा कुरु ॥

वा०-दुरो दाशनाशदभध्येषूत्वं वक्तव्यमुत्तरपदादेश्च ष्टुत्वम् ॥

दुर् शब्द को उत्व हो दाश नाश दभ और ध्य ये उत्तरपद परे हों तो और उत्तर पदों के आदि को मूर्द्धन्य आदेश हो। कृच्छ्रेण दाश्यते। नाश्यते। दभ्यते। च यः स दूडाशः। दूणाशः। दूडभः। दुष्टं ध्यायतीति। दूढ्य। इत्यादि। वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ। धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ॥ १ ॥

संहितायाम् ॥ ६ । ३ । ११४ ॥

अब जो कार्य्य कहेंगे सो संहिता के विषय में होंगे अर्थात् यह अधिकार सूत्र है ॥

कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य ॥ ६ । ३ । ११५ ॥

विष्ट। अष्ट। पञ्च। मणि। भिन्न। छिन्न। छिद्र। स्रुव। स्वस्तिक। इन सब

ईषदर्थे ॥ ६ । ३ । १०५ ॥

किंचित् अर्थ में वर्त्तमान कुशब्द को उत्तर पद परे हो तो का आदेश हो। ईषल्लवणम् । कालवणम् । कामधुरम् । काऽम्लम् । ईषदुष्णम् । कोष्णम् ॥

विभाषा पुरुषे ॥ ६ । ३ । १०६ ॥

पुरुष उत्तरपद परे हो तो कुशब्द को का आदेश विकल्प कर के हो। कुत्सितः पुरुषः । कापुरुषः । कुपुरुषः ॥

कवं चोष्णे ॥ ६ । ३ । १०७ ॥

उष्ण उत्तरपद परे हो तो कुशब्द को कव आदेश विकल्प करके हो पक्ष में का हो । ईषदुष्णम् । कवोष्णम् । कोष्णम् । कदुष्णम् ॥

पथि च छन्दसि ॥ ६ । ३ । १०८ ॥

वेद में पथिन् उत्तर पद परे हो तो कुशब्द को कव आदेश हो। पक्ष में विकल्प करके का भी हो । कवपथः । कापथः । कुपथः ॥

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ॥ ६ । ३ । १०९ ॥

जिन शब्दों में लोप आगम और वर्णविकार किसी सूत्र से विधान न किये हों और वे शिष्ट पुरुषों ने उच्चारण किये हैं तो वैसे ही उन शब्दों को मानना चाहिये * । पृषद्‌दरमस्य । पृषोदरम् । पृषत् उद्वानम् । पृषोद्वानम् । यहां तकार का लोप है। वारिवाहको बलाहकः । यहां वारि शब्द को ब आदेश है । तथा वाहक पद के आदि को ल आदेश जानो । जीवनस्य मूतो जीमूतः । यहां वन शब्द का लोप है । शवानां शयनम् । श्मशानम् । शव शब्द को श्म आदेश और शयन के स्थान में शान जानो । ऊर्ध्वं खमस्येति । उलूखलम् । यहां ऊर्ध्व को उ तथा ख शब्द को लूख आदेश जानना चाहिये । पिशिताशः । पिशाचः । यहां पिशित को पि और आश के स्थान में शाच आदेश है । बृहन्तोऽस्यां सीदन्तीति । बृसी । सद्धातु से अधिकरण में [illegible] प्रत्यय और उपपद बृहत् शब्द को बृ आदेश हो जाता है । मह्यां रौतीति मयूरः । मधु

---

* यह सूत्र अन्य सब सामान्य आदि सूत्रों के विषयों को छोड़ के बाकी विषय में प्रवृत्त होता है ॥

चितेःकपि ॥ ६ । ३ । १२७॥

कप् प्रत्यय परे हो तो चिति पद को दीर्घ आदेश हो । द्विचितीकः । त्रिचितीकः ॥

विश्वस्य वसुराटोः ॥ ६ । ३ । १२८ ॥

वसु और राट् उत्तरपद परे हों तो विश्व पूर्व पद को दीर्घ आदेश हो । विश्वावसुः । विश्वाराट् ॥

नरे संज्ञायाम् ॥ ६ । ३ । १२९ ॥

संज्ञा विषय में जो नर उत्तर पद परे हो तो विश्व पूर्व पद को दीर्घ हो । विश्वानरो नाम तस्य वैश्वानरिः पुत्रः । संज्ञायामिति किम् । विश्वे नरा यस्य स विश्वनरः ॥

मित्रे चर्षौ ॥ ६ । ३ । १३०

ऋषि अर्थ में मित्र उत्तर पद परे हो तो विश्व पूर्व पद को दीर्घ आदेश हो ॥ विश्वामित्रो नाम ऋषिः । ऋषाविति किम् । विश्वमित्रो माणवकः ॥

सर्वस्य द्वे ॥ ८ । १ । १ ॥

सब शब्दों के दो २ रूप होवें । यह अधिकार सूत्र है ॥

तस्य परमाम्रेडितम् ॥ ८ । १ । २ ॥

दो भागों का जो पर रूप है सो आम्रेडित संज्ञक हो । चौर चौर ३ । दस्यो दस्यो ३ । घातयिष्यामि त्वा । बन्धयिष्यामि त्वा ॥

अनुदात्तं च ॥ ८ । १ । ३ ॥

जो द्वित्व हो सो अनुदात्त संज्ञक भी हो ॥

नित्यवीप्सयोः ॥ ८ । १ । ४ ॥

नित्य और वीप्सा अर्थ में वर्त्तमान जो शब्द उसको द्वित्व हो । तिङ् अव्यय और कृत् इन में तो नित्य होता है । तथा सुप् में वीप्सा होती है। व्याप्तुमिच्छा वीप्सा । पचति पचति । पठति पठति । जल्पति २ । भुक्त्वा २ व्रजति । भोजं २ व्रजति । लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति । वीप्सा । ग्रामो २ रमणीयः । जनपदो २ रमणीयः । पुरुषः पुरुषो निधनमुपैति ॥

शब्दों को छोड़ के कर्ण शब्द उत्तरपद परे हो तो लक्षणवाचि पूर्वपद को दीर्घ आदेश हो संहिता विषय में । दात्रमिव कर्णोऽस्य दात्राकर्णः । द्विगुणाकर्णः । त्रिगुणाकर्णः । द्व्यङ्गुलाकर्णः । त्र्यङ्गुलाकर्णः । यत् पशूनां स्वामिविशेषसम्बन्धज्ञापनार्थं दात्राकारादि क्रियते । तदिह लक्षणं गृह्यते । लक्षणस्येति किम् । शोभनकर्णः । अविष्टादीनामिति किम् विष्टकर्णः । अष्टकर्णः । पञ्चकर्णः । मणिकर्णः । भिन्नकर्णः छिन्नकर्णः । छिद्रकर्णः स्रुवकर्णः । स्वस्तिककर्णः ॥

नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ ॥ ६ । ३ । ११६ ॥

जो ये नह आदि धातु क्विप् प्रत्ययान्त उत्तरपद परे हों तो संहिता विषय में पूर्वपद को दीर्घादेश हो । उपानत् । परीणत् । नीवृत् । उपावृत् । प्रावृट् । उपावृट् । मर्मावित् । हृदयावित् । श्वावित् । नीरुक् । अभीरुक् । ऋतीषट् । तरीतत् । क्वाविति किम् । परिणहनम् ॥

वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलकादीनाम् ॥ ६ । ३ । ११७ ॥

संज्ञा विषय में वन उत्तर पद परे हो तो कोटर आदि और गिरि परे हो तो किंशुलक आदि पूर्वपदों को दीर्घ आदेश हो । कोटरावणम् । मिश्रकावणम् । सिध्रकावणम् । सारिकावणम् । किंशुलकागिरिः । अञ्जनागिरिः । कोटरकिंशुलकादीनामिति किम् । असिपत्रवनम् । कृष्णगिरिः ॥

अष्टनः संज्ञायाम् ॥ ६ । ३ । १२५ ॥

अष्टन् पूर्वपद को दीर्घ आदेश हो संज्ञा विषय में । अष्टावक्रः । अष्टाबन्धुरः । अष्टापदम् । संज्ञायामिति किम् । अष्टपुत्रः । अष्टबन्धुः ॥

छन्दसि च ॥ ६ । ३ । १२६ ॥

वेद विषय में अष्टन् पूर्वपद को उत्तरपद परे हो तो दीर्घ आदेश हो । आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत् । अष्टाहिरण्या दक्षिणा । अष्टापदं सुवर्णम् ॥

वा०—गवि च युक्ते भाषायामष्टनोदीर्घो भवतीति वक्तव्यम् ॥

लौकिक प्रयोग विषय में युक्त गो शब्द उत्तर पद परे हो तो अष्टन् पूर्वपद को दीर्घ हो जावे । जैसे । अष्टागवं शकटम् ॥

एकं बहुव्रीहिवत् ॥ ८ । १ । ९ ॥

द्वित्व का जो एक शब्दरूप है उस को बहुव्रीहि के समान कार्य्य हो बहुव्रीहि के दो प्रयोजन हैं । सुब्लोप और पुंवद्भाव । एकैकमक्षरं वदन्ति । एकैकयाऽऽहुत्या जुहोति । एकैकस्मै * । देहि ॥

आबाधे च ॥ ८ । १ । १० ॥

आबाध नाम पीड़ा अर्थ में वर्त्तमान शब्द को द्वित्व हो । और बहुव्रीहि के समान कार्य्य हो । गतगतः । नष्टनष्टः । पतितपतितः । प्रियस्य चिरगमनादिना पीड्यमानः कश्चिदेवं प्रयुङ्क्ते प्रयोक्ता ॥

कर्मधारयवदुत्तरेषु ॥ ८ । १ । ११ ॥

यहां से आगे जो द्वित्व कहेंगे वहां कर्मधारय के तुल्य कार्य्य होगा । कर्मधारयवत् कहने से तीन प्रयोजन हैं । सुब्लोप । पुंवद्भाव और अन्तोदात्त । सुब्लोप । पटुपटुः । मृदुमृदुः । पण्डितपण्डितः । पुंवद्भाव । पटुपट्वी । मृदुमृद्वी । कालिककालिका । अन्तोदात्त । पटुपटुः । पटुपट्वी ॥

प्रकारे गुणवचनस्य ॥ ८ । १ । १२ ॥

प्रकार नाम सादृश्य अर्थ में वर्त्तमान शब्द को द्वित्व हो । पटु २ । पण्डित २ । प्रकारवचन इति किम् । पटुर्देवदत्तः । गुणवचनस्येति किम् । अग्निर्माणवकः ॥

वा०—आनुपूर्व्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

मूले २ स्थूलाः । अग्रे २ सूक्ष्माः । ज्येष्ठम् २ प्रवेशय ॥

वा०—स्वार्थेऽवधार्यमाणेऽनेकस्मिन् द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषं २ देहि । अवधार्यमाण इति किम् । अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषमेकं देहि द्वौ माषौ देहि । त्रीन् वा माषान् देहि । अनेकस्मिन् इति किम् । अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषमेकं देहि ॥

वा०—चापले द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

---

* बहुव्रीहि समास में सर्वनाम संज्ञा का निषेध किया है सो वह निषेध यहां इस लिये नहीं लगता कि जो मुख्य करके बहुव्रीहि हो वहीं निषेध हो यह मुख्य नहीं है ॥

परेर्वर्जने ॥ ८ । १ । ५ ॥

वर्जन अर्थ में जो परि हो तो उस को द्वित्व हो । परि २ त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो
परि २ सौवीरेभ्यः । वर्जन इति किम् । ओदनं परिषिञ्चति ॥

वा०—परेर्वर्जनेऽसमासे वेति वक्तव्यम् ॥

असमास*अर्थात् जिस पक्ष में समास नहीं होता वहां विकल्प करके द्विर्वचन
परि २ त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टोदेवः । परित्रिगर्त्तेभ्यः ॥

प्रसमुपोदः पादपूरणे ॥ ८ । १ । ६ ॥

पाद पूरा करना ही अर्थ होतो प्र सम् उप उद् इन को द्वित्व हो । प्रप्रायमग्नि
रवस्य शृण्वे । संसमिद्युवसे वृषन् । उपोपमे परामृश । किन्नोदुदुहर्षसे दातवाउ ॥

उपर्य्यध्यधसः सामीप्ये ॥ ८ । १ । ७ ॥

उपरि अधि और अधस् इन को द्वित्व हो समीप अर्थ में । उपर्य्युपरि दुःखम्
उपर्य्युपरिग्रामम् । अध्यधिग्रामम् । अधोधोवनम् । सामीप्य इति किम् । उपरिचन्द्रमाः

वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासंमतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु ॥८।१।८॥

असूया आदि अर्थों में जो वाक्य उस का आदि जो आमन्त्रित पद उस को द्वि
त्व हो (असूया) और के गुणों को न सहना (सम्मति) सत्कार (कोप) क्रोध
(कुत्सन) निन्दा (भर्त्सन) † धमकाना (असूया) माणवक ३ माणवक अभि-
रूपक ३ अभिरूपक रिक्तन्ते आभिरूप्यम् । (संमति) माणवक ३ माणवक अभिरू-
पक ३ अभिरूपक शोभनः खल्वसि (कोप) देवदत्त ३ देवदत्त अविनीतक ३ अवि-
नीतक संप्रति वेत्स्यसि दुष्ट (कुत्सन) शक्तिके ३ शक्तिके यष्टिके ३ यष्टिके रिक्ता-
ते शक्तिः(भर्त्सन) चौर चौर ३ वृषल वृषल ३ घातयिष्यामि त्वा बन्धयिष्यामि त्वा
वाक्यादेरिति किम् । अन्तस्य मध्यस्य च माभूत् । शोभनः खल्वसि माणवक । आम-
न्त्रितस्येति किम् । उदारो देवदत्तः । असूयादिष्विति किम् । देवदत्त गामभ्याज शुक्लाम् ॥

---

*अव्ययीभाव समास का विकल्प "विभाषा" अधिकार में (अपपरि०) इस सूत्र से हो जाता है ॥

† कोप और भर्त्सन में इतना भेद है कि कोप में अन्तःकरण से दूसरे को दुः-
ख देना चाहता है और भर्त्सन में ऊपर ही का तेजमात्र दिखाया जाता है

द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगा-भिव्यक्तिषु ॥ ८ । १ । १५ ॥

द्वन्द्व यहां द्वि शब्द को द्वित्व तथा पूर्व पद को अमूभाव और उत्तर पद को अकार आदेश निपातन किया है रहस्य, मर्यादावचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्रप्रयोग, और अभिव्यक्ति इन अर्थों में (रहस्य) द्वन्द्वं मन्त्रयते द्वन्द्वं मिथुनायते * (मर्यादावचन) आचतुरं ह्रीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनायन्ते । माता पुत्रेण मिथुनं गच्छति । पौत्रेण तत्पुत्रेणापीति (व्युत्क्रमण) द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ताः । द्विवर्गसम्बन्धात्पृथगवस्थिता इत्यर्थः (यज्ञपात्रप्रयोग) द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति धीरः (अभिव्यक्ति) द्वन्द्वं नारदपर्वतौ । द्वन्द्वं संकर्षणवासुदेवौ । द्वावप्यभिव्यक्तौ साहचर्येणेत्यर्थः ॥

वसुकालाङ्कभूवर्षे भाद्रमास्यसिते दले ।
द्वादश्यां रविवारेऽयं सामासिकः पूर्णोऽनघाः ॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्येण श्रीयुतयतिवरमहाविद्वद्भिः
श्री विरजानन्दसरस्वतीस्वामिभिः सुशिक्षितेन
दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितः
पाणिनीयव्याख्यया सुभूषितः
सामासिकोऽयं ग्रन्थः
पूर्त्तिमगमत् ॥

---

* राजा और मुख्यसभासद् एकान्त में विचार और विवाहित स्त्रीपुरुष ऋतुकाल में समागम करें ॥

संभ्रमेण प्रवृत्तिश्चाख्यम्। अहिरहिर्बुध्यस्व २। नावश्यं द्वावेव शब्दौ प्रयोक्त
कि तर्हि यावद्भिः शब्दैः सोऽर्थोऽवगम्यते तावन्तः प्रयोक्तव्याः। अहिः ३ बुध्यस्व

वा०—आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति। भोजं भोजं व्रजति ॥

क्रियासमभिहारे द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

स भवान् लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति ॥

वा०—डाचि बहुलं द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

पटपटा करोति। पटपटायते ॥

वा०—पूर्वप्रथमयोरर्थाऽतिशये विवक्षायां द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

पूर्वं २ पुष्यन्ति। प्रथमं २ पच्यन्ते ॥

वा०—डतरडतमयोः समसंप्रधारणयोः स्त्रीनिगदे भावे द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

उभाविमावाढ्यौ। कतरा कतरा अनयोराढ्यता। सर्वं इमे आढ्याः। कतमा कतमा एषामाढ्यता। डतरडतमाभ्यामन्यत्रापि हि दृश्यते। उभाविमावाढ्यौ। कीदृशी कीदृशी अनयोराढ्यता। तथा स्त्रीनिगदाद् भावादन्यत्रापि हि दृश्यते उभाविमावाढ्यौ। कतरः कतरोऽनयोर्विभव इति ॥

वा०—कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

समासवच्च बहुलम्। यदा न समासवत् प्रथमैकवचनं तदा पूर्वपदस्य। अन्यमन्यमिमे ब्राह्मणा भोजयन्ति। अन्योन्यमिमे ब्राह्मणा भोजयन्ति। अन्योन्यस्येमे ब्राह्मणा भोजयन्ति। इतरेतरान् भोजयन्ति ॥

वा०—स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्य चाम्भावो वक्तव्यः ॥

अन्योन्यामिमे ब्राह्मण्यौ भोजयतः। अन्योन्यम्भोजयतः। इतरेतराम्भोजयतः। इतरेतरम्भोजयतः। अन्योन्यमिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः। इतरेतरामिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः ॥

अथ सामासिकशुद्धिपत्रम् ॥

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	१(नोट)	समामा	समासा	१५	८	जैसे।	०
३	२१	पद्क	पादिक	१६	९	पितृ सदृशः	। पितृसदृ
४	१६	०	(पश्चात्)पीछे	२८	१६	प्राप्त	प्राप्ता
४	२५	व्कया	व्याक	३४	२०	पूर्णी	पूरणी
५	१	अव्ययाभीवे	अव्ययीभावे	,,	२१	विद्या यस्या	विद्या यस्य
,,	१९	समास है	समास हो	४१	७	यह	यह।
७	२	तगिवम्	तीगवम्	५३	३	पुल्लिङ्ग	पुंलिङ्ग
८	१५	अव्ययीभाव	अव्ययीभाव	५३	१७	वृह तिका	वृहतिका
१२	११	फलकमिव	फलकमिव	५६	२	निष्कान्त।	निष्कान्तः
				५६	२४	चतुर	चतुर्

इति शुद्धिपत्रम्

॥ सामासिक विषयसूची ॥

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः।

अष्टमो भागः।

स्त्रैणताद्धितः ॥

॥ पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्याम् ॥

पञ्चमो भागः ॥

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायां सप्तमम्पुस्तकम् ॥

अजमेरनगरे वैदिकयन्त्रालये

मुद्रितम् ॥

———:o:———

संवत् १९५० चैत्र दशा १

दूसरी बार २००० पुस्तक छपे   मूल्य [illegible]

वैदिक यन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों का सूचीपत्र और संक्षिप्त नियम।

(१) मूल्य रोक भेजकर मंगावें, (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जायंगे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़कर सब पुस्तकों पर अलग लिया जायगा २) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक रजिस्टरी कराकर भेजे जायंगे, (४) मूल्य निचेलिखे पतेसे भेजें ॥

पुस्तक	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अंक १—२४६	८३)	
यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण	२४)	
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	२॥)	≠)
,, जिल्द की	३)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	/)	)॥
सन्धिविषय	।≠)	)॥
नामिक	।≠)	)॥
कारकीय	।)	)॥
सामासिक	।≠)	)॥
स्त्रैणताद्धित	१)	≠)
अव्ययार्थ	≠)॥	)॥
सौवर	≠)॥	)॥
आख्यातिक	१।≠)	≠)॥
पारिभाषिक	≠)॥	)॥
धातुपाठ	।≠)	)॥
गणपाठ	।/)	)॥
उणादिकोष	॥)	/)
निघण्टु	।≠)	)॥
निरुक्त	१)	/)॥
अष्टाध्यायीमूल	।/)	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	≠)	)॥
हवनमन्त्र	)॥	)॥
व्यवहारभानु	≠)	)॥
भ्रमोच्छेदन	)॥	)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	)॥

पुस्तक	मू०	डा०
मेला चांदापुर नागरी	/)	)॥
,, उर्दू	/)॥	)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	≠)	)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	/)	)॥
गोकरुणानिधि	/)	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन		
,, गुजराती	)॥	)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)॥
,, इंग्रेजी	)।	)॥
शास्त्रार्थ फीरोजाबाद	≠)	)॥
शास्त्रार्थकाशी	/)	)॥
आर्याभिविनय	।)	)॥
,, जिल्द की	।≠)	/)
वेदान्तिध्वान्त निवारण	/)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	/)।	)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	≠)॥	)॥
,, जिल्द की	।/)॥	/)
आर्यसमाज केनियमोपनि०	)।	)॥
शतपथ ब्राह्मण (१काण्ड)	॥)	/)
सत्यार्थ प्रकाश (सादा)	२)	≠)।
,, जिल्द का	२॥)	।)
सत्यार्थ प्रकाश (बढ़िया)	२॥)	।/)
संस्कार विधि बढ़िया	,,	[illegible]
,, [illegible]		
स्वीकार पत्र		

आ० स० के नियम नागरी में फ़ी सैकड़ा ॥) मैनेजर वैदिक यन्त्रालय

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

अष्टमो भागः ।

स्त्रैणताद्धितः ।

॥ पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्याम् ॥

पञ्चमो भागः ॥

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायां सप्तमम्पुस्तकम् ॥

अजमेरनगरे वैदिकयन्त्रालये

मुद्रितम् ॥

———.o:———

———

संवत् १९४० चैत्र [illegible] १०

दूसरी बार २००० पुस्तक छपे मूल्य ([illegible])

भूमिका ॥

—०—

यह अष्टाध्यायी का पांचवां भाग और पठन पाठन में आठवां पुस्तक है मैंने इस को बनाना आवश्यक इसलिये समझा है कि पढ़ने पढ़ाने वालों को स्त्री और तद्धित प्रत्ययों का भी बोध होना अवश्य उचित है इस के जाने विना अन्य शास्त्रों का पढ़ना भी सुगम नहीं हो सकता विशेष तो यह है कि संस्कृत में जैसा तद्धित प्रत्ययों से अधिक बोध होता है वैसा अन्य से नहीं हो सकता इस में थोड़ासा तो स्त्री प्रत्यय का प्रकरण है बाकी दोनों अध्याय तद्धित के ही हैं। इन में से मुख्य २ सूत्र जो कि विशेष कर के वेदादि शास्त्रों और संस्कृतमें उपयुक्त हैं उन को लिख कर भाष्य के वार्तिक कारिका उदाहरण प्रत्युदाहरण भी लिखे हैं जिस से स्त्री प्रत्यय और तद्धित का भी यथावत् बोध हो। इस में बहुत कर के उत्सर्ग और अपवाद के सूत्र हैं जैसे शैषिक के अपवाद सब तद्धित सूत्र और अण् का अपवाद इञ् और इञ् के अपवाद यञ् आदि प्रत्यय हैं जो अपवाद सूत्र हैं वे उत्सर्ग के विषय ही में प्रवृत्त होते हैं उन से जो बाकी विषय रहता है सो उत्सर्ग का होता है परन्तु अपवादसूत्रके विषय में उत्सर्ग सूत्र कभी प्रवृत्त नहीं होते जैसे चक्रवर्ती राजा के राज्य में माण्डलिक राजा और माण्डलिक के राज्य में कुछ थोड़े ग्रामवाले उनके विषय में कुछ थोड़ी भूमि वाले अपवादवत् और बड़े राज्यवाले उत्सर्गवत् होते हैं वैसे ही सूत्रों में भी समझना चाहिये। कोटि २ धन्यवाद परमात्मा को देना चाहिये कि जिसने अपनी वेदविद्या को प्रसिद्ध कर के मनुष्यों का परमहित किया है कि

जिस को पढ़के महामुनि पाणिनि सदृश पुरुष हो गये जिन्हों ने हजा श्लोक युक्त छोटे ही ग्रंथ अष्टाध्यायी और कुछ कम चौवीस हजार श्लोकें के बीच महाभाष्यग्रंथ में समग्र वेद और लौकिक संस्कृत शब्दरूपी महा समुद्र को भी यथायोग्य सिद्ध करके विदित करा दिया है कि जिस से एक शब्द भी बाकी नहीं रह गया उन को भी अनेक धन्यवाद देना चाहिये कि जो हमलोगों पर बड़ा उपकार कर गये हैं वैसे उन को भी धन्यवाद देना चाहिये कि जो इन्हीं ग्रंथों के पढ़नेपढ़ाने और प्रसिद्ध करके निष्कपट होकर तन मन धन से प्रवृत्त रहते हैं क्योंकि। तदधीते तद्वेद । जो विद्वान् व्याकरण को पढ़ें और पढ़ावें उन्हीं के वैयाकरण कहते हैं । और जो महायोगीप्रणीत संपूर्णगुणयुक्त निर्दोष शास्त्र को छोड़ कर अपनी क्षुद्र बुद्धि से प्रतिष्ठा के लिये अकिंचितकर वेदविद्यारहित सारस्वत चन्द्रिका मुग्धबोध का तंत्र और सिद्धांतकौमुदी आदि अयुक्त ग्रंथ रच के परमपुनीत ग्रंथों की प्रवृत्ति के प्रतिबन्धक हो गये हैं उन को न वैयाकरण और न हितकारी समझना चाहिये प्रत्युत अहितकारी हैं क्योंकि जो व्याकरण का संपूर्ण बोध तीन वर्षों में यथार्थ हो सकता है उस को ऐसा कठिन और अव्यवस्थित किया है कि जिस को पचास वर्ष तक पढ़ के भी व्याकरण के पूर्ण विषय को यथार्थ नहीं जान सकते उन के लिये धन्यवाद का विरुद्धार्थी शब्द देना ठीक है ॥ जो इस ग्रंथ में सूत्र के आगे अङ्क है सो इस की सूत्रसंख्या और अ० संकेत से अष्टाध्यायी । १ से अध्याय । २ से पाद ३ से सूत्रसंख्या समझनी चाहिये ॥

इति भूमिका ॥

अथ स्त्रैणताद्धितः ॥

स्त्रियाम् ॥ १ ॥ अ० ४ । १ । ३ ॥

यह अधिकार सूत्र है । इस से आगे जो प्रत्यय विधान करेंगे सो सब स्त्रीप्रकरण में जानना चाहिये ॥ १ ॥

अजाद्यतष्टाप् ॥ २ ॥ अ० ४ । १ । ४ ॥

जो स्त्री अभिधेय हो तो अजादि गणपठित और अकारान्त प्रातिपदिकों से टाप् प्रत्यय हो जैसे अजादि । अजा । एडका । कोकिला । चटका । इत्यादि । अदन्त । खट्वा । देवदत्ता । शाला । माला । इत्यादि । अकारान्त शब्द जब स्त्रीलिङ्ग के वाचक होते हैं तब सब से टाप् हो हो जाता है अर्थात् स्त्रीलिङ्ग में अदन्त कोई शब्द नहीं रहता ॥ २ ॥

प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ॥ ३ ॥ अ० ७ । ३ । ४४ ॥

आप् परे हो तो प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व जो अत् उस को इकार आदेश हो परन्तु जो वह आप् सुप् से परे न हो तो जैसे । जटिलिका । मुण्डिका । कारिका । हारिका । पाचिका । पाठिका । इत्यादि । प्रत्यय ग्रहण इस लिये है कि । शक्नोतीति शका । ककार से पूर्व इस लिये कहा है कि । नन्दना । रमणा । पूर्व को इत्व इस लिये कहा है कि । कटुका । यहां पर को न हुआ । अकार को इत्व इस लिये कहा है कि । गोका । यहां न हो । तपरकरण इस लिये है कि । राका । धाका । यहां इत्व न हो । आप् के परे इसलिये कहा है कि । कारकः । धारकः । यहां न हो । असुप् इस लिये है कि । बहवः परिव्राजका अस्यामिति बहुपरिव्राजका वाराणसी ॥ ३ ॥

वा०—मामकनरकयोरुपसंख्यानं कर्त्तव्यमप्रत्ययस्थत्वात् ॥ ४ ॥

सुप्रहित आप् के परे मामक और नरक शब्द के अत् को भी इकार आदेश हो जैसे । ममेयं मामिका । नरान् कायतीति नरिका ॥ ४ ॥

वा०—प्रत्ययप्रतिषेधे त्यक्त्यपोश्चोपसंख्यानम् * ॥ ५ ॥

सुप्रहित आप् परे हो तो त्यक् और त्यप् प्रत्ययान्त को इत् आदेश हो । जैसे । दाक्षिणात्यिका । इहत्यिका † । इत्यादि ॥ ५ ॥

---

* यह वार्त्तिक इस लिये कहा है कि (उदीचा०) इस अगले सूत्र से अपूर्व होने से विकल्प करके इत्व प्राप्त है सो नित्य हो हो जावे ॥

† यहां दक्षिणा शब्द से (दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्) इस सूत्र से त्यक् प्रत्यय और इह अव्यय शब्द से (अव्ययात्त्यप्) इस सूत्र करके त्यप् प्रत्यय हुआ है ॥

न यासयोः ॥ ६ ॥ अ० ७ । ३ । ४५ ॥

स्त्रीविषय में या और सा इन के ककार से पूर्व अत् को इत् आदेश न हो जैसे । यका । सका । यहां यत् तत् शब्दों से अकच् प्रत्यय हुआ है । ६ ।

वा०—यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् और तत् शब्दों को जो इत्व का निषेध किया है वहां त्यकन् प्रत्यय को भी इत्व न हो जैसे । उपत्यका । अधित्यका ॥ ७ ॥

वा०—पावकादीनां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में इत्व न हो जैसे । हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः । यासु अलोमकाः । छन्दग्रहण इसलिये है कि । पाविका । अलोमिका यहां लोक में निषेध न हो जावे ॥ ८ ॥

वा०—आशिषि चोपसङ्ख्यानम् ॥ ९ ॥

आशीर्वाद अर्थ में वर्त्तमान शब्दों को इत्व नहो जैसे । जीवतात् । जीवका नन्दतात् । नन्दका । भवतात् । भवका । इत्यादि ॥ ९ ॥

वा०—उत्तरपदलोपे चोपसङ्ख्यानम् ॥ १० ॥

उत्तरपद का जहां लोप हो वहां इत्व न हो । जैसे । देवदत्तिका । देवका यज्ञदत्तिका । यज्ञका । इत्यादि ॥ १० ॥

वा०—क्षिपकादीनां चोपसङ्ख्यानम् ॥ ११ ॥

क्षिपका आदि शब्दों में इत्व न हो जैसे । क्षिपका । ध्रुवका । इत्यादि ॥ ११ ॥

वा०—तारका ज्योतिष्युपसङ्ख्यानम् ॥ १२ ॥

तारका शब्द जहां नक्षत्र का नाम हो वहां उस को इकारादेश न हो जैसे तारका । ज्योतिग्रहण इसलिये है कि । तारिका दासी । यहां निषेध नहीं ॥ १२

वा०—वर्णका तान्तव उपसङ्ख्यानम् ॥ १३ ॥

तन्तुओं के समुदाय में वर्तमान वर्णका शब्द को इत्व न हो जैसे । वर्णका प्रावरणभेदः । तान्तव इसलिये कहा है कि । वर्णिका भागुरी लोकायते । यहां

वा०—वर्त्तका शकुनौ प्राचामुपसङ्ख्यानम् ॥ १४ ॥

पक्षी का वाची जहां वर्त्तका शब्द हो वहां उस को इकार आदेश न हो प्राचीन आचार्यों के मत में जैसे । वर्त्तका शकुनिः । अन्यत्र वर्त्तिका । शकुनिग्रहण इसलिये है कि वर्त्तिका भागुरी लोकायतस्य । यहां न हो ॥ १४ ॥

वा०—अष्टका पितृदैवत्ये ॥ १५ ॥

पितृ और देवताकर्म में वर्त्तमान अष्टका शब्द को इकार न हो जैसे । अष्टका । पितृदैवत्य इसलिये है कि । अष्टिका खारी । यहां हो जावे ॥ १५ ॥

वा०—वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसङ्ख्यानम् ॥ १६ ॥

सूतका आदि शब्दों को विकल्प करके इकार हो जैसे । सूतिका । सूतका । पुत्रिका । पुत्रका । वृन्दारिका । वृन्दारका ॥ १६ ॥

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ १७ ॥ अ० ७ । ३ । ४६ ॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जो स्त्रीविषयक यकार और ककार से पूर्व आकार के स्थान में अकार उस को इत् आदेश हो जैसे । यकार पूर्व । इभ्यका । इभ्यिका । क्षत्रियका । क्षत्रियिका । ककारपूर्व । चटकका । चटकिका । मूषकका । मूषकिका । आत्ग्रहण इसलिये है कि । साङ्काश्ये भवा साङ्काश्यिका । यहां न हो । यकपूर्वग्रहण इसलिये है कि । अश्विका । यहां विकल्प न हो ॥ १७ ॥

वा०—यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के यकार ककार जिस से पूर्व हों ऐसे अकार को इकार हो । सूत्र से जो विकल्प प्राप्त है उस का निषेध कर के नित्य विधान किया है । जैसे । सुनयिका । सुशयिका । सुपाकिका । अशोकिका । इत्यादि ॥ १८ ॥

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि ॥ १९ ॥ अ० ७ । ३ । ४७ ॥

स्त्रीविषय में जो भस्त्रा । एषा । अजा । ज्ञा । द्वा । स्वा । ये शब्द नञ्पूर्वक हों तो भी आकार के अकार को इत् आदेश न हो उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जैसे । भस्त्रका । भस्त्रिका । एषका । एषिका । अजका । अजिका । ज्ञका । ज्ञिका । द्वके । द्विके । स्वका । स्विका । नञ्पूर्वक । अभस्त्रिका । अभस्त्रका । अज्ञका । अज्ञिका । अजका । अजिका । अद्वका । अद्विका । इत्यादि * ॥ १९ ॥

---

* [illegible]

न यासयोः ॥ ६ ॥ अ० ७ । ३ । ४५ ॥

स्त्रीविषय में या और सा इन के ककार से पूर्व अत् को इत् आदेश न हो जैसे । यका । सका । यहां यत् तत् शब्दों से अकच् प्रत्यय हुआ है ॥ ६ ॥

वा०—यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् और तत् शब्दों को जो इत्व का निषेध किया है वहां त्यकन् प्रत्यय को भी इत्व न हो जैसे । उपत्यका । अधित्यका * ॥ ७ ॥

वा०—पावकादीनां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में इत्व न हो जैसे । हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः । यासु अलोमकाः । छन्दग्रहण इसलिये है कि । पाविका । अलोमिका यहां लोक में निषेध न हो जावे ॥ ८ ॥

वा०—आशिषि चोपसङ्ख्यानम् ॥ ९ ॥

आशीर्वाद अर्थ में वर्त्तमान शब्दों को इत्व नहो जैसे । जीवतात् । जीवका । नन्दतात् । नन्दका । भवतात् । भवका । इत्यादि ॥ ८ ॥

वा०—उत्तरपदलोपे चोपसङ्ख्यानम् ॥ १० ॥

उत्तरपद का जहां लोप हो वहां इत्व न हो । जैसे । देवदत्तिका । देवका । यज्ञदत्तिका । यज्ञका । इत्यादि ॥ १० ॥

वा०—क्षिपकादीनां चोपसङ्ख्यानम् ॥ ११ ॥

क्षिपका आदि शब्दों में इत्व न हो जैसे । क्षिपका । ध्रुवका । इत्यादि ॥ ११ ॥

वा०—तारका ज्योतिष्युपसङ्ख्यानम् ॥ १२ ॥

तारका शब्द जहां नक्षत्र का नाम हो वहां उस को इकारादेश न हो जैसे । तारका । ज्योतिग्रहण इसलिये है कि । तारिका दासी । यहां निषेध नहो ॥ १२ ॥

वा०—वर्णका तान्तव उपसङ्ख्यानम् ॥ १३ ॥

तन्तुओं के समुदाय में वर्त्तमान वर्णका शब्द को इत्व न हो जैसे । वर्णका प्रावरणभेदः । तान्तव इसलिये कहा है कि । वर्णिका भागुरी लोकायते । यहां न हो ॥ १३ ॥

* [illegible]

वा०—वर्त्तका शकुनौ प्राचामुपसङ्ख्यानम् ॥ १४ ॥

पक्षी का वाची जहां वर्त्तका शब्द हो वहां उस को इकार आदेश न हो प्राचीन आचार्यों के मत में जैसे । वर्त्तका शकुनिः । अन्यत्र वर्त्तिका । शकुनिग्रहण इसलिये है कि वर्त्तिका भागुरी लोकायतस्य । यहां न हो । १४ ॥

वा०—अष्टका पितृदैवत्ये ॥ १५ ॥

पितृ और देवताकर्म में वर्त्तमान अष्टका शब्द को इकार न हो जैसे । अष्टका । पितृदैवत्य इसलिये है कि । अष्टिका खारी । यहां हो जावे ॥ १५ ॥

वा०—वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसङ्ख्यानम् ॥ १६ ॥

सूतका आदि शब्दों को विकल्प करके इकार हो जैसे । सूतिका । सूतका । पुत्रिका । पुत्रका । वृन्दारिका । वृन्दारका ॥ १६ ॥

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ १७ ॥ अ० ७ । ३ । ४६ ॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जो स्त्रीविषयक यकार और ककार से पूर्व आकार के स्थान में अकार उस को इत् आदेश हो जैसे । यकार पूर्व । इभ्यका । इभ्यिका । चत्रियका । चत्रियिका । ककारपूर्व । चटकका । चटकिका । मूषकका । मूषकिका । आत्ग्रहण इसलिये है कि । साङ्काश्ये भवा साङ्काश्यिका । यहां न हो । यकपूर्वग्रहण इसलिये है कि । अश्विका । यहां विकल्प न हो ॥ १७ ॥

वा०—यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के यकार ककार जिस से पूर्व हों ऐसे अकार को इकार हो । सूत्र से जो विकल्प प्राप्त है उस का निषेध कर के नित्य विधान किया है । जैसे । सुनयिका । सुशयिका । सुपाकिका । अशोकिका । इत्यादि ॥ १८ ॥

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि ॥ १९ ॥ अ० ७ । ३ । ४७ ॥

स्त्रीविषय में जो भस्त्रा । एषा । जा । ज्ञा । द्वा । स्वा । ये शब्द नञ्पूर्वक हों तो भी आकार के अकार को इत् आदेश न हो उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जैसे । भस्त्रका । भस्त्रिका । एषका । एषिका । जका । जिका । ज्ञका । ज्ञिका । द्वके । द्विके । स्वका । स्विका । नञ्पूर्वक । अभस्त्रिका । अभस्त्रका । अजका । अजिका । अज्ञका । अज्ञिका । अस्वका । अस्विका । इत्यादि * ॥ १९ ॥

* यहां एषा और द्वा इन दो नञ्पूर्वक शब्दों को इकारादेश इसलिये नहीं होता कि जो समास को प्रातिपदिक संज्ञा होके विभक्ति आती है उसी से परे टाप् होता है इस कारण सुप्रत्ययान्त आप् के न होने से प्राप्ति ही नहीं है ॥

न यासयोः ॥ ६ ॥ अ० ७ । ३ । ४५ ॥

स्त्रीविषय में या और सा इन के ककार से पूर्व अत् को इत् आदेश न हो जैसे । यका । सका । यहां यत् तत् शब्दों से अकच् प्रत्यय हुआ है ॥ ६ ॥

वा०—यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् और तत् शब्दों को जो इत्व का निषेध किया है वहां त्यकन् प्रत्यय को भी इत्व न हो जैसे । उपत्यका । अधित्यका * ॥ ७ ॥

वा०—पावकादीनां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में इत्व न हो जैसे । हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः । यासु अलोमकाः । छन्दग्रहण इसलिये है कि । पाविका । अलोमिका यहां लोक में निषेध न हो जावे ॥ ८ ॥

वा०—आशिषि चोपसङ्ख्यानम् ॥ ९ ॥

आशीर्वाद अर्थ में वर्त्तमान शब्दों को इत्व नहो जैसे । जीवतात् । जीवका । नन्दतात् । नन्दका । भवतात् । भवका । इत्यादि ॥ ९ ॥

वा०—उत्तरपदलोपे चोपसङ्ख्यानम् ॥ १० ॥

उत्तरपद का जहां लोप हो वहां इत्व न हो । जैसे । देवदत्तिका । देवका । यज्ञदत्तिका । यज्ञका । इत्यादि ॥ १० ॥

वा०—क्षिपकादीनां चोपसङ्ख्यानम् ॥ ११ ॥

क्षिपका आदि शब्दों में इत्व न हो जैसे । क्षिपका । ध्रुवका । इत्यादि ॥ ११ ॥

वा०—तारका ज्योतिष्युपसङ्ख्यानम् ॥ १२ ॥

तारका शब्द जहां नक्षत्र का नाम हो वहां उस को इकारादेश न हो जैसे तारका । ज्योतिग्रहण इसलिये है कि । तारिका दासी । यहां निषेध नहो ॥ १२ ॥

वा०—वर्णका तान्तव उपसङ्ख्यानम् ॥ १३ ॥

तन्तुओं के समुदाय में वर्तमान वर्णका शब्द को इत्व न हो जैसे । वर्णका प्रावरणभेदः । तान्तव इसलिये कहा है कि । वर्णिका भागुरी लोकायते । यहां हो ॥ १३ ॥

---

* यहां भी अपूर्व ० को ० (अदोवा०) इसी ० [illegible]

वा०–वर्त्तिका शकुनौ प्राचामुपसङ्ख्यानम् ॥ १४ ॥

पक्षी का वाची जहां वर्त्तका शब्द होवहां उस को इकार आदेश न हो प्राचीन आचार्यों के मत में जैसे । वर्त्तका शकुनिः । अन्यत्र वर्त्तिका । शकुनिग्रहण इसलिये है कि वर्त्तिका भागुरी लौकायतस्य । यहां न हो ॥ १४ ॥

वा०–अष्टका पितृदैवत्ये ॥ १५ ॥

पितृ और देवताकर्म्म में वर्त्तमान अष्टका शब्द को इकार न हो जैसे । अष्टका । पितृदैवत्य इसलिये है कि । अष्टिका खारी । यहां हो जावे ॥ १५ ॥

वा०–वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसङ्ख्यानम् ॥ १६ ॥

सूतका आदि शब्दों को विकल्प करके इकार हो जैसे । सूतिका । सूतका । पुत्रिका । पुत्रका । वृन्दारिका । वृन्दारका ॥ १६ ॥

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ १७ ॥ अ० ७ । ३ । ४६ ॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जो स्त्रीविषयक यकार और ककार से पूर्व आकार के स्थान में अकार उस को इत् आदेश हो जैसे । यकार पूर्व । इभ्यका । इभ्यिका । क्षत्रियका । क्षत्रियिका । ककारपूर्व । चटकका । चटकिका । मूषकका । मूषकिका । आत्ग्रहण इसलिये है कि । साङ्काश्ये भवा साङ्काश्यिका । यहां न हो । यकपूर्वग्रहण इसलिये है कि । अश्विका । यहां विकल्प न हो ॥ १७ ॥

वा०–यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के यकार ककार जिस से पूर्व हो ऐसे अकार को इकार हो । सूत्र से जो विकल्प प्राप्त है उस का निषेध कर के नित्य विधान किया है । जैसे । सुनयिका । सुशयिका । सुपाकिका । अशोकिका । इत्यादि ॥ १८ ॥

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि ॥ १९ ॥ अ० ७ । ३ । ४७ ॥

स्त्रीविषय में जो भस्त्रा । एषा । अजा । ज्ञा । द्वा । स्वा । ये शब्द नञ्पूर्वक हों तो भी आकार के अकार को इत् आदेश न हो उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जैसे । भस्त्रका । भस्त्रिका । एषका । एषिका । अजका । अजिका । ज्ञका । ज्ञिका । द्वके । द्विके । स्वका । स्विका । नञ्पूर्वक । अभस्त्रिका । अभस्त्रका । अज्ञका । अज्ञिका । अजका । अजिका । अस्वका । अस्विका । इत्यादि * ॥ १९ ॥

---

* यहां एषा और द्वा इन दो नञ्पूर्व शब्दों को इकारादेश इसलिये नहीं होता कि [जो] इकार को कार्यनिर्देश ऐसा होके विधान करते हैं उसी से इसे टाप् होता है इस कारण इत्संज्ञक आप् के न होने से प्राप्ति ही नहीं है ॥

न यासयोः ॥ ६ ॥ अ० ७ । ३ । ४५ ॥

स्त्रीविषय में या और सा इन के ककार से पूर्व अत् को इत् नहीं होता। जैसे। यका। सका। यहां यत् तत् शब्दों से अकच् प्रत्यय हुआ है॥६॥

वा०—यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् और तत् शब्दों को जो इत्व का निषेध किया है वहां त्यकन् प्रत्ययान्त को भी इत्व न हो जैसे। उपत्यका। अधित्यका ॥ ७ ॥

वा०—पावकादीनां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में इत्व न हो जैसे। हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः। यासु अलोमकाः। छन्दग्रहण इसलिये है कि। पाविका। अलोमिका। यहां लोक में निषेध न हो जावे ॥ ८ ॥

वा०—आशिषि चोपसङ्ख्यानम् ॥ ९ ॥

आशीर्वाद अर्थ में वर्त्तमान शब्दों को इत्व नहीं जैसे। जीवतात्। जीवका। नन्दतात्। नन्दका। भवतात्। भवका। इत्यादि ॥ ९ ॥

वा०—उत्तरपदलोपे चोपसङ्ख्यानम् ॥ १० ॥

उत्तरपद का जहां लोप हो वहां इत्व न हो। जैसे। देवदत्तिका। देवका। यज्ञदत्तिका। यज्ञका। इत्यादि ॥ १० ॥

वा०—क्षिपकादीनां चोपसङ्ख्यानम् ॥ ११ ॥

क्षिपका आदि शब्दों में इत्व न हो जैसे। क्षिपका। ध्रुवका। इत्यादि ॥ ११ ॥

वा०—तारका ज्योतिष्युपसङ्ख्यानम् ॥ १२ ॥

तारका शब्द जहां नक्षत्र का नाम हो वहां अत् के इकारादेश न हो जैसे। तारका। ज्योतिग्रहण इसलिये है कि। तारिका दासी। यहां निषेध नहीं ॥ १२ ॥

वा०—वर्णका तान्तव उपसङ्ख्यानम् ॥ १२ ॥

तन्तुओं के समुदाय में वर्तमान वर्णका शब्द में इत्व न हो जैसे। वर्णका प्रावरणभेदः। तान्तव इसलिये कहा है कि। वर्णिका भागुरी लोकायते। यहां न

वा०—वर्त्तका शकुनौ प्राचामुपसङ्ख्यानम् ॥ १४ ॥

पक्षी का वाची जहां वर्त्तका शब्द हो वहां उस को इकार आदेश न हो प्राचीन आचार्यों के मत में जैसे। वर्त्तका शकुनिः। अन्यत्र वर्त्तिका। शकुनिग्रहण इसलिये है कि वर्त्तिका भागुरी लोकायतस्य। यहां न हो॥ १४॥

वा०—अष्टका पितृदैवत्ये ॥ १५ ॥

पितृ और देवताकर्म में वर्त्तमान अष्टका शब्द को इकार न हो जैसे। अष्टका। पितृदैवत्य इसलिये है कि। अष्टिका खारी। यहां हो जावे॥ १५॥

वा०—वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसङ्ख्यानम् ॥ १६ ॥

सूतका आदि शब्दों को विकल्प करके इकार हो जैसे। सूतिका। सूतका। पुत्रिका। पुत्रका। वृन्दारिका। वृन्दारका॥ १६॥

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ १७॥ अ० ७। ३। ४६ ॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जो स्त्रीविषयक यकार और ककार से पूर्व आकार के स्थान में अकार उस को इत् आदेश हो जैसे। यकार पूर्व। इभ्यका। इभ्यिका। क्षत्रियका। क्षत्रियिका। ककारपूर्व। चटकका। चटकिका। मूषकका। मूषकिका। आत्ग्रहण इसलिये है कि। साङ्काश्ये भवा साङ्काश्यिका। यहां न हो। यकपूर्वग्रहण इसलिये है कि। अश्विका। यहां विकल्प न हो॥ १७॥

वा०—यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के यकार ककार जिस से पूर्व हों ऐसे अकार को इकार हो। सूत्र से जो विकल्प प्राप्त है उस का निषेध कर के नित्य विधान किया है। जैसे। सुनयिका। सुशयिका। सुपाकिका। अशोकिका। इत्यादि॥ १८॥

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि ॥ १९ ॥ अ० ७। ३ । ४७॥

स्त्रीविषय में जो भस्त्रा। एषा। जा। ज्ञा। द्वा। स्वा। ये शब्द नञ्पूर्वक हों तो भी आकार के अकार को इत् आदेश न हो उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जैसे। भस्त्रका। भस्त्रिका। एषका। एषिका। जका। जिका। ज्ञका। ज्ञिका। द्वके। द्विके। स्वका। स्विका। नञ्पूर्वक। अभस्त्रिका। अभस्त्रका। अजका। अजिका। अज्ञका। अज्ञिका। अस्वका। अस्विका। इत्यादि *॥ १८॥

---

* यहां एषा और द्वा इन दो नञ्पूर्वक शब्दों को इकारादेश इसलिये नहीं होता कि [जो] समास को प्रातिपदिक संज्ञा होके विभक्ति आती है उसी से परे टाप् होता है इस कारण सुप्रहित आप् के न होने से प्राप्ति हो नहीं है॥

न यासयोः ॥ ६ ॥ अ० ७ । ३ । ४५ ॥

स्त्रीविषय में या और सा इन के ककार से पूर्व अत् को इत् आदेश न हो जैसे । यका । सका । यहां यत् तत् शब्दों से अकच् प्रत्यय हुआ है ॥ ६ ॥

वा०—यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् और तत् शब्दों को जो इत्व का निषेध किया है वहां त्यकन् प्रत्यय को भी इत्व न हो जैसे । उपत्यका । अधित्यका * ॥ ७ ॥

वा०—पावकादीनां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में इत्व न हो जैसे । हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः । यासु अलोमकाः । छन्दग्रहण इसलिये है कि । पाविका । अलोमिका यहां लोक में निषेध न हो जावे ॥ ८ ॥

वा०—आशिषि चोपसङ्ख्यानम् ॥ ९ ॥

आशीर्वाद अर्थ में वर्त्तमान शब्दों को इत्व न हो जैसे । जीवतात् । जीवका । नन्दतात् । नन्दका । भवतात् । भवका । इत्यादि ॥ ९ ॥

वा०—उत्तरपदलोपे चोपसङ्ख्यानम् ॥ १० ॥

उत्तरपद का जहां लोप हो वहां इत्व न हो । जैसे । देवदत्तिका । देवका । यज्ञदत्तिका । यज्ञका । इत्यादि ॥ १० ॥

वा०—क्षिपकादीनां चोपसङ्ख्यानम् ॥ ११ ॥

क्षिपका आदि शब्दों में इत्व न हो जैसे । क्षिपका । ध्रुवका । इत्यादि ॥ ११ ॥

वा०—तारका ज्योतिष्युपसङ्ख्यानम् ॥ १२ ॥

तारका शब्द जहां नक्षत्र का नाम हो वहां उस को इकारादेश न हो जैसे । तारका । ज्योतिग्रहण इसलिये है कि । तारिका दासी । यहां निषेध नहीं ॥ १२ ॥

वा०—वर्णका तान्तव उपसङ्ख्यानम् ॥ १३ ॥

तन्तुओं के समुदाय में वर्तमान वर्णका शब्द को इत्व न हो जैसे । वर्णका प्रावरणभेदः । तान्तव इसलिये कहा है कि । वर्णिका भागुरी लोकायते । यहां हो ॥ १३ ॥

---

* यहां भी अपवर्ग के होने से (उदीचा०) इससे [illegible]

वा०—वर्त्तका शकुनौ प्राचामुपसङ्ख्यानम् ॥ १४ ॥

पक्षी का वाची जहां वर्त्तका शब्द स्त्रीवाची उस को इकार आदेश न हो प्राचीन आचार्यों के मत में जैसे। वर्त्तका शकुनिः। अन्यत्र वर्त्तिका। शकुनिग्रहण इसलिये है कि वर्त्तिका भागुरी लोकायतस्य। यहां न हो ॥ १४ ॥

वा०—अष्टका पितृदैवत्ये ॥ १५ ॥

पित्र और देवताकर्म में वर्त्तमान अष्टका शब्द को इकार न हो जैसे। अष्टका। पितृदैवत्य इसलिये है कि। अष्टिका खारी। यहां हो जावे ॥ १५ ॥

वा०—वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसङ्ख्यानम् ॥ १६ ॥

सूतका आदि शब्दों को विकल्प करके इकार हो जैसे। सूतिका। सूतका। पुत्रिका। पुत्रका। वृन्दारिका। वृन्दारका ॥ १६ ॥

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ १७ ॥ अ० ७। ३। ४६ ॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जो स्त्रीविषयक यकार और ककार से पूर्व आकार के स्थान में अकार उस को इत् आदेश हो जैसे। यकार पूर्व। इभ्यका। इभ्यिका। चत्रियका। चत्रियिका। ककारपूर्व। चटकका। चटकिका। मूषकका। मूषकिका। आत्ग्रहण इसलिये है कि। साङ्काश्ये भवा साङ्काश्यिका। यहां न हो। यकपूर्वग्रहण इसलिये है कि। अश्विका। यहां विकल्प न हो ॥ १७ ॥

वा०—यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के यकार ककार जिस से पूर्व हों ऐसे अकार को इकार हो। सूत्र से जो विकल्प प्राप्त है उस का निषेध कर के नित्य विधान किया है। जैसे। सुनयिका। सुशयिका। सुपाकिका। अशोकिका। इत्यादि ॥ १८ ॥

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि ॥ १९ ॥ अ० ७। ३। ४७ ॥

स्त्रीविषय में जो भस्त्रा। एषा। जा। ज्ञा। द्वा। स्वा। ये शब्द नञ्पूर्वक हों तो भी आकार के अकार को इत् आदेश न हो उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जैसे। भस्त्रका। भस्त्रिका। एषका। एषिका। अजका। अजिका। ज्ञका। ज्ञिका। द्वके। द्विके। स्वका। स्विका। नञ्पूर्वक। अभस्त्रिका। अभस्त्रका। अजका। अजिका। अज्ञका। अज्ञिका। अस्वका। अस्विका। इत्यादि * ॥ १९ ॥

---

* यहां एषा और द्वा इन दो [illegible] ॥

न यासयोः ॥ ६ ॥ अ० ७ । ३ । ४५ ॥

स्त्रीविषय में या और सा इन के ककार से पूर्व अत् को इत् आदेश न हो जैसे । यका । सका । यहां यत् तत् शब्दों से अकच् प्रत्यय हुआ है ॥ ६ ॥

वा०—यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् और तत् शब्दों को जो इत्व का निषेध किया है वहां त्यकन् प्रत्ययान्त को भी इत्व न हो जैसे । उपत्यका । अधित्यका * ॥ ७ ॥

वा०—पावकादीनां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में इत्व न हो जैसे । हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः । यासु अलोमकाः । छन्दग्रहण इसलिये है कि । पाविका । अलोमिका । यहां लोक में निषेध न हो जावे ॥ ८ ॥

वा०—आशिषि चोपसङ्ख्यानम् ॥ ९ ॥

आशीर्वाद अर्थ में वर्त्तमान शब्दों को इत्व नहो जैसे । जीवतात् । जीवका । नन्दतात् । नन्दका । भवतात् । भवका । इत्यादि ॥ ९ ॥

वा०—उत्तरपदलोपे चोपसङ्ख्यानम् ॥ १० ॥

उत्तरपद का जहां लोप हो वहां इत्व न हो । जैसे । देवदत्तिका । देवका । यज्ञदत्तिका । यज्ञका । इत्यादि ॥ १० ॥

वा०—चिपकादीनां चोपसङ्ख्यानम् ॥ ११ ॥

चिपका आदि शब्दों में इत्व न हो जैसे । चिपका । ध्रुवका । इत्यादि ॥ ११ ॥

वा०—तारका ज्योतिष्युपसङ्ख्यानम् ॥ १२ ॥

तारका शब्द जहां नक्षत्र का नाम हो वहां उस को इकारादेश न हो जैसे । तारका । ज्योतिग्रहण इसलिये है कि । तारिका दासी । यहां निषेध नहो ॥ १२ ॥

वा०—वर्णका तान्तव उपसङ्ख्यानम् ॥ १३ ॥

तन्तुओं के समुदाय में वर्तमान वर्णका शब्द को इत्व न हो जैसे । वर्णका प्रावरणभेदः । तान्तव इसलिये कहा है कि । वर्णिका भागुरी लोकायते । यहां न हो ॥ १३ ॥

* [illegible]

वा०—वर्त्तका शकुनौ प्राचामुपसङ्ख्यानम् ॥ १४ ॥

पक्षी का वाची जहां वर्त्तका शब्द हो वहां उस को इकार आदेश न हो प्राचीन आचार्यों के मत में जैसे । वर्त्तका शकुनिः । अन्यत्र वर्त्तिका । शकुनिग्रहण इसलिये है कि वर्त्तिका भागुरी लोकायतस्य । यहां न हो ॥ १४ ॥

वा०—अष्टका पितृदैवत्ये ॥ १५ ॥

पितृ और देवताकर्म्म में वर्त्तमान अष्टका शब्द को इकार न हो जैसे । अष्टका । पितृदैवत्य इसलिये है कि । अष्टिका खारी । यहां हो जावे ॥ १५ ॥

वा०—वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसङ्ख्यानम् ॥ १६ ॥

सूतका आदि शब्दों को विकल्प करके इकार हो जैसे । सूतिका । सूतका । पुत्रिका । पुत्रका । वृन्दारिका । वृन्दारका ॥ १६ ॥

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ १७ ॥ अ० ७ । ३ । ४६ ॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जो स्त्रीविषयक यकार और ककार से पूर्व आकार के स्थान में अकार उस को इत् आदेश हो जैसे । यकार पूर्व । इभ्यका । इभ्यिका । क्षत्रियका । क्षत्रियिका । ककारपूर्व । चटकका । चटकिका । मूषकका । मूषकिका । आत्ग्रहण इसलिये है कि । साङ्काश्ये भवा साङ्काश्यिका । यहां न हो । यकपूर्वग्रहण इसलिये है कि । अश्विका । यहां विकल्प न हो ॥ १७ ॥

वा०—यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के यकार ककार जिस से पूर्व हों ऐसे अकार को इकार हो । सूत्र से जो विकल्प प्राप्त है उस का निषेध कर के नित्य विधान किया है । जैसे । सुनयिका । सुशयिका । सुपाकिका । अशोकिका । इत्यादि ॥ १८ ॥

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि ॥ १९ ॥ अ० ७ । ३ । ४७ ॥

स्त्रीविषय में जो भस्त्रा । एषा । जा । ज्ञा । द्वा । स्वा । ये शब्द नञ्पूर्वक हों तो भी आकार के अकार को इत् आदेश न हो उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जैसे । भस्त्रका । भस्त्रिका । एषका । एषिका । जका । जिका । ज्ञका । ज्ञिका । द्वके । द्विके । स्वका । स्विका । नञ्पूर्वक । अभस्त्रिका । अभस्त्रका । अजका । अजिका । अज्ञका । अज्ञिका । अस्वका । अस्विका । इत्यादि * ॥ १९ ॥

* यहां एषा और द्वा इन दो नञ्पूर्वक शब्दों को इकारादेश इसलिये नहीं होता कि जो समास को प्रातिपदिक संज्ञा होके विभक्ति आती है उसी से परे टाप् होता है इस कारण सुप्सहित आप् के न होने से प्राप्ति ही नहीं है ॥

न यासयोः ॥ ६ ॥ अ० ७ । ३ । ४५ ॥

स्त्रीविषय में या और सा इन के ककार से पूर्व अत् को इत् आदेश न हो जैसे । यका । सका । यहां यत् तत् शब्दों से अकच् प्रत्यय हुआ है ॥ ६ ॥

वा०—यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् और तत् शब्दों को जो इत्त्व का निषेध किया है वहां त्यकन् प्रत्यय को भी इत्व न हो जैसे । उपत्यका । अधित्यका * ॥ ७ ॥

वा०—पावकादीनां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में इत्त्व न हो जैसे । हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः । यासु अलोमकाः । छन्दग्रहण इसलिये है कि । पाविका । अलोमिका यहां लोक में निषेध न हो जावे ॥ ८ ॥

वा०—आशिषि चोपसङ्ख्यानम् ॥ ९ ॥

आशीर्वाद अर्थ में वर्त्तमान शब्दों को इत्त्व न हो जैसे । जीवतात् । जीवका । नन्दतात् । नन्दका । भवतात् । भवका । इत्यादि ॥ ९ ॥

वा०—उत्तरपदलोपे चोपसङ्ख्यानम् ॥ १० ॥

उत्तरपद का जहां लोप हो वहां इत्त्व न हो । जैसे । देवदत्तिका । देवका यज्ञदत्तिका । यज्ञका । इत्यादि ॥ १० ॥

वा०—क्षिपकादीनां चोपसङ्ख्यानम् ॥ ११ ॥

क्षिपका आदि शब्दों में इत्त्व न हो जैसे । क्षिपका । ध्रुवका । इत्यादि ॥ ११ ॥

वा०—तारका ज्योतिष्युपसङ्ख्यानम् ॥ १२ ॥

तारका शब्द जहां नक्षत्र का नाम हो वहां उस को इकारादेश न हो जैसे । तारका । ज्योतिग्रहण इसलिये है कि । तारिका दासी । यहां निषेध न हो ॥ १२ ॥

वा०—वर्णका तान्तव उपसङ्ख्यानम् ॥ १३ ॥

तन्तुओं के समुदाय में वर्त्तमान वर्णका शब्द को इत्त्व न हो जैसे । वर्णका प्रावरणभेदः । तान्तव इसलिये कहा है कि । वर्णिका भागुरी लोकायते । यहां न हो ॥ १३ ॥

---

* यहां भी यपूर्व के होने से (उदीचा०) इस सूत्र से विकल्प प्राप्त है सो निषेध कर दिया ॥

वा०—वर्त्तका शकुनौ प्राचामुपसङ्ख्यानम् ॥ १४ ॥

पक्षी का वाची जहां वर्त्तका शब्द हो वहां उस को इकार आदेश न हो प्राचीन आचार्यों के मत में जैसे । वर्त्तका शकुनिः । अन्यत्र वर्त्तिका । शकुनिग्रहण इसलिये है कि वर्त्तिका भागुरी लोकायतस्य । यहां न हो । १४ ।

वा०—अष्टका पितृदैवत्ये ॥ १५ ॥

पितृ और देवताकर्म में वर्त्तमान अष्टका शब्द को इकार न हो जैसे । अष्टका । पितृदैवत्य इसलिये है कि । अष्टिका खारी । यहां हो जावे । १५ ।

वा०—वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसङ्ख्यानम् ॥ १६ ॥

सूतका आदि शब्दों को विकल्प करके इकार हो जैसे । सूतिका । सूतका । पुत्रिका । पुत्रका । वृन्दारिका । वृन्दारका । १६ ॥

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ १७ ॥ अ० ७ । ३ । ४६ ॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जो स्त्रीविषयक यकार और ककार से पूर्व आकार के स्थान में अकार उस को इत् आदेश हो जैसे । यकार पूर्व । इभ्यका । इभ्यिका । क्षत्रियका । क्षत्रियिका । ककारपूर्व । चटकका । चटकिका । मूषकका । मूषकिका । आत्ग्रहण इसलिये है कि । साङ्काश्ये भवा साङ्काश्यिका । यहां न हो । यकपूर्वग्रहण इसलिये है कि । अश्विका । यहां विकल्प न हो ॥ १७ ॥

वा०—यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के यकार ककार जिस से पूर्व हों ऐसे अकार को इकार हो । सूत्र से जो विकल्प प्राप्त है उस का निषेध कर के नित्य विधान किया है । जैसे । सुनयिका । सुशयिका । सुपाकिका । अशोकिका । इत्यादि । १८ ।

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि ॥ १९ ॥ अ० ७ । ३ । ४७ ॥

स्त्रीविषय में जो भस्त्रा । एषा । अजा । ज्ञा । द्वा । स्वा । ये शब्द नञ्पूर्वक हों तो भी आकार के अकार को इत् आदेश न हो उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जैसे । भस्त्रका । भस्त्रिका । एषका । एषिका । अजका । अजिका । ज्ञका । ज्ञिका । द्वके । द्विके । स्वका । स्विका । नञ्पूर्वक । अभस्त्रिका । अभस्त्रका । अजका । अजिका । अज्ञका । अज्ञिका । अस्वका । अस्विका । इत्यादि * । १९ ।

---

* [illegible]

न यासयोः ॥ ६ ॥ अ० ७ । ३ । ४५ ॥

स्त्रीविषय में या और सा इन के ककार से पूर्व अत् को इत् आदेश न हो जैसे । यका । सका । यहां यत् तत् शब्दों से अकच् प्रत्यय हुआ है ॥ ६ ॥

वा०—यत्तदोः प्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम् ॥ ७ ॥

यत् और तत् शब्दों को जो इत्व का निषेध किया है वहां त्यकन् प्रत्ययान्त को भी इत्व न हो जैसे । उपत्यका । अधित्यका * ॥ ७ ॥

वा०—पावकादीनां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ ८ ॥

पावका आदि वैदिक शब्दों में इत्व न हो जैसे । हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः । यासु अलोमकाः । छन्दग्रहण इसलिये है कि । पाविका । अलोमिका । यहां लोक में निषेध न हो जावे ॥ ८ ॥

वा०—आशिषि चोपसङ्ख्यानम् ॥ ९ ॥

आशीर्वाद अर्थ में वर्त्तमान शब्दों को इत्व नहो जैसे । जीवतात् । जीवका । नन्दतात् । नन्दका । भवतात् । भवका । इत्यादि ॥ ९ ॥

वा०—उत्तरपदलोपे चोपसङ्ख्यानम् ॥ १० ॥

उत्तरपद का जहां लोप हो वहां इत्व न हो । जैसे । देवदत्तिका । देवका । यज्ञदत्तिका । यज्ञका । इत्यादि ॥ १० ॥

वा०—क्षिपकादीनां चोपसङ्ख्यानम् ॥ ११ ॥

क्षिपका आदि शब्दों में इत्व न हो जैसे । क्षिपका । ध्रुवका । इत्यादि ॥ ११ ॥

वा०—तारका ज्योतिष्युपसङ्ख्यानम् ॥ १२ ॥

तारका शब्द जहां नक्षत्र का नाम हो वहां उस को इकारादेश न हो जैसे । तारका । ज्योतिग्रहण इसलिये है कि । तारिका दासी । यहां निषेध नहो ॥ १२ ॥

वा०—वर्णका तान्तव उपसङ्ख्यानम् ॥ १३ ॥

तन्तुओं के समुदाय में वर्तमान वर्णका शब्द को इत्व न हो जैसे । वर्णका प्रावरणभेदः । तान्तव इसलिये कहा है कि । वर्णिका भागुरी लोकायते । यहां न हो ॥ १३ ॥

---

* यहां भी [illegible] (यदोषा०) इसी वचन [illegible] से निषेध कर दिया ॥

वा०—वर्त्तका शकुनौ प्राचामुपसङ्ख्यानम् ॥ १४ ॥

पक्षी का वाची जहां वर्त्तका शब्द हो वहां उस को इकार आदेश न हो प्राचीन आचार्यों के मत में जैसे। वर्त्तका शकुनिः। अन्यत्र वर्त्तिका। शकुनिग्रहण इसलिये है कि वर्त्तिका भागुरी लोकायतस्य। यहां न हो॥ १४॥

वा०—अष्टका पितृदैवत्ये ॥ १५ ॥

पितृ और देवताकर्म में वर्त्तमान अष्टका शब्द को इकार न हो जैसे। अष्टका। पितृदैवत्य इसलिये है कि। अष्टिका खारी। यहां हो जावे॥ १५॥

वा०-वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसङ्ख्यानम् ॥ १६ ॥

सूतका आदि शब्दों को विकल्प करके इकार हो जैसे। सूतिका। सूतका। पुत्रिका। पुत्रका। वृन्दारिका। वृन्दारका॥ १६॥

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ॥ १७॥ अ० ७। ३। ४६ ॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जो स्त्रीविषयक यकार और ककार से पूर्व आकार के स्थान में अकार उस को इत् आदेश हो जैसे। यकार पूर्व। इभ्यका। इभ्यिका। क्षत्रियका। क्षत्रियिका। ककारपूर्व। चटकका। चटकिका। मूषकका। मूषकिका। आत्ग्रहण इसलिये है कि। साङ्काश्ये भवा साङ्काश्यिका। यहां न हो। यकपूर्वग्रहण इसलिये है कि। अश्विका। यहां विकल्प न हो॥ १७॥

वा०—यकपूर्वत्वे धात्वन्तप्रतिषेधः ॥ १८ ॥

धातु के अन्त के यकार ककार जिस से पूर्व हों ऐसे अकार को इकार हो। सूत्र से जो विकल्प प्राप्त है उस का निषेध कर के नित्य विधान किया है। जैसे। सुनयिका। सुशयिका। सुपाकिका। अशोकिका। इत्यादि॥ १८॥

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि ॥ १९ ॥ अ० ७। ३। ४७॥

स्त्रीविषय में जो भस्त्रा। एषा। जा। ज्ञा। द्वा। स्वा। ये शब्द नञ्पूर्वक हों तो भी आकार के अकार को इत् आदेश न हो उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जैसे। भस्त्रका। भस्त्रिका। एषका। एषिका। जका। जिका। ज्ञका। ज्ञिका। द्वके। द्विके। स्वका। स्विका। नञ्पूर्वक। अभस्त्रिका। अभस्त्रका। अजका। अजिका। अज्ञका। अज्ञिका। अस्वका। अस्विका। इत्यादि *॥ १९॥

---

* यहां एषा और द्वा इन दो नञ्पूर्वक शब्दों को इकारादेश इसलिये नहीं होता कि [जो समास को प्रातिपदिक संज्ञा होके विभक्ति आती है उसी से परे टाप् होता है इस कारण सुप्‌रहित आप् के न होने से प्राप्ति ही नहीं है॥

अभाषितपुंस्काच्च ॥ २० ॥ अ० ७ । ३ । ४८ ॥

जो अभाषितपुंलिंग से परे आत् के स्थान में अकार उस को उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में इत् आदेश न हो । खट्विका । खट्वका । अखट्वका । परमखट्विका । परमखट्वका । इत्यादि ॥ २० ॥

आदाचार्य्याणाम् * ॥ २१ ॥ अ० ७ । ३ । ४९ ॥

आचार्यों के मत में स्त्री विषय में अभाषितपुंस्क प्रातिपदिकों से परे आत् के स्थान में अकार उस को आत् आदेश हो । खट्टाका । अखट्टाका । मखट्वका । इत्यादि ॥ २१ ॥

ऋन्नेभ्यो ङीप् ॥ २२ ॥ अ० ४ । १ । ५ ॥

स्त्रीविषय में ऋकारान्त और नकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो जैसे ऋकारान्त । कर्त्री । हर्त्री । पक्त्री । इत्यादि । नकारान्त । हस्तिनी । ... लिनी । दण्डिनी । चक्रिणी इत्यादि ॥ २२ ॥

उगितश्च ॥ २३ ॥ अ० ४ । १ । ६ ॥

स्त्रीविषय में जो उगित् शब्द रूप है उस से और तदन्तप्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो जैसे । भवती । अतिभवती । पचन्ती । यजन्ती । इत्यादि ॥ २३

वा०—धातोरुगितः प्रतिषेधः ॥ २४ ॥

उक् जिस का इत् गया हो ऐसे क्विप् आदि अविद्यमानप्रत्ययान्त धातु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो जैसे । उखास्रत् । पर्णध्वत् । ... ॥ २४

वा०—अञ्चतेश्चोपसङ्ख्यानम् ॥ २५ ॥

उगित् धातु से जो ङीप् का निषेध किया है वहां अञ्चु का उपसङ्ख्यान ... ङीप् का निषेध न हो जैसे । प्राची । प्रतीची । उदीची ॥ २५ ॥

... र च ॥ २६ ॥ अ० ४ । १ । ७ ॥

... से ङीप् प्रत्यय हो और ... पीवरी । शर्वरी । इत्यादि ॥ २६ ॥

* ... आचार्यों का मत ... ॥ ... अकार के स्थान में ...

वा०—वनो न हशः ॥ २७ ॥

हश् प्रत्याहारसे परे जो वन् तदन्त से ङीप् न हो जैसे। सहयुध्वा ब्राह्मणी*॥२७॥

पादोऽन्यतरस्याम् ॥ २८ ॥ अ० ४ । १ । ८ ॥

स्त्री अर्थ में पादशब्दान्त प्रातिपदिकों से विकल्प करके ङीप् प्रत्यय हो जैसे। द्विपदी। द्विपाद्। त्रिपदी। त्रिपाद्। चतुष्पदी। चतुष्पाद्। इत्यादि ॥ २८ ॥

टावृचि ॥ २९ ॥ अ० ४ । १ । ९ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऋग्वेद विषयक पादशब्दान्तप्रातिपदिकों से टाप् प्रत्यय हो जैसे। द्विपदा ऋक्। त्रिपदा ऋक्। चतुष्पदा ऋक्। ऋक्ग्रहण इसलिये है कि। द्विपदी इष्टका। यहां टाप् न हो ॥ २९ ॥

न षट्स्वस्रादिभ्यः ॥ ३० ॥ अ० ४ । १ । १० ॥

षट् संज्ञक और स्वसृ आदि गणपठित प्रातिपदिकों से स्त्री प्रत्यय न हो जैसे। पञ्च ब्राह्मण्यः। सप्त नव दश वा। स्वसा। दुहिता। ननान्दा। याता। माता। तिस्रः। चतस्रः। इत्यादि यहां ऋकारान्तशब्दों से ङीप् और पञ्च आदि षट्संज्ञकों के अन्त्य नकार का लोप होके अदन्तों से टाप् प्रत्यय प्राप्त है सो दोनों का निषेध समझना चाहिये ॥ ३० ॥

मनः ॥ ३१ ॥ अ० ४ । १ । ११ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मन्प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो जैसे। दामा। दामानौ। दामानः। पामा। पामानौ। पामानः। सीमा। सीमानौ। सीमानः। अतिमहिमा। अतिमहिमानौ। अतिमहिमानः। इत्यादि ॥ ३१ ॥

अनो बहुव्रीहेः ॥ ३२ ॥ अ० ४ । १ । १२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अन्नन्त बहुव्रीहि समास से ङीप् प्रत्यय न हो जैसे। सुपर्वा। सुपर्वाणौ। सुपर्वाणः। सुशर्मा। सुशर्माणौ। सुशर्माणः। इत्यादि। बहुव्रीहिग्रहण इसलिये है कि। अतिक्रान्ता राजानमतिराज्ञी। यहां एकविभक्तिसमास में निषेध न लगे ॥ ३२ ॥

डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ॥ ३३ ॥ अ० ४ । १ । १३ ॥

जो मन्नन्त प्रातिपदिक और अन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकान्त बहुव्रीहिसमास

---

* यहां सह उपपद युध धातु से क्वनिप् प्रत्यय (७६४) इस सूत्र से हुआ है और हश् प्रत्याहार में धकार से परे वन् है ॥

हो तो उनसे स्त्रीलिङ्ग में विकल्प करके डाप् प्रत्यय होजाय जैसे। मवन्त। पा पामे । पामाः । सीमा । सीमे। सीमाः । पक्ष में । पामा। पामानौ। पामा सीमा। सीमानौ। सीमानः। अन्नन्त बहुव्रीहिसमास। बहवो राजानोऽस्यां नगर्यां बहुराजा नगरी। बहुराजे नगर्यौ । बहुराजा नगर्यः। बहुतक्षा। बहुतक्षे। तक्षाः। पक्ष में। बहुराजा। बहुराजानौ। बहुराजानः। बहुतक्षा। बहुतक्षा बहुतक्षाणः। यहां अन्यतरस्यामग्रहण इसलिये है कि (वनोरच) इस सूत्र विषय में भी विकल्प हो जावे जैसे। बहुधीवा। बहुधीवरी। बहुपीवा। बहु री। इत्यादि ॥ ३३ ॥

अनुपसर्जनात् ॥ ३४ ॥ अ० ४ । १ । १४ ॥

यहां से आगे जिस २ प्रत्यय का विधान करेंगे सो २ अनुपसर्जन अर्थात् स्वार्थ में मुख्य प्रातिपदिकों ही से होंगे। इसलिये यह अधिकार सूत्र है ॥ ३४ ॥

टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ॥ ३५ ॥ अ० ४ । १ । १५ ॥

यहां अदन्त की अनुवृत्ति सर्वत्र चली आती है परन्तु जहां संभव होता है हां विशेषण किया जाता है। ढ। अण्। अञ्। द्वयसच्। दघ्नच्। मात्रच्। यप्। ठक्। ठञ्। कञ्। और क्वरप्। ये प्रत्यय जिनके अन्त में हों उन और दन्त अनुपसर्जन टित् प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो। जैसे। टित्। कुरुचरी। द्रचरी। ढ। आग्नेयी। सौपर्णेयी। वैनतेयी। अण्। औपगवी। कुम्भकारी। गरकारी। अञ्। औत्सी। औदपानी। द्वयसच्। जवद्वयसी। जानुद्वयसी। द ्। जवदघ्नी। जानुदघ्नी। मात्रच्। जवमात्री। जानुमात्री। तयप्। यी। चतुष्टयी। पंचतयी। ठक्। आक्षिकी। शालाकिकी। ठञ्। लावणिकी। ़। यादृशी तादृशी। क्वरप् इत्वरी नश्वरी। यहां अनुपसर्जनग्रहण इसलिये है कि कुरुचरा। मद्रमद्रचरा मथुरा इत्यादि से ङीप् न हो यहां टित् आदि अदन्त ो से टाप् प्राप्त है इसलिये उसका अपवाद यह सूत्र समझना चाहिये ॥ ३५ ॥

१०—नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम् ॥ ३६ ॥

नञ्। स्नञ्। ईकक्। ख्युन्। इन प्रत्ययान्त शब्दों और तरुण तलुन शब्दों से ीप् प्रत्यय होवे। जैसे। नञ्। स्त्रैणी। स्नञ्। पौंस्नी। ईकक्। ी। ख्युन्। आढ्यङ्करणी। सुभगङ्करणी

इत्यादि। यहां भी तदन्त प्रातिपदिकों से टाप् हो प्राप्त है उस का अपवाद यह भी वार्तिक है ॥ ३६ ॥

यञश्च ॥ ३७ ॥ अ० ४ । १ । १६ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो जैसे। गार्गी। वात्सी। इत्यादि। यहां गर्ग और वत्स शब्दों से यञ् प्रत्यय हुआ है ॥ ३७ ॥

वा०—अपत्यग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥ ३८ ॥

जिस यञ् प्रत्यय का पूर्व सूत्र में ग्रहण है वह अपत्याधिकार का यञ् समझना क्योंकि। द्वैप्याः सिकताः *। इत्यादि। यहां ङीप् न हो जावे ॥ ३८ ॥

प्राचां ष्फस्तद्धितः ॥ ३९ ॥ अ० ४ । १ । १७ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से प्राचीन आचार्यों के मत में तद्धित संज्ञक ष्फ प्रत्यय हो जैसे। गार्ग्यायणी। वात्स्यायनी †। औरों के मत में। गार्गी। वात्सी ॥ ३९ ॥

सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः ॥ ४० ॥ अ० ४ । १ । १८ ॥

जो लोहित आदि कत पर्यन्त गर्गादिगणपठित यकारान्त शब्द हैं उन से तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय होता है जैसे। लोहितादि। लौहित्यायनी। शांशित्यायनी। बाभ्रव्यायणी। कतन्त। कात्यायनी। इत्यादि ॥ ४० ॥

कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च ॥ ४१ ॥ अ० ४ । १ । १९ ॥

कौरव्य और माण्डूक प्रातिपदिकों से तद्धित संज्ञक ष्फ प्रत्यय हो जैसे। कौरव्यायणी। माण्डूकायनी। इत्यादि ॥ ४१ ॥

वा०—आसुरेरुपसङ्ख्यानम् ॥ ४२ ॥

आसुरि शब्द से भी तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय हो जैसे। आसुरायणी। यहां आसुरि शब्द में अपत्यसंज्ञक इञ् प्रत्यय हुआ है। पूर्व (प्राचां ष्फ०) इस सूत्र में तद्धितग्रहण का प्रयोजन भी यही है कि आसुरि शब्द के इकार का लोप हो जावे ॥ ४२ ॥

---

* यहां सैकत अण् प्रत्यय (सिकता[illegible] अण्) [illegible] हुआ है [illegible]

† यहां ष्फ प्रत्यय के षित् होने से [illegible] हो जाता है।

वयसि प्रथमे ॥ ४३ ॥ अ० ४ । १ । २० ॥

जो प्रथम अवस्था विदित होती हो तो अकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो जैसे । कुमारी । किशोरी । कलभी । वर्करी । यहां प्रथमअवस्थाग्रहण इस लिये है कि । स्थविरा । वृद्धा । इत्यादि से ङीप् न हो । अकारान्त से इसलिये कहा है कि । शिशुः । यहां ङीप् प्रत्यय न हो ॥ ४३ ॥

वा०—वयस्यचरम इति वक्तव्यम् ॥ ४४ ॥

सूत्र से प्रथमावस्था में जो ङीप् कहा है वहां चरम अर्थात् वृद्धाऽवस्था छोड़ के कहना चाहिये जैसे । वधूटी । चिरण्टी । ये प्राप्तयौवन द्वितीय अवस्था के नाम हैं । प्रथमाऽवस्था के कहने से यहां प्राप्ति नहीं थी ॥ ४४ ॥

द्विगोः ॥ ४५ ॥ अ० ४ । १ । २१ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान द्विगुसंज्ञकअदन्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो जैसे पञ्चमूली । दशमूली । अष्टाऽध्यायी । इत्यादि । यहां अत् ग्रहण इसलिये है कि । पञ्चबलिः । यहां ङीप् न हो ॥ ४५ ॥

अपरिमाणविस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि ॥ ४६ ॥ अ० ४ । १ । २२ ॥

जहां तद्धित का लुक् हुआ हो वहां स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अपरिमाणान्त । विस्तान्त । आचितान्त और कम्बल्यान्त द्विगु प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो जैसे । पञ्चभिरश्वैः क्रीता । पञ्चाश्वा । दशाश्वा । द्विवर्षा । त्रिवर्षा । द्विशता । त्रिशता । द्विविस्ता । त्रिविस्ता । द्व्याचिता । त्र्याचिता । द्विकम्बल्या । त्रिकम्बल्या । यहां अपरिमाण ग्रहण इसलिये है कि । द्व्याढकी । त्र्याढकी । यहां निषेध न हो । तद्धितलुक् इसलिये है कि पञ्चाश्वी । यहां भी होजावे ॥ ४६ ॥

काण्डान्तात्क्षेत्रे ॥ ४७ ॥ अ० ४ । १ । २३ ॥

तद्धित का लुक् हुआ हो तो क्षेत्रवाची स्त्रीलिंग में वर्त्तमान काण्ड शब्दान्त द्विगु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो । द्वे, काण्डे प्रमाणमस्याः सा द्विकाण्डा । क्षेत्र इसलिये कहा है कि । द्विकाण्डी रज्जुः । यहां निषेध न हो । काण्ड शब्द के अपरिमाणवाची होने से पूर्वसूत्र से हो निषेध हो जाता फिर क्षेत्रग्रहण नियमार्थ है ॥ ४७ ॥

पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ॥ ४८ ॥ अ० ४ । १ । २४ ॥

जो तद्धित का लुक् हुआ हो तो प्रमाण अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पुरुषान्त द्विगु प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय विकल्प करके होवे जैसे । द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः परिखायाः सा । द्विपुरुषा । द्विपुरुषी । त्रिपुरुषा । त्रिपुरुषी* । यहां प्रमाण ग्रहण इसलिये है कि । द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता द्विपुरुषा । त्रिपुरुषा । यहां विकल्प करके ङीप् न हो और तद्धितलुक् इसलिये है कि । द्विपुरुषी । त्रिपुरुषी । यहां समाहार में निषेध न होवे ॥ ४८ ॥

बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ॥ ४९ ॥ अ० ४ । १ । २५ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हो । घट इव ऊधो यस्याः सा घटोध्नी । कुण्डोध्नी । † यहां बहुव्रीहि ग्रहण इसलिये है कि प्राप्ता ऊधः । प्राप्तोधाः । यहां न हुआ ॥ ४९ ॥

सङ्ख्याऽव्ययादेर्ङीप् ॥ ५० ॥ अ० ४ । १ । २६ ॥

संख्या और अव्यय जिस के आदि में हों ऐसा जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक है उस से ङीप् प्रत्यय हो । जैसे संख्या । द्व्यूध्नी । त्र्यूध्नी । अव्यय । अत्यूध्नी । निरूध्नी । यहां आदि ग्रहण से । द्विविधोध्नी । त्रिविधोध्नी । इत्यादि से भी ङीप् हो जाता है ॥ ५० ॥

दामहायनान्ताच्च ॥ ५१ ॥ अ० ४ । १ । २७ ॥

संख्या जिस के आदि में दामन् तथा हायन अन्त में हो ऐसे स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होवे जैसे । द्वे दाम्नी यस्याः सा द्विदाम्नी वड़वा । त्रिदाम्नी । द्विहायनी । त्रिहायणी । चतुर्हायणी । ‡ इत्यादि (क्वचिदेकदेशो०) इस परिभाषा के प्रमाण से यहां अव्यय की अनुवृत्ति नहीं आती ॥ ५१ ॥

---

* यहां अपरिमाणान्त पुरुष शब्द से नित्य ही निषेध प्राप्त है इसलिये यह अप्राप्तविभाषा समझनी चाहिये ॥

† ऊधस् गाय आदि के थन को कहते हैं कि जो दूध का स्थान है इस ऊधस् शब्द से जब समासान्त नङ् प्रत्यय होने से अकारान्त हो जाता है तब (अनो बहु०) इस पूर्वलिखित सूत्र से डाप् और निषेध प्राप्त होता है उस का यह अपवाद है ॥

‡ यहां हायन शब्द अवस्था अर्थ में समझना चाहिये जो चेतन के साथ सम्बन्ध रखती है इसीलिये । द्विहायना शाला इत्यादि में ङीप् नहीं होता ॥

अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ॥ ५२ ॥ अ० ४ । १ । २८

जो अन्नन्त उपधालोपी बहुव्रीहि प्रातिपदिक है उससे स्त्रीलिङ्ग में वि
कल्प करके ङीप् प्रत्यय हो। जैसे। बहुराजा। बहुराज्ञी। बहुराजे। बहुतक्षा। ब
तक्ष्णी। बहुतक्षे * अन्नन्तग्रहण इसलिये है कि। बहुमत्स्या। यहां ङीप्
न हो। और उपधालोपी इसलिये है कि। सुपर्वा। सुपर्वाणी। सुपर्वाण
इत्यादि में न हो ॥ ५२ ॥

नित्यं संज्ञाछन्दसोः ॥ ५३ ॥ अ० ४ । १ । २९ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अन्नन्त उपधालोपी बहुव्रीहि प्रातिपदिक से सं
ौर वेदविषय में ङीप् प्रत्यय नित्य ही होवे। जैसे संज्ञा में। सुराज्ञी। अति
ाज्ञी नाम ग्रामः। छन्द में। गौः पञ्चदाम्नी। द्विदाम्नी। एकदाम्नी। एकमूर्ध्नी
मानमूर्ध्नी। पूर्वसूत्र में जो विकल्प है उसके नित्यविधान के लिये यह अपवाद
त्र है। जहां संज्ञा और वैदिकप्रयोग न होवें वहां ङीप् न होगा। जैसे। सुरा
। इत्यादि ॥ ५३ ॥

केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्य्यकृतसुमङ्गल-भेषजाच्च ॥ ५४ ॥ अ० ४ । १ । ३० ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान केवल। मामक। भागधेय। पाप। अपर। सम
न। आर्यकृत। सुमङ्गल। और भेषज शब्द हों तो इन प्रातिपदिकों से संज्ञा और
वेदविषय में ङीप् प्रत्यय हो। केवली। मामकी। मित्रावरुणयोर्भागधेयी। पापी
उताऽपरीभ्यो मघवा विजिग्ये। समानी। आर्य्यकृती। सुमङ्गली। भेषजी। जह
संज्ञा और वेद विषय नहीं वहां टाप् होकर केवला। इत्यादि प्रयोग होंगे ॥ ५४ ॥

रात्रेश्चाजसौ ॥ ५५ ॥ अ० ४ । १ । ३१ ॥

जस् विभक्ति से अन्यत्र स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान रात्रि शब्द से संज्ञा और वेद-
विषय में ङीप् प्रत्यय हो। या रात्री सृष्टा। रात्रीभिः। जस् में निषेध इसलिये
कि। यास्ता रात्रयः। यहां ङीप् न होवे ॥ ५५ ॥

वा०—अजसादिष्विति वक्तव्यम् ॥ ५६ ॥

केवल जस् के परे जो ङीप् का निषेध किया है सो जस् आदि के परे नि-
षेध करना चाहिये। जैसे। रात्रिसहोषिता। इत्यादि से भी ङीप् न होवे ॥ ५६ ॥

* यहां अन्नन्त बहुव्रीहि प्रातिपदिकों से पक्ष में (डाबुभाभ्या०) इस सूत्र से डाप् प्रत्यय विकल्प कर
के हो जाता है। इन दो विकल्पों के होने से तीन प्रयोग हो जाते हैं ॥

अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ॥ ५७ ॥ अ० ४ । १ । ३२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वैदिक प्रयोगों में अन्तर्वत् और पतिवत् शब्द से ङीप् और नुक् का आगम भी हो ॥ ५७ ॥

का०—अन्तर्वत्पतिवतोस्तु मतुव्वत्वे निपातनात् ॥ गर्भिण्यां जीवत्पत्यां च वा छन्दसि तु नुग्भवेत् ॥ ५८ ॥

अन्तर्वत् शब्द में मतुप् और पतिवत् शब्द में मतुप् के मकार को वकारादेश निपातन किया है । तथा अन्तर्वत् शब्द से गर्भिणी अर्थ में और पतिवत् शब्द से जिस का पति जीता हो वहां वैदिकप्रयोगविषय में विकल्प करके नुक् और ङीप् नित्य हो होवें जैसे । सान्तर्वत्नी देवानुपैत् । सान्तर्वती देवानुपैत् । पतिवत्नी तरुणवत्सा । पतिवती तरुणवत्सा ॥ ५८ ॥

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ॥ ५९ ॥ अ० ४ । १ । ३३ ॥

जो यज्ञ का संयोग हो तो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पति शब्द को नकारादेश और ङीप् प्रत्यय हो । यजमानस्य पत्नी । पत्नि वाचं यच्छ । यहां यज्ञसंयोग इसलिये कहा है कि । ग्रामस्य पतिरियं ब्राह्मणी । यहां न हो ॥ ५९ ॥

विभाषा * सपूर्वस्य ॥ ६० ॥ अ० ४ । १ । ३४ ॥

जो स्त्रीलिङ्ग मे वर्त्तमान पूर्वपद सहित पति शब्द हो तो उस को नकारादेश विकल्प करके हो ङीप् तो नकारान्त के होने से सिद्ध हो है । दृढपतिः । दृढपत्नी । स्थूलपतिः । स्थूलपत्नी । जीवपतिः । जीवपत्नी । यहां सपूर्व ग्रहण इसलिये है कि । पतिरियं ब्राह्मणी ग्रामस्य । यहां ङीप् न हुआ ॥ ६० ॥

नित्यं सपत्न्यादिषु ॥ ६१ ॥ अ० ४ । १ । ३५ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान सपत्नी आदि प्रातिपदिकों में पति शब्द को नकारादेश नित्य ही निपातन किया है । समानः पतिरस्याः सा सपत्नी । एकपत्नी । वीरपत्नी इत्यादि ॥ ६१ ॥

पूतक्रतोरै च ॥ ६२ ॥ अ० ४ । १ । ३६ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पूतक्रतु शब्द से ङीप् और उस को ऐकारादेश भी होवे । जैसे । पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी । यहां से लेके तीन सूत्रों में जो प्रत्यय-

---

* यह यथाविभाषा इसलिये समझनी चाहिये कि यज्ञसंयोग की अनुवृत्ति इस सूत्र में नहीं जाती जब किसी से नुक् पाता नहीं ॥

विधान है सो पुंयोग अर्थात् उस स्त्री के साथ पुरुषसंबन्ध को विवक्षा हो होवे जैसे । यथा हि पूता: क्रतव: पूतक्रतु: सा भवति । यहां पुंयोग की वि नहीं इस से ङीप् न हुआ ॥ ६२ ॥

वृषाकप्यग्निकुसितकुसीदानामुदात्तः ॥ ६३ ॥ अ० ४ । १ । ३

स्त्रीलिङ्ग और पुरुष के योग में वृषाकपि । अग्नि । कुसित । और कुसी शब्दों को ऐकारादेश और इन से ङीप् प्रत्यय हो और वह ङीप् प्रत्यय उ भी होवे । जैसे । वृषाकपे: स्त्री वृषाकपायी । अग्ने: स्त्री । अग्नायी । कुसि स्त्री । कुसितायी । कुसीदस्य स्त्री कुसीदायी । यहां पुंयोग इसलिये है वृषाकपि: स्त्री । इत्यादि में ङीप् न हो ॥ ६३ ॥

मनोरौ वा * ॥ ६४ ॥ अ० ४ । १ । ३८ ॥

पुंयोग में और स्त्रीलिंग में वर्त्तमान मनुप्रातिपदिक से विकल्प करके ङ प्रत्यय होवे और मनु शब्द को औकार और पक्ष में ऐकारादेश हो और वह दात्त भी हो जावे जैसे । मनो: स्त्री मनायी । मनावी । मनु: । ये तीन प्र होते हैं ॥ ६४ ॥

वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ॥ ६५ ॥ अ० ४ । १ । ३९

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वर्णवाची अनुदात्त अकारोपध प्रातिपदिक है से विकल्पकरके ङीप् और उन के तकार को नकारादेश भी होवे जैसे । एत नी । श्येता । श्येनी । हरिता । हरिणी । यहां वर्णवाची से इसलिये कहा है कि हूता । यहां ङीप् और नकार न होवें । अनुदात्त इसलिये है कि श्वेता । य न हो । तोपध इसलिये है कि । अन्य प्रातिपदिक से ङीप् न हो अदन्त को सलिये आतो है कि । शितिर्नाम्नी । यहां न हो ॥ ६५ ॥

वा०—पिशङ्गादुपसङ्ख्यानम् ॥ ६६ ॥

पिशङ्ग शब्द तोपध नहीं है इस कारण ङीप् नहीं आता था इसलिये इस पसङ्ख्यान है । पिशंग शब्द से भी स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होवे जैसे । पिशंगी ॥ ६६

वा०—असितपलितयोः प्रतिषेधः ॥ ६७ ॥

असित और पलित प्रातिपदिकों से ङीप् और इन के तकार को नकारादेश होवे । सूत्र से पाया था उस का निषेधरूप यह अपवाद है । जैसे पलिता । लिता ॥ ६७ ॥

* यह उभयत्रविभाषा इस प्रकार है कि औ वा" इस सूत्र से पाके ई व विकल्प पाता नहीं ॥

वा०—छन्दसि क्रमेके ॥ ६८ ॥

वेद में असित और पलितशब्द के तकार के स्थान में क्रम् आदेश और ङीप् प्रत्यय हो ऐसी इच्छा कोई आचार्य करते हैं जैसे । असिक्नी । पलिक्नी । ६८ ॥

अन्यतो ङीष् ॥ ६९ ॥ अ० ४ । १ । ४० ॥

तोपध से भिन्न अनुदात्त वर्णवाची अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो जैसे । सारङ्गी । कल्माषी । शवली । इत्यादि । यहां अनुदात्तग्रहण इसलिये है कि । कृष्णा । कपिला । इत्यादि से न हो ॥ ६९ ॥

षिद्गौरादिभ्यश्च ॥ ७० ॥ अ० ४ । १ । ४१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अकारान्त षित् और गौर आदि प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होवे । नर्तकी । खनकी । रजकी । गौरी । मत्सी । शृङ्गी । इत्यादि ॥ ७० ॥

जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्त्यमत्राऽऽवपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनाऽयोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु ॥ ७१ ॥ अ० ४ । १ । ४२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अकारान्त जानपद आदि ११ ग्यारह शब्दों से वृत्ति आदि ग्यारह ११ अर्थों में यथासंख्य कर के ङीष् प्रत्यय होवे जानपदी वृत्तिः । जानपदी रीतिः । यहां ङीष् होने से स्वर में भेद हो जाता है । कुण्डी । अमत्रपात्रम् । अन्यत्र कुण्डा । गोणी । आवपन अर्थात् माप हो तो । अन्यत्र । गोणा । स्थली । अकृत्रिमा भूमिः । अन्यत्र स्थला । भाजी । श्राणा । पकाने के योग्य शाक । अन्यत्र । भाजा । नागी स्थौल्यम् । अतिमोटी हो तो । अन्यत्र नागा । काली । जो वर्ण हो । अन्यत्र काला । नीली जो वस्त्र हो नहीं तो नीला शाटी । कुशी । जो लोहे का कुछ विकार हो नहीं तो कुशा । कामुकी जो मैथुन की इच्छा रखती हो नहीं तो कामुका । कबरी । जो बालों का सम्हालना हो नहीं तो कबरा ॥ ७१ ॥

वा०—नीलादोषधौ ॥ ७२ ॥

नील शब्द से ओषधि अर्थ में भी ङीष् प्रत्यय हो । जैसे । नीली ओषधिः ॥ ७२ ॥

वा०—प्राणिनि च ॥ ७३ ॥

प्राणी अर्थ में भी नील शब्द से ङीष् प्रत्यय होवे जैसे नीली गौः । नीली बडवा । नीली गवयी । इत्यादि ॥ ७३ ॥

वा०—वा संज्ञायाम् ॥ ७४ ॥

संज्ञा अर्थ में विकल्प कर के ङीप् प्रत्यय हो। जैसे। नीली। नीला। इत्यादि ।

शोणात्प्राचाम् ॥ ७५ ॥ अ० ४ । १ । ४३ ॥

प्राचीन आचार्यों के मत में स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान शोण प्रातिपदिक ङीप् प्रत्यय होवे अन्य आचार्यों के मत में नहीं । शोणी । शोणा बड़वा ।

वोतो गुणवचनात् ॥ ७६ ॥ अ० ४ । १ । ४४ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान गुणवचन उकारान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्र विकल्प करके हो जावे । पट्वी । पटुः । मृद्वी । मृदुः । इत्यादि । उत्ग्रहण लिये है कि शुचिः । यहां ङीप् न हो । गुणवचनग्रहण इसलिये है कि आखुः । यहां न हो ॥ ७६ ॥

वा०–गुणवचनान्ङीबाद्युदात्तार्थम् ॥ ७७ ॥

गुणवचन प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय कहना चाहिये क्योंकि ङीप् के ह से अन्तोदात्त स्वर प्राप्त है । सो आद्युदात्त होवे जैसे वस्वी । तन्वी । इत्या यह विधान सर्वत्र नहीं किन्तु जहां आद्युदात्त प्रयोग आवे वहीं ॥ ७७ ॥

वा०–खरुसंयोगोपधान्नां प्रतिषेधः ॥ ७८ ॥

खरु और संयोग जिस की उपधा में हो ऐसे गुणवचन उकारान्त प्र तिपदिकों से स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय न हो जैसे । खरुरियं ब्राह्मणी । पाण्डुि ब्राह्मणी इत्यादि ॥ ७८ ॥

बह्वादिभ्यश्च ॥ ७९ ॥ अ० ४ । १ । ४५ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान बहु आदि प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय विकल्प कर । बह्वी । बहुः । पद्धती । पद्धतिः । अङ्कती । अङ्कतिः । इत्यादि ॥ ७९ ॥

नित्यं छन्दसि ॥ ८० ॥ अ० ४ । १ । ४६ ॥

वेद में बहु आदि शब्दों से ङीप् प्रत्यय नित्यही हो । बह्वीषु हित्वा प्रपिबन् ी नाम ओषधी भवति ॥ ८० ॥

भुवश्च ॥ ८१ ॥ अ० ४ । १ । ४७ ॥

वेद में भू प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हो । विभ्वी च । प्रभ्वीच । सम्भ्वी च ।

पुंयोगादाख्यायाम् ॥ ८२ ॥ अ० ४ । १ । ४८ ॥

पुंसा योगः पुंयोगः । स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान पुरुष के योग के कथने में प्राति-
दिकों से ङीप् प्रत्यय हो जैसे । गणकस्य स्त्री गणकी । महामात्री । प्रष्ठी ।
चरी । इत्यादि । यहां पुंयोगग्रहण इसलिये है कि । देवदत्ता । यहां ङीप् न
॥ ८२ ॥

वा०—गोपालिकादीनां प्रतिषेधः ॥ ८३ ॥

पुंयोग के कथन में गोपालिका आदि शब्दों से ङीप् प्रत्यय न हो जैसे ।
गोपालकस्य स्त्री गोपालिका । पशुपालिका । इत्यादि ॥ ८३ ॥

वा०—सूर्याद्देवतायां चाप् वक्तव्यः ॥ ८४ ॥

सूर्य शब्द से देवता अर्थ में चाप् प्रत्यय हो जैसे । सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या । यहां
वताग्रहण इसलिये है कि । सूरी । यहां न हो ॥ ८४ ॥

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाऽऽचार्याणा-मानुक् ॥ ८५ ॥ अ० ४ । १ । ४९ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान इन्द्रादि बारह १२ प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय और
इन्द्र आदि शब्दों को आनुक् का आगम भी हो जैसे । इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी ।
वरुणानी । भवानी । शर्वाणी । रुद्राणी । मृडानी * ॥ ८५ ॥

वा०—हिमारण्ययोर्महत्त्वे ॥ ८६ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान हिम और अरण्य प्रातिपदिकों से महत्त्व अर्थ
में ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम हो जैसे । महद्धिमं हिमानी । महदरण्य-
मरण्यानी ॥ ८६ ॥

वा०—यवाद्दोषे ॥ ८७ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान यव प्रातिपदिक से दुष्टता अर्थ में ङीष् प्रत्यय
और आनुक् का आगम हो जैसे । दुष्टो यवो यवानी ॥ ८७ ॥

वा०—यवनाल्लिप्याम् ॥ ८८ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान यवन प्रातिपदिक से लिपि अर्थ में ङीष् प्रत्यय और
आनुक् का आगम होवे जैसे । यवनानी लिपिः ॥ ८८ ॥

---

* यहां इन्द्रादि शब्दों से पुंयोग में ङीष् [illegible] आनुक् का आगम होने के लिये यह सूत्र है । [illegible] विशेष अर्थों में वार्त्तिकों से विधान किया है ॥

वा०—उपाध्यायमातुलाभ्यां वा * ॥ ८९ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान उपाध्याय और मातुल प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय और आनुक् का आगम विकल्प करके होवें जैसे । उपाध्यायानी । उपाध्यायी । मातुलानी । मातुली ॥ ८८ ॥

वा०—आचार्य्यादणत्वं च ॥ ९० ॥

यहां पूर्व वार्त्तिक से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है । स्त्रीलिंग में वर्त्तमान आचार्य्य प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय और आनुक् का आगम भी विकल्प कर के होवे । और आनुक् के नकार को णत्व प्राप्त है सो न हो । जैसे । आचार्य्यानी । आचार्य्या । यहां पक्ष में टाप् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८० ॥

वा०—अर्य्यक्षत्रियाभ्यां वा + ॥ ९१ ॥

यहां फिर विकल्प ग्रहण इसलिये है कि. णत्व की अनुवृत्ति न आवे । स्त्रीलिंग में वर्त्तमान अर्य्य और क्षत्रिय प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय और आनुक् का आगम विकल्प करके होवें । जैसे । अर्य्याणी । अर्य्या । क्षत्रियाणी । क्षत्रिया ॥ ८

वा०—मुद्गलाच्छन्दसि लिच्च ॥ ९२ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान मुद्गल प्रातिपदिक से वैदिक प्रयोगविषय में ङीप् प्रत्यय और आनुक् का आगम हो । और ङीप् प्रत्यय लित् भी हो जावे जैसे । रथीरभून्मुद्गलानी गविष्ठौ ॥ ८२ ॥

क्रीतात् करणपूर्वात् ॥ ९३ ॥ अ० ४ । १ । ५० ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान करणकारकवाची पूर्वपदयुक्त क्रीत शब्दान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो जैसे । वस्त्रेण क्रीता सा वस्त्रक्रीती । वसनक्रीती । रथक्रीती इत्यादि यहां करणकारक का ग्रहण इसलिये है कि । देवदत्तक्रीता । इत्यादि से ङीप् न हो ॥ ८३ ॥

क्तादल्पाख्यायाम् ॥ ९४ ॥ अ० ४ । १ । ५१ ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान अल्पाख्या अर्थ में करणकारक जिस के पूर्व हो ऐसे क्तान्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हो । अभ्रविलिप्ती द्यौः । सूपविलिप्ती स्थाली इत्यादि । यहां अल्पाख्याग्रहण इसलिये है कि । चन्दनानुलिप्ता ब्राह्मणी । इत्यादि से ङीप् न होवे ॥ ८४ ॥

---

* इस वार्त्तिक में उपाध्याय शब्द से पूर्वोक्तसूत्र और [illegible] ॥

+ यहां से लेके दोनों वार्त्तिक पूर्वोक्तसूत्र इसलिये हैं [illegible] ॥

बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् ॥ ९५ ॥ अ० ४ । १ । ५२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान बहुव्रीहि समास में अन्तोदात्त क्तान्त प्रातिपादिक से ङीप् प्रत्यय हो जैसे । ऊरू भिन्नौ यया सा ऊरुभिन्नी । जरुभिन्नी । गलोत्कृत्ती । केशलूनी इत्यादि । यहां बहुव्रीहिग्रहण इसलिये है कि । पद्भ्यां पतिता । पादपतिता । यहां ङीप् प्रत्यय न होवे ॥ ८५ ॥

वा०—अन्तोदात्ताज्जातप्रतिषेधः ॥ ९६ ॥

अन्तोदात्त बहुव्रीहि प्रातिपदिकों से जो ङीप् कहा है सो जात शब्द जिस के अन्त में उस प्रातिपदिक से न हो यह वार्त्तिक सूत्र का निषेधरूप अपवाद है जैसे । दन्तजाता । स्तनजाता । इत्यादि ॥ ८६ ॥

वा०—पाणिगृहीत्यादीनामर्थविशेषे ॥ ९७ ॥

विशेष अर्थात् जहां वेदोक्तरीति से पाणिग्रहण अर्थात् विवाह किया जावे वहां पाणिगृहीती आदि शब्दों में ङीप् प्रत्यय होवे । जैसे । पाणिगृहीती भार्य्या । और जहां किसी प्रकार पाणिग्रहण करलेवे वहां । पाणिगृहीता । टाबन्त ही प्रयोग होवे ॥ ८७ ॥

वा०—अबहुनञ्सुकालसुखादिपूर्वादिति वक्तव्यम् ॥९८॥

सूत्र ८५ में जो अन्तोदात्त बहुव्रीहि प्रातिपदिक से ङीप् कहा है सो यदि बहु-नञ् सुकाल और सुखादि शब्द पूर्व हों तो न हो जैसे । बहु । बहुकृता । नञ् । अकृता । सु । सुकृता । काल । मासजाता । संवत्सरजाता । सुखादि । सुखजाता । दुःखजाता । इत्यादि ॥ ८८ ॥

अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा ॥ ९९ ॥ अ० ४ । १ । ५३ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान स्वांग पूर्वपद से भिन्न अन्तोदात्त क्तान्त बहुव्रीहि-समासयुक्त प्रातिपदिक से विकल्प करके ङीप् प्रत्यय होवे जैसे । शार्ङ्गजग्धी । शार्ङ्गजग्धा । पलाण्डुभक्षिती । पलाण्डुभक्षिता । सुरापीती । सुरापीता । यहां अ-स्वांग पूर्वपद इसलिये है कि । दन्तभिन्नी । यहां विकल्प न हो । और अन्तो-दात्त इसलिये है कि वस्त्रछन्ना । यहां ङीप् न हो ॥ ८९ ॥

वा०— बहुलं संज्ञाछन्दसोः ॥ १०० ॥

संज्ञा और वैदिकप्रयोगविषय में वर्त्तमान क्तप्रत्ययान्त प्रातिपदिक से बहुल करके ङीप् प्रत्यय होवे । जैसे । प्रवृद्धविलूनी । प्रवृद्धविलूना । प्रवृद्धा चामी

वा०–पुच्छाच्च ॥ १०४ ॥

पुच्छ शब्द भी संयोगोपध स्वाङ्गवाची है इस कारण निषेध का बाधक यह वार्त्तिक है। पुच्छान्त स्वाङ्गवाची प्रातिपदिक से विकल्प करके ङीप् प्रत्यय होवे। जैसे। कल्याणपुच्छी। कल्याणपुच्छा ॥ १०४ ॥

वा०–कवरमणिविषशरेभ्यो नित्यम् ॥ १०५ ॥

कवर मणि विष और शर शब्दों से परे जो स्वांगवाची पुच्छ प्रातिपदिक उस से स्त्रीलिङ्ग में नित्य ही ङीप् प्रत्यय हो जैसे। कवरपुच्छी। मणिपुच्छी। विषपुच्छी शरपुच्छी। इत्यादि ॥ १०५ ॥

वा०–उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च ॥ १०६ ॥

उपमानवाची शब्दों से परे जो स्वाङ्गवाची पक्ष और पुच्छ प्रातिपदिक उन से नित्य ही ङीप् प्रत्यय हो। जैसे। उलूकपक्षी सेना। उलूकपुच्छी शाला इत्यादि ॥ १०६ ॥

न क्रोडादिबह्वचः ॥ १०७ ॥ अ० ४ । १ । ५६ ॥

क्रोड आदि प्रातिपदिक और बहुत अच् जिस में हों ऐसे प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न होवे जैसे। कल्याणक्रोडा। कल्याणखुरा। कल्याणबाला। कल्याणशफा। बहून्। पृथुजघना। महाललाटा। इत्यादि ॥ १०७ ॥

सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ॥ १०८ ॥ अ० ४ । १ । ५७ ॥

सह नञ् विद्यमान ये हों पूर्व जिस के उस स्वाङ्गवाची स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय न हो जैसे। सकेशा। अकेशा। विद्यमानकेशा। सनासिका। अनासिका। विद्यमाननासिका। इत्यादि ॥ १०८ ॥

नखमुखात्संज्ञायाम् ॥ १०९ ॥ अ० ४ । १ । ५८ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान नखान्त और मुखान्त प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय न हो जैसे। शूर्पणखा। वज्रणखा। गौरमुखा। कालमुखा। संज्ञाग्रहण इसलिये है कि। ताम्रमुखी कन्या। यहां ङीप् हो ॥ १०९ ॥

दीर्घजिह्वी च छन्दसि ॥ ११० ॥ अ० ४ । १ । ५९ ॥

[illegible] किया है। दीर्घजिह्वी वै देवानां हव्यमलेट्। [illegible] के लिये निपातन किया है ॥ ११० ॥

दिक्पूर्वपदान्ङीप् ॥ १११ ॥ अ० ४ । १ । ६० ॥

दिक् पूर्वपद हो जिस के उस स्वाङ्गवाची स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान प्रातिपदि से ङीप्प्रत्यय हो जैसे। प्राङ्मुखी । प्रत्यङ्मुखी। प्राङ्नासिकी। इत्यादि।१११

वाहः ॥ ११२ ॥ अ० ४ । १ । ६१ ॥

वाहन्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय होवे। जैसे। दित्यौही। प्रष्ठौही। ि ष्ठौही इत्यादि ॥ ११२ ॥

सख्यशिश्वीति भाषायाम् ॥ ११३ ॥ अ० ४।१।६२॥

भाषा अर्थात् लौकिक प्रयोग विषय में सखी और अशिश्वी । ये दोनों ही प्रत्ययान्त निपातन किये हैं जैसे । सखीयं मे ब्राह्मणी । नास्याः शिशुरस्तीति अशिश्वी । यहां भाषाग्रहण इसलिये है कि। सखे सप्तपदी भव। यहां न हो।११३

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ॥ ११४ ॥ अ० ४ । १ । ६३।

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान जो यकारोपधवर्जित जातिवाची अकारान्त औ नयतस्त्रीलिंग न हो ऐसे प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होवे। जैसे। कुक्कुटी ूकरी। ब्राह्मणी। वृषली। नाडायनी। चारायणी। बह्वृची। यहां जातिग्रह सलिये है कि। मुण्डा। अस्त्रीविषय इसलिये है कि। मक्षिका। अयोपध इ लये है कि। क्षत्रिया। वैश्या। अनुपसर्जनग्रहण इसलिये है कि। बहुकुक्कुटा। हुसूकरा। इन से ङीष् न हुआ ॥ ११४ ॥

वा०—योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमत्स्य-मनुष्याणामप्रतिषेधः ॥ ११५ ॥

यकारोपध का निषेध जो सूत्र से किया है वहां हय गवय मुकय मत्स्य और नुष्य प्रातिपदिकों का निषेध न होवे। अर्थात् इन से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे। यी। गवयी। मुकयी। मत्सी। मनुषी ॥ ११५ ॥

पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च ॥ ११६ ॥ अ० ४ । १ । ६४ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जिस प्रातिपदिक के उत्तरपद पाक आदि शब्द हो उस से ङीष् प्रत्यय हो। जैसे। ओदनपाकी। मुद्गपर्णी। पटुपर्णी। शङ्खपुष्पी। . . . गोवाली ॥ ११६ ॥

वा०-सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्प्रतिषेधः ॥ ११७ ॥

सत् अंच काण्ड प्रान्त शत एक इन प्रातिपदिकों से परे जो स्त्रीलिंग में वर्त्तमान पुष्प प्रातिपदिक उस से ङीप् प्रत्यय न हो सूत्र ११६ से प्राप्त है उसका विशेष शब्दोंके योग में निषेध कियाहै। जैसे। सत्पुष्पा। प्राक्पुष्पा। प्रत्यक्पुष्पा। काण्डपुष्पा। प्रान्तपुष्पा। शतपुष्पा। एकपुष्पा ॥ ११७ ॥

वा०-सम्भस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् ॥ ११८ ॥

सम् भस्त्र अजिन शण और पिण्ड शब्दों से परे जो फल प्रातिपदिक उस से ङीप् प्रत्यय न हो। यहां सर्वत्र ङीप्का निषेध होने से टाप् हो जाता है जैसे। सम्फला। भस्त्रफला। अजिनफला। शणफला। पिण्डफला ॥ ११८ ॥

वा०-श्वेताच्च ॥ ११९ ॥

श्वेत शब्द से परे जो फल उस से भी ङीप् न हो जैसे। श्वेतफला ॥ ११९ ॥

वा०-त्रेश्च ॥ १२० ॥

त्रिशब्द से परे जो फल उस से भी ङीप् न हो जैसे। त्रिफला ॥ १२० ॥

वा०-मूलान्नञः ॥ १२१ ॥

नञ् से परे जो मूल प्रातिपदिक उससे भी ङीप् प्रत्यय न होवे जैसे। न मूलमस्याः सा अमूला। इत्यादि ॥ १२१ ॥

इतो मनुष्यजातेः ॥ १२२ ॥ अ० ४। १। ६५॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मनुष्यजातिवाची इकारान्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हो जैसे। अवन्ती। कुन्ती। दाक्षी। प्लाक्षी इत्यादि। यहां इकारान्तग्रहण इसलिये है कि। विट्। दरत्। यहां ङीप् न होवे। मनुष्यग्रहण इसलिये है कि। तित्तिरिः। यहां न हो और पूर्वसूत्र से जाति की अनुवृत्ति चली आती फिर जातिग्रहण का प्रयोजन यह है कि यकारोपध से भी ङीप् प्रत्यय हो जावे जैसे। औदमेयी। इत्यादि ॥ १२२ ॥

वा०-इञ उपसङ्ख्यानमजात्यर्थम् ॥ १२३ ॥

जाति के न होने से स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान इञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय कहना चाहिये जैसे। सौतङ्गमी। मौनचित्ती * इत्यादि ॥ १२३ ॥

---

* सुतङ्गम आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक प्रकरण का इञ् प्रत्यय है इस कारण जाति नहीं ॥

ऊङुतः ॥ १२४ ॥ अ० ४ । १ । ६६ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान मनुष्यजातिवाची उकारान्त प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे जैसे । कुरूः । ब्रह्मबन्धूः । वीरबन्धूः । यकारोपध के निषेध की अनुवृत्ति यहां आती है । इसी कारण अध्वर्युर्ब्राह्मणी । इत्यादि में ऊङ् प्रत्यय नहीं होता ॥ १२४ ॥

वा०–अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनाम् ॥ १२५ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान अप्राणिजातिवाची प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय होवे परन्तु रज्जु आदि प्रातिपदिकों से न हो जैसे। अलाबूः। कर्कन्धूः । यहां अप्राणि ग्रहण इसलिये है कि । कृकवाकुः । यहां न हो और अरज्ज्वादि ग्रहण इसलिये है कि । रज्जुः । हनुः । इत्यादि से ङीप् न हो ॥ १२५ ॥

बाह्वन्तात्संज्ञायाम् ॥ १२६ ॥ अ० ४ । १ । ६७ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान बाहु शब्दान्त प्रातिपदिक से संज्ञाविषय में ऊङ् प्रत्यय होवे । जैसे । भद्रबाहूः । जालबाहूः । यहां संज्ञाग्रहण इसलिये है कि । वृत्तबाहुः । सुबाहुः । इत्यादि से न होवे ॥ १२६ ॥

पङ्गोश्च ॥ १२७ ॥ अ० ४ । १ । ६८ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान पङ्गु प्रातिपदिक से ऊङ् प्रत्यय हो जैसे पङ्गूः ॥ १२७ ॥

वा०–श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च वक्तव्यः ॥ १२८ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान श्वशुर शब्द से ऊङ् प्रत्यय और उस के उकार अकार का लोप हो जावे जैसे श्वश्रूः । यहां किसी से ऊङ् प्राप्त नहीं इसलिये यह वार्त्तिक अपूर्वविधायक है ॥ १२८ ॥

ऊरूत्तरपदादौपम्ये ॥ १२९ ॥ अ० ४ । १ । ६९ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान ऊरु उत्तरपद में है जिस के उस प्रातिपदिक से उपमान अर्थ में ऊङ् प्रत्यय होवे जैसे। कदलीस्तम्भ इवोरू यस्याः स्त्रियाः सा कदलीस्तम्भोरूः । नागनासोरूः । यहां औपम्यग्रहण इसलिये है कि वृत्तोरुः स्त्री।

लक्षणोरुः । वामोरुः । यहां उपमान अर्थ नहीं है इसलिये इस सूत्रका पृथक् आरम्भ है नहीं तो पूर्वसूत्र से ही हो जाता ॥ १३० ॥

वा०—सहितसहाभ्यां च ॥ १३१ ॥

स्त्रीलिङ्गमें वर्त्तमान सहित और सह शब्दसे परे जो ऊरु प्रातिपदिक उस से ऊङ् प्रत्यय होवे जैसे । सहितोरूः । सहोरूः । इत्यादि ॥ १३१ ॥

कद्रुकमण्डल्वोश्छन्दसि ॥ १३२ ॥ अ० ४ । १ । ७१ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिकोंसे वैदिक प्रयोगविषय में ऊङ् प्रत्यय होवे जैसे । कद्रूश्च वै सुपर्णीच । मा स्म कमण्डलूं शूद्राय दद्यात् । यहां छन्दोग्रहण इसलिये है कि । कद्रुः । कमण्डलुः । यहां न हो ॥ १३२ ॥

वा०— गुग्गुलुमधुजतुपतयालूनामुपसङ्ख्यानम् ॥ १३३ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान वैदिकप्रयोगविषय में गुग्गुलु मधु जतु और पतयालु प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय होवे जैसे । गुग्गुलूः । मधूः । जतूः । पतयालूः॥१३३॥

संज्ञायाम् ॥ १३४ ॥ अ० ४ । १ । ७२ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान संज्ञाविषय में कद्रु और कमण्डलु प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय होवे जैसे । कद्रूः । कमण्डलूः । यहां संज्ञा इसलिये है कि । कद्रुः । कमण्डलुः । यहां ऊङ् न होवे ॥ १३४ ॥

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ॥ १३५ ॥ अ० ४ । १ । ७३ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जाति अर्थ में शार्ङ्गरव आदि और अञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीन् प्रत्यय होवे जैसे । शार्ङ्गरवी । कापटवी । अञन्त । बैदी । और्वी । यहां जाति की अनुवृत्ति आने से पुंयोग में प्राप्त ङीष् का बाधक यह सूत्र नहीं होता जैसे । वेदस्य स्त्री वैदी । यहां ङीष् होता ही है ॥ १३५ ॥

यङश्चाप् ॥ १३६ ॥ अ० ४ । १ । ७४ ॥

स्त्रीलिङ्गमें वर्त्तमान जातिवाची यङ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से चाप् प्रत्यय होवे जैसे । आम्बष्ठ्या । सौवीर्या । कारीषगन्ध्या । वाराह्या । इत्यादि ॥ १३६ ॥

वा०—षाद्य यञः ॥ १३७ ॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान जो षकार से परे यञ् तदन्त प्रातिपदिक से चाप् प्रत्यय होवे जैसे । शार्कराक्ष्या । पौतिमाष्या । गौकक्ष्या । इत्यादि ॥ १३७ ॥

और मुखर आदि प्रातिपदिक से विहित जो गोत्र अर्थ में अण् और इञ् हैं उनके स्थान में ष्यङ् आदेश हो वह तद्धितसंज्ञक भी होवे जैसे। पौणिक्या। भौणिक्या। मौखर्य्या। इत्यादि ॥ १४२ ॥

क्रौड्यादिभ्यश्च ॥ १४३ ॥ अ० ४ । १ । ८० ॥

स्त्रीलिंग में वर्त्तमान क्रौडि आदि प्रातिपदिकों से ष्यङ् प्रत्यय और उस को तद्धितसंज्ञा भी हो जैसे । क्रौड्या । लाड्या । व्याड्या । इत्यादि ॥ १४३ ॥

दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्ठेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥ १४४ ॥ अ० ४ । १ । ८१ ॥

गोत्र अर्थ में वर्त्तमान दैवयज्ञि शौचिवृक्षि सात्यमुग्रि और काण्ठेविद्धि प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में ष्यङ् प्रत्यय हो उस को तद्धितसंज्ञा भी हो जैसे । दैवयज्ञ्या । शौचिवृक्ष्या । सात्यमुग्र्या । काण्ठेविद्ध्या । और पक्ष में (इतो मनुष्यजातेः) इस उक्त सूत्र से ङीष् होता है जैसे। दैवयज्ञी । शौचिवृक्षी । सात्यमुग्री। काण्ठेविद्धी । इत्यादि ॥ १४४ ॥

इति स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ॥

समर्थानां प्रथमाद्वा ॥ १४५ ॥ अ० ४ । १ । ८२ ॥

समर्थानाम् । प्रथमात् । वा इन तीन पदों का अधिकार करते हैं । इस से आगे जो २ प्रत्यय कहे हैं वे समर्थों की प्रथम प्रकृति से विकल्प करके होंगे पक्ष में वाक्य भी बना रहे । यह अधिकार छः पाद अर्थात् पञ्चमाध्याय के द्वितीय पाद के अन्तपर्य्यन्त जावेगा जैसे । उपगोरपत्यम् । औपगवः । यहां समर्थानाम् इस लिये है कि । कम्बल उपगोरपत्यं देवदत्तस्य। यहां उपगु शब्द से प्रत्यय नहीं होता । प्रथमात् इसलिये है कि । षष्ठ्यन्त ही से होवे प्रथमान्त से नहीं हो जैसे । उपगु से होता है अपत्य से नहीं हो । वा इसलिये है कि वाक्य भी बना रहे जैसे । उपगोरपत्यम् ॥ १४५ ॥

प्राग्दीव्यतोऽण् ॥ १४६ ॥ अ० ४ । १ । ८३ ॥

(तेन दीव्यति०) इस सूत्र पर्य्यन्त अण् प्रत्यय का अधिकार करते हैं। यहां से आगे जो २ विधान करेंगे वहां २ अपवाद विषयों को छोड़ के अण् हो

प्रवृत्त होगा जैसे (तस्यापत्यम्) यहां प्रत्ययविधान किया है सो अधिकार होने से अण् ही होता है जैसे । उपगोरपत्यम् । औपगवः । कापटवः । इत्या ॥ १४६ ॥

अश्वपत्यादिभ्यश्च * ॥ १४७ ॥ अ० ४ । १ । ८४ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों अर्थात् (तेन दीव्यति०) इस सूत्र से पूर्व २ जो २ अर्थ विधान किये हैं उन २ में अश्वपति आदि प्रातिपदिकों से अण् ही होवे । जैसे । आश्वपतम् । शातपतम् । धानपतम् । गाणपतम् । इत्यादि ॥ १४७ ॥

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ॥ १४८ ॥ अ० ४ । १ । ८५ ॥

यहां भी प्राग्दीव्यतीय की अनुवृत्ति आती है और यह सूत्र अण् का अपवाद है । दिति अदिति आदित्य और पत्युत्तरपद प्रातिपदिक से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में तद्धितसंज्ञक ण्य प्रत्यय होवे । जैसे । दैत्यः । आदित्यः । आदित्यम् । पत्युत्तरपद । प्राजापत्यम् । सैनापत्यम् । इत्यादि ॥ १४८ ॥

वा०—यमाच्च ॥ १४९ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में यम प्रातिपदिक से भी तद्धितसंज्ञक ण्य प्रत्यय होवे जैसे । याम्यम् ॥ १४९ ॥

वा०—वाङ्मतिपितृमतां छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ १५० ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में वाक् मति और पितृमत् प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक ण्य प्रत्यय हो जैसे । वाच्यम् । मात्यम् । पैतृमत्यम् ॥ १५० ॥

वा०—पृथिव्या ञाञौ ॥ १५१ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में पृथिवी प्रातिपदिक से ञ और अञ् प्रत्यय होवें । जैसे । पार्थिवा । पार्थिवी † ॥ १५१ ॥

वा०—देवाद्यञञौ ॥ १५२ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में देव प्रातिपदिक से यञ् और अञ् प्रत्यय होवें जैसे दैव्यम् । दैवम् ॥ १५२ ॥

---

* [illegible]

[illegible]

वा०—बहिषष्टिलोपश्च ॥ १५३ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में बहिष् प्रातिपदिक से ख प्रत्यय और उस के टि का लोप भी होवे जैसे। बाहिर्भवो बाह्यः ॥ १५३ ॥

वा०—ईकक् च ॥ १५४ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में बहिष् प्रातिपदिक से ईकक् प्रत्यय और उस के टि का लोप भी होवे जैसे। बाहीकः ॥ १५४ ॥

वा०—ईकञ् छन्दसि ॥ १५५ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में वैदिक प्रयोग विषयक बहिष् प्रातिपदिक से ईकञ् प्रत्यय और उसके टि का लोप भी होवे जैसे। बाहीकः * ॥ १५५ ॥

वा०—स्थाम्नोऽकारः ॥ १५६ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में स्थामन् शब्दान्त प्रातिपदिक से अकार प्रत्यय होवे जैसे। अश्वत्थामः ॥ १५६ ॥

वा०—लोम्नोऽपत्येषु बहुषु १५७ ॥

बहुत अपत्य वाच्य हों तो लोमन् शब्दान्त प्रातिपदिक से अकार प्रत्यय हो जावे जैसे। उडुलोम्नोऽपत्यानि। उडुलोमाः। शारलोमाः। इत्यादि। यहां बहुत अपत्यग्रहण इसलिये है कि। उडुलोम्नोऽपत्यम्। औडुलोमिः। शारलोमिः। यहां अकार प्रत्यय न होवे ॥ १५७ ॥

वा०—सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गे यत् ॥ १५८ ॥

सर्वत्र अर्थात् प्राग्दीव्यतीय अर्थों में गो प्रातिपदिक से अण् आदि अजादि प्रत्ययों की प्राप्ति में यत् प्रत्यय ही होवे जैसे। गव्यम्। यहां अजादिप्रसङ्ग इसलिये कहा है कि। गोरूप्यम्। गोमयम्। इत्यादि में यत् न होवे ॥ १५८ ॥

उत्सादिभ्योऽञ् ॥ १५९ ॥ अ० ४ । १ । ८६ ॥

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में उत्स आदि प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय होवे। जैसे। औत्सः। औदपानः। वैकरः। इत्यादि अण् और उस के अपवादों का भी यह सूत्र अपवाद है ॥ १५९ ॥

---

* [illegible]

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ॥ १६० ॥ अ० ४ । १ । ८७ ॥

(धान्यानां भवने०) इस सूत्र से पूर्व २ सब अर्थों में स्त्री और पुंस् प्रातिपदिकों से यथासंख्य कर के नञ् और स्नञ् प्रत्यय हों जैसे । स्त्रीषु भवम् । स्त्रैणम् । पौंस्नम् । स्त्रीभ्य आगतम् । स्त्रैणम् । पौंस्नम् । स्त्रियाः प्रोक्तम् । स्त्रैणम् । पौंस्नम् स्त्रीभ्यो हितम् । स्त्रैणम् । पौंस्नम् । इत्यादि ॥ १६० ॥

द्विगोर्लुगनपत्ये ॥ १६१ ॥ अ० ४ । १ । ८८ ॥

द्विगु का संबन्धी निमित्त अर्थात् जिसको मानके द्विगु किया हो उस अपत्य वर्जित प्राग्दीव्यतीय तद्धितसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होवे । जैसे । पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः । पञ्चकपालः । दशकपालः । द्वौ वेदावधीते । द्विवेदः । त्रिवेदः । इत्यादि । यहां अनपत्यग्रहण इसलिये है कि । द्वैमातुरः । षाण्मातुरः । इत्यादि में लुक् न हो ॥ १६१ ॥

गोत्रेऽलुगचि ॥ १६२ ॥ अ० ४ । १ । ८९ ॥

जो (यस्कादिभ्यो गोत्रे) इत्यादि सूत्रों से जिन गोत्र प्रत्ययों का लुक् कहे हैं सो न हो । प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय परे हों तो । जैसे गर्गाणां छात्राः । गार्गीयाः । वात्सीयाः । आत्रेयाः । खारपायणीयाः । यहां गोत्र इसलिये है कि । कौबलम् । बादरम् । यहां निषेध न हो । और अच्ग्रहण इस लिये है कि । गर्गेभ्य आगतम् । गर्गरूप्यम् । गर्गमयम् । यहां हलादि प्रत्ययों के परे लुक् हो जावे ॥ १६२ ॥

यूनि लुक् ॥ १६३ ॥ अ० ४ । १ । ९० ॥

जब प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय की विवक्षा होवे तब युवापत्य अर्थ में विहित जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय उस का लुक् हो फिर जिस प्रकृति से जो प्रत्यय प्राप्त हो सो होवे, जैसे । फाण्टाहृतस्यापत्यं फाण्टाहृतिः । तस्य युवापत्यम् यहां (फाण्टाहृतिमिम०) इस से युवापत्य में ण होकर फाण्टाहृतः । फाण्टाहृतस्य यूनश्छात्राः । इस अर्थ की विवक्षा होते ही युवापत्य का लुक् होके उस इञ् प्रत्ययान्त फाण्टाहृति प्रातिपदिक से (इञश्च) इस सूत्र से शैषिक अण् प्रत्यय हो जाता है जैसे । फाण्टाहृताः । तथा । भगवित्तस्यापत्यं भागवित्तिः । यहां प्रथमगोत्र में इञ् । तस्य भागवित्तेरपत्यं माणवको भागवित्तिकः । यहां ... हुआ है । भागवित्तिकस्य यूनश्छात्राः । इस अर्थ की अपेक्षा में

वा०-व्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानामिति वक्तव्यम् ॥ १७३ ॥

व्यास वरुड निषाद चण्डाल और बिम्ब प्रातिपदिकों से इञ् प्रत्यय होवे जैसे । व्यासस्यापत्य माणवको वैयासकिः । वारुडकिः । नैषादकिः । चाण्डालकिः । बैम्बकिः * इत्यादि ॥ १७४ ॥

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् † ॥ १७५ ॥ अ० ४ । १ । ९८ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है । गोत्रसंज्ञक अपत्य अर्थ में ‡ प्रथम प्रकृति कुञ्ज आदि प्रातिपदिकों से च्फञ् प्रत्यय हो जैसे । कुञ्जस्य गोत्रापत्यं कौञ्जायन्यः । कौञ्जायन्यौ । कौञ्जायनाः । ब्राध्नायन्यः । ब्राध्नायन्यौ । ब्राध्नायनाः । इत्यादि । यहां गोत्र इसलिये कहा है कि । कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः । यहां अनन्तरापत्य में च्फञ् न हो । गोत्र का अधिकार (शिवादि०) इस सूत्र पर्यन्त जानना चाहिये ॥ १७५ ॥

नडादिभ्यः फक् ॥ १७६ ॥ अ० ४ । १ । ९९ ॥

यह सूत्र भी इञ् का अपवाद है । नड आदि प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय होवे जैसे । नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः । चारायणः । इत्यादि । यहां भी गोत्र की अनुवृत्ति आने से अनन्तरापत्य में । नाडिः । फक् नहीं होता किन्तु इञ् हो जाता है ॥ १७६ ॥

हरितादिभ्योऽञः § ॥ १७७ ॥ अ० ४ । १ । १०० ॥

यह भी सूत्र इञ् का हो अपवाद है और जो शब्द हरितादिकों में अदन्त न हो उन से अण् का अपवाद समझना चाहिये । जो विदाद्यन्तर्गत अजन्त हरितादि प्रातिपदिक हैं उनसे युवापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय हो जैसे हरितस्य युवापत्यं हारितायनः । कैदासायनः । इत्यादि ॥ १७७ ॥

---

* इन व्यास आदि प्रातिपदिकों के अदन्तोंके होने से इञ् तो हो जाता पर अकङ् आदेश होनेके लिये यह वार्त्तिक कहा है ॥

† यहां च्फञ् प्रत्यय में चकार का अनुबन्ध (प्रातिपदिकाो०) इस सूत्र में स्वरार्थ होने के और ञकार वृद्धि के लिये है । और इन च्फञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय हो जाता है उस ञ्य प्रत्यय की तद्राजसंज्ञा होने से बहुवचन में लुक् हो जाता है ॥

‡ स्त्रियाम्, समर्थों का प्रथम इन दो का अधिकार छः पाद में और तद्धितसंज्ञा का अधिकार पंचमाध्याय पर्यन्त तथा वाऽसमर्थ का अधिकार इसी पाद में आता है । सो इन सब का प्रतिसूत्र में सम्बन्ध समझना चाहिये सब बार २ नहीं लिखे हैं ॥

§ इस सूत्र में गोत्राऽपत्य की विवक्षा तो नहीं है कि हरितादिकों से प्रथम गोत्रापत्य में अञ् विधान है फिर दूसरा प्रत्यय गोत्रापत्य में नहीं हो सकता किन्तु युवापत्य में ही होगा ॥

यञिञोश्च ॥ १७८ ॥ अ० ४ । १ । १०१ ॥

युवापत्य अर्थ में यञन्त और इञन्त प्रातिपदिकों से फक् प्रत्यय हो॰ यञन्त । गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । इञन्त से । दाक्षायण प्लाक्षायणः । इत्यादि । यह सूत्र यञन्त से इञ् का और इञन्त से अण् का अ॰ समझना चाहिये ॥ १७८ ॥

शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु ॥ १७९ ॥ अ० ४।१।१०२

जो गोत्रापत्य अर्थ में भृगु । वत्स । आग्रायण । ये अपत्य विशेष ॰ वाच्य हों तो यथासंख्य करके शरद्वत् शुनक और दर्भ प्रातिपदिक से फक् प्र॰ हो जैसे । शारद्वतायनः । जो भृगु का गोत्र हो, नहीं तो । शारद्वतः । शौनका॰ यनः । जो वत्स का गोत्र हो, नहीं तो । शौनकः । दार्भायणः । जो आग्राय॰ का गोत्र हो, नहीं तो दार्भिः । यह भी सूत्र अण् और इञ् दोनों का अपवा॰ है ॥ १७९ ॥

द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम् ॥ १८० ॥ अ० ४ । १ । १०३ ॥

द्रोण पर्वत और जीवन्त प्रातिपदिक से फक् प्रत्यय विकल्प करके होवे । यह सूत्र इञ् का ही अपवाद है । और एक विकल्प चला ही आता है दूसरा ॰हण इसलिये है कि पक्ष में इञ् प्रत्यय भी हो जावे । और यह अप्राप्त विभा॰ ॰ा समझनी चाहिये जैसे । द्रोणस्य गोत्रापत्यम् । द्रौणायनः । द्रौणिः । पार्व॰ ॰यनः । पार्वतिः । जैवन्तायनः । जैवन्तिः ॥ १८० ॥

अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् * ॥ १८१ ॥ अ० ४ । १ । १०४ ॥

गोत्राऽपत्य अर्थ में बिद आदि प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय होवे जैसे । बि॰ दस्य गोत्रापत्यं बैदः । और्वः । इत्यादि परन्तु बिदादि गण में जो ऋषिवाची ॰से भिन्न पुत्र आदि शब्द पढ़े हैं उनसे अनन्तरापत्य अर्थ ही में अञ् प्रत्यय होवे । जैसे । पौत्रः । दौहित्रः । नानान्द्रः । इत्यादि । यह सूत्र भी इञ् आदि प्रत्ययों का अपवाद है ॥ १८१ ॥

गर्गादिभ्यो यञ् ॥ १८२ ॥ अ० ४ । १ । १०५ ॥

---

* इस प्रकरण में अपत्य तीन प्रकार के समझने चाहियें अर्थात् गोत्रापत्य युवापत्य और अनन्तरापत्य [illegible] उनमें से गोत्रापत्य और युवापत्य का [illegible] इसी प्रकरण में व्याख्यान किया है । अनन्तरापत्य [illegible] [illegible] कहते हैं कि जिस में कुछ अन्तर नहीं होता । और इस बिदादि गण में [illegible] [illegible] अपेक्षा में पुत्र को कहते हैं कि [illegible] गोत्रापत्य में [illegible] अनन्तरापत्य में अञ् होता है ॥

यह सूत्र भी अण् आदि प्रत्ययों का ही अपवाद है। गोत्रापत्य अर्थ में गर्ग आदि प्रातिपदिकों से यञ् प्रत्यय होवे जैसे। गार्ग्यः। वात्स्यः। वैयाघ्रपद्यः। इत्यादि ॥ १८२ ॥

मधुबभ्र्वोर्ब्राह्मणकौशिकयोः* ॥ १८३ ॥ अ० ४।१।१०६ ॥

ब्राह्मण और कौशिक गोत्रापत्य अर्थवाच्य होतो मधु और बभ्रु प्रातिपदिकों से यञ् प्रत्यय होवे जैसे। मधोर्गोत्रापत्यं माधव्यः। जो ब्राह्मण होवे,नहीं तो। माधवः। बाभ्रव्यः। जो कौशिक होवे, नहीं तो। बाभ्रवः ॥ १८३ ॥

कपिबोधादाङ्गिरसे ॥ १८४ ॥ अ० ४।१।१०७ ॥

आङ्गिरस गोत्रापत्य विशेष अर्थ में कपि और बोध प्रातिपदिक से यञ् प्रत्यय होवे जैसे। कपेर्गोत्रापत्यम्। काप्यः। बौध्यः। जो अङ्गिरा का गोत्र होवे,नहीं तो। कापेयः। बौधिः। यहां ढक् और इञ् प्रत्यय हो जाते हैं। और इन्हीं दोनों का यह अपवाद भी है ॥ १८४ ॥

वतण्डाच्च ॥ १८५ ॥ अ० ४।१।१०८ ॥

आङ्गिरस गोत्रापत्य विशेष अर्थ में वतण्ड प्रातिपदिक से यञ् प्रत्यय होवे जैसे। वतण्डस्य गोत्रापत्यम्। वातण्ड्यः। यहां भी जो अङ्गिरा का गोत्र होवे, नहीं तो। वातण्डः। यहां अण् हो जाता है। और अण् का ही अपवाद यह सूत्र भी है ॥ १८५ ॥

लुक् स्त्रियाम् ॥ १८६ ॥ अ० ४।१।१०९ ॥

जहां आङ्गिरसी स्त्री वाच्य रहे वहां वतण्ड शब्द से विहित यञ् प्रत्यय का लुक् होवे। जब लुक् हो जाता है तब शार्ङ्गरवादि गण में पढ़ने से ङीन् प्रत्यय हो जाता है जैसे। वतण्डी। जो अङ्गिरा के गोत्र की स्त्री होवे, नहीं तो। वातण्ड्यायनी †। यहां ष्फ प्रत्यय हो जाता है ॥ १८६ ॥

अश्वादिभ्यः फञ् ॥ १८७ ॥ अ० ४।१।११० ॥

यह सूत्र अण् और इञ् का भी बाधक है। गोत्रापत्य अर्थमें अश्व आदि

* यह सूत्र यञ् का अपवाद है। और बभ्रु शब्द गर्गादि के अन्तर्गत लोहितादिकों में पढ़ा है वहां पढ़ने से इस से स्त्रीलिङ्ग में ष्फ प्रत्यय हो जाता है जैसे। बाभ्रव्यायणी। और इस सूत्र में इस बभ्रु शब्द का पाठ नियमार्थ है कि कौशिक गोत्र में ही यञ् प्रत्यय हो अन्य नहीं ॥

† यह वतण्ड शब्द गर्गादि के अन्तर्गत लोहितादिकों में पढ़ा है इस कारण इस से स्त्रीत्व में ष्फ प्रत्यय होकर यह प्रयोग होता है और वतण्ड शब्द शिवादिगण में भी पढ़ा है इससे स्त्रीलिङ्ग में। वातण्डी भी प्रयोग होता है ॥

वसिष्ठस्यापत्यम् । वासिष्ठः । विश्वामित्रः । अन्धक । श्वाफल्कः । रान्धसः । वृष्णि । वासुदेवः । आनिरुद्धः । कुरु । नाकुलः । साहदेवः । * इत्यादि ॥ १८१ ॥

मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः ॥ १९२ ॥ अ० ४ । १ । ११५ ॥

इस मातृ प्रातिपदिक से अण् तो प्राप्त ही है उकारादेश होने के लिये यह सूत्र है । अपत्य अर्थ में संख्यासम् और भद्रपूर्वक मातृशब्द को उत् आदेश और अण्प्रत्यय भी हो जैसे । द्वयोर्मात्रोरपत्यम् । द्वैमातुरः । त्रैमातुरः । षाण्मातुरः । साम्मातुरः । भाद्रमातुरः ।† यहां संख्या आदि का ग्रहण इसलिये है कि सौमात्रः । यहां केवल अण् ही हुआ है ॥ १८२ ॥

कन्यायाः कनीन च ॥ १९३ ॥ अ० ४ । १ । ११६ ॥

यह सूत्र ढक् का अपवाद है । अपत्य अर्थ में कन्याशब्द से अण् प्रत्यय और उस को कनीन आदेश भी होवे जैसे । *कन्याया अपत्यम् । कानीनः* ‡ । १८३ ॥

विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु ॥ १९४ ॥ अ० ४ । १ । ११७ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है । यथासंख्य करके वत्स भरद्वाज और अत्रि-अपत्य वाच्य हो तो विकर्ण शुङ्ग और छगल प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय हो जैसे । विकर्णस्यापत्यम् । वैकर्णः । जो वत्स का गोत्र हो, नहीं तो । वैकर्णिः । शौङ्गः । जो भरद्वाज का गोत्र हो, नहीं तो । शौङ्गिः । छागलः । जो आत्रेयगोत्र हो, नहीं तो । छागलिः । यहां सर्वत्र पक्ष में इञ् प्रत्यय होता है ॥ १८४ ॥

पीलाया वा ॥ १९५ ॥ अ० ४ । १ । ११८ ॥

द्व्यच् पीला प्रातिपदिक से ढक् प्राप्त है उसका यह अपवाद है और पक्ष में ढक् भी होता है और इस को अप्राप्तविभाषा समझना चाहिये क्योंकि अण्

---

* यहां संशय होता है कि शब्द तो सब नित्य हैं फिर अन्धक आदि वंशों के आश्रय से इन का व्याख्यान कैसे बन सकता है क्योंकि वंश तो अनित्य हैं । उत्तर । प्रवाहरूप से कल्प कल्पान्त सृष्टि भी नित्य है और अन्धक आदि अधिकारी शब्द है कि इस प्रकार के कुल का नाम अन्धक होना चाहिये और अन्धक आदि वंश अनित्य में अनादि चले आते हैं । इस प्रकार इन अन्धक आदि शब्दों का वंशों के साथ अनादि-सम्बन्ध बना हुआ है कभी नवीन नहीं हुआ ।

† विमातृ शब्द शुभ्रादिगण में पढ़ा है उस से । वैमात्रेयः । यह भी प्रयोग होता है ।

‡ विचार यह है कि कन्या जिस का विवाह न हो उस को कहते हैं उस का अपत्य कैसे हो सकता है, महाभाष्य में इस का समाधान किया है कि जो विवाह होने से प्रथम ही प्रथम वेर किसी पुरुष के साथ व्यभिचार से गर्भवती हो जावे उस का जो पुत्र हो उस को कानीन कहना चाहिये ।

किसी से प्राप्त नहीं है। अपत्य अर्थ में पीला प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय हो। जैसे। पीलाया अपत्यम्। पैलः। पक्ष में ढक्। पैलेयः ॥ १९५॥

ढक् च मण्डूकात् ॥ १९६ ॥ अ० ४ । १ । ११९ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में मण्डूक प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय हो। और चकार से अण् विकल्प करके होवे। पक्ष में इञ् भी हो जावे। जैसे मण्डूकस्याऽपत्यम्। माण्डूकेयः। माण्डूकः। माण्डूकिः ॥१९६॥

स्त्रीभ्यो ढक् ॥ १९७ ॥ अ० ४ । १ । १२० ॥

यह सूत्र अण् और उस के अपवादों का भी अपवाद है। अपत्य अर्थ में टाबादि स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय विकल्प कर के होवे। ॥१९७॥

आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्॥१९८॥ अ०७।१।२॥

जो प्रत्यय के आदि फ ढ ख छ और घ हैं उन के स्थान में यथासंख्य करके आयन। एय। ईन। ईय। और इय आदेश हों जैसे (फ) नाडायनः (ढ) सौपर्णेयः। वैनतेयः (ख) कुलीनः (छ) शालीयः। पैठरवसीयः (घ) क्षत्रियः इत्यादि ॥ १९८ ॥

वा०—वडवाया वृषे *वाच्ये ॥ १९९ ॥

वड़वा प्रातिपदिक से बैल अपत्य वाच्य होतो ढक् प्रत्यय होवे जैसे। वडवाया अपत्यं वृषो वाडवेयः ॥ १९९ ॥

वा०—अण् कुञ्चाकोकिलात्स्मृतः ॥ २०० ॥

सामान्यापत्य में कुञ्चा और कोकिला शब्द से ढक् का बाधक अण् प्रत्यय होवे जैसे। कुञ्चाया अपत्यं कौञ्चः। कोकिलाया अपत्यं कौकिलः ॥ २०० ॥

द्व्यचः ॥ २०१ ॥ अ० ४ । १ । १२१ ॥

नदी और मानुषीवाची से जो अण् प्रत्यय प्राप्त है उस का यह अपवाद है। अपत्यार्थ में टाबादि स्त्रीप्रत्ययान्त द्व्यच् प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय होवे जैसे। दत्ताया अपत्यम्। दात्तेयः। गौपेयः। इत्यादि। यहां द्व्यच् ग्रहण इसलिये है कि। यमुनाया अपत्यम्। यामुनः। यहां ढक् न होवे ॥ २०१ ॥

---

* यद्यपि वड़वा शब्द घोड़ी का भी वाचक है तथापि [illegible]

इतश्चानिञः ॥ २०२ ॥ अ० ४ । १ । १२२ ॥

यह सूत्र सामान्य अण् का अपवाद है । अपत्यार्थ में इञ् प्रत्ययान्तभिन्न इकारान्त प्रातिपदिक से ढक्प्रत्यय होवे जैसे । अत्रेरपत्यम् । आत्रेयः । नैधेयः । वार्ष्णेयः । कापेयः । इत्यादि यहां इकारान्त इसलिये कहा है कि । दाक्षिः । प्लाक्षिः । इञ्भिन्न इसलिये कहा है कि । दाक्षायणः । प्लाक्षायणः । यहां इञन्त से ढक् न होवे और द्व्यच् की अनुवृत्ति इसलिये है कि । मरीचेरपत्यम् । मारीचः । यहां ढक् को बाध के अण् हो जावे ॥ २०२ ॥

शुभ्रादिभ्यश्च* ॥ २०३ ॥ अ० ४ । १ । १२३ ॥

यह सूत्र इञ् आदि का यथायोग्य अपवाद समझना चाहिये । अपत्यार्थ में शुभ्र आदि प्रातिपदिकों से ढक्प्रत्यय होवे जैसे । शुभ्रस्यापत्यम् । शौभ्रेयः । वैष्टपुरेयः । इत्यादि ॥ २०३ ॥

विकर्णकुषीतकात् काश्यपे ॥ २०४ ॥ अ० ४ । १ । १२४ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है । अपत्य अर्थ में विकर्ण और कुषीतक प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय हो जैसे । विकर्णस्यापत्यं वैकर्णेयः । कौषीतकेयः । यहां काश्यपग्रहण इसलिये है कि । वैकर्णिः । कौषीतकिः । यहां ढक् न होवे ॥ २०४ ॥

भ्रुवो वुक् च ॥ २०५ ॥ अ० ४ । १ । १२५ ॥

यह अण् का अपवाद है । अपत्य अर्थ में भ्रू प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय और इस को वुक् का आगम भी हो जैसे । भ्रुवोऽपत्यम् । भ्रौवेयः ॥ २०५ ॥

कल्याण्यादीनामिनङ् च ॥ २०६ ॥ अ० ४ । १ । १२६ ॥

अपत्यार्थ में कल्याणी आदि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय और इन को इनङ् आदेश भी होवे जैसे । कल्याण्या अपत्यम् । काल्याणिनेयः । ज्यैष्ठिनेयः । कानिष्ठिनेयः †। इत्यादि ॥ २०६ ॥

हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च ॥ २०७ ॥ अ० ७ । ३ । १९ ॥

जो ञित् णित् और कित् तद्धित प्रत्यय परे हों तो हृद् भग और सिन्धु जिन के अन्त में हों उन प्रातिपदिकों के पूर्व और उत्तरपदों में अचों के आदि

---

* इस प्रकार से इस शुभ्रादिगण को आकृतिगण समझना चाहिये कि जिस से । पाण्डवेयः । इत्यादि । अपठित शब्दों में भी ढक् प्रत्यय हो जावे ॥

† यहां औचित्य प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय तो हो ही जाता फिर यह सूत्र इनङ् आदेश होने के लिये है ।

अच् को वृद्धि होवे जैसे। सुभगाया अपत्यम्। सौभागिनेयः। दौर्भागिनेयः। सौहार्दम्। दौर्हार्दम्। सानुसैन्धवः। इत्यादि ॥ २०७ ॥

कुलटाया वा ॥ २०८ ॥ अ० ४ । १ । १२७ ॥

यहां इनङ् आदेश की अनुवृत्ति चली आती है। अपत्यार्थ में कुलटा प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय और इस को इनङ् आदेश होवे जैसे। कुलटाया अपत्यम्। कौलटिनेयः। कौलटेयः ॥ २०८ ॥

चटकाया ऐरक् ॥ २०९ ॥ अ० ४ । १ । १२८ ॥

यह सूत्र ढक् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में चटका शब्द से ऐरक् प्रत्यय हो जैसे। चटकाया अपत्यम्। चाटकैरः ॥ २०९ ॥

वा०—चटका च ॥ २१० ॥

यह वार्त्तिक इञ् का अपवाद है। चटक प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय होवे जैसे। चटकस्याऽपत्यम्। चाटकैरः ॥ २१० ॥

वा०-स्त्रियामपत्ये लुक् ॥ २११ ॥

स्त्री अपत्य होवे तो ऐरक् प्रत्यय का लुक् हो जावे जैसे। चटकाया अपत्यम् स्त्री चटका ॥ २११ ॥

गोधाया ढ्रक् ॥ २१२ ॥ अ० ४ । १ । १२९ ॥

यह भी ढक् का अपवाद है। अपत्य अर्थ में गोधा प्रातिपदिक से ढ्रक् प्रत्यय होवे जैसे। गोधाया अपत्यम्। गौधेरः। शुभ्रादिगण में गोधा शब्द पढ़ा है इस कारण। गौधेयः। यह भी प्रयोग हो जाता है ॥ २१२ ॥

आरगुदीचाम् ॥ २१३ ॥ अ० ४ । १ । १३० ॥

गोधा की अनुवृत्ति आती है। अपत्य अर्थ में गोधा प्रातिपदिक से आरक् प्रत्यय होवे उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में जैसे। गोधाया अपत्यम्। गौधारः * ॥ २१३ ॥

क्षुद्राभ्यो वा † ॥ २१४ ॥ अ० ४ । १ । १३१ ॥

यह भी ढक् का अपवाद है। और पूर्वसूत्र से ढ्रक् की अनुवृत्ति आती है।

---

* इस प्रत्यय के कहने से। गौधारः। प्रयोग बन हो जाता फिर आकारान्तमात्र यह आपन होता है अन्य प्रातिपदिकों से भी आरक् प्रत्यय होता है जैसे। आकारः। पाक्षारः। इत्यादि ॥

† क्षुद्रा उन स्त्रियों को कहते हैं कि जो पती से भर्म से और अपने सम्भाव से रहित होवें ॥

[अ]पत्य अर्थ में चुद्रा आदि प्रातिपदिकों से ढ्रक् प्रत्यय होवे पक्ष में ढक् हो
[जै]से । काणेरः । काणेयः । दासेरः । दासेयः । इत्यादि ॥ २१४ ॥

पितृष्वसुश्छण् ॥ २१५ ॥ अ० ४ । १ । १३२ ॥

यह सूत्र अण् प्रत्यय का बाधक है । अपत्य अर्थ में पितृष्वसृ प्रातिपदिक
से छण् प्रत्यय होवे जैसे । पितृष्वसुरपत्यम् । पैतृष्वस्रीयः ॥ २१५ ॥

ढकि लोपः ॥ २१६ ॥ अ० ४ । १ । १३३ ॥

अपत्य अर्थ में जो ढक् प्रत्यय परे हो तो पितृष्वसृ शब्द के अन्त का लोप
होवे जैसे पैतृष्वसेयः * ॥ २१६ ॥

मातृष्वसुश्च ॥ २१७ ॥ अ० ४ । १ । १३४ ॥

यह भी अण् का अपवाद है । अपत्य अर्थ में मातृष्वसृ शब्द से छण् प्रत्यय
और ढक् के परे मातृष्वसृ शब्द के अन्त का लोप भी होवे जैसे । मातृष्वसुर-
पत्यम् । मातृष्वस्रीयः । मातृष्वसेयः ॥ २१७ ॥

चतुष्पाद्भ्यो ढञ् ॥ २१८ ॥ अ० ४ । १ । १३५ ॥

यह अण् आदि का अपवाद है । अपत्यार्थ में चतुष्पाद् वाची प्रातिप-
दिकों से ढञ् प्रत्यय होवे जैसे । कामण्डलेयः । शौन्तिबाहेयः । यामेयः । मा-
हिषेयः । सौरभेयः । इत्यादि ॥ २१८ ॥

गृष्ट्यादिभ्यश्च ॥ २१९ ॥ अ० ४ । १ । १३६ ॥

यह सूत्र केवल अण् का ही अपवाद है । अपत्य अर्थ में गृष्टि आदि प्राति-
पदिकों से ढञ् प्रत्यय होवे जैसे । गृष्ट्या अपत्यम् । गार्ष्टेयः । हार्ष्टेयः । हालेयः ।
बालेयः । वैथेयः । इत्यादि ॥ २१९ ॥

राजश्वशुराद्यत् ॥ २२० ॥ अ० ४ । १ । १३७ ॥

यह अण् और इञ् दोनों का बाधक है अपत्यार्थ में राजन् और श्वशुर प्रा-
तिपदिकों से यत् प्रत्यय हो जैसे । राज्ञोऽपत्यम् । राजन्यः । श्वशुर्यः ॥ २२० ॥

वा०—राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणम् ॥ २२१ ॥

सूत्र में जो राजन् शब्द से यत् कहा है सो जातिवाची राजन् शब्द का ग्रह-
ण समझना चाहिये जैसे । राजन्यः । जो क्षत्रिय होवे, नहीं तो । राजनः ॥ २२१ ॥

* यहां ढक् प्रत्यय के परे का बाध कहा है सो २१६ सूत्र से पितृष्वसृ शब्द से ढक् प्रत्यय होता है ॥

क्षत्राद् घः ॥ २२२ ॥ अ० ४ । १ । १३८ ॥

यह सूत्र इञ् का बाधक है । अपत्यार्थ में क्षत्र प्रातिपदिक से घ प्रत्यय होवे जैसे । क्षत्रियः । यहां भी जाति ही समझनी चाहिये । क्योंकि जहां जाति न हो वहां । क्षात्रिः । इञन्त प्रयोग होवे ॥ २२२ ॥

कुलात् खः ॥ २२३ ॥ अ० ४ । १ । १३९ ॥

यह भी इञ् का ही अपवाद है । अपत्य अर्थ में कुल शब्द से ख प्रत्यय हो। उत्तर सूत्र में अपूर्वपदग्रहण करने से इस सूत्र में पूर्वपदसहित और केवल का भी ग्रहण होता है जैसे । श्रोत्रियकुलीनः । आढ्यकुलीनः । कुलीनः । इत्यादि ॥ २२३ ॥

अपूर्वपदादन्यतरस्यां*यड्ढकञौ ॥ २२४ ॥ अ० ४ । १ । १४० ॥

अपत्यार्थ में पूर्वपदरहित कुल शब्द से यत् और ढकञ् प्रत्यय विकल्प कर के होवें जैसे । कुल्यः । कौलेयकः । कुलीनः । यहां पदग्रहण इसलिये है कि । बहुच् पूर्वपद हो तो भी ख प्रत्यय हो जावे । जैसे । बहुकुल्यः । बहुकौलेयकः । बहुकुलीनः ॥ २२४ ॥

महाकुलादञ्खञौ ॥ २२५ ॥ अ० ४ । १ । १४१ ॥

यहां विकल्प की अनुवृत्ति आती है । अपत्यार्थ में महाकुल प्रातिपदिक से अञ् और खञ् प्रत्यय विकल्प कर के होवें पक्ष में ख होवे जैसे । माहाकुलः । माहाकुलीनः । महाकुलीनः ॥ २२५ ॥

दुष्कुलाड्ढक् ॥ २२६ ॥ अ० ४ । १ । १४२ ॥

अपत्यार्थ में दुष्कुल शब्द से ढक् प्रत्यय विकल्प करके हो पक्ष में ख हो जावे जैसे । दौष्कुलेयः । दुष्कुलीनः ॥ २२६ ॥

स्वसुश्छः ॥ २२७ ॥ अ० ४ । १ । १४३ ॥

अपत्य अर्थ में स्वसृ प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हो जैसे । स्वसुरपत्यम् । स्वस्रीयः । यह अण् का बाधक है ॥ २२७ ॥

भ्रातुर्व्यच्च ॥ २२८ ॥ अ० ४ । १ । १४४ ॥

यह सूत्र भी अण् का अपवाद है । अपत्यार्थ में भ्रातृ शब्द से व्यत् और चकार से छ प्रत्यय भी होवे जैसे । भ्रातृव्यः । भ्रात्रीयः ॥ २२८ ॥

* [illegible]

व्यन् सपत्ने* ॥ २२९ ॥ अ० ४ । १ । १४५ ॥

सपत्न अर्थात् शत्रु वाच्य होतो भ्रातृ प्रातिपदिक से व्यन् प्रत्यय हो। पाप्मना भ्रातृव्येण। भ्रातृव्यः कण्टकः ॥ २२८ ॥

रेवत्यादिभ्यष्ठक् ॥ २३० ॥ अ० ४ । १ । १४६ ॥

यह सूत्र ढक् आदि का अपवाद है। अपत्यार्थ में रेवती आदि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो। जैसे। रेवत्या अपत्यम्। रैवतिकः। आश्वपालिकः। माणिपालिकः। इत्यादि ॥ २३० ॥

गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च ॥ २३१ ॥ अ० ४ । १ । १४७ ॥

यह ढक् का अपवाद है। निन्दित युवापत्य अर्थ में गोत्रसंज्ञक स्त्रीवाची प्रातिपदिक से ण और चकार से ठक् प्रत्यय होवें जैसे। गार्ग्या अपत्यं जाल्मो गार्गः। गार्गिकः। ग्लुचुकायन्या अपत्यं ग्लौचुकायनः। ग्लौचुकायनिकः। यहां गोत्रग्रहण इसलिये है कि। कारिकेयो जाल्मः। यहां कारिका शब्द गोत्रप्रत्ययान्त नहीं है। स्त्रीवाची इसलिये है कि। औपगविर्जाल्मः। यहां न होवे। कुत्सन इसलिये है कि। गार्गेयो माणवकः। यहां निन्दा के न होने से उसमें ढक् हो गया किन्तु ण और ठक् नहीं हुए ॥ २३१ ॥

वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम् ॥ २३२ ॥ अ० ४ । १ । १४८ ॥

यहां कुत्सन पद की अनुवृत्ति आती है। अपत्य और कुत्सन अर्थ में वृद्धसंज्ञक सौवीर गोत्रवाची प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय बहुल करके हो जैसे। भागवित्तेरपत्यम्। भागवित्तिकः। तार्णबिन्दवस्य युवापत्यम्। तार्णबिन्दविकः। पक्ष में फक् और इञ् हो जाते हैं। भागवित्तायनः। तार्णबिन्दविः। यहां वृद्धग्रहण अवृद्धों की निवृत्ति के लिये है। सौवीरग्रहण इसलिये है कि। औपगविः। यहां न होवे। और कुत्सन की अनुवृत्ति इसलिये है कि। भागवित्तायनो माणवकः। यहां भी ठक् न होवे ॥ २३२ ॥

यामुन्दायनीयः । यामुन्दायनिकः । यहां कुत्सनग्रहण इसलिये है कि । यामुन्दा-यनिः । यहां अण् का लुक् हो गया है । सौवीर इसलिये है कि । तैकायनिः। यहां छ न होवे ॥ २३३ ॥

फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ ॥ २३४ ॥ अ० ४ । १ । १५०

सौवीर पद की अनुवृत्ति यहां आती है और कुत्सन पद की निवृत्ति हुई। और यह सूत्र फक् प्रत्यय का अपवाद है । अपत्य अर्थ में सौवीर गोत्रवाची फाण्टाहृति और मिमत प्रातिपदिकों से ण और फिञ् प्रत्यय होवे जैसे । फाण्टाहृतेरपत्यम् । फाण्टाहृतः । फाण्टाहृतायनिः । मैमतः । मैमतायनिः । यहां सौवीर का ग्रहण इसलिये है कि । फाण्टाहृतायनः । मैमतायनः । यहां ण और फिञ् न हुए ॥ २३४ ॥

कुर्वादिभ्यो ण्यः ॥ २३५ ॥ अ० ४ । १ । १५१ ॥

यह भी इञ् आदि का बाधक यथायोग्य समझना चाहिये । अपत्यार्थ में कुरु आदि प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय हो जैसे । कुरोरपत्यम् कौरव्यः । गार्ग्यः । माङ्गुष्यः । आजमारक्यः । इत्यादि ॥ २३५ ॥

सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ॥ २३६ ॥ अ० ४ । १ । १५२ ॥

यह सूत्र इञ् का अपवाद है । अपत्यार्थ में सेनान्त लक्षण और कारि अर्थात् कुंभार आदि कारीगरवाची प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय होवे जैसे । सेनान्त । भीमसेनस्यापत्यम् । भैमसेन्यः* । कारिषेण्यः । हारिषेण्यः । वैश्वकसेन्यः । औपसेन्यः । इत्यादि । लक्षण । लाक्षण्यः । कारि । तान्तुवाय्यः । कौम्भकार्यः । इत्यादि ॥ २३६ ॥

उदीचामिञ् ॥ २३७ ॥ अ० ४ । १ । १५३ ॥

यहां सेनान्त आदि की अनुवृत्ति आती है । अपत्यार्थ में उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में सेनान्त लक्षण और कारिवाची प्रातिपदिकों से इञ् प्रत्यय होवे जैसे । भीमसेनस्यापत्यम् । भैमसेनिः । हारिषेणिः । लाक्षणिः । तान्तुवायिः । कौम्भकारिः । नापितिः । इत्यादि ॥ २३७ ॥

तिकादिभ्यः फिञ् ॥ २३८ ॥ अ० ४ । १ । १५४ ॥

यह भी यथायोग्य इञ् आदि का बाधक है । अपत्यार्थ में तिक आदि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय होवे जैसे । तिकस्यापत्यम् । तैकायनिः । कैतवायनिः । शांभ्रायनिः । इत्यादि ॥ २३८ ॥

* यद्यपि कुरुवाची होने से भीमसेन शब्द से [illegible]

कौसल्यकार्मार्य्याभ्यां च ॥ २३९ ॥ अ० ४ ।१।१५५ ॥

यह इञ् प्रत्यय का बाधक है । अपत्यार्थ में कौसल्य और कार्मार्य शब्दों से फिञ् प्रत्यय हो जैसे।कौसल्यस्यापत्यम् । कौसल्यायनिः।कार्मार्य्यायणिः ॥२३९॥

वा०—फिञ्प्रकरणे दगुकोसलकर्मारच्छागवृषाणां युट् च ॥२४०॥

फिञ्प्रकरण में दगु कोसल कर्मार छाग और वृष प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय और प्रत्यय को युट् का आगम होवे जैसे । दागव्यायनिः । कौसल्यायनिः । कार्मार्य्यायणिः । छाग्यायनिः । वार्ष्यायणिः ॥ २४० ॥

अणो द्व्यचः ॥ २४१ ॥ अ० ४ । १ । १५६ ॥

यह सूत्र इञ् प्रत्यय का अपवाद है । अपत्यार्थ में अणन्त द्व्यच् प्रातिपदिक से फिञ् प्रत्यय हो जैसे । कार्त्तस्यापत्यम् । कार्त्तायणिः । हार्त्तायणिः । यास्कायनिः । इत्यादि । यहां अणन्त इसलिये है कि । दाक्षायणः।यहां न हो। और द्व्यच् इसलिये कहा है कि । औपगविः । यहां भी फिञ् न होवे ॥ २४१ ॥

वा०—त्यदादीनां वा फिञ् वक्तव्यः * ॥ २४२ ॥

अपत्यार्थ में त्यदादि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय विकल्प करके होवे जैसे। त्यादायनिः । त्यादः । यादायनिः । यादः । तादायनिः । तादः।इत्यादि॥२४२॥

उदीचां वृद्धादगोत्रात् ॥ २४३ ॥ अ० ४ । १ । १५७ ॥

यह भी इञ् आदि का बाधक है । अपत्यार्थ में गोत्रभिन्न वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से उत्तरदेशीय आचार्य्यों के मत में फिञ् प्रत्यय होवे जैसे। आम्रगुप्तस्यापत्यम् । आम्रगुप्तायनिः । ग्रामगुप्तायनिः । ग्रामरक्षायणिः । नापितायनिः । इत्यादि । यहां उत्तरदेशीय आचार्यों का मत इसलिये कहा है कि । आम्रगुप्तिः। यहां फिञ् न होवे । वृद्धसंज्ञक इसलिये है कि । याज्ञदत्तिः । यहां भी न हो। और गोत्र का निषेध इसलिये है कि । औपगविः । यहां भी न होवे ॥ २४३ ॥

वाकिनादीनां कुक् च ॥ २४४ ॥ अ० ४ । १ । १५८ ॥

उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में अपत्य अर्थ में वाकिन आदि प्रातिपदिकों से फिञ् प्रत्यय और इन को कुक् का आगम भी होवे जैसे । वाकिनस्यापत्यम् । वाकिनकायनिः । पक्ष में । वाकिनिः । गारेधकायनिः । गारेधिः । इत्यादि । यह अण् और इञ् दोनों का अपवाद है ॥ २४४ ॥

* यह वार्त्तिक अण् प्रत्यय का बाधक है । और इस में अप्राप्तविभाषा है क्योंकि फिञ् किसी सूत्र वा वार्त्तिक से प्राप्त नहीं । फिञ् के विकल्प से पक्ष में अण् भी हो जाता है ।

पुत्रान्तादन्यतरस्याम् ॥ २४५ ॥ अ० ४ । १ । १५९ ॥

यह अण् का अपवाद और इस में अप्राप्तविभाषा है । उत्तरदेशीय आचार्यों के मत में पुत्रान्त प्रातिपदिक से फिञ् प्रत्यय और इन को कुक् का आगम विकल्प करके होवे जैसे । गार्गीपुत्रस्यापत्यम् । गार्गीपुत्रकायणिः । गार्गीपुत्रायणिः । गार्गीपुत्रिः । वात्सीपुत्रकायणिः । वात्सीपुत्रायणिः । वात्सीपुत्रिः । *इत्यादि ॥ २४५ ॥

प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम् ॥ २४६ ॥ अ० ४।१।१६० ॥

अपत्यार्थ और प्राचीन आचार्यों के मत में वृद्धसंज्ञारहित प्रातिपदिक से फिन् प्रत्यय बहुल करके हो जावे जैसे । ग्लुचुकस्यापत्यम् । ग्लुचुकायनिः । म्लुचुम्बकायनिः । यहां प्राचीनों का ग्रहण इसलिये है कि । ग्लौचुकिः । म्लौचुम्बकिः । यहां इञ् हो जाता है और वृद्ध का निषेध इसलिये किया है कि । राजदन्तिः । यहां फिन् न होवे ॥ २४६ ॥

मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च ॥ २४७ ॥ अ० ४।१।१६१ ॥

जाति अर्थ हो तो मनु शब्द से अञ् और यत् प्रत्यय और मनु शब्द को षुक् का आगम हो जावे जैसे । मानुषः । मनुष्यः । यहां प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय से जाति का बोध होता है । यहां अपत्य अर्थ की विवक्षा नहीं है । और जहां अपत्य अर्थ विवक्षित होता है । वहां अण् ही हो जाता है जैसे । मनोरपत्यम् । मानवी प्रजा ॥ २४७ ॥

का०—अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः ।
नकारस्य च मूर्द्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः ॥ २४८ ॥

मूढ निन्दित अपत्य अर्थ में मनु प्रातिपदिक से औत्सर्गिक अण् प्रत्यय का स्मरण करना चाहिये अर्थात् अण् प्रत्यय हो जावे और मनु शब्द के नकार को णत्व होवे जैसे । मनोरपत्यं कुत्सितो मूढो माणवः ॥ २४८ ॥

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ॥ २४९ ॥ अ० ४।१।१६२ ॥

जो पौत्रप्रभृति अर्थात् नाती से आदि ले कर अपत्य नाम सन्तान होता है वह गोत्रसंज्ञक होवे जैसे । गर्गस्याऽपत्यं पौत्रप्रभृति गार्ग्यः । वात्स्यः । यहां पौत्रप्रभृति

* यहां (उदीचां वृद्धा०) इस से [illegible] लिये यह सूत्र है । एवं कुक् [illegible]

इसलिये कहा है कि । अनन्तरापत्य अर्थात् पुत्र अर्थ में गोत्र का प्रत्यय न होवे जैसे । कौञ्जिः । गार्गिः * । इत्यादि ॥ २४८ ॥

जीवति तु वंश्ये युवा ॥ २५० ॥ अ० ४ । १ । १६३ ॥

जो उत्पत्ति का प्रबन्ध है सो वंश और जो उस वंश में होवे वह वंश्य कहाता है जब तक पिता आदि कुटुम्ब के हृद्ध पुरुष जीवते हों तब तक जो पौत्र आदि सन्तानों के अपत्य हैं वे युवसंज्ञक होवें । यहां तु शब्द निश्चयार्थ है कि उस समय युवसंज्ञा ही हो गोत्रसंज्ञा न हो जैसे । गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । इत्यादि ॥ २५० ॥

भ्रातरि च ज्यायसि ॥ २५१ ॥ अ० ४ । १ । १६४ ॥

जो बड़ा भाई जीता हो और पिता आदि मर भी गये हों तो छोटे भाई की युवसंज्ञा जाननी चाहिये जैसे । गार्ग्यायणः । वात्स्यायनः । दाक्षायणः । प्लाक्षायणः । इत्यादि ॥ २५१ ॥

वाऽन्यस्मिन् सपिण्डे स्थविरतरे जीवति † ॥ २५२ ॥ अ० ४ । १ । १६५ ॥

जो भ्राता से अन्य सात पीढ़ी में चाचा दादा आदि अधिक अवस्थावाले पुरुष जीते हों तो भी पौत्रप्रभृति के अपत्यों को विकल्प करके युवसंज्ञा होवे जैसे । गर्गस्यापत्यं गार्ग्यो वा गार्ग्यायणः । वात्स्यो वा वात्स्यायनः । दाक्षिर्वा दाक्षायणः । इत्यादि ॥ २५२ ॥

वा०—वृद्धस्य च पूजायाम् ॥ ‡ ॥ २५३ ॥

वृद्ध अर्थात् जिस प्रशंसित को वृद्धसंज्ञा विधान की है सो भी पूजा अर्थ में विकल्प करके युवसंज्ञक होवे जैसे । तत्र भवान् गार्ग्यायणः । गार्ग्यो वा । तत्र भवान् वात्स्यायनः । वात्स्यो वा । तत्र भवान् दाक्षायणः । दाक्षिर्वा । इत्यादि । यहां पूजायाम् इस लिये है कि । गार्ग्यः । यहां युवसंज्ञा न हो ॥ २५३ ॥

---

* [illegible]

† [illegible]

‡ [illegible]

वा०—यूनश्च कुत्सायाम् ॥ २५४ ॥

कुत्सा नाम निन्दा अर्थ में युवा को युवसंज्ञा विकल्प कर के होवे जो। गार्ग्यो जाल्मः। गार्ग्यायणो वा। वात्स्यो जाल्मः। वात्स्यायनो वा। दाक्षिर्जाल्मो दाक्षायणो वा। इत्यादि ॥ २५४ ॥

जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् ॥ २५५ ॥ अ० ४।१।१६८

जो क्षत्रियवाची जनपद शब्द हो तो उस से अपत्यार्थ में अञ् प्रत्यय हो। जैसे। पाञ्चालः। ऐक्ष्वाकः। वैदेहः। इत्यादि यहां जनपद शब्द से इस कहा है कि। द्रुह्योरपत्यं द्रौह्यवः। पौरवः। यहां अञ् न होवे। क्षत्रिय का ग्रहण इसलिये है कि। ब्राह्मणस्य पाञ्चालस्यापत्यम्। पाञ्चालिः। वैदेहिः इत्यादि में भी अञ् प्रत्यय न होवे ॥ २५५ ॥

वा०—क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदशब्दात् तस्य राजन्यापत्यवत् ॥ २५६ ॥

जो क्षत्रिय के तुल्य जनपदवाची शब्द है उस से राजा के सम्बन्ध में अपत्य के तुल्य प्रत्यय होवे जैसे। पञ्चालानां राजा पाञ्चालः। वैदेहः। मागधः इत्यादि ॥ २५६ ॥

साल्वेयगान्धारिभ्यां च ॥ २५७ ॥ अ० ४।१।१६९ ॥

यह वक्ष्यमाण यञ् प्रत्यय का अपवाद है। अपत्य और तद्राज अर्थ में साल्वेय और गान्धारि इन शब्दों से अञ् प्रत्यय होवे जैसे। साल्वेयानामपत्यं तेषां राजा वा साल्वेयः। गान्धारः ॥ २५७ ॥

द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ॥ २५८ ॥ अ० ४।१।१७० ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में क्षत्रियवाची दो अच् वाले शब्द मगध कलिङ्ग और सूरमस प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे जैसे। अङ्गानामपत्यं तेषां राजा

वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ॥ २५९ ॥ अ० ४ । १ । १७१ ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में जनपद क्षत्रियवाची वृद्धसंज्ञक इकारान्त कोसल और अजाद प्रातिपदिक से ञ्यङ् प्रत्यय होवे । यह सूत्र अञ् का अपवाद है जैसे । वृद्ध । आम्बष्ठानामपत्यं तेषां राजा वा । आम्बष्ठ्यः । सौवीर्यः । इकारान्त । आवन्त्यः । कौन्त्यः । कौसल्यः । आजाद्यः * ॥ २५९ ॥

वा०-पाण्डोर्ज्जनपदशब्दात् क्षत्रियशब्दाड्ड्यण् वक्तव्यः ॥२६०॥

जो जनपदवाची पाण्डु क्षत्रिय शब्द है उस से अपत्य और तद्राज अर्थ में ड्यण् प्रत्यय होवे जैसे । पाण्डूनामपत्यं तेषां राजा वा पाण्ड्यः ॥ २६० ॥

कुरुनादिभ्यो ण्यः ॥ २६१ ॥ अ० ४ । १ । १७२ ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में जनपद क्षत्रियवाची कुरु और नकारादि प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय होवे । यह अण् और अञ् का अपवाद है जैसे । कुरूणामपत्यं तेषां राजा वा कौरव्यः । नकारादि । नैषध्यः । नैपथ्यः।इत्यादि ॥ २६१ ॥

साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ्॥२६२॥अ० ४।१।१७३॥

यह सूत्र अञ् का अपवाद है । अपत्य और तद्राज अर्थ में साल्व नाम देशविशेष के अवयव प्रत्यग्रथ कलकूट और अश्मक प्रातिपदिक से इञ् प्रत्यय होवे जैसे। औदुम्बरिः । तैलखलिः । माद्रकारिः । यौगन्धरिः । भौलिङ्गिः । शारदण्डिः। प्रात्यग्रथिः । कालकूटिः । आश्मकिः । इत्यादि ॥ २६२ ॥

ते तद्राजाः ॥ २६३ ॥ अ० ४ । १ । १७४ ॥

(जनपदशब्दात्०) इस सूत्र से लेके यहां तक जो २ प्रत्यय कहे हैं वे तद्राजसंज्ञक होते हैं । इस का यह प्रयोजन है कि बहुवचन में लुक् होजावे जैसे। पाञ्चालः । पाञ्चालौ । पञ्चालाः । इत्यादि ॥ २६३ ॥

कम्बोजाल्लुक् ॥ २६४ ॥ अ० ४ । १ । १७५ ॥

अपत्य और तद्राज अर्थ में कम्बोज शब्द से विहित जो अञ् प्रत्यय उस का लुक् हो जैसे। कम्बोजस्यापत्यं तेषां राजा वा । कम्बोजः ॥ २६४ ॥

वा०-कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनं चोलाद्यर्थम् ॥ २६५ ॥

कम्बोज शब्द से जो लुक् कहा है सो कम्बोज आदि से कहना चाहिये जैसे। कम्बोजः । चोलः । केरलः । शकः । यवनः ॥ २६५ ॥

---

* यहां इकार में तपरकरण इसलिये है कि जो कुमारी जनपद शब्द दीर्घ ईकारान्त है उस से ञ्यङ् प्रत्यय न होवे किन्तु अण् प्रत्यय ही आवे जैसे। कौमारः।

स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ॥ २६६ ॥ अ० ४ । १ । १७६

जो स्त्री प्रत्यय वा राज्ञी अभिधेय हो तो अवन्ति कुन्ति और कुरु प्रातिपदिकों से जो उत्पन्न तद्राजसंज्ञक प्रत्यय उस का लुक् हो जैसे । अवन्तीनामपत्यं स्त्री राज्ञी वा । अवन्ती । कुन्ती । कुरूः । यहां स्त्रीग्रहण इसलिये है कि । आवन्त्यः । कौन्त्यः । कौरव्यः । * यहां लुक् न होवे ॥ २६६ ॥

अतश्च † ॥ २६७ ॥ अ० ४ । १ । १७७ ॥

जो स्त्रीवाच्य हो तो तद्राजसंज्ञक अकार प्रत्यय का लुक् होवे जैसे । मद्राणामपत्यं तद्राज्ञी वा । मद्री । शूरसेनी । इत्यादि यहां जातिवाची से (जातेरस्त्री०) इस करके ङीप् प्रत्यय हो जाता है ॥ २६७ ॥

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥ २६८ ॥ अ० ४ । १ । १७८ ॥

प्राच्य पूर्वदेशों के विशेषनाम भर्गादि और यौधेयादि प्रातिपदिकों से विहित तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् न होवे जैसे । प्राच्य । अङ्गानामपत्यं तद्राज्ञी वा । आङ्गी । वाङ्गी । मागधी । इत्यादि । भर्गादि । भार्गी । कारूषी । कैकेयी । इत्यादि । यौधेयादि । यौधेयी । शौभ्रेयी । शौक्रेयी । इत्यादि ॥ २६८ ॥

॥ इति प्रथमः पादः ॥

॥ अथ द्वितीयः पादः ॥

तेन रक्तं रागात् ॥ २६९ ॥ अ० ४ । २ । १ ॥

यहां समर्थों का प्रथम आदि सब की अनुवृत्ति चली आती है । तृतीयासमर्थ रङ्गवाची प्रातिपदिक से, रंगा है इस अर्थ में जिस से जो प्रत्यय प्राप्त हो वह हो जावे जैसे । कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रं कौसुम्भम् । काषायम् । माञ्जिष्ठम् । इत्यादि यहां रंगवाची का ग्रहण इसलिये है कि । देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम् । यहां प्रत्यय की उत्पत्ति न होवे ॥ २६९ ॥

लाक्षारोचनाट्ठक् ॥ २७० ॥ अ० ४ । २ । २ ॥

यहां पूर्व सूत्र के सब पदों की अनुवृत्ति चली आती है । लाक्षादि और रोचन

---

* यहां अवन्ति और कुन्ति शब्द से इञावान् के होने से (वृद्धेत्कोसला०) इस से ञ्यङ्, और कुरु शब्द से [illegible] प्रत्यय (कुर्वना०) इस उक्त सूत्र से हो जाते हैं ।

† इस सूत्र से तदन्तविधि अर्थात् अकारान्त [illegible] का लुक् [illegible] पूर्वसूत्र में [illegible] शब्दों से लुक् कहा है वही प्राप्त है [illegible] लुक् [illegible] पूर्वसूत्र में [illegible]

प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । लाक्षया रक्तं वस्त्रं लाक्षिकम् । रौचनिकम् । अधिकार होने से अण् प्रत्यय पाता है उस का बाधक यह सूत्र है ॥२७०॥

वा०-ठक्प्रकरणे शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् ॥ २७१ ॥

अण् का ही अपवाद यह भी वार्त्तिक है । शकल और कर्दम प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । शकलेन रक्तं शाकलिकम् । कार्दमिकम् ॥ २७१ ॥

वा०-नील्या अन् ॥ २७२ ॥

नीली प्रातिपदिक से अन् प्रत्यय होवे जैसे । नील्या रक्तं नीलम् ॥ २७२ ॥

वा०-पीतात्कन् ॥ २७३ ॥

पीत प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होवे जैसे । पीतेन रक्तं पीतम् ॥ २७३ ॥

वा०-हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् ॥ २७४ ॥

हरिद्रा और महारजना प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय होवे जैसे । हरिद्रया रक्तं हारिद्रम् * । माहारजनम् ॥ २७४ ॥

नक्षत्रेण युक्तः कालः ॥ २७५ ॥ अ० ४ । २ । ३ ॥

युक्त काल अर्थ जो अभिधेय हो तो तृतीयासमर्थ नक्षत्रविशेषवाची प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होवे जैसे । पुष्येण युक्तः कालः पौषी रात्री । पौषमहः । माघी रात्री । माघमहः । इत्यादि यहां नक्षत्रवाची का ग्रहण इसलिये है कि । चन्द्रमसा युक्ता रात्री । यहां प्रत्यय न होवे ॥ २७५ ॥

लुबविशेषे ॥ २७६ ॥ अ० ४ । २ । ४ ॥

जहां काल का अवयवरूप कोई विशेष अर्थ विदित न हो वहां पूर्व सूत्र से जो विहित प्रत्यय उस का लुप् हो जावे जैसे । पुष्येण युक्तः कालोऽद्य पुष्यः । अद्य कृत्तिका । अद्य रोहिणी । यहां अविशेष इसलिये कहा है कि पौषी रात्री । पौषमहः । यहां लुप् न होवे ॥ २७६ ॥

दृष्टं साम ॥ २७७ ॥ अ० ४ । २ । ७ ॥

सामवेद का देखना अर्थात् पढ़ना पढ़ाना विचारना अर्थ हो तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से अण् आदि यथाप्राप्त प्रत्यय होवें जैसे । वसिष्ठेन दृष्टं

---

* (हारिद्रो कुक्कुटस्य पादः) हरिद्रा से रंगे हुए के समान हर्दे के पद हैं । यह हरिद्रा शब्द से इसी मान के अञ् प्रत्यय हो जाता है ॥

साम वासिष्ठम्। वैश्वामित्रम्। देवेन दृष्टं साम दैव्यं दैवं वा। प्रजापतिना
साम प्राजापत्यम्। इत्यादि ॥ २७७ ॥

वा०—सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढक् * ॥ २७८ ॥

यहां से आगे जितने प्राग्दीव्यतीय अर्थ हैं वे इस वार्त्तिक में सर्वत्र
विवक्षित हैं। प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अग्नि और कलि प्रातिपदिकों से ढक्
होवे जैसे। अग्निना दृष्टं सामाग्नेयम्। अग्नेरागतमाग्नेयम्। अग्नेः समाग्नेय
अग्निर्देवताऽस्याग्नेयम्। इत्यादि। इसी प्रकार कलिना दृष्टं साम कालेयम्।
आदि भी समझो ॥ २७८ ॥

का०—दृष्टे सामनि जाते च द्विरण् डिद्वा विधीयते।
तीयादीकङ् न विद्याया गोत्रादङ्कवदिष्यते ॥ २७९

सामवेद के देखने अर्थ में अण् प्रत्यय विकल्प करके डित् संज्ञक होवे
नसा दृष्टं साम। औशनसम्। औशनम्। यहां डित् पक्ष में टि का लो

साम वासिष्ठम्। वैश्वामित्रम्। देवेन दृष्टं साम दैव्यं दैवं वा। प्रजापतिना दृष्टं साम प्राजापत्यम्। इत्यादि ॥ २७७ ॥

वा०—सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढक् ० ॥ २७८ ॥

यहां से आगे जितने प्राग्दीव्यतीय अर्थ हैं वे इस वार्त्तिक में सर्वत्र शब्द से विवक्षित हैं। प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अग्नि और कलि प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होवे जैसे। अग्निना दृष्टं सामाग्नेयम्। अग्नेरागतमाग्नेयम्। अग्नेः अपत्यमाग्नेयम्। अग्निर्देवताऽस्याग्नेयम्। इत्यादि। इसी प्रकार कलिना दृष्टं साम कालेयम्। इत्यादि भी समझो। २७८।

का०—दृष्टे सामनि जाते च द्विरण् डिद्वा विधीयते।
तीयादीकक् न विद्याया गोत्रादङ्कवदिष्यते ॥ २७९ ॥

सामवेद के देखने अर्थ में अण् प्रत्यय विकल्प करके डित् संज्ञक होवे जैसे।

रथरथामैथः । काम्बलः । वाम्रः। इत्यादि यहां रथ का ग्रहण इसलिये किया है कि । वस्त्रेण परिहृतं शरीरम् । यहां प्रत्यय न होवे ॥ २८० ॥

कौमाराऽपूर्ववचने ॥ २८१ ॥ अ० ४ । २ । १२ ॥

पूर्व जिसका किसी के साथ विवाहविषयक कथन भी न हुआ हो उस अपूर्ववचन अर्थ में कुमारी शब्द से अण् प्रत्ययान्त कौमार निपातन किया है ॥२८१॥

वा०—कौमारापूर्ववचन इत्युभयतः स्त्रिया अपूर्वत्वे ॥ २८२ ॥

स्त्री का अपूर्ववचन अर्थ हो तो स्त्री और पुल्लिङ्ग में कौमार शब्द निपातन किया है जैसे । अपूर्वपतिं कुमारीमुपपन्नः कौमारो भर्त्ता । अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्य्या * ॥ २८२ ॥

तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ॥ २८३ ॥ अ० ४ । २ । १३ ॥

उद्धृत अर्थात् रखने अर्थ में सप्तमीसमर्थ पात्रवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे जैसे । पञ्चकपालेषूद्धृत ओदनः पाञ्चकपालः † । शरावेषूद्धृतः शारावः । इत्यादि यहां पात्रवाची का ग्रहण इसलिये है कि । पाणावुद्धृत ओदनः । यहां प्रत्यय न होवे ॥ २८३ ॥

सास्मिन् पौर्णमासीति ॥ २८४ ॥ अ० ४ । २ । २० ॥

अधिकरण अर्थ वाच्य होवे तो पौर्णमासी विशेषणवाची प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें जैसे । पुष्येण युक्ता पौर्णमासी पौषी । पौषी पौर्णमासी अस्मिन् मासे स पौषो मासः । पौषोऽर्धमासः । पौषः संवत्सरः । इसी प्रकार । मघानक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी माघी । साऽस्मिन्वर्त्तत इति माघो मासः । फाल्गुनः । चैत्रः । वैशाखः । ज्यैष्ठः । आषाढः । श्रावणः । भाद्रपदः । आश्विनः । कार्त्तिकः । मार्गशीर्षः । इस सूत्र में इतिकरण से संज्ञाग्रहण का प्रयोजन सूत्रकार का है ॥ २८४ ॥

वा०—साऽस्मिन् पौर्णमासीति संज्ञाग्रहणम् ‡ ॥ २८५ ॥

(साऽस्मिन्०) इस सूत्र में संज्ञाग्रहण करना चाहिये अर्थात् जहां प्रकृति

---

* [illegible]

† [illegible]

‡ [illegible]

प्रत्यय के समुदाय से महीनों की संज्ञा प्रकट हो वहीं प्रत्यय होवे और । पौषी पौर्णमास्यस्मिन् पञ्चदशरात्रे । यहां प्रत्यय न हो ॥ २८५ ॥

आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् ॥ २८६ ॥ अ० ४ । २ । २१ ॥

यह सूत्र पूर्वसूत्र से प्राप्त अण् का अपवाद है । पौर्णमासी समानाधिकरण आग्रहायणी और अश्वत्थ प्रातिपदिकों से अधिकरण अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जैसे । आग्रहायणी पौर्णमास्यस्मिन् मासे स आग्रहायणिको मासः । पर्णमासे वा आश्वत्थिकः ॥ २८६ ॥

विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्त्तिकीचैत्रीभ्यः ॥ २८७ ॥ अ० ४ । २ । २२ ॥

पौर्णमासी समानाधिकरण फाल्गुनी श्रवणा † कार्त्तिकी और चैत्री प्रातिपदिकों से अधिकरण अर्थ में विकल्प करके ठक् प्रत्यय हो और पक्ष में अण् हो जावे जैसे । फाल्गुनी पौर्णमास्यस्मिन् मासे स फाल्गुनिको मासः । फाल्गुनो मासः । श्रावणिको मासः । श्रावणो मासः । कार्त्तिकिको मासः । कार्त्तिको मासः । चैत्रिको मासः । चैत्रो मासः ॥ २८७ ॥

साऽस्य देवता ॥ २८८ ॥ अ० ४ । २ । २३ ॥

शेषकारक वाच्य हो तो प्रथमासमर्थ देवताविशेष वाची प्रातिपदिकों से यथायोग्य प्रत्यय हो जैसे । प्रजापतिर्देवताऽस्य प्राजापत्यम् ‡ । इन्द्रो देवताऽस्य ऐन्द्रं हविः । ऐन्द्रो मन्त्रः । ऐन्द्री ऋक् । इत्यादि ॥ २८८ ॥

कस्येत् ॥ २८९ ॥ अ० ४ । २ । २४ ॥

प्रथमासमर्थ देवता समानाधिकरण वायु ऋतु पितृ और उषस् प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में अण् का बाधक यत् प्रत्यय होवे जैसे। वायुर्देवताऽस्य वायव्यम्। ऋतव्यम्। पित्र्यम्। उषस्यम् ॥ २९० ॥

द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च ॥ २९१ ॥ अ० ४। २। ३१ ॥

यहां यत् की अनुवृत्ति पूर्वसूत्र से चली आती है। प्रथमासमर्थ देवता समानाधिकरण द्यावापृथिवी आदि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में छ और यत् प्रत्यय होवें जैसे। द्यावापृथिव्यौ देवते अस्य द्यावापृथिवीयम्। द्यावापृथिव्यम्। शुनासीरीयम्। शुनासीर्यम्। मरुत्वतीयम्। मरुत्वत्यम्। अग्नीषोमीयम्। अग्नीषोम्यम्। वास्तोष्पतीयम्। वास्तोष्पत्यम्। गृहमेधीयम्। गृहमेध्यम् ॥ २९१ ॥

कालेभ्यो भववत् ॥ २९२ ॥ अ० ४। २। ३३ ॥

(तत्र भवः) इस अधिकार में जिस कालवाची प्रातिपदिक से जो प्रत्यय प्राप्त है वही यहां देवता समानाधिकरण काल विशेषवाची प्रातिपदिक से होवे जैसे। संवत्सरो देवताऽस्य सांवत्सरिकः। यहां सामान्य कालवाची से ठञ् है प्रावृट् देवताऽस्य प्रावृषेण्यः। यहां एण्य। पौषो देवताऽस्य पैषम्। पौष शब्द का उत्सादिकों में पाठ होने से अञ् होता है। इत्यादि प्रकरण की योजना कर लेनी चाहिये ॥ २९२ ॥

महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ् ॥ २९३ ॥ अ० ४। २। ३४ ॥

देवता समानाधिकरण महाराज और प्रोष्ठपद शब्दों से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो जैसे। महाराजो देवताऽस्य माहाराजिकम्। प्रौष्ठपदिकम् ॥ २९३ ॥

वा०—ठञ्प्रकरणे तदस्मिन् वर्त्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ २९४ ॥

काल अधिकरण अभिधेय होवे तो नवयज्ञादि प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। नवयज्ञोऽस्मिन् काले वर्त्तते नावयज्ञिकः। पाकयज्ञिकः। इत्यादि ॥ २९४ ॥

वा०—पू[illegible] ॥ २९५ ॥

पूर्व वार्त्तिक से कालाधि[illegible] [illegible]करण अर्थ में पूर्णमास प्रातिपदिक से अण् [illegible]है। [illegible] काले वर्त्ते

इति पौर्णमासी तिथिः । यहां अपने अपवाद ठञ् को बाध के अण् है ॥ २९५ ॥

पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ॥ २९६ ॥ अ० ४।२।३५ ॥

भ्राता अर्थ वाच्य हो तो पितृ और मातृ शब्दों से व्यत तथा डुलच् प्रत्यय य-थासंख्य करके निपातन किये हैं जैसे । पितुर्भ्राता पितृव्यः । मातुर्भ्राता मातुल पिता का भाई पितृव्य और माता का भाई मातुल कहाता है । और मातृ तथ पितृ प्रातिपदिकों से पिता अर्थ में डामहच् प्रत्यय निपातन किया है जैसे मातुः पिता मातामहः । पितुः पिता पितामहः । माता का पिता मातामह नाना और पिता का पिता पितामह दादा कहाते हैं ॥ २९६ ॥

वा०—मातरि षिच्च ॥ २९७ ॥

मातृ अर्थ अभिधेय होवे तो पूर्व प्रातिपदिकों से कहा डामहच् प्रत्यय षित् हो जावे जैसे । मातुर्माता मातामही । पितुर्माता पितामही । माता की माता नानी और पिता की माता दादी । यहां षित् करने का प्रयोजन यह है कि स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय हो जावे ॥ २९७ ॥

वा०—अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचः ॥ २९८ ॥

अवि प्रातिपदिक से दुग्ध अर्थ में सोढ दूस और मरीसच् प्रत्यय होवें जैसे। अवेर्दुग्धमविसोढम् । अविदूसम् । अविमरीसम् ॥ २९८ ॥

वा०—तिलान्निष्फलात् पिञ्जपेजौ ॥ २९९ ॥

निष्फल समानाधिकरण तिल प्रातिपदिक से पिञ्ज और पेज प्रत्यय होवें जैसे । निष्फलं तिलं तिलपिञ्जम् । तिलपेजम् ॥ २९९ ॥

वा०—पिञ्जश्छन्दसि डिच्च ॥ ३०० ॥

पूर्वोक्त पिञ्ज प्रत्यय वैदिकप्रयोगविषय में डित् होवे जैसे । तिलपिञ्जं दण्डा-तम् । यहां डित् होने से टिसंज्ञक अकार का लोप हो जाता है ॥ ३०० ॥

तस्य समूहः ॥ ३०१ ॥ अ० ४ । २ । ३६ ॥

यह अधिकार सूत्र है । षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यथा-विहित प्रत्यय होवें जैसे । वनस्पतीनां समूहो वानस्पत्यम् । काकानां समूहः काकम् इत्यादि ॥ ३०१ ॥

गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद्वुञ् ॥ ३०२ ॥ अ० ४ । २ । ३८ ॥

षष्ठीसमर्थ जो गोत्रवाची उक्ष उष्ट्र उरभ्र राज राजन्य राजपुत्र वत्स मनुष्य और अज प्रातिपदिक हैं उन से समूह अर्थ में अण् का बाधक वुञ् प्रत्यय होवे जैसे। ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनकम् । गार्ग्यकम् । वात्सकम् । गार्ग्यायणकम् * । इत्यादि। उक्ष्णां समूह औक्षकम्। औष्ट्रकम् । औरभ्रकम्। राजकम्। राजन्यकम् । राजपुत्रकम् । वात्सकम् । मानुष्यकम् । † आजकम् ॥ ३०२ ॥

वा०—वृद्धाच्च ॥ ३०३ ॥

वृद्ध शब्द से भी समूह अर्थ में वुञ् प्रत्यय हो जैसे । वृद्धानां समूहो वार्द्धकम् ॥ ३०३ ॥

ब्राह्मणमाणववाडवाद्यन् ॥ ३०४ ॥ अ० ४ । २ । ४१ ॥

ब्राह्मण माणव और वाडव प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में यन् प्रत्यय होवे जैसे । ब्राह्मणानां समूहो ब्राह्मण्यम् । माणव्यम् । वाडव्यम् ॥ ३०४ ॥

वा०—यन्प्रकरणे पृष्ठादुपसङ्ख्यानम् ॥ ३०५ ॥

पृष्ठ शब्द से भी यन् प्रत्यय कहना चाहिये जैसे। पृष्ठानां समूहः पृष्ठ्यम् ॥ ३०५ ॥

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ॥ ३०६ ॥ अ० ४ । २ । ४२ ॥

समूह अर्थ में ग्राम जन और बन्धु प्रातिपदिकों से तल् प्रत्यय होवे जैसे । ग्रामाणां समूहो ग्रामता । जनता । बन्धुता ॥ ३०६ ॥

वा०—गजसहायाभ्यां च ॥ ३०७ ॥

गज और सहाय प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में तल् प्रत्यय होवे जैसे । गजानां समूहो गजता । सहायता । इस वार्त्तिक का सहाय शब्द काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र में मिला दिया है ॥ ३०७ ॥

वा०—अह्नः खः क्रतौ ॥ ३०८ ॥

-यज्ञ अर्थ में अहन् प्रातिपदिक से ख प्रत्यय हो जैसे । अह्नां समूहोऽहीनः क्रतुः ॥ ३०८ ॥

---

* यहां महाभाष्य के प्रमाण से गोत्र में युवा का जो लोप करते हैं इसलिये युव प्रत्ययान्त से गोत्र मान के ग्लुचुकायन आदि शब्दों से वुञ् प्रत्यय होता है ॥

† यहां राजन् और मनुष्य शब्द के नकार का लोप प्राप्त है सो (नःतद्धिते) इस वार्त्तिक से प्रकृतिभाव हो जाने से लोप नहीं होता ॥

वा०-पर्श्वा णस् ॥ ३०९ ॥

पर्शु प्रातिपदिक से समूह अर्थ में णस् प्रत्यय होवे जैसे । पर्शूनां समूहः पार्श्वम् । णस् प्रत्यय में सित्करण के होने से पदसंज्ञा होकर भसंज्ञा का कार्य उवर्णान्त अंग को गुण नहीं होता ॥ ३०९ ॥

अनुदात्तादेरञ् ॥ ३१० ॥ अ० ४ । २ । ४३ ॥

अनुदात्तादि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में अञ् प्रत्यय हो जैसे । कुमारीणां समूहः कौमारम् । कैशोरम् । वाधूटम् । चैरण्ट्म् । कपोतानां समूहः कापोतम् । मायूरम् । इत्यादि ॥ ३१० ॥

खण्डिकादिभ्यश्च ॥ ३११ ॥ अ० ४ । २ । ४४ ॥

खण्डिका आदि प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में अञ् प्रत्यय हो जैसे । खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम् । वाडवम् । इत्यादि यह सूत्र ठक् का बाधक है ॥ ३११ ॥

अञ्प्रकरणे क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम् ॥ ३१२ ॥

क्षुद्रक और मालव ये दोनों शब्द जनपद क्षत्रियवाची हैं । उन से उत्पन्न हुए तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् हो जाता है फिर दोनों का समाहारद्वन्द्व समास होके अन्तोदात्तस्वर हो जाता है । फिर अनुदात्तादि के होने से अञ् प्रत्यय हो ही जाता फिर गोत्रवाची से (गोत्रोक्षो०) इस से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है उस का अपवाद अञ्विधान किया है । और यह वार्त्तिक नियमार्थ भी है कि क्षुद्रकमालव प्रातिपदिक से सेना की संज्ञा अर्थ ही में अञ् प्रत्यय होवे अन्यत्र नहीं जैसे । क्षौद्रकमालवी सेना । और जहां सेनासंज्ञा न हो वहां । क्षौद्रकमालवकम् । गोत्रवाची से वुञ् प्रत्यय हो जावे ॥ ३१२ ॥

अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ॥ ३१३ ॥ अ० ४ । २ । ४६ ॥

समूह अर्थ में चित्तवर्जित हस्ति और धेनु प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे । अपूपानां समूहः । आपूपिकम् । शाष्कुलिकम् । साक्तुकम् । इत्यादि । हास्तिकम् * । धैनुकम् ॥ ३१३ ॥

विषयो देशे ॥ ३१४ ॥ अ० ४ । २ । ५१ ॥

जो यह विषय देश होवे सो षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथ प्रत्यय हो जैसे ।

* यहां (प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्) इस परिभाषा से हस्तिनी शब्द से भी ठक् हो जैसे । हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम् । और (भस्याढे तद्धिते) इस वार्त्तिक से पुंवद्भाव होता है ।

भिधाना विषयो देशः शैवः । औष्ट्रः । पाशवः । इत्यादि यहां देशग्रहण इसलिये है कि । देवदत्तस्य विषयोऽनुवाकः । यहां प्रत्यय न हो ॥ ३१४ ॥

सङ्ग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः ॥ ३१५ ॥ अ० ४ । २ । ५३ ॥

संग्राम अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रयोजनवाची और योद्धृवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो । भद्रा प्रयोजनमस्य सङ्ग्रामस्य भाद्रः सङ्ग्रामः । सौभद्रः । गौरिमित्रः । योद्धृभ्यः । अहिमाला योद्धारोऽस्य सङ्ग्रामस्य स आहिमालः । स्यान्दनाश्वः । भारतः । इत्यादि यहां संग्राम का ग्रहण इसलिये है कि । सुभद्रा प्रयोजनमस्य दानस्य । यहां प्रत्यय न होवे । और प्रयोजनयोद्धृग्रहण इसलिये है कि । सुभद्रा प्रेक्षिकाऽस्य सङ्ग्रामस्य । यहां भी न हो ॥ ३१५ ॥

तदधीते तद् वेद * ॥ ३१६ ॥ अ० ४ । २ । ५८ ॥

द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से अधीत और वेद अर्थात् पढ़ने और जानने अर्थों में अण् प्रत्यय हो जैसे । यश्छन्दोऽधीते वेद वा स छान्दसः । व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः । नैरुक्तः । निमित्तानि वेद नैमित्तः । मौहूर्तः । इत्यादि ॥ ३१६ ॥

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ॥ ३१७ ॥ अ० ४ । २ । ५९ ॥

यह सूत्र अण् का बाधक है । क्रतुविशेषवाची उक्थ आदि और सूत्रान्त प्रातिपदिकों से अधीत और वेद अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे जैसे क्रतुवाची । अग्निष्टोममधीते वेद वा आग्निष्टोमिकः । अश्वमेधमधीते वेद वा आश्वमेधिकः । वाजपेयिकः । राजसूयिकः । उक्थादि । उक्थं सामगानमधीते वेद वा औक्थिकः । लौकायतिकः । इत्यादि । सूत्रान्त । योगसूत्रमधीते वेद वा यौगसूत्रिकः । मौनिकोपसूत्रिकः । श्रौतसूत्रिकः । पाराशरसूत्रिकः । इत्यादि ॥ ३१७ ॥

वा०—विद्यालक्षणकल्पसूत्रान्तादकल्पादेरिकक् स्मृतः ॥ ३१८ ॥

विद्या लक्षण कल्प और सूत्र ये चार शब्द जिन के अन्त में हों और कल्प शब्द आदि में न होवें ऐसे प्रातिपदिकों से पढ़ने और जानने अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे जैसे । विद्या । वायसविद्यामधीते वेत्ति वा वायसविद्यिकः । सार्पविद्यिकः । लक्षण । गोलक्षणमधीते वेद वा गौलक्षणिकः । आश्वलक्षणिकः । कल्प । पाराशरकल्पमधीते वेत्ति वा पाराशरकल्पिकः । मातृकल्पिकः । सूत्र । वार्त्तिकसूत्रमधीते [illegible]

* [illegible]

हो जावे जैसे। पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयमधीते वेद वा पाणिनीयः । पाणिनीया ब्राह्मणी । काशकृत्स्नेन प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी काशकृत्स्नीं मीमांसामधीते ब्राह्मणी काशकृत्स्ना। यहां अनुप्रसर्जन के न होने से फिर ङीप् नहीं होता॥३२२॥

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि॥ ३२३ ॥ अ० ४ । २ । ६५ ॥

छन्द और ब्राह्मण ये दोनों प्रोक्तप्रत्ययान्त अध्येतृ वेदितृ प्रत्ययार्थ विषयकहों अर्थात् पढ़ने और जानने अर्थों के विना प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मणों का पृथक् प्रयोग न होवे जैसे । कठेन प्रोक्तं छन्दोऽधीते ते कठाः । मौदाः । पैप्पलादाः । आचार्यिनः । वाजसनेयिनः । ब्राह्मण । ताण्डिनः । भाल्लविनः । शाट्यायनिनः । ऐतरेयिणः । यहां छन्दोब्राह्मणग्रहण इसलिये है कि । पाणिनीयं व्याकरणम् । पैङ्गी कल्पः । यहां तद्विषयता न होवे ॥ ३२३ ॥

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥ ३२४ ॥ अ०४।२।६६ ॥

यह सूत्र मत्वर्थ प्रत्ययों का अपवाद है । जो देश का नाम होवे तो अस्ति-समानाऽधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें जैसे । उदुम्बरा अस्मिन् सन्ति—औदुम्बरो देशः । बाल्वजः । पार्वतः । यहां तन्नामग्रहण इसलिये है कि गोधूमाः सन्त्यस्मिन् देशे । यहां प्रत्यय न होवे ॥ ३२४ ॥

तेन निर्वृत्तम् ॥ ३२५ ॥ अ० ४ । २ । ६७ ॥

निर्वृत्त अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें जैसे । सहस्रेण निर्वृत्ता साहस्री परिखा। कुशाम्बेन निर्वृत्ताकौशाम्बी नगरी ॥ ३२५ ॥

तस्य निवासः ॥ ३२६ ॥ अ० ४ । २ । ६८ ॥

जहां निवास देश अर्थ वाच्य हो वहां षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय होवें जैसे । ऋजुनावानिवासो देश आर्जुनावो देशः । शैवः । शौदिटः । उत्सस्य निवासो देश-औत्सः । कौरवः । इत्यादि ॥ ३२६ ॥

अदूरभवश्च ॥ ३२७ ॥ अ० ४ । २ । ६९ ॥

अदूरभव अर्थात् समीप अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो जैसे । विदिशाया अदूरभवं वैदिशं नगरम् । हिमवतोऽदूरभवं हैमवतम् । हिमालयस्यादूरभवो देशो हैमालयः । इत्यादि । इस सूत्र से आगे चारों अर्थों की अनुवृत्ति चलती है इसी से यह प्रकरण चातुरर्थिक कहाता है ॥ ३२७ ॥

ओरञ् ॥ ३२८ ॥ अ० ४ । २ । ७० ॥

उक्त चारों अर्थों में षष्ठीसमर्थ उवर्णान्त प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय हो जैसे । अरडु । आरडवम् । कक्षतु । काक्षतवम् । कर्कटेलु । कार्कटेलवम् । रुरवः सन्त्यस्मिन् देशे रुरूणां निवासो देशोऽदूरभवो वा रौरवः । परशुना निर्वृत्तं पारशवम् । इत्यादि ॥ ३२८ ॥

वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥ ३२९ ॥ अ० ४ । २ । ८० ॥

यह सूत्र अण् का अपवाद है । अरीहणादि सत्रह गणस्थ प्रातिपदिकों से पूर्वोक्त चार अर्थों में यथासंख्य करके वुञ् आदि सत्रह १७ प्रत्यय होते हैं आदि शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ योग होता है अरीहणादिकों से वुञ् । आरीहणकम् । द्रौघणकम् । खदिराणामदूरभवं नगरम् । खादिरकम् । कृशाश्व आदि से छण् । कार्शाश्वीयम् । आरिष्टीयः । ऋश्य आदि से क । ऋश्यकः । न्यग्रोधकः । शिरकः । कुमुद आदि से ठच् । कुमुदिकम् । शर्करिकम् । न्यग्रोधिकम् । काश आदि से इल । काशिलम् ।वाशिलम् । तृण आदि से स । तृणसः । नडसः । बुससः । प्रेक्ष आदि से इनि । प्रेक्षी । हलकी । बन्धुकी । अश्म आदि से र । अश्मरः । यूषरः । रूपरः । मीनरः । सखि आदि से ढञ् । साखेयम् । साखिदत्तेयम् । सङ्काश आदि से ण्य । साङ्काश्यम् । काम्पिल्यम् । सामीर्यम् । बल आदि से य । बल्यः । कुल्यम् । पक्ष आदि से फक् । पाक्षायणः । तैषायणः । आण्डायनः । कर्ण आदि से फिञ् । कार्णायनिः । वासिष्ठायनिः । सुतङ्गम आदि से इञ् । सौतङ्गमिः । मौनचित्तिः । वैप्रचित्तिः । प्रगदिन् आदि से ञ्य । प्रागद्यम् । मागद्यम् । शारद्यम् । वराह आदि से कक् । वाराहकम् । पालाशकम् । और कुमुदादिकों से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे । कौमुदिकम् । गौमथिकम् । इत्यादि ॥ ३२८ ॥

जनपदे लुप् ॥ ३३० ॥ अ० ४ । २ । ८१ ॥

जहां जनपद अर्थात् देश अभिधेय रहे वहां उक्त चार अर्थों में जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय होता है उस का लुप् हो जैसे । पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः । कुरवः । मत्स्याः । अङ्गाः । वङ्गाः । मगधाः । पुण्ड्राः * । इत्यादि ॥ ३३० ॥

* यह [illegible]) इस सूत्र से व्यक्तिवचन अर्थात् लिङ्ग और संख्या प्रकृति होने से पूर्व के समान

शेषे ॥ ३३१ ॥ अ० ४ । २ । ९२ ॥

यह अधिकार सूत्र है इस का अधिकार (तस्येदम्) इस आगामी सूत्र-पर्यन्त जाता है। अपत्य आदि और उक्त चार अर्थों से जो भिन्न अर्थ हैं सो शेष कहाते हैं इस सूत्र से आगे जो २ प्रत्यय विधान करें सो २ शेष अर्थों में जानो। और यह विधिसूत्र भी है जैसे। चक्षुषा गृह्यते। चाक्षुषं रूपम्। श्रावणः शब्दः। दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः। वितण्डया प्रवर्त्तते वैतण्डिकः। उलूखले क्षुण्णः। औलूखलो यावकः। अश्वैरुह्यते। आश्वो रथः। चतुर्भिरुह्यते। चातुरं शकटम्। इत्यादि। यहां सर्वत्र यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं ॥ ३३१ ॥

राष्ट्रावारपाराद् घखौ ॥ ३३२ ॥ अ० ४ । २ । ९३ ॥

राष्ट्र और अवारपार प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके घ और ख प्रत्यय होवें। जात आदि शेष अर्थों में और उन २ अर्थों में जो २ समर्थविभक्ति हों सो २ सर्वत्र जाननी चाहिये जैसे। राष्ट्रे भवो जातो वा राष्ट्रियः। अवारपारीणः ॥ ३३२ ॥

वा०—विगृहीतादपि ॥ ३३३ ॥

विगृहीत कहते हैं भिन्न २ को अर्थात् अवारपार शब्दों से अलग २ भी ख प्रत्यय हो जैसे। अवारीणः। पारीणः ॥ ३३३ ॥

वा०—विपरीताच्च ॥ ३३४ ॥

पार पूर्व और अवार पर हो तो भी समस्त प्रातिपदिक से ख होवे जैसे। पारावारीणः ॥ ३३४ ॥

ग्रामाद्यखञौ ॥ ३३५ ॥ अ० ४ । २ । ९४ ॥

जात आदि अर्थों में ग्राम प्रातिपदिक से य और खञ् प्रत्यय होवें जैसे। ग्रामे जातो भवः क्रीतो लब्धः कुशलो वा ग्राम्यः। ग्रामीणः ॥ ३३५ ॥

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ॥ ३३६ ॥ अ० ४ । २ । ९७ ॥

यह सूत्र दक्षिणा आदि अव्यय शब्दों से त्यप् प्राप्त है उस का बाधक है। दक्षिणा आदि तीन अव्यय शब्दों से शैषिक अर्थों में त्यक् प्रत्यय होवे जैसे। दाक्षिणात्यः। पाश्चात्त्यः। पौरस्त्यः ॥ ३३६ ॥

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ॥ ३३७ ॥ अ० ४ । २ । १०० ॥

दिव् प्राच् अपाच् उदच् और प्रत्यच् प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में यत् प्रत्यय हो जैसे। दिवि भवो दिव्यः। प्राग्भवं प्राच्यम्। अपाच्यम्।

प्रतीच्यम् । यह सूत्र अण् प्रत्यय का अपवाद है । और यहां प्राच् आदि अव्यय शब्दों का ग्रहण नहीं है किन्तु यौगिकों का है और जहां इन का अव्यय में ग्रहण होता है वहां आगामी सूत्र से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं जैसे । प्राक्तनम् । प्रत्यक्तनम् । इत्यादि ॥ ३३७ ॥

अव्ययात्त्यप् ॥ ३३८ ॥ अ० ४ । २ । १०३ ॥

अव्यय प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में त्यप् प्रत्यय होवे । यह भी सूत्र अण् आदि अनेक प्रत्ययों का अपवाद है । यहां महाभाष्यकार ने परिगणन किया है कि अमा इह क तथा तसिल् और त्रल् प्रत्ययान्त इतने ही अव्ययों से त्यप् होवे जैसे । अमात्यः । इहत्यः । क्वत्यः । ततस्त्यः । यतस्त्यः । तत्रत्यः । अत्रत्यः । कुत्रत्यः । इत्यादि यहां परिगणन का प्रयोजन यह है कि । औपरिष्टः पौरस्तः । पारस्तः । इत्यादि प्रयोगों में त्यप् न होवे ॥ ३३८ ॥

वा०—त्यब्नेर्ध्रुवे ॥ ३३९ ॥

नि अव्यय प्रातिपदिक से ध्रुव अर्थ में त्यप् प्रत्यय होवे जैसे । निरन्तरं भव नित्यं ब्रह्म ॥ ३३९ ॥

वा०—निसो गते ॥ ३४० ॥

निस् शब्द से गत अर्थ में त्यप् प्रत्यय होवे जैसे निर्गतो निष्ट्यः ॥ ३४० ॥

वा०—अरण्याण्णः ॥ ३४१ ॥

अरण्य शब्द से शेष अर्थों में ण प्रत्यय होवे जैसे । अरण्ये भवा आरण्याः सुमनसः ॥ ३४१ ॥

वा०-दूरादेत्यः ॥ ३४२ ॥

दूर प्रातिपदिक से शेष अर्थों में एत्य प्रत्यय हो जैसे। दूरे भवो दूरेत्यः॥३४२॥

वा०—उत्तरादाहञ् ॥ ३४३ ॥

उत्तर प्रातिपदिक से शेष अर्थों में आहञ् प्रत्यय हो जैसे । उत्तरे जात औत्तराहः ॥ ३४३ ॥

वा०-अव्ययात्त्यप्याविष्ट्यस्योपसंख्यानं छन्दसि ॥ ३४४ ॥

आविस् अव्यय प्रातिपदिक से शेष अर्थों में वेदविषय में त्यप् प्रत्यय हो जैसे । आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु ॥ ३४४ ॥

वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् ॥ ३४५ ॥ अ० १ । १ । ७३ ॥

जिस समुदाय के अचों के बीच में आदि अच् वृद्धिसंज्ञक हो अर्थात् आकार ऐकार और औकार होवें तो वह समुदाय वृद्धसंज्ञक होवे इसका फल ॥ ३४५ ॥

वृद्धाच्छः ॥ ३४६ ॥ अ० ४ । २ । ११४ ॥

यह सूत्र अण् का बाधक है शेष अर्थों में वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त अण् आदि प्रत्यय हों जैसे । शालीयः । मालीयः । औपगवीयः । कापटवीयः । इत्यादि । अव्ययात्त्यप् । तीररूप्योत्तरपदा० । उदीच्यग्रामाच्च० । प्रस्थोत्तरपद० । जहां इन सूत्रों से ये प्रत्यय और वृद्धसंज्ञक से छ प्रत्यय दोनों की प्राप्ति है वहां परविप्रतिषेध मान के छ प्रत्यय ही होता है जैसे । आरात् अव्यय शब्द है उस से छ हुआ तो आरातीयः । वायसतीर शब्द से अञ् और ञ्य भी पाते हैं फिर छ ही होता है । जैसे । वायसतीरीयः । इसी प्रकार रूप्योत्तरपद माणिरूप्यवृद्ध प्रातिपदिक से परत्व से छ प्राप्त है उस का भी अपवाद यकारोपध होने से (धन्वयोपधा०) इस से वुञ् होता है जैसे । माणिरूप्यकः । वाडवकर्ण-उदीच्यग्राम अन्तोदात्त प्रातिपदिक से छ प्रत्यय परत्व से होता है जैसे । वाडवकर्णीयः । घोलूक कोपध वृद्ध प्रातिपदिक से परविप्रतिषेध करके छ होता है जैसे । घोलूकीयम् । अब इस के आगे वृद्धसंज्ञा में जो विशेष वार्त्तिक सूत्र हैं सो लिखते हैं ॥ ३४६ ॥

वा०—वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या ॥ ३४७ ॥

जो किसी मनुष्य आदि के नाम हैं उन की विकल्प करके वृद्धसंज्ञा होवे जैसे । देवदत्तीयाः । दैवदत्ताः । यज्ञदत्तीयाः । याज्ञदत्ताः । इत्यादि ॥ ३४७ ॥

वा०–गोत्रोत्तरपदस्य च ॥ ३४८ ॥

गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिक जिन के उत्तरपद में हो उन की वृद्धसंज्ञा हो जैसे । घृतप्रधानो रौढिः । घृतरौढिः । तस्य छात्राः । घृतरौढीयाः । ओदनप्रधानः पाणिनिरोदनपाणिनिस्तस्यच्छात्रा ओदनपाणिनीयाः । वृद्धाम्भीयाः । वृद्धकाश्यपीयाः । इत्यादि ॥ ३४८ ॥

वा०-जिह्वाकात्यहरितकात्यवर्जम् ॥ ३४९ ॥

जिह्वाकात्य और हरितकात्य शब्दों की वृद्धसंज्ञा न हो और उत्तरपद होने से पूर्ववार्त्तिक से प्राप्त है उस का निषेध है जैसे । जैह्वाकाताः । हारितकाताः ॥ ३४९ ॥

त्यदादीनि च ॥ ३५० ॥ अ० १ । १ । ७४ ॥

और त्यद् आदि प्रातिपदिक भी वृद्धसंज्ञक होते हैं जैसे । त्यदीयम् । यदीयम् । तदीयम् । एतदीयम् । इदमीयम् । अदसीयम् । त्वदीयम् । मदीयम् । तादायनिः । मादायनिः । इत्यादि यहां सर्वत्र वृद्धसंज्ञा के होने से छ प्रत्यय हो जाता है ॥ ३५० ॥

भवतष्ठक्छसौ ॥ ३५१ ॥ अ० ४ । २ । ११५ ॥

शेष अर्थों में वृद्धसंज्ञक भवत् प्रातिपदिक से ठक् और छस् प्रत्यय हों भवत इदं भावत्कम् । छस् प्रत्यय में सित्करण पदसंज्ञा के लिये है । भवदीयम् इस भवत् शब्द को त्यदादिकों से वृद्धसंज्ञा हो के छ प्रत्यय प्राप्त है उसका यह बाधक है ॥ ३५१ ॥

रोपधेतोः प्राचाम् ॥ ३५२ ॥ अ० ४ । २ । १२३ ॥

शेष अर्थों में प्राग्देशवाची रेफोपध और ईकारान्त प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय हो जैसे । पाटलिपुत्रकाः । ऐकचक्रकाः । ईकारान्त । काकन्दी । काकन्दकाः । माकन्दी । माकन्दकाः । यहां प्राचांग्रहण इसलिये है कि दात्तामित्रीयः । यहां वुञ् प्रत्यय न हो ॥ ३५२ ॥

अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् ॥३५३॥ अ० ४ । २ । १२५ ॥

शेष अर्थों में बहुवचनविषयक वृद्धसंज्ञारहित जो जनपदवाची और जनपद के अवधिवाची प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय हो । अवृद्ध जनपद से । अङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः । आङ्गकः । वाङ्गकः । कालिङ्गकः । अवृद्धजनपदावधि । अजमीढाः । अजक्रन्दाः । आजमीढकः । आजक्रन्दकः । वृद्धजनपद । दार्वाः । जाम्बाः । दार्वकः । जाम्बकः । वृद्धजनपदावधि । कालिञ्जराः । वैकुलिशाः । कालिञ्जरकः । वैकुलिशकः ॥ ३५३ ॥

नगरात्कुत्सनप्रावीण्ययोः ॥ ३५४ ॥ अ० ४ । २ । १२८ ॥

कुत्सन और प्रावीण्य अर्थात् निन्दा और प्रवीणतारूप शेष अर्थों में नगर प्रातिपदिक से वुञ् प्रत्यय हो । नागरकश्चौरः । नागरकः प्रवीणः । कुत्सन और प्रवीणताग्रहण इसलिये है कि । नागरा ब्राह्मणाः । यहां वुञ् न हो ॥ ३५४ ॥

मद्रवृज्योः कन् ॥ ३५५ ॥ अ० ४ । २ । १३१ ॥

शेष अर्थों में मद्र और वृजि प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो । मद्रेषु जातः । मद्रकः । वृजिकः । यहां बहुवचनविषयक अवृद्धजनपद शब्दों से वुञ् प्राप्त है उस का यह अपवाद है ॥ ३५५ ॥

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ॥ ३५६ ॥ अ० ४ । ३ । १ ॥

शेष अर्थ में युष्मद् और अस्मद् प्रातिपदिकों से खञ् और चकार से छ प्रत्यय हो । और अन्यतरस्यामृग्रहण से पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होवें जैसे । युष्माकमयम् यौष्माकीणः । आस्माकीनः । युष्मदीयः। अस्मदीयः। यौष्माकः । आस्माकः ॥३५६॥

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ॥ ३५७ ॥ अ० ४ । ३ । २ ॥

शेष अर्थों में तस्मिन् नाम खञ् और अण् प्रत्यय परे हों तो युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थान में यथासंख्य करके युष्माक और अस्माक आदेश हों जैसे । यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः । यहां खञ् और अण् प्रत्यय के परे इसलिये कहा है कि । युष्मदीयः । अस्मदीयः । यहां छ के परे आदेश न हो ॥ ३५७ ॥

तवकममकावेकवचने ॥ ३५८ ॥ अ० ४ । ३ । ३ ॥

जो एकवचन अर्थात् एक अर्थ को वाचक विभक्ति तथा अण् और खञ् प्रत्यय परे हों तो युष्मद् और अस्मद् शब्द को तवक और ममक आदेश हों जैसे। तावकीनः । मामकीनः । तावकः । मामकः ॥ ३५८ ॥

कालाट्ठञ् ॥ ३५९ ॥ अ० ४ । ३ । ११ ॥

शेष अर्थों में कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे । मासिकः । षाण्मासिकः । सांवत्सरिकः । इत्यादि ॥ ३५९ ॥

श्राद्धे शरदः ॥ ३६० ॥ अ० ४ । ३ । १२ ॥

जो शेष अर्थों में श्राद्ध अभिधेय रहे तो शरद् प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय हो जैसे । शरदि भवं शारदिकम् । जो श्राद्ध हो, नहीं तो । शारदम् । ऋतुवाची के होने से अण् हो जाता है । और यह सूत्र भी अण् का ही अपवाद है ॥ ३६० ॥

सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥ ३६१ ॥ अ० ४ । ३ । १६ ॥

शेष अर्थों में सन्धिवेला आदि गण ऋतु और नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय हो जैसे । सन्धिवेलायां भवं सान्धिवेलम् । शारदम् । ऋतु । [illegible] । शैशिरम् । नक्षत्र । तैषम् । पौषम् । यह सूत्र कालाट्ठञ् से ठञ् प्राप्त है उस का अपवाद है ॥ ३६१ ॥

सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च * ॥ ३६२ ॥ अ० ४ । ३ । २३ ॥

---

* [illegible]

शेष अर्थों में सायं चिरम् प्राह्णे प्रगे और अव्यय प्रातिपदिकों से ट्यु और ट्युल् प्रत्यय और प्रत्यय को तुट् का आगम भी हो। दिन का जो अन्त है उस अर्थ में सायं शब्द है जैसे सायं भवं सायन्तनम्। चिरन्तनम्। प्राह्णेतनम्। प्रगेतनम्। दोषातनम्। दिवातनम्। इदानीन्तनम्। अद्यतनम् ॥ ३६२ ॥

वा०--चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नः * ॥ ३६३ ॥

चिर परुत् और परारि इन तीन अव्यय प्रातिपदिकों से त्न प्रत्यय होवे जैसे। चिरत्नम्। परुत्नम्। परारित्नम् ॥ ३६३ ॥

वा०—प्रगस्य छन्दसि गलोपश्च ॥ ३६४ ॥

प्रग प्रातिपदिक से वेद में त्न प्रत्यय और गकार का लोप हो जैसे। प्रगे भवं प्रत्नम्॥३६४॥

वा०--अग्रादिपश्चाड्डिमच् ॥ ३६५ ॥

अग्र आदि और पश्चात् इन प्रातिपदिकों से डिमच् प्रत्यय हो। डित्करण यहां टिलोप होने के लिये है। जैसे। अग्रे जातोऽग्रिमः। आदौ जात आदिमः पश्चात् जातः पश्चिमः ॥ ३६५ ॥

वा--अन्ताच्च ॥ ३६६ ॥

अन्त शब्द से भी डिमच् प्रत्यय हो जैसे। अन्ते भवोऽन्तिमः ॥ ३६६ ॥

तत्र जातः ॥ ३६७ ॥ अ० ४ । ३ । २५ ॥

घ आदि प्रत्यय जो सामान्य शेष अर्थों में विधान कर चुके हैं उन के जात आदि अर्थ दिखाये जाते हैं और तत्र इत्यादि समर्थविभक्ति जाननी चाहिये। समर्थों में प्रथम सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से जो २ प्रत्ययविधान कर चुके हैं वो २ जात आदि अर्थों में होवें जैसे। स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः। माथुरः। औत्सः। औदपानः। राष्ट्रियः। अवारपारीणः। शाकलिकः। ग्राम्यः। ग्रामीणः। कात्रेयकः। औम्भियकः। इत्यादि ॥ ३६७ ॥

श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाऽऽषाढाबहुलाल्लुक् ॥ ३६८ ॥ अ० ४ । ३ । ३४ ॥

जात आदि अर्थों में श्रविष्ठा आदि नक्षत्रवाची शब्दों से विहित तद्धित प्रत्ययों का लुक् हो। श्रविष्ठायां जातः श्रविष्ठः। फल्गुनः। अनुराधः। स्वातिः। तिष्यः। पुनर्वसुः। हस्तः। विशाखः। आषाढः। बहुलः † ॥ ३६८ ॥

* यहां पूर्व सूत्र से ट्यु ट्युल् प्रत्यय प्राप्त हैं उनके अपवाद ये वार्त्तिक समझने चाहिये ॥

† यहां श्रविष्ठा आदि शब्दों से तद्धितप्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक् तद्धितलुकि १।२।४९) इस सूत्र से स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् होजाता है। फिर जो ये शब्द स्त्रीलिङ्ग हों तो टाप् होगा

वा०—लुक्प्रकरणे चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसङ्ख्यानम् ॥ ३६९ ॥

जात अर्थ में स्त्री अभिधेय हो तो चित्रा रेवती और रोहिणी शब्दों से विहित प्रत्यय का लुक् होवे जैसे । चित्रायां जाता कन्या चित्रा । रेवती । रोहिणी* ॥ ३६९ ॥

वा०—फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ ॥ ३७० ॥

पूर्व वार्त्तिक से स्त्रीलिङ्ग की अनुवृत्ति आती है । फल्गुनी और अषाढा नक्षत्रवाची शब्दों से ट और अन् प्रत्यय यथासंख्य करके हों जैसे । फल्गुन्यां जाता कन्या फल्गुनी । अषाढा † ॥ ३७० ॥

वा०—श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण् ॥ ३७१ ॥

श्रविष्ठा और अषाढा प्रातिपदिकों से छण् प्रत्यय हो जैसे । श्रविष्ठायां जातः श्राविष्ठीयः । आषाढीयः ॥ ३७१ ॥

स्थानान्तगोशालखरशालाच्च ॥ ३७२ ॥ अ० ४ । ३ । ३५ ॥

जात अर्थ में स्थानान्त गोशाल और खरशाल प्रातिपदिकों से विहित जो तद्धितप्रत्यय उस का लुक् हो जैसे । गोस्थाने जातो गोस्थानः । हस्तिस्थानः । अश्वस्थानः । इत्यादि । गोशालः । खरशालः । यहां तद्धितलुक् होने के पश्चात् शाला शब्द के स्त्रीप्रत्यय का लुक् होता है ॥ ३७२ ॥

वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा ‡॥ ३७३ ॥ अ० ४।३।३६ ॥

जात अर्थ में वत्सशाला आदि प्रातिपदिकों से परे जो प्रत्यय उस का लुक् विकल्प करके होवे जैसे । वत्सशालायां जातः । वत्सशालः । वात्सशालः । अभिजित् । आभिजितः । अश्वयुक् । आश्वयुजः । शतभिषक् । शातभिषजः ॥ ३७३ ॥

नक्षत्रेभ्यो बहुलम् ॥ ३७४ ॥ अ० ४ । ३ । ३७ ॥

अन्य नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से जो प्रत्यय हो उस का बहुल करके लुक् होवे जैसे । रोहिणः । रौहिणः । मृगशिराः । मार्गशीर्षः । बहुलग्रहण से कहीं लुक् नहीं भी होता जैसे । तैषः । पौषः । इत्यादि ॥ ३७४ ॥

---

* यहां भी पूर्व के समान स्त्रीप्रत्यय का लुक् होके चित्रा शब्द से टाप् और रेवती तथा रोहिणी शब्द का गौरादिगण में पाठ होने से ङीष् प्रत्यय हो जाता है ॥

† यहां भी स्त्रीप्रत्यय का लुक् पूर्ववत् होके ट प्रत्यय के टित् होने से फल्गुनी शब्द से ङीप् और अषाढा शब्द से टाप् होता है ॥

‡ इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्तविभाषा है क्योंकि वत्सशाला शब्द से किसी सूत्र कर के लुक् नहीं पाता और अभिजित् आदि नक्षत्र वाचियों से बहुल कर के प्राप्त है उस का विकल्प किया है ॥

कृतलब्धक्रीतकुशलाः ॥ ३७५ ॥ अ० ४ । ३ । ३८ ॥

कृत आदि अर्थों में सब प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । स्रुघ्ने कृतो लब्धः क्रीतो वा कुशलः । स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । इत्यादि ॥ ३७५ ॥

प्रायभवः * ॥ ३७६ ॥ अ० ४ । ३ । ३९ ॥

बहुधा होने अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे। स्रुघ्ने प्रायेण भवः स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । इत्यादि ॥ ३७६ ॥

सम्भूते ॥ ३७७ ॥ अ० ४ । ३ । ४१ ॥

सम्भव अर्थ में सप्तमीसमर्थ ङ्याप प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । ग्राम्यः । ग्रामीणः । शालीयः । शालेयः । इत्यादि ॥ ३७७ ॥

कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु ॥ ३७८ ॥ अ० ४ । ३ । ४३ ॥

साधु पुष्प्यत् और पच्यमान अर्थों में कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । हेमन्ते साधुः हैमन्तं वस्त्रम् । शैशिरमनुलेपनम् । वसन्ते पुष्प्यन्ति वासन्त्यः कुन्दलताः । ग्रैष्म्यः । पाटलाः । शरदि पच्यन्ते शारदाः शालयः । ग्रैष्मा यवाः । इत्यादि ॥ ३७८ ॥

उप्ते च ॥ ३७९ ॥ अ० ४ । ३ । ४४ ॥

उप्त कहते हैं बोने को, इस अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय होवें जैसे । हेमन्ते उप्यन्ते हैमन्ता यवाः । ग्रीष्मे उप्यन्ते ग्रैष्माः शालयः । शारदा यवाः । इत्यादि ॥ ३७९ ॥

आश्वयुज्या वुञ् ॥ ३८० ॥ अ० ४ । ३ । ४५ ॥

उस अर्थ में सप्तमीसमर्थ आश्वयुजी प्रातिपदिक से वुञ् प्रत्यय हो । अश्वयुक् शब्द अश्विनी नक्षत्र का पर्याय है । उस से युक्तकाल अर्थ में अण् हुआ है सो-लङ्ग तिथि का विशेषण है । आश्वयुज्यामुप्ता आश्वयुजका यवाः ॥ ३८० ॥

देयमृणे ॥ ३८१ ॥ अ० ४ । ३ । ४७ ॥

ऋण देने अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । प्रावृषि देयमृणं प्रावृषेण्यम् । वैशाखे देयमृणं वैशाखम् । मासे देयमृणं

* प्रायभव उस को कहते हैं कि

मासिकम् । सांवत्सरिकम् । इत्यादि यहां गतपदत्व इसलिये है कि । मुहूर्त्ते देयं भोजनम् । यहां प्रत्यय न हो । ३८१ ॥

व्याहरति मृगः ॥ ३८२ ॥ अ० ४ । ३ । ५१ ॥

व्याहरति क्रिया का मृग कर्त्ता वाच्य रहे तो सप्तमीसमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से जिस २ से जो २ प्रत्यय विधान किया हो वही २ होवे जैसे । निशायां व्याहरति मृगः । नैशिकः । नैशः । प्रादोषिकः । प्रादोषः* । सायन्तनः । इत्यादि ॥ ३८२ ॥

तदस्य सोढम् † ॥ ३८३ ॥ अ० ४ । ३ । ५२ ॥

षष्ठी के अर्थ में सोढ समानाधिकरण प्रथमासमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । निशाऽध्ययनं सोढमस्य छात्रस्य नैशः । नैशिकः । प्रादोषः । प्रादोषिकः । हेमन्तसहचरितं शीतं सोढमस्य हैमनः । इत्यादि ॥ ३८३ ॥

तत्र भवः ॥ ३८४ ॥ अ० ४ । ३ । ५३ ॥

यद्यपि पूर्व सूत्र से भी तत्रग्रहण की अनुवृत्ति चली आती फिर तत्रग्रहण करने का प्रयोजन यह है कि कालाधिकार की निवृत्ति हो जावे । तत्र अर्थात् वहां हुआ होता वा होगा इस अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । स्रुघ्ने भवः । स्रौघ्नः । अत्रपतो भव आत्रपतः । औत्सः । दैत्यः । आदित्यः । पृथिव्यां भवः पार्थिवः । वानस्पत्यः । स्त्रैणः । पौंस्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । इत्यादि ॥ ३८४ ॥

दिगादिभ्यो यत् ॥ ३८५ ॥ अ० ४ । ३ । ५४ ॥

भवार्थ में सप्तमीसमर्थ दिश् आदि प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो । दिशि भवं दिश्यम् । वर्ग्यम् । पूग्यम् । इत्यादि । यह सूत्र अण् का बाधक है ॥ ३८५ ॥

शरीरावयवाच्च ॥ ३८६ ॥ अ० ४ । ३ । ५५ ॥

शरीर के अवयव इन्द्रिय आदि प्रातिपदिकों से भवार्थ में यत् प्रत्यय हो जैसे । तालुनि भवं तालव्यम् । दन्त्यम् । ओष्ठ्यम् । हृद्यम् । नाभ्यम् । चक्षुष्यम् । नासिक्यम् । पायव्यम् । उपस्थ्यम् । इत्यादि ॥ ३८६ ॥

अव्ययीभावाच्च ॥ ३८७ ॥ अ० ४ । ३ । ५९ ॥

* यहां (निशाप्रदोषाभ्यां च । ४ । ३ । १४) इस पूर्वलिखित सूत्र से ठञ् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥

† इस सूत्र में सह्यारोपाधि की जाती है । क्योंकि काल का सहना क्या है उस काल में जो विशेष कर के हो उस का सहना ठीक है जैसे हेमन्त ऋतु में शीत विशेष को सह सके वह हैमन कहावे ॥

सप्तमी समर्थ अव्ययीभावसंज्ञक प्रातिपदिकों से भवार्थ में ञ्य प्रत्यय हो॥३

वा०—ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसङ्ख्यानम् ॥ ३८८

सूत्र में जो अव्ययीभाव प्रातिपदिकों का ग्रहण है उस का नियम इस र्त्तिक से किया है कि परिमुखादि अव्ययीभाव प्रातिपदिकों से ही ञ्य प्रत्यय जैसे । परिमुखं भवं पारिमुख्यम् । पार्य्योष्ठ्यम् । पारिहनव्यम् । यहां परिमु दि का परिगणन इसलिये है कि । उपकूलं भव औपकूलः । औपशालः । ञ्य प्रत्यय न होवे ॥ ३८८ ॥

अन्तःपूर्वपदाट्ठञ् ॥ ३८९ ॥ अ० ४ । ३ । ६० ॥

पूर्ववार्त्तिक से परिमुखादि का नियम होने से अण् प्राप्त है उस का बा यह सूत्र है । अन्तर् शब्द जिन के पूर्व हो ऐसे अव्ययीभाव प्रातिपदिकों से प्रत्यय हो भव अर्थ में जैसे । अन्तर्वेश्मनि भवमान्तर्वेश्मिकम् । आन्तःसद्मिकम् आन्तर्गेहिकम् । इत्यादि ॥ ३८९ ॥

का०—समानस्य तदादेश्च अध्यात्मादिषु चेष्यते ।
ऊर्ध्वं दमाच्च देहाच्च लोकोत्तरपदस्य च ॥ ३९० ॥

समान शब्द से और समान शब्द जिनके आदि में हो उन प्रातिपदिकों ठञ् प्रत्यय होवे जैसे । समाने भवः सामानिकः । तदादि से । सामानग्रामिक सामानदेशिकः । तथा अध्यात्मादि प्रातिपदिकों से भी ठञ् प्रत्यय होना च हिये जैसे । अध्यात्मनि भवमाध्यात्मिकम् । आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् मकारान्त ऊर्ध्वम् शब्द जिन के पूर्व हो ऐसे दम और देह प्रातिपदिकों से ठ प्रत्यय हो जैसे । ऊर्ध्वंदमे भवमौर्ध्वंदमिकम् । और्ध्वंदेहिकम् । और लोक श जिन के उत्तरपद में हो उन प्रातिपदिकों से भी ठञ् प्रत्यय हो जैसे । इहलो के भवमैहलौकिकम् । पारलौकिकम् । अधिदेव । अधिभूत । इहलोक और परलो ये चार शब्द अनुशतिकादि गण में पढ़े हैं इस से उभयपदवृद्धि होती है ॥३९०

का०—मुखपार्श्वतसोरीयः कुग्जनस्य परस्य च ।
ईयः कार्य्योऽथ मध्यस्य मण्मीयौ प्रत्ययौ तथा ॥ ३९१ ॥

तसि प्रत्ययान्त मुख और पार्श्व प्रातिपदिकों से ईय प्रत्यय होवे । छ के स्थान में ईय आदेश हो जाता फिर ईय पाद पूर्ण होने के लिये कहा है जैसे । मुखतो भवं मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् * । जन और पर प्रातिपदिकों से ईय प्र- त्यय और प्रातिपदिकों को कुक् का आगम भी होवे जैसे । जनेभवो जनकीयः ।

* यहां भसंज्ञा के होने से तसः ... के टिभाग का लोप हुआ है ॥

परकीयः । मध्य प्रातिपदिक से ईय मण् और मीय प्रत्यय होवें । जैसे– मध्ये भवो मध्यीयः । माध्यमः । मध्यमीयः * ॥ ३८१ ॥

का०–मध्यो मध्यं दिनण् चास्मात्स्थाम्नो लुगजिनात्तथा । बाह्यो दैव्यः पाञ्चजन्योऽथ गम्भीराञ्ञ्य इष्यते ॥ ३९२ ॥

मध्य शब्द को मध्यम् ऐसा मकारान्त आदेश और उस से दिनण् प्रत्यय हो जैसे । माध्यन्दिन उपगायति । स्थामन् और अजिन शब्द जिनके अन्त में हो उन प्रातिपदिकों से विहित प्रत्यय का लुक् हो जैसे । अश्वत्थामनि भवोऽश्वत्थामा । इस शब्द में पृषोदरादि से सकार को तकार हो जाता है । अजिनान्त से।कृष्णाजिने भवः कृष्णाजिनः । उष्ट्राजिनः । सिंहाजिनः । व्याघ्राजिनः । इत्यादि । जैसे-गम्भीर शब्द से ञ्य प्रत्यय होता है वैसे बाह्य दैव्य और पाञ्चजन्य इन तीन शब्दों में भी ञ्य जानो । बहिस् शब्द के टिभाग का लोप हो जाता है ॥ ३८२ ॥

जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ॥ ३९३ ॥ अ० ४ । ३ । ६२ ॥

यह शरीरावयव से यत् प्राप्त है उसका बाधक है । भवार्थ में जिह्वामूल और अङ्गुलि प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय हो जैसे । जिह्वामूले भवं जिह्वामूलीयं स्थानम् । अङ्गुलीयः ॥ ३८३ ॥

वर्गान्ताच्च ॥ ३९४ ॥ अ० ४ । ३ । ६३ ॥

भवार्थ में वर्गान्त प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय हो । कवर्गे भवो वर्णः कवर्गीयः । चवर्गीयः । पवर्गीयः । इत्यादि ॥ ३८४ ॥

तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः ॥ ३९५ ॥ अ० ४ । ३ । ६६ ॥

षष्ठी और सप्तमीसमर्थ व्याख्यातव्यनामवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । तिङां व्याख्यानो ग्रन्थस्तैङः । सुपां व्याख्यानो ग्रन्थः सौपः। स्त्रैणः। ताद्धितः । सुप्सु भवं सौपम्। तैङम्। कार्तम्। यहां व्याख्यातव्यनामग्रहण इसलिये है कि । पाटलिपुत्रस्य व्याख्यानम् । यहां प्रत्यय न होवे ॥ ३८५ ॥

---

* महाभाष्य में इसीमध्य शब्द के स्थान में मध्यम आदेश और अ प्रत्यय होके जो माध्यमीय शब्द बनता है उसमें पदभेद मात्र शब्दभेद तो नहीं है ॥

वह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ् ॥ ३९६ ॥ अ० ४ । ३ । ६७ ॥

व्याख्यान और भव अर्थ में षष्ठी और सप्तमीसमर्थ बह्वच् अन्तोदात्त प्राति पदिकों से ठञ् प्रत्यय हो जैसे । षात्वणत्विकः । नातानतिकम् । सामासिक यहां बह्वच्ग्रहण इसलिये है कि । सौपम् । तैङम् । और अन्तोदात्त इसलि कहा है कि सांहितः । यहां संहिता शब्द गतिस्वर से आद्युदात्त है इसलि ठञ् न हुआ ॥ ३८६ ॥

द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक् ॥ ३९७ ॥ अ० ४ । ३ । ७२ ॥

भव और व्याख्यान अर्थों में द्व्यच् ऋवर्णान्त ब्राह्मण ऋक् प्रथम अध्वर पुरश्चरण नाम और आख्यात ये जो व्याख्यातव्यनाम प्रातिपदिक हैं उनसे ठक् प्रत्यय हो जैसे । वेदस्य व्याख्यानो ग्रन्थो वैदिकः । इष्टेर्व्याख्यानः । ऐष्टिकः । पाशुकः । ऋत् । चातुर्होतृकः । पाञ्चहोतृकः । ब्राह्मणिकः । आर्चिकः । प्राथमिकः । आध्वरिकः । पौरश्चरणिकः ॥ ३८७ ॥

वा०-नामाख्यातग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम् ॥ ३९८ ॥

इस सूत्र में नाम और आख्यात शब्दों का ग्रहण इसलिये है कि जिस से समस्त शब्द से भी ठक् होजावे जैसे। नामिकः । आख्यातिकः । नामाख्यातिकः॥३८८॥

तत आगतः ॥ ३९९ ॥ अ० ४ । ३ । ७४ ॥

आगमन अर्थ में पंचमीसमर्थ ङ्याप्प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हो जैसे । स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । इत्यादि ॥३८८॥

विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ॥ ४०० ॥ अ० ४ । ३ । ७७ ॥

आगमन अर्थ में पंचमीसमर्थ विद्यासंबन्ध और योनिसंबन्ध वाची प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय हो जैसे। विद्यासंबन्ध उपाध्यायादागतं धनमौपाध्यायकम् । शैष्यकम् । आचार्यकम् । योनिसंबन्ध । पैतामहकम् । मातामहकम् । मातुलकम् । श्वाशुरकम् । इत्यादि ॥ ४०० ॥

ऋतष्ठञ् ॥ ४०१ ॥ अ० ४ । ३ । ७८ ॥

पंचमीसमर्थ ऋकारान्त विद्यासंबन्ध और योनिसंबन्धवाची प्रातिपदिकों से आगत अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो जैसे । विद्यासंबन्ध । होतुरागतः पुरुषो हौतकः । पैतृकम् । योनिसंबन्ध । भ्रातृकम् । स्वासृकम् । मातृकम् । ऋकारान्त ग्र

प्रातिपदिकों से भी परविप्रतिषेध मान के छ प्रत्यय को बाध के ठञ् हो होता है । जैसे । मातृतागतं मातृकम् । इत्यादि ॥ ४०१ ॥

पितुर्यच्च ॥ ४०२ ॥ अ० ४ । ३ । ७९ ॥

आगत अर्थ में पितृ प्रातिपदिक से यत् और ठञ् प्रत्यय हो जैसे । पितुरागतं पित्र्यम् । पैतृकम् ॥ ४०२ ॥

गोत्रादङ्कवत् ॥ ४०३ ॥ अ० ४ । ३ । ८० ॥

गोत्रप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अङ्कवत् अर्थात् जैसे अङ्क अर्थ में औपगवानामङ्कः । औपगवकः । कापटवकः । नाडायनकः । चारायणकः । इत्यादि में वुञ् प्रत्यय होता है वैसे हो । औपगवेभ्य आगतम् । औपगवकम् । कापटवकम् । नाडायनकम् । चारायणकम् । इत्यादि में भी वुञ् होवे ॥ ४०३ ॥

हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ॥ ४०४ ॥ अ० ४ । ३ । ८१ ॥

आगत अर्थ में हेतु और मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से विकल्प करके रूप्य प्रत्यय हो जैसे गोभ्यो हेतुभ्य आगतम् । गोरूप्यम् । पक्ष में गव्यम् । समादागतं समरूप्यम् । समीयम् । विषमरूप्यम् । विषमीयम् । मनुष्य । देवदत्तरूप्यम् । देवदत्तीयम् । दैवदत्तम् । यज्ञदत्तरूप्यम् । यज्ञदत्तीयम् । याज्ञदत्तम् ॥ ४०४ ॥

मयट् च ॥ ४०५ ॥ अ० ४ । ३ । ८२ ॥

आगत अर्थ में हेतु और मनुष्यवाची प्रातिपदिकों से मयट् प्रत्यय हो जैसे । सममयम् । विषममयम् । देवदत्तमयम् । वायुदत्तमयम् । टकार ङीप् होने के लिये है । सममयी ॥ ४०५ ॥

प्रभवति ॥ ४०६ ॥ अ० ४ । ३ । ८३ ॥

उस से जो उत्पन्न होता है इस अर्थ में पंचमीसमर्थ शब्दों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । हिमवतः प्रभवति । हैमवती गङ्गा । दारदो सिन्धुः ॥ ४०६ ॥

विदूराञ्ञ्यः ॥ ४०७ ॥ अ० ४ । ३ । ८४ ॥

पूर्वोक्त अर्थ में विदूर प्रातिपदिक से ञ्य प्रत्यय हो जैसे । विदूरात्प्रभवति वैदूर्यो मणिः ॥ ४०७ ॥

का०-वालवायो विदूरं वा प्रकृत्यन्तरमेव वा ।
न वै तत्रेति चेद् ब्रूयाज्जित्वरीवदुपाचरेत् ॥ ४०८ ॥

लोक में जिस मणि को वैदूर्य्य कहते हैं वह वालवाय नामक पर्वत से उत्पन्न होता है। विदूर शब्द नगर और पर्वत दोनों का नाम है। परंतु विदूर नगर में उस मणि का संस्कार किया जाता है। इसलिये यह विचार करना चाहिये कि विदूर शब्द से प्रभव अर्थ में प्रत्यय क्यों होता है वैदूर्य्यमणि तो वालवाय पर्वत से उत्पन्न होता है। इस का समाधान यह है कि वालवाय शब्द के स्थान में विदूर आदेश जानो अथवा वालवाय का पर्य्यायवाची विदूर शब्द भी है। पर संदेह यह रहा कि वालवाय पर्वत के समीप रहने वाले वालवाय को विदूर नहीं कहते फिर पर्य्यायवाची क्यों कर हो सकता है। इसका समाधान यह है कि जैसे वाराणसी को वैश्य लोग जित्वरी कहते हैं। वैसे ही वैयाकरण लोग परम्परा से वालवाय को विदूर कहते चले आये हैं ॥ ४०८ ॥

तद्गच्छति पथिदूतयोः ॥ ४०९ ॥ अ० ४ । ३ । ८५ ॥

उस को जाता है इस अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जो गच्छति क्रिया के पन्था और दूत कर्त्ता वाच्य हों तो जैसे। स्रुघ्नं गच्छति स्रौघ्नः पन्था दूतो वा। माथुरः। पाठशालां गच्छति पन्था दूतो वा पाठशालीयः *। इत्यादि ॥ ४०९ ॥

अभिनिष्क्रामति द्वारम् ॥ ४१० ॥ अ० ४ । ३ । ८६ ॥

जो अभिनिष्क्रामति क्रिया का द्वार कर्त्ता वाच्य रहे तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे। स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति द्वारम्। स्रौघ्नम्। माथुरम्। राष्ट्रियम्। वाराणसीमभिनिष्क्रामति वाराणसेयम्। ऐन्द्रप्रस्थम्। लावपुरम्। इत्यादि। यहां द्वारग्रहण इसलिये है कि। मथुरामभिनिष्क्रामति पुरुषः। यहां प्रत्यय न हो ॥ ४१० ॥

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ॥ ४११ ॥ अ० ४ । ३ । ८७ ॥

जिस विषय को ले के *ग्रन्थ रचा जावे उस अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों* से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे। सुभद्रामधिकृत्य कृतो ग्रन्थः सौभद्रः। गौरिमित्रः। यायातः। शरीरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरः। वर्णाश्रममधिकृत्य कृतो ग्रन्थो वार्णाश्रमः। कारकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः कारकीयः। इत्यादि ॥ ४११ ॥

सोऽस्य निवासः ॥ ४१२ ॥ अ० ४ । ३ । ८९ ॥

---

* वाराणसीं गच्छति पन्था दूतो वा वाराणसेयः। वाराणसी शब्द का नद्यादिगण में पाठ होने से ढक् प्रत्यय हो जाता है।

वह इस का निवासस्थान है इस अर्थ में प्रथमासमर्थ ङ्याप्प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हो जैसे । स्रुघ्नो निवासोऽस्य पुरुषस्य स स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । वाराणसी निवासोऽस्य वाराणसेयः । ग्राम्यः । ग्रामीणः ॥ ४१२ ॥

अभिजनश्च* ॥ ४१३ ॥ अ० ४ । ३ । ९० ॥

वह इस का उत्पत्तिस्थान है इस अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हो। स्रुघ्नोऽभिजनोऽस्य स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः । इन्द्रप्रस्थोऽभिजनोऽस्य ऐन्द्रप्रस्थः । ग्राम्यः । ग्रामीणः ॥ ४१३ ॥

आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते ॥ ४१४ ॥ अ० ४ । ३।९१ ॥

आयुधजीवि अर्थात् शस्त्रास्त्रविद्या से जीविका करने हारे वाच्य रहें तो प्रथमासमर्थ पर्वतवाची प्रातिपदिकों से अभिजन अर्थ में छ प्रत्यय होवे जैसे । हृद्गोलः पर्वतोऽभिजन एषां ते हृद्गोलीया आयुधजीविनः । रैवतकीयाः । वालवायीयाः । इत्यादि । यहां आयुधजीवियों का ग्रहण इसलिये है कि । ऋक्षोदः पर्वतोऽभिजनमेषामार्क्षोदा ब्राह्मणाः । और पर्वतग्रहण इसलिये है कि । साङ्काश्यमभिजनमेषां ते साङ्काश्यका आयुधजीविनः । यहां छ प्रत्यय न होवे ॥४१४ ॥

भक्तिः ॥ ४१५ ॥ अ० ४ । ३ । ९५ ॥

भक्तिसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में यथाप्राप्तप्रत्यय हों जैसे । ग्रामो भक्तिरस्य ग्रामेयकः । ग्राम्यः । ग्रामीणः । राष्ट्रियः । माथुरः । इत्यादि ॥ ४१५ ॥

अचित्तादेशकालाट्ठक् ॥ ४१६ ॥ अ० ४ । ३ । ९६ ॥

वह इस का सेवनीय है इस अर्थ में प्रथमासमर्थ जो देश और काल को छोड़ के अचेतन वाची प्रातिपदिक हैं उन से ठक् प्रत्यय हो जैसे । अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः । शाष्कुलिकः । पायसिकः । साक्तुकः । यहां अचित्तग्रहण इसलिये है कि । दैवदत्तः । अदेश इसलिये है कि । स्रौघ्नः । और अकाल इसलिये है कि । ग्रैष्मः । यहां भी ठक् न हो ॥ ४१६ ॥

जनपदिनां जनपदवत्सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने ॥ ४१७ ॥ अ० ४ । ३ । १०० ॥

---

*निवास और अभिजन में इतना भेद है कि जहां वर्त्तमानकाल में रहते हों उस को निवास और जहां पिता दादे आदि कुटुम्ब के पुरुष रहे हों उस को अभिजन कहते हैं ।

[illegible] से [illegible] नाम देशवाची शब्दों के तुल्य जो जनपदि अर्थात् दे[illegible]
जे [illegible] [illegible]वाची शब्द हैं उन को जनपदवत् नाम (जनपदतदवध्योश्च
[illegible] में जो प्रत्यय विधान कर चुके हैं वे ही प्रत्यय भक्तिसमानाधिकरण
[illegible] [illegible]वाची शब्दों से यहां होवें जैसे । अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य स आङ्गकः ।
[illegible] । [illegible] । इत्यादि । जनपदी चत्रियों का ग्रहण इसलिये है कि । प-
ञ्चाला ब्राह्मणा भक्तिरस्य स पाञ्चालः । यहां वुञ् न हो । सर्व शब्द का ग्रहण इस-
लिये है कि प्रकृति भी जनपद के समान हो जावे जैसे । मद्राणां वृजीणां वा
राजा माद्रः । वार्ज्यः । माद्रो भक्तिरस्य स मद्रकः । वृजिकः (मद्रवृज्योःकन्)
इस से कन् प्रत्यय प्रकृति को हृस्व होने से होता है ॥ ४१७ ॥

तेन प्रोक्तम् ॥ ४१८ ॥ अ० ४ । ३ । १०१ ॥

उस ने जो कहा इस अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्य
हो जैसे । उलेन प्रोक्तमौलम् । तैत्यम् । आदित्यम् । प्रजापतिना प्रोक्तं प्राजापत्यम्
स्त्रिया प्रोक्तं स्त्रैणम् । पौंस्नम् । पाणिनिना प्रोक्तं व्याकरणम् । पाणिनीयम् । काश-
कृत्स्नम् । काणादम् । गौतमम् । इत्यादि ॥ ४१८ ॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ॥ ४१९ ॥ अ० ४ । ३ । १०५ ॥

प्रोक्त अर्थ में जो प्राचीन लोगों के कहे ब्राह्मण और कल्प वाच्य हों तो तृती-
यासमर्थ प्रातिपदिकों से णिनि प्रत्यय हो । पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना भल्लवे-
न प्रोक्ता भाल्लविनः । शाट्यायनिनः । ऐतरेयिणः । कल्पों में । पैङ्गी कल्पः । आरु-
णपराजी कल्पः । इत्यादि ॥ ४१९ ॥

वा०—याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधः ॥ ४२० ॥

याज्ञवल्क्य आदि शब्दों से णिनि प्रत्यय न होवे । पुराणप्रोक्त होने से प्रा[illegible]
है । याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्कानि । सौलभानि । इत्यादि । यह
[illegible]ण् प्रत्यय होता है । काशिकाकारजयादित्य आदि लोग इस को नहीं समझे।
[illegible] सीलिये यह लिखा है कि याज्ञवल्क्यादि ब्राह्मण पुराणप्रोक्त नहीं किन्तु पीछे
[illegible]ने हैं सो महाभाष्य के विरुद्ध होने से मिथ्या समझना चाहिये ॥ ४२० ॥

तेनैकदिक् ॥ ४२१ ॥ अ० ४ । ३ । ११२ ॥

एकदिक् नाम तुल्यदिक् अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित
प्रत्यय हों जैसे । [illegible] । वाराणस्या एकदिक् । वाराणसेयो ग्रामः ।
[illegible] [illegible] हैमवती । इत्यादि ॥ ४२१ ॥

तसिश्च ॥ ४२२ ॥ अ० । ४ । ३ । ११३ ॥

एकदिक् अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से तसि प्रत्यय भी हो। तसि प्रत्यय की अव्ययसंज्ञा जाननी स्वरादिगण में पाठ होने से। नासिकया एकदिक् नासिकातः। सुदामतः। हिमवत्तः। पीलुमूलतः। इत्यादि ॥ ४२२ ॥

उरसो यच्च ॥ ४२३ ॥ अ० ४ । ३ । ११४ ॥

तैनेकदिक् इस विषय में उरस् प्रातिपदिक से यत् और चकार से तसि प्रत्यय भी हो जैसे। उरसा एकदिक् उरस्यः। उरस्तः ॥ ४२३ ॥

उपज्ञाते ॥ ४२४ ॥ अ० ४ । ३ । ११५ ॥

उपज्ञात अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे। पाणिनिनोपज्ञातं पाणिनीयं व्याकरणम्। पातञ्जलं योगशास्त्रम्। काशकृत्स्नम्। गुरुलाघवम्। आपिशलम्। जो अपने आप जाना जाय उस को उपज्ञात कहते अर्थात् विद्यमान वस्तु को जानना चाहिये ॥ ४२४ ॥

कृते ग्रन्थे ॥ ४२५ ॥ अ० ४ । ३ । ११६ ॥

जो किया जावे सो ग्रन्थ होवे तो इस अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हो जैसे। वररुचिना कृताः। वाररुचाः श्लोकाः। मानवो ग्रन्थः। भार्गवो ग्रन्थः। यहां ग्रंथग्रहण इसलिये है कि कुलालकृतो घटः। यहां प्रत्यय न हो ॥ ४२५ ॥

तस्येदम् ॥ ४२६ ॥ अ० ४ । ३ । १२० ॥

उस का यह है इस अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे। वनस्पतेरयं दण्डो वानस्पत्यः। राज्ञः कुमारी राजकीया। राजकीयो भृत्यः। यहां (राज्ञःकच) इस से ककारादेश हो जाता है। उपगोरिदम्। औपगवम्। कापटवम्। राष्ट्रियम्। अवारपारीणम्। देवस्येदम्। दैवम्। दैत्यम्। इत्यादि ॥ ४२६ ॥

वा०—वहेस्तुरणिट् च ॥ ४२७ ॥

तृच् प्रत्ययान्त वह धातु से अण् प्रत्यय और प्रत्यय को इट् का आगम भी हो जैसे। संवोढुः। स्वं सांवहित्रम् ॥ ४२७ ॥

वा०—अग्नीधः शरणे रञ् भं च ॥ ४२८ ॥

शरण नाम घर अर्थ में अग्नीध् प्रातिपदिक से रञ् प्रत्यय और प्रत्यय के परे पूर्व की भसंज्ञा भी जाननी चाहिये जैसे । आग्नीधःशरणम् । आग्नीध्रम् ॥ ४२८॥

वा० समिधामाधाने षेण्यण् ॥ ४२९ ॥

समिध् प्रातिपदिक से आधान षष्ठी का अर्थ होवे तो षेण्यण् प्रत्यय होवे। षित्करणङीप् प्रत्यय होने के लिये है। सामिधेन्यो मन्त्रः। सामिधेनी ऋक् ॥४२९॥

द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः ॥ ४३० ॥ अ० ४।३।१२३॥

जिन २ का परस्पर वैर और योनिसम्बन्ध हो उन के वाची द्वन्द्वसमास किये प्रातिपदिकों से वुन् प्रत्यय हो स्वार्थ में। वैरद्वन्द्व से। अहिनकुलिका। द्वन्द्व प्रातिपदिकों से भी परत्व से वुन् होता है। काकोलूकिका। श्वावराहिका। मैथुनिकद्वन्द्व से। गर्गकुशिकिका। अत्रिभरद्वाजिका। इत्यादि। यहां लिंगानुशासन की रीति से नित्य स्त्रीलिङ्ग होता है ॥ ४३० ॥

वा० वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः ॥ ४३१ ॥

वैर अर्थ में देवासुर आदि प्रातिपदिकों से वुन् प्रत्यय न हो किन्तु अण् ही होवे जैसे। दैवासुरम्। राक्षोऽसुरम्। इत्यादि ॥ ४३१ ॥

गोत्रचरणाद् वुञ् ॥ ४३२ ॥ अ० ४ । ३ । १२४॥

गोत्रवाची और चरणवाची प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय होवे ॥ ४३२ ॥

वा०—चरणाद्धर्माम्नाययोः ॥ ४३३ ॥

गोत्रवाचियों से सामान्य षष्ठी के अर्थ में और चरणवाचियों से धर्म तथा आम्नाय विशेष अर्थों में वुञ् प्रत्यय समझो जैसे गोत्र से। ग्लुचुकायनेरिदं ग्लौचुकायनकम्। द्व्यच्प्रातिपदिकों से भी परत्व से वुञ् ही होता है जैसे। गार्गकम्। वात्सकम्। इत्यादि। चरणवाचियों से। कठानां धर्म आम्नायो वा काठकम्। मौदकम्। पैप्पलादकम्। कालापकम्। इत्यादि। अधिकार होने से अण् प्राप्त है उस का यह बाधक है ॥ ४३३ ॥

सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण् ॥ ४३४ ॥ अ० ४ । ३ । १२५ ॥

पूर्व सूत्र से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है उस का यह अपवाद है। अञन्त यञन्त और इञन्त षष्ठीसमर्थ गोत्रवाची प्रातिपदिकों से सङ्घ आदि अर्थों में अण् प्रत्यय

होवे। जैसे विदानां सङ्घोऽङ्को लक्षणं वा वैदः । और्वः । यञन्त से । गर्गाणां सङ्घोऽङ्को लक्षणं वा गार्गः । वात्सः। इञन्त से । दाक्षः । प्लाक्षः ॥ ४३४ ॥

वा०–सङ्घादिषु घोषग्रहणम् ॥ ४३५ ॥

सङ्घ आदि अर्थों में जो प्रत्यय कहे हैं वे घोष अर्थ में भी उन्हीं प्रातिपदिकों से होवें जैसे । गार्गो घोषः । वात्सो घोषः । दाक्षः । प्लाक्षो वा । इत्यादि ॥ ४३५ ॥

शाकलाद्वा ॥ ४३६ ॥ अ० ४ । ३ । १२८ ॥

इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इसलिये समझना चाहिये कि शकल शब्द गर्गादि गण में पढ़ा है उस के यञन्त होने से पूर्व सूत्र से नित्य अण् प्राप्त है उस का विकल्प किया है । षष्ठीसमर्थ गोत्रप्रत्ययान्त शाकल प्रातिपदिक से विकल्प करके अण् प्रत्यय होवे और पक्ष में गोत्रवाची से वुञ् समझना चाहिये शाकल्यस्य सङ्घोऽङ्को लक्षणं घोषो वेति शाकलः । शाकलकः । इस सूत्र पर काशिका और सिद्धान्तकौमुदी रचने और पढ़ने वाले लोग कहते हैं कि (शाकलाद्वा) ऐसा सूत्र होना चाहिये । वे लोग शकल शब्द से प्रोक्त अर्थ में अण् करके इस शकल शब्द को चरणवाची मानते और संघादि अर्थों में निर्वचन करके प्रत्यय करते हैं सो यह उन लोगों का अर्थ मिथ्या है क्योंकि जो (शाकलाद्वा) ऐसा सूत्र मानें तो शकल प्रातिपदिक चरणवाची हुआ फिर उस से संघादि अर्थों में कैसे प्रत्यय होगा यह कथन पूर्वापर विरुद्ध है क्योंकि चरणवाचियों से धर्म और आम्नाय अर्थ में प्रत्यय कहे हैं। और महाभाष्य से भी विरुद्ध है महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि बहुत स्थलों में शाकल्य के सूत्र को शाकल लिखते हैं फिर चरणवाची होगा तो लक्षण अर्थ में शाकल्य शब्द से क्यों प्रत्यय हो सकेगा ॥ ४३६ ॥

रैवतिकादिभ्यश्छः ॥ ४३७ ॥ अ० ४ । ३ । १३१ ॥

यहां गोत्रवाचियों से वुञ् प्रत्यय प्राप्त है उस का यह अपवाद है । रैवतिकादि प्रातिपदिकों से संबन्धसामान्य अर्थ में छ प्रत्यय होवे जैसे । रैवतिकानामयं सङ्घो घोषो वा रैवतिकीयः । स्वापिशीयः । क्षैमवृद्धीयः । इत्यादि ॥ ४३७ ॥

वा०–कौपिञ्जलहास्तिपदादण् ॥ ४३८ ॥

यहां भी गोत्रप्रत्ययान्तों से वुञ् प्राप्त है उस का बाधक यह वार्त्तिक है । कौपिञ्जल और हास्तिपद प्रातिपदिकों से सम्बन्धसामान्य अर्थ में अण् प्रत्यय होवे जैसे । कौपिञ्जलस्य सङ्घः कौपिञ्जलः । हास्तिपदः ॥ ४३८ ॥

वा०—आथर्वणिकस्येकलोपश्च * ॥ ४३९ ॥

पूर्ववार्त्तिक से अण् प्रत्यय की अनुवृत्ति चली आती है। आथर्वणिक शब्द से धर्म तथा आम्नाय अर्थ में अण् प्रत्यय और उस के इक भाग का लोप होवे जैसे। आथर्वणिकस्य धर्म आम्नायो वा आथर्वणः ॥ ४३९ ॥

तस्य विकारः † ॥ ४४० ॥ अ० ४ । ३ । १३४ ॥

विकार अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से यथाप्राप्त प्रत्यय हों जैसे। अश्मनो विकार आश्मनः । आश्मः । भस्मनो विकारो भास्मनः । भास्मः । मार्त्तिकः । वनस्पतेर्विकारो दण्डो वानस्पत्यः । इत्यादि ॥ ४४० ॥

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ‡ ॥४४१॥ अ० ४ । ३ । १३५ ॥

विकार और अवयव अर्थ में प्राणी ओषधी और वृक्षवाची प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों परन्तु प्राणिवाची शब्दों से इसी प्रकरण में आगे अञ् कहेंगे जैसे । कपोतस्य विकारोऽवयवो वा कापोतः । मायूरः । तैत्तिरः । ओषधिवाची । लवङ्गस्य विकारोऽवयवो वा लावङ्गम् । दैवदारवम् । निर्वंश्या विकारोऽवयवो वा नैर्वंश्यम् । वृक्षवाची । खदिरस्य विकारोऽवयवो वा खादिरम् । बार्बुरम् । कारीरं काण्डम् । कारीरं भस्म । इत्यादि ॥ ४४१ ॥

मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ॥ ४४२ ॥

अ० ४ । ३ । १४३ ॥

विकार और अवयव अर्थ में लौकिकप्रयोगविषयक प्रकृतिमात्र से मयट् प्रत्यय विकल्प करके हो भक्ष्य और आच्छादन अर्थ को छोड़ के । अश्ममयम् । आश्मनः । मूर्वामयम् । मौर्वम् । वनस्पतेर्विकारो वनस्पतिमयम् । वानस्पत्यम् ।

* [illegible] वेद वा आथर्वणिकः । और इस [illegible] (आथर्वण) और (आथर्वण) ये दोनों [illegible] लिखे [illegible] उद्धृत [illegible] के पाठ [illegible] से [illegible] सूत्रों में लिख दिये हैं ॥

† इस सूत्र में [illegible] ([illegible]) [illegible] ॥

‡ [illegible] ॥

यहां भावग्रहण इसलिये है कि बैल्वः। खादिरो वा यूपः स्यात्। यहां मयट् न हो और अभक्ष्याच्छादनग्रहण इसलिये है कि। मौद्गः सूपः। कार्पासमाच्छादनम्। यहां भी मयट् न होवे॥ ४४२॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ॥ ४४३ ॥ अ० ४ । ३ । १३९ ॥

यहां नित्यग्रहण विकल्प की निवृत्ति के लिये है। भक्ष्य और आच्छादनरहित विकार और अवयव अर्थ हों तो षष्ठीसमर्थ वृद्धसंज्ञक और शरादिगण प्रातिपदिकों से लौकिक प्रयोगों में मयट् प्रत्यय नित्य हो होवे जैसे। आम्रस्य विकारोऽवयवो वा-आम्रमयम्। शालमयम्। शाकमयम्। तालमयम्। इत्यादि। यहां वृद्धप्रातिपदिकों से छ प्रत्यय प्राप्त है उस का बाधक मयट् है। शरादि। शरमयम्। दर्भमयम्। इत्यादि॥ ४४३॥

जातरूपेभ्यः परिमाणे ॥ ४४४ ॥ अ० ४ । ३ । १४९ ॥

जातरूप शब्द सुवर्ण का पर्य्यायवाची है बहुवचन निर्देश से सुवर्णवाचकों का ग्रहण होता है। परिमाण विकार अर्थ होवे तो सुवर्णवाची प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होवे जैसे। अष्टापदस्य विकारः आष्टापदम्। जातरूपम्। सौवर्णम्। रौक्मम्। इत्यादि। यहां परिमाणग्रहण इसलिये है कि। सुवर्णमयः प्रासादः। यहां अण् प्रत्यय न हो। यह मयट् का अपवाद है॥ ४४४॥

प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ॥ ४४५ ॥ अ० ४ । ३ । १५० ॥

यह अण् का अपवाद है। षष्ठीसमर्थ प्राणिवाची और रजतादि प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय हो विकार और अवयव अर्थों में। प्राणी। कपोतस्य विकारः कापोतम्। मायूरम्। तैत्तिरम्। रजतादि। राजतम्। सैसम्। लौहम्। इत्यादि॥ ४४५॥

क्रीतवत्परिमाणात् ॥ ४४६ ॥ अ० ४ । ३ । १५२ ॥

जिस २ परिमाणवाची प्रातिपदिक से क्रीत अर्थ में जो २ प्रत्यय होता है उसी २ प्रातिपदिक से वही २ प्रत्यय यहां विकार अवयव अर्थ में होवे जैसे। निष्केण क्रीतम्। नैष्किकम्। होता है वैसे ही। निष्कस्य विकारो नैष्किकः। शत्यः। शतिकः। द्विनिष्कः। द्विनैष्किकः। इत्यादि॥ ४४६॥

फले लुक् ॥ ४४७ ॥ अ० ४ । ३ । १५९ ॥

विकारावयव फल अर्थ अभिधेय हो तो विहित प्रत्यय का लुक् होवे जैसे । आमलक्याः फलम् । आमलकम् । बदर्य्याः फलानि बदराणि । कुवलकम् । बिल्वम्* । इत्यादि ॥ ४४७ ॥

लुप् च † ॥ ४४८ ॥ अ० ४ । ३ । १६२ ॥

जम्बू प्रातिपदिक से विहित विकारावयव प्रत्यय का विकल्प करके लुप् हो जैसे । जम्ब्वा विकारः फलम् । जम्बूः फलम् ॥ ४४८ ॥

वा०—फलपाकशुषामुपसङ्ख्यानम् ॥ ४४९ ॥

जिन गेहूं जौ धान आदि फलों के पकने के समय में उन के वृक्ष सूख जाते हैं उन से भी विहित विकारावयव प्रत्यय का नित्य लुप् होवे जैसे । व्रीहीणां फलानि व्रीहयः । गोधूमाः । यवाः । माषाः । तिलाः । मुद्गाः । मसूराः । इत्यादि ॥ ४४९ ॥

वा०—पुष्पमूलेषु बहुलम् ॥ ४५० ॥

पुष्प और मूल विकारावयव अर्थ हो तो बहुल करके प्रत्यय का लुप् हो जैसे । मल्लिकायाः पुष्पं मूलं वा मल्लिका । करवीरम् । बिसम् । मृणालस्य पुष्पं मूलं वा मृणालम् । बहुलग्रहण से कहीं नहीं भी होता जैसे । पाटलानि पुष्पाणि मूलानि वा । बैल्वानि फलानि ॥ ४५० ॥

प्राग्वहतेष्ठक् ॥ ४५१ ॥ अ० ४ । ४ । १ ॥

यह अधिकार सूत्र है (तद्वहति०) इस सूत्रपर्य्यन्त जो २ अर्थ कहे हैं उन सब में सामान्य से ठक् प्रत्यय होगा जैसे । अक्षैर्दीव्यति—आक्षिकः । इत्यादि इस चतुर्थाध्याय के प्रथम पाद में (प्राग्दीव्यतोऽण्) यह अधिकार कर चुके हैं उस को यहां से निवृत्ति समझो क्योंकि अगले सूत्र में दीव्यति शब्द पढ़ा है । अण् के अधिकार की समाप्ति होने से प्रथम ही दूसरा ठक् प्रत्यय का अधिकार करदिया । इस विषय में लौकिक दृष्टान्त यह है कि राजा जब वृद्ध होता है तो अपने जीवते ही पुत्र को गद्दी पर बैठा देता है ॥ ४५१ ॥

वा०—ठक्प्रकरणे तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसङ्ख्यानम् ॥ ४५२ ॥

ऐसा वह कहता है इस अर्थ में माशब्दादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । माशब्द इत्याह माशब्दिकः । नित्यः शब्दः इत्याह नैत्यशब्दिकः । कार्य्यशब्दिकः । इत्यादि ॥ ४५२ ॥

---

* यहां [illegible] (लुक् तद्धितलुकि) इस सूत्र से [illegible] लुक् हो जाता है ॥

† यहां [illegible] (लुपि युक्तवद्०) [illegible]

वा०—आहौ प्रभूतादिभ्यः ॥ ४५३ ॥

द्वितीयासमर्थ प्रभूतादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे कहने अर्थ में जैसे प्रभूतमाह प्राभूतिकः । पार्य्याप्तिकः । इत्यादि ॥ ४५३ ॥

वा०—पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः ॥ ४५४ ॥

द्वितीयासमर्थ सुस्नातादि प्रातिपदिकों से पूछने अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे जैसे। सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिकः । सौखरात्रिकः । सुखशयनं पृच्छति सौखशायनिकः । इत्यादि ॥ ४५४ ॥

वा०—गच्छतौ परदारादिभ्यः ॥ ४५५ ॥

द्वितीयासमर्थ परदारादि प्रातिपदिकों से गमन करने अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जैसे । परदारान् गच्छति पारदारिकः । गौरुतल्पिकः । इत्यादि ॥ ४५५ ॥

तेन दीव्यति खनति जयति जितम् * ॥ ४५६ ॥ अ० ४ । ४ । २॥

दीव्यति आदि क्रियाओं के कर्त्ता वाच्य रहें तो तृतीया समर्थप्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । अक्षैर्दीव्यति—आक्षिकः । कुद्दालेन खनति कौद्दालिकः । शलाकाभिर्जयति शालाकिकः । शलाकाभिर्जितं शालाकिकं धनम् । इत्यादि ॥ ४५६ ॥

संस्कृतम् ॥ ४५७ ॥ अ० ४ । ४ । ३ ॥

संस्कार करने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। घृतेन संस्कृतं घार्त्तिकम्। तैलिकम्। दध्ना संस्कृतं दाधिकम्। ताक्रिकम्। इत्यादि ॥ ४५७ ॥

तरति ॥ ४५८ ॥ अ० ४ । ४ । ५ ॥

तरने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । उडुपेन तरति औडुपिकः । मात्रिपिकः । गौडुपिकः । इत्यादि ॥ ४५८ ॥

नौद्व्यचष्ठन् ॥ ४५९ ॥ अ० ४ । ४ । ७ ॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् प्राप्त है उस का अपवाद ठन् किया है । तरने अर्थ में तृतीयासमर्थ नौ और द्व्यच् प्रातिपदिकों से ठन् प्रत्यय होवे जैसे । नावा तरति । नाविकः । घटेन तरति घटिकः । बाहुकः । इत्यादि ॥ ४५९ ॥

चरति ॥ ४६० ॥ अ० ४ । ४ । ८ ॥

* [illegible]

चलने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । शकटेन चरति शाकटिकः । राथिकः । हास्तिकः । इत्यादि ॥ ४६० ॥

आकर्षात्ष्ठल् ॥ ४६१॥ अ० ४ । ४ । ९ ॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् पाता है उस का अपवाद है । चलने अर्थ में तृतीयासमर्थ आकर्ष प्रातिपदिक से ष्ठल् प्रत्यय होवे । षित्करण स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होने के लिये है । आकर्षेण चरति आकर्षिकः । आकर्षिकी ॥ ४६१ ॥

का०—* आकर्षात् पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च ।
आवसथात्किशरादेः षितः षडेते ठगधिकारे ॥ ४६२ ॥

यह आर्या छन्द है । आकर्ष शब्द से ष्ठल् । पर्पादिकों से ष्ठन् । भस्त्रादिकों से ष्ठन् । कुसीद और दशैकादश प्रातिपदिकों से ष्ठन् और ष्ठच् आवसथ शब्द से ष्ठल् और किशरादि प्रातिपदिकों से ष्ठन् ये छः प्रत्यय इस अधिकार में षित् हैं ॥ ४६२ ॥

वेतनादिभ्यो जीवति ॥ ४६३ ॥ अ० ४ । ४ । १२ ॥

जीवने अर्थ में तृतीयासमर्थ वेतनादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । वेतनेन जीवति वैतनिकः । जालिकः । वेशेन जीवति वैशिकः । उपदेशेन जीवति औपदेशिकः । उपस्थेन जीवति औपस्थिकः । औपस्थिकी गणिका ॥ ४६३ ॥

हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ॥ ४६४ ॥ अ० ४ । ४ । १५ ॥

हरने अर्थ में उत्संगादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । उत्सङ्गेन हरति औत्सङ्गिकः । औडुपिकः । इत्यादि ॥ ४६४ ॥

विभाषा विवधात् ॥ ४६५ ॥ अ० ४ । ४ । १७ ॥

इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इसलिये है कि ष्ठन् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है किन्तु यहां तृतीयासमर्थ विवध प्रातिपदिक से ष्ठन् प्रत्यय विकल्प करके और पक्ष में ठक् हो जैसे । विवधेन हरति विवधिकः । विवधिकी । वैवधिकः ।

काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र में ही मिला दिया है। सो वार्त्तिक होने से सूत्र में मिलाना ठीक नहीं है। और ये दोनों शब्द एकार्थ हैं। शब्द के स्वरूप का ग्रहण होता है इस से प्राप्त नहीं था ॥ ४६६ ॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥ ४६७ ॥ अ० ४ । ४ । १९ ॥

निर्वृत्त अर्थात् सिद्ध होने अर्थ में तृतीयासमर्थ अक्षद्यूतादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे। अक्षद्यूतेन निर्वृत्तमाक्षद्यूतिकं वैरम्। जानुप्रहृतिकम्। काण्टकमर्दनिकम्। इत्यादि ॥ ४६७ ॥

त्रेर्मम्नित्यम् ॥ ४६८ ॥ अ० ४ । ४ । २० ।

क्त्रि प्रत्ययान्त तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से निर्वृत्त अर्थ में मप् प्रत्यय नित्य ही होवे। अर्थात् अधिकार के विकल्प से वाक्य प्राप्त है सो भी न रहे जैसे। पक्त्रिमा यवागूः। उप्त्रिमं बीजम्। कृत्रिमः संसारः। इत्यादि ॥ ४६८ ॥

वा०—भाव इति प्रकृत्य इमब् वक्तव्यः ॥ ४६९ ॥

भाववाची प्रातिपदिकों से इमप् प्रत्यय कहना चाहिये। ऐसा वार्त्तिक करने से सूत्र का भी कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि (कुट्टिमा भूमिः) (सेक्त्रिमोऽसिः)। इत्यादि उदाहरण सूत्र से सिद्ध नहीं हो सकते ॥ ४६९ ॥

संसृष्टे ॥ ४७० ॥ अ० ४ । ४ । २२ ॥

मिलाने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। दध्ना संसृष्टं दाधिकम्। ताक्रिकम्। मारिचिकम्। शार्ङ्गवेरिकम्। पैप्पलिकम्। दौग्धिकी यवागूः। गौडिका गोधूमाः। इत्यादि ॥ ४७० ॥

व्यञ्जनैरुपसिक्ते ॥ ४७१ ॥ अ० ४ । ४ । २६ ।

उपसिक्त अर्थात् सींचने अर्थ में व्यञ्जनवाची तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे। दध्नोपसिक्तं दाधिकम्। ताक्रिकम्। गौडिकम्। पायसिकम्। मारिचिकम्। इत्यादि। व्यञ्जनवाचियों का ग्रहण इसलिये है कि उदकेनोपसिक्तं शाकम्। यहां प्रत्यय न हो ॥ ४७१ ॥

तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् ॥ ४७२ ॥ अ० ४ । ४ । २८ ॥

वर्त्तने अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रति तथा अनु ये जिन के पूर्व हों ऐसे ईप लोम और कूल प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे। प्रतीपं वर्त्तते प्रातीपिकः। आन्वीपिकः। प्रतिलोमं वर्त्तते प्रातिलोमिकः। आनुलोमिकः। प्रतिकूलं वर्त्तते प्रातिकूलिकः। आनुकूलिकः ॥ ४७२ ॥

चलने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। शकटेन चरति शाकटिकः। राथिकः। हास्तिकः। इत्यादि॥ ४६०॥

आकर्षात्ष्ठल्॥ ४६१॥ अ० ४। ४। ९॥

यहां पूर्व सूत्र से ठक् पाता है उस का अपवाद है। चलने अर्थ में तृतीयासमर्थ आकर्ष प्रातिपदिक से ष्ठल् प्रत्यय होवे। षित्करण स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होने लिये है। आकर्षेण चरति आकर्षिकः। आकर्षिकी॥ ४६१॥

का०—* आकर्षात् पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च। आवसथात्किशरादेः षितः षडेते ठगधिकारे॥ ४६२॥

यह आर्या छन्द है। आकर्ष शब्द से ष्ठल्। पर्पादिकों से ष्ठन्। भस्त्रादिकों से ष्ठन्। कुसीद और दशैकादश प्रातिपदिकों से ष्ठन् और ष्ठच् आवसथ शब्द से ष्ठल् और किशरादि प्रातिपदिकों से ष्ठन् ये छः प्रत्यय इस अधिकार में षित् हैं॥ ४६२॥

वेतनादिभ्यो जीवति॥ ४६३॥ अ० ४। ४। १२॥

जीवने अर्थ में तृतीयासमर्थ वेतनादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे। वेतनेन जीवति वैतनिकः। जालिकः। वेशेन जीवति वैशिकः। उपदेशेन जीवति औपदेशिकः। उपस्थेन जीवति औपस्थिकः। औपस्थिकी गणिका॥ ४६३॥

हरत्युत्सङ्गादिभ्यः॥ ४६४॥ अ० ४। ४। १५॥

हरने अर्थ में उत्संगादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। उत्सङ्गेन हरति औत्सङ्गिकः। औडुपिकः। इत्यादि॥ ४६४॥

विभाषा विवधात्॥ ४६५॥ अ० ४। ४। १७॥

इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा इसलिये है कि ष्ठन् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है हरने अर्थ में तृतीयासमर्थ विवध प्रातिपदिक से ष्ठन् प्रत्यय विकल्प करके होवे पक्ष में ठक् हो जैसे। विवधेन हरति विवधिकः। विवधिकी। वैवधिकः। वैवधिकी॥ ४६५॥

वा०—वीवधाच्च॥ ४६६॥

वीवध प्रातिपदिक से भी हरने अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय विकल्प करके होवे जैसे। वीवधेन हरति वीवधिकः। वीवधिकी। वैवधिकः। वैवधिकी। इस वीवध शब्द को

---

* यहां ठक् प्रत्यय के अधिकार में किन्हीं प्रातिपदिकों में विभक्ति के प्रकार की संज्ञा में प्राप्त होजाता है और किन्हीं प्रत्ययों में ङीप् होने के लिये षित् किया है। इस से संदेह होता है कि किन प्रत्ययोंमें औपदेशिक पाठ और किन में विभक्ति का है इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह कारिका है॥

काशिका आदि पुस्तकों में सूत्र में ही मिला दिया है । सो वार्त्तिक होने से सूत्र में मिलाना ठीक नहीं है । और ये दोनों शब्द एकार्थ हैं । शब्द के स्वरूप का ग्रहण होता है इस से प्रासनहीं था ॥ ४६६ ॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥ ४६७ ॥ अ० ४ । ४ । १९ ॥

निर्वृत्त अर्थात् सिद्ध होने अर्थ में तृतीयासमर्थ अक्षद्यूतादि प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । अक्षद्यूतेन निर्वृत्तमाक्षद्यूतिकं वैरम् । जानुप्रहृतिकम् । काण्टकमर्दनिकम् । इत्यादि ॥ ४६७ ॥

त्रेर्मम्नित्यम् ॥ ४६८ ॥ अ० ४ । ४ । २० ।

क्त्रि प्रत्ययान्त तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से निर्वृत्त अर्थ में मप् प्रत्यय नित्य ही होवे । अर्थात् अधिकार के विकल्प से वाक्य प्राप्त है सो भी न रहे जैसे । पक्त्रिमा यवागूः । उप्त्रिमं बीजम् । कृत्रिमः संसारः । इत्यादि ॥ ४६८ ॥

वा०—भाव इति प्रकृत्य इमब् वक्तव्यः ॥ ४६९ ॥

भाववाची प्रातिपदिकों से इमप् प्रत्यय कहना चाहिये । ऐसा वार्त्तिक करने से सूत्र का भी कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि (कुट्टिमा भूमिः) (सेक्त्रिमोऽसिः) । इत्यादि उदाहरण सूत्र से सिद्ध नहीं हो सकते ॥ ४६८ ॥

संसृष्टे ॥ ४७० ॥ अ० ४ । ४ । २२ ॥

मिलाने अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । दध्ना संसृष्टं दाधिकम् । ताक्रिकम् । मारिचिकम् । शार्ङ्गवेरिकम् । पैप्पलिकम् । दौग्धिकी यवागूः । गौडिका गोधूमाः । इत्यादि ॥ ४७० ॥

व्यञ्जनैरुपसिक्ते ॥ ४७१ ॥ अ० ४ । ४ । २६ ।

उपसिक्त अर्थात् सींचने अर्थ में व्यञ्जनवाची तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । दध्नोपसिक्तं दाधिकम् । ताक्रिकम् । सौपिकम् । पायसिकम् । मारिचिकम् । इत्यादि । व्यञ्जनवाचियों का ग्रहण इसलिये है कि उदकेनोपसिक्तं माषकम् । यहां प्रत्यय न हो ॥ ४७१ ॥

तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् ॥ ४७२ ॥ अ० ४ । ४ । २८ ॥

वर्त्तने अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रति तथा अनु ये जिन के पूर्व हों ऐसे ईप लोम और कूल प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । प्रतीपं वर्त्तते प्रातीपिकः । आन्वीपिकः । प्रतिलोमं वर्त्तते प्रातिलोमिकः । आनुलोमिकः । प्रतिकूलं वर्त्तते प्रातिकूलिकः । आनुकूलिकः ॥ ४७२ ॥

प्रयच्छति गर्ह्यम् ॥ ४७३ ॥ अ० ४ । ४ । ३० ॥

प्रयच्छति अर्थात् देने अर्थ में जो पदार्थ दिया जाय सो निन्दित हो तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो ॥ ४७३ ॥

वा०—मेस्याल्लोपो वा ॥ ४७४ ॥

प्रत्यय उत्पन्न होते समय (मे) (स्यात्) इन दो पदों का विकल्प करके लोप हो जावे । विकल्प इसलिये है कि वाक्य भी बना रहे जैसे । द्विगुणं मे स्यादिति प्रयच्छति द्वैगुणिकः । त्रैगुणिकः ॥ ४७४ ॥

वृद्धेर्वृधुषिभावः ॥ ४७५ ॥

यहां मे स्यात् इन दो पदों की अनुवृत्ति चली आती है वृद्धि शब्द को वृधुषि आदेश और ठक् प्रत्यय होवे जैसे। वृद्धिर्मे स्यादिति धनं प्रयच्छति वार्धुषिकः ॥ ४७५ ॥

उञ्छति ॥ ४७६ ॥ अ० ४ । ४ । ३२ ॥

उञ्छने अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । बदराण्युञ्छति बादरिकः । श्यामाकिकः । गोधूमानुञ्छति गौधूमिकः । काणिकः । इत्यादि ॥ ४७६ ॥

रक्षति ॥ ४७७ ॥ अ० ४ । ४ । ३३ ॥

रक्षा अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । ग्रामं रक्षति ग्रामिकः । समाजं रक्षति सामाजिकः । गोमण्डलं रक्षति गौमण्डलिकः । कुटुम्बं रक्षति कौटुम्बिकः । नगरं रक्षति नागरिकः । इत्यादि ॥ ४७७ ॥

पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति ॥ ४७८ ॥ अ० ४ । ४ । ३५ ॥

[illegible] त्स्य और मृगवाची प्रातिपदिकों से ठक् [illegible] । खैचरिकः । शाकुनिकः । शुकान् हन्ति [illegible] मैनिकः । [illegible] । मायूरिकः । तैत्तिरिकः । मत्स्य । मात्स्यिकः । मैनिकः । [illegible] । मांसिकः । मृग । मार्गिकः । हारिणिकः । सौकरिकः । सारङ्गिकः । [illegible] ॥ ४७८ ॥

* [illegible] इसलिये नहीं होता कि (स्वरूप०) इस पर वार्तिक पढ़ा है [illegible] [illegible] पर्यायवाची और विशेषवाचियों का भी [illegible] [illegible]

परिपन्थञ्च तिष्ठति ॥ ४७९ ॥ अ० ४ । ४ । ३६ ॥

स्थिति और मारने अर्थ में द्वितीयासमर्थ परिपन्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । परिपन्थं तिष्ठति पारिपन्थिको दस्युः । परिपन्थं हन्ति पारिपन्थिक उत्कोचकः ॥ ४७९ ॥

माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति ॥ ४८० ॥ अ० ४ । ४ । ३७ ॥

इस सूत्र में माथ शब्द मार्ग का पर्य्यायवाची है । शोधने और शान गमन प्राप्ति अर्थों में पदवी अनुपद और माथ शब्द जिनके उत्तरपद में हो ऐसे प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । विद्यामार्थं धावति वैद्यामाथिकः । धार्ममाथिकः । दाण्डमाथिकः । इत्यादि । पदवीं धावति पादविकः । आनुपदिकः ॥ ४८० ॥

पदोत्तरपदं गृह्णाति ॥ ४८१ ॥ अ० ४ । ४ । ३९ ॥

ग्रहण करने अर्थ में पद शब्द जिनके उत्तरपद में हो उन द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । पूर्वपदं गृह्णाति पौर्वपदिकः । औत्तरपदिकः । इत्यादि ॥ ४८१ ॥

धर्मं चरति ॥ ४८२ ॥ अ० ४ । ४ । ४१ ॥

आचरण अर्थ में द्वितीयासमर्थ धर्म प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । धर्मं चरति धार्मिकः ॥ ४८२ ॥

वा०—अधर्माच्च ॥ ४८३ ॥

आचरण अर्थ में अधर्म शब्द से भी ठक् हो जैसे । अधर्मं चरति आधर्मिकः ॥ ४८३ ॥

समवायान्त्समवैति ॥ ४८४ ॥ अ० ४ । ४ । ४३ ॥

यहां बहुवचन निर्देश से समवायवाची शब्दों का ग्रहण होता है । प्राप्त होने अर्थ में द्वितीयासमर्थ समवायवाची प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । समवायान् समवैति । सामवायिकः । सामाजिकः । सामूहिकः । साङ्घिकः । इत्यादि ॥ ४८४ ॥

संज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति ॥ ४८५ ॥ अ० ४ । ४ । ४६ ॥

देखने अर्थ में संज्ञा वाच्य रहे तो द्वितीयासमर्थ ललाट और कुक्कुटी प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे । ललाटं पश्यति लालाटिको भृत्यः ० । कुक्कुटीं पश्यति कौक्कुटिको भिक्षुः ॥ ४८५ ॥

---

* वार्त्तिक उसको कहते हैं कि जो [illegible]

तस्य धर्म्यम् ॥ ४८६ ॥ अ० ४ । ४ । ४७ ॥

जो आर्य धर्म का विरोधी न हो उस को धर्म्य कहते हैं । षष्ठीसमर्थ प्राति पदिक से धर्म्यअर्थ में ठक् प्रत्यय हो जैसे । हाटकस्य धर्म्यं हाटकिकम् । आक रिकम् । आपणिकम् । इत्यादि ॥ ४८६ ॥

ऋतोऽञ् ॥ ४८७ ॥ अ० ४ । ४ । ४९ ॥

धर्म्य अर्थ में षष्ठीसमर्थ ऋकारान्त प्रातिपदिक से अञ् प्रत्यय होवे जैसे होतुर्धर्म्यं हौत्रम् । पौत्रम् । दौहित्रम् ।स्वास्रम् । इत्यादि ॥ ४८७ ॥

वा०— * नृनराभ्यामञ्वचनम् ॥४८८ ॥

नृ और नर शब्दों से भी अञ् प्रत्यय होवे जैसे। नुर्धर्म्या नारी। एवं नरस्यापि नारी ॥ ४८८ ॥

वा०— विशसितुरिड्लोपश्च ॥ ४८९ ॥

विशसितृ शब्द से अञ् प्रत्यय और प्रत्यय के परे इट् का लोप होवे जैसे। विशसितुर्धर्म्यं वैशस्त्रम् ॥ ४८९ ॥

वा०—विभाजयितुर्णिलोपश्च ॥ ४९० ॥

विभाजयितृ शब्द से अञ् प्रत्यय और उस प्रत्यय के परे णिच् का लोप भी होवे जैसे विभाजयितुर्धर्म्यं वैभाजित्रम् ॥ ४९० ॥

अवक्रयः ॥ ४९१ ॥ अ० ४ । ४ । ५० ॥

अवक्रय अर्थात् खरीदने और बेचने अर्थ में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होवे जैसे । गोशालाया अवक्रयो गौशालिकः । आकरिकः । आपणिकः । हाटकिकः। इत्यादि ॥ ४९१ ॥

तदस्य पण्यम् ॥ ४९२ ॥ अ० ४ । ४ । ५१ ॥

पण्यसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे जैसे। सुवर्णं पण्यमस्य सौवर्णिकः। अपूपाः पण्यमस्य—आपूपिकः। माङ्गलिकः। पौषधवः पण्यमस्य—पौषधिकः। मुक्ताः पण्यमस्य मौक्तिकः। इत्यादि॥४९२॥

शिल्पम् ॥ ४९३ ॥ अ० ४ । ४ । ५५ ॥

[illegible]

शिल्प शब्द क्रिया की कुशलता अर्थ में वर्त्तमान है। शिल्पसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। मृदङ्गवादनं * शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः। पाणविकः। वीणावादनं शिल्पमस्य वैणिकः। इत्यादि ॥ ४९३ ॥

प्रहरणम् ॥ ४९४ ॥ अ० ४ । ४ । ५७ ॥

प्रहरणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जैसे। आग्नेयास्त्रं प्रहरणमस्य-आग्नेयास्त्रिकः। शतघ्नी प्रहरणमस्य शातघ्निकः। भौशुण्डिकः। असिः प्रहरणमस्य आसिकः। चाक्रिकः। धानुष्कः। दाण्डिकः। इत्यादि ॥ ४९४ ॥

शक्तियष्ट्योरीकक् ॥ ४९५ ॥ अ० ४ । ४ । ५९ ॥

प्रहरणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ शक्ति और यष्टि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ईकक् प्रत्यय होवे जैसे। शक्तिः प्रहरणमस्य शाक्तीकः। याष्टीकः ॥ ४९५ ॥

अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ॥ ४९६ ॥ अ० ४ । ४ । ६० ॥

अस्ति नास्ति और दिष्ट इन मतिसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे जैसे। अस्तीति मतिरस्य स आस्तिकः। † नास्तीति मतिरस्य स नास्तिकः। दिष्टमितिमतिरस्य स दैष्टिकः ॥ ४९६ ॥

शीलम् ॥ ४९७ ॥ अ० ४ । ४ । ६१ ॥

शीलसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठक् प्रत्यय हो जैसे। अपूपा भक्षणं शीलमस्य स आपूपिकः। शाष्कुलिकः ‡। दौग्धिकः। मौदकिकः। औदनिकः। साक्तुकः। इत्यादि ॥ ४९७ ॥

छत्रादिभ्यो णः ॥ ४९८ ॥ अ० ४ । ४ । ६२ ॥

शीलसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ छत्र आदि गणपठित प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में ण प्रत्यय होवे। ठक् प्राप्त है उसका बाधक है। छत्र शब्द गुरुकर के छाता का नाम है ॥ ४९८ ॥

---

* यहां वाक्य में महाभाष्यकार ने उत्तरपद का लोप इसलिये माना है कि मार्दङ्गिक शब्द से मृदङ्ग बजाने वाले का ही ग्रहण होवे। और मृदङ्ग रचने वाला कुम्हार तथा चाम आदि से मढ़ने वाले को भी मार्दङ्गिक [illegible] होतो है परन्तु लोक में मार्दङ्गिक शब्द से उस का बजाने वाला ही लिया जाता है। और ऐसा ही वाक्यार्थ सब ग्रन्थों में जाने ॥

† यहां वाक्यार्थ में इति शब्द से उत्तरपद का लोप समझना चाहिये क्योंकि ईश्वर और पुण्यपाप और पुनर्जन्म और [illegible] कर्मों का फल आदि है ऐसी बुद्धि जिस पुरुष की हो वह आस्तिक और इस से विरुद्ध नास्तिक कहलावे। और जो इति शब्द का लोप न समझें तो जिस घर आदि में आस्तिक बुद्धि हो वह भी [illegible] और बुद्धि से रहित जड़ पदार्थ भी आस्तिक कहावें ॥

‡ यहां भी मध्य उत्तरपद का लोप समझना चाहिये क्योंकि पूड़ी आदि बनाने वालों के [illegible] आदि न हो जावें लोक में इन पदार्थों के [illegible] ॥

भा०-किं यस्य छत्रधारणं शीलं स 'छात्रः । किश्चातः । राजपुरुषे प्राप्नोति । एवं तर्ह्युत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः । छत्रमिवच्छत्रम् । गुरुश्छत्रम् । गुरुणा शिष्यश्छत्रवच्छाद्यः । शिष्येण गुरुश्छत्रवत्परिपाल्यः ॥ ४९९ ॥

लोक में परम्परा से छात्र शब्द विद्यार्थी का वाची है । इसलिये महाभाष्यकार ने इस विषय का स्पष्ट व्याख्यान करदिया कि छत्र शब्द से यहां गुरु उपात्त है अर्थात् शिष्य के अज्ञानरूपी अन्धकार को गुरु निवारण करता है इसलिये छत्र है । जैसे घाम आदि से अपनी रक्षा करने हारे छाता को यत्न से रखते हैं वैसे ही अपने सेवन से गुरु की रक्षा करने वाला पुरुष छात्र कहाता है । और जैसे छाता घाम आदि से होने वाले दुःखों का निवारण करता है वैसे ही गुरु भी मूर्खता आदि से होने वाले दुःखों को नष्ट करता है । छत्रं गुरुस्तत्सेवनशीलमस्य स छात्रः । कन्या चेक्काला । बुभुक्षा शीलमस्य स बौभुक्षः । इत्यादि । इस सूत्र पर जयादित्य भट्टोजिदीक्षितादि कहते हैं कि गुरु के जो दुष्ट कर्म हैं उन के आच्छादन करने का स्वभाववाला शिष्य छात्र कहाता है । इस व्याख्यान को बुद्धिमान् वैयाकरण विचारें कि महाभाष्य से कितना विरोध आता है । इस सूत्र के व्याख्यान से ऐसा अनुमान होता है कि जयादित्य भट्टोजिदीक्षितादि लोग महापातकी होंगे ॥ ४९९ ॥

हितं भक्षाः ॥ ५०० ॥ अ० ४ । ४ । ६५ ॥

यहां भक्ष शब्द में बहुवचननिर्देश से भक्षवाचियों का ग्रहण होता है । हित शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति होती और पूर्व से यहां षष्ठ्यर्थ की अनुवृत्ति आती है इसलिये उस षष्ठी का विपरिणाम चतुर्थी समझनी चाहिये । हितसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ भक्ष्यवाची प्रातिपदिकों से चतुर्थी के अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे जैसे । ओदना हितमस्मै । औदनिकः । अपूपा हितमस्मै-आपूपिकः शाष्कुलिकः । मौदकिकः । इत्यादि ॥ ५०० ॥

नियत करने अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय हो जैसे। पाकशालायां नियुक्तः पाकशालिकः। शौल्कशालिकः। हाटकिकः। आपणिकः। धर्मोपदेशे नियुक्तो धार्मोपदेशिकः। वेदाध्ययनिकः। शास्त्राध्यापनिकः। यन्त्रालये नियुक्तो यान्त्रालयिकः। इत्यादि ॥ ५०२ ॥

अगारान्ताट्ठन् ॥ ५०३ ॥ अ० ४। ४। ७० ॥

यहां पूर्वसूत्र से ठक् प्रत्यय प्राप्त है उस का यह अपवाद है। नियत करने अर्थ में सप्तमीसमर्थ अगारान्त प्रातिपदिक से ठन् प्रत्यय हो जैसे। धनागारे नियुक्तो धनागारिकः। शस्त्रागारिकः। अश्वागारिकः। पुस्तकागारिकः। इत्यादि ॥ ५०३ ॥

अध्यायिन्यदेशकालात् ॥ ५०४ ॥ अ० ४। ४। ७१ ॥

जिन देश और कालों में पढ़ने का निषेध है उन प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय हो जैसे। श्मशानेऽधीते श्माशानिकः। शौद्रसाविधिकः। सन्धिवेलायामधीते सान्धिवेलिकः। अष्टम्यामधीते आष्टमिकः। चातुर्दशिकः। पौर्णमासिकः। इत्यादि ॥ ५०४ ॥

कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति ॥ ५०५ ॥ अ० ४। ४। ७२ ॥

व्यवहार करने अर्थ में कठिनान्त प्रस्तार और संस्थान प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होवे। जैसे कुलकठिने व्यवहरति कौलकठिनिकः। कौटुम्बकठिनिकः। प्रस्तारे व्यवहरति प्रास्तारिकः। सांस्थानिकः। इत्यादि ॥ ५०५ ॥

निकटे वसति ॥ ५०६ ॥ अ० ४। ४। ७३ ॥

वसने अर्थ में सप्तमीसमर्थ निकट प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय हो जैसे। निकटे वसति नैकटिकः ॥ ५०६ ॥

प्राग्घिताद्यत् ॥ ५०७ ॥ अ० ४। ४। ७५ ॥

प्रथम ठक् प्रत्यय का अधिकार कर आये हैं उस की समाप्ति यहां से समझनी चाहिये। क्योंकि वहति शब्द अगले सूत्र में है उस अधिकार के रहते ही दूसरा अधिकार यत् प्रत्यय का करते हैं इस का दृष्टान्त भी पूर्व दे चुके हैं। यहां से ले के (तस्मै हितम्) इस अधिकार के पूर्व २ जो २ अर्थ कहेंगे उन २ में सामान्य करके यत् प्रत्यय का अधिकार समझना चाहिये जैसे। रथं वहति रथ्यः। युग्यः। इत्यादि ॥ ५०७ ॥

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ॥ ५०८ ॥ अ० ४। ४। ७६ ॥

ले चलने अर्थ में द्वितीयासमर्थ रथ युग और प्रासङ्ग प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होवे जैसे। रथं वहति रथ्यः। युग्यः। प्रासङ्ग्यः। रथ शब्द से सम्बन्धसामान्य

शेष अर्थ में भी यत् प्रत्यय होता है। रथं वहति रथ्यः। रथस्य वोढा रथ्यः। यहां प्रयोग और अर्थ में कुछ भी भेद नहीं है फिर दोनों जगह करने का प्रयोजन यह है कि जब तदन्तविधि मान के द्विगुसंज्ञक रथ शब्द से प्रत्यय करेंगे तब शेष अर्थ में प्राग्दीव्यतीय होने से (द्विगोर्लु०) इस से प्रत्यय का लुक् हो जावे गा जैसे। द्वयोरथयोर्वोढा द्विरथः। और जब। द्वौ रथौ वहति। ऐसा विग्रह करें तब। द्विरथ्यः। ऐसा प्रयोग होगा।इसी प्रकार हल और सीर शब्दों से भी दोनों जगह एक ही प्रत्यय कहा है उस का भी यही प्रयोजन है ॥ ५०८ ॥

संज्ञायां जन्याः ॥ ५०९ ॥ अ० ४ । ४ । ८२ ॥

ले जाने अर्थ में वधूवाची द्वितीयासमर्थ जनी प्रातिपदिक से संज्ञा वाच्य रहे तो यत् प्रत्यय निपातन किया है जैसे।जनीं वधूं वहन्ति ते जन्याः। विवाह के समय जो बरात जाती है उस को जन्या कहते हैं ॥ ५०९ ॥

विध्यत्यधनुषा ॥ ५१० ॥ अ० ४ । ४ । ८३ ॥

वेधने अर्थ में धनुष् करण न होतो द्वितीयासमर्थप्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होवे जैसे।पादौ विध्यति पद्या दूर्वा। कण्ठं विध्यति कण्ठ्यो रसः। यहां धनुष् का निषेध इसलिये है कि। धनुषा विध्यति। शत्रुं विध्यति। यहां उभयत्र प्रत्यय न होवे ॥ ५१० ॥

धनगणं लब्धा ॥ ५११ ॥ अ० ४ । ४ । ८४ ॥

लाभ होने का कर्त्ता वाच्य रहे तो द्वितीयासमर्थ धन और गण शब्दों से यत् प्रत्यय होवे जैसे। धनं लब्धा धन्यः। गणं लब्धा गण्यः ॥ ५११ ॥

गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ॥ ५१२ ॥ अ० ४ । ४ । ९० ॥

यहां पूर्वसूत्र से संज्ञा की अनुवृत्ति आती है। संयुक्त अर्थ में तृतीयासमर्थ गृहपति प्रातिपदिक से संज्ञा अभिधेय हो तो ञ्य प्रत्यय होवे जैसे। गृहपतिना संयुक्तो गार्हपत्यः। यहां संज्ञाग्रहण इसलिये है कि गार्हपत्य दक्षिणाग्नि का नाम न हो जावे ॥ ५१२ ॥

नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्य्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु ॥ ५१३ ॥ अ० ४ । ४ । ९१ ॥

तृतीयासमर्थ नौ आदि प्रातिपदिकों से तार्य आदि अर्थों में यथासंख्य करके यत् प्रत्यय होवे जैसे नौ शब्द से तरने अर्थ में। नावा तार्यं नाव्यम्। वयस् शब्द से तुल्य अर्थ में। वयसा तुल्यं वयस्यं मित्रम्। धर्म शब्द से प्राप्त होने

योग्य अर्थ में। धर्मेण प्राप्यो धर्म्योऽपवर्गः । विषशब्द से मारने योग्य अर्थ में । विषेण वध्यो विष्यः पापो। मूल शब्द से नमाने अर्थ में। मूलेनानाम्यं मूल्यम्। दूसरे मूलशब्द से सम अर्थ में। मूलेन समो मूल्यो घटः। सीताशब्द से चौकस करने अर्थ में। सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम्। तुला शब्द से तोलने अर्थ में। तुलया सम्मितं तुल्यं धान्यम् ॥ ५१३ ॥

धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ॥ ५१४ ॥ अ० ४ । ४ । ९२ ॥

अनपेत अर्थात् युक्त अर्थ में पञ्चमीसमर्थ पथिन् अर्थ और न्याय प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है जैसे। धर्मादनपेतं धर्म्यम्। पथोऽनपेतं पथ्यम्। अर्थ्यम्। न्याय्यम् ॥ ५१४ ॥

छन्दसो निर्मिते ॥ ५१५ ॥ अ० ४ । ४ । ९३ ॥

निर्माण अर्थ में तृतीयासमर्थ छन्दस् प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो जैसे। छन्दसा निर्मितः। छन्दस्यः। यहां छन्दशब्द इच्छा का पर्यायवाची है ॥ ५१५ ॥

उरसोऽण् च ॥ ५१६ ॥ अ० ४ । ४ । ९४ ॥

निर्मित अर्थ में तृतीयासमर्थ उरस् शब्द से अण् और चकार से यत् प्रत्यय भी हो जैसे। उरसा निर्मितः। औरसः। उरस्यः पुत्रः ॥ ५१६ ॥

हृदयस्य प्रियः ॥ ५१७ ॥ अ० ४ । ४ । ९५ ॥

प्रिय अर्थ में षष्ठीसमर्थ हृदय शब्द से यत् प्रत्यय हो जैसे। हृदयस्य प्रियो हृद्यो धर्मः। हृद्यो देशः। हृद्या कन्या। हृद्यं वनम् * ॥ ५१७ ॥

तत्र साधुः ॥ ५१८ ॥ अ० ४ । ४ । ९८ ॥

साधु अर्थ में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो जैसे। सामसु साधुः। सामन्यः। वेमन्यः। कर्मण्यः। शरण्यः। साधु प्रवीण वा योग्य का नाम है ॥ ५१८ ॥

सभाया यः ॥ ५१९ ॥ अ० ४ । ४ । १०५ ॥

साधु अर्थ में सप्तमीसमर्थ सभा शब्द से य प्रत्यय हो जैसे। सभायां साधुः सभ्यः यहां य और यत् में स्वर का भेद है उदाहरण का नहीं ॥ ५१९ ॥

ढश्छन्दसि ॥ ५२० ॥ अ० ४ । ४ । १०६ ॥

साधु अर्थ में जो वेदविषय हो तो सभा शब्द से ढ प्रत्यय हो जैसे। सभेयोऽस्य युवा यजमानस्य वीरो जायताम् ॥ ५२० ॥

समानतीर्थे वासी ॥ ५२१ ॥ अ० ४ । ४ । १०७ ॥

* इसी हृदय शब्द को (हृदयस्य हृल्लेख०) इस सूत्र से हृद् आदेश हो जाता है ॥

वसने अर्थ में सप्तमीसमर्थ समानतीर्थ शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥ ५२१ ॥

तीर्थे ये ॥ ५२२ ॥ अ० ६ । ३ । ८७ ॥

तीर्थ उत्तरपद परे हो तो समान शब्द को स आदेश होवे जैसे । समाने तीर्थे वसति सतीर्थ्यो ब्रह्मचारी * ॥ ५२२ ॥

समानोदरे शयित ओचोदात्तः ॥५२३॥अ०४।४।१०८ ॥

सोने अर्थ में सप्तमीसमर्थ समानोदर शब्द से यत् प्रत्यय और समानोदर के ओकार को उदात्त हो । समान उदरे शयितः । समानोदर्य्यो भ्राता ॥ ५२३ ॥

सोदराद्यः ॥ ५२४ ॥ अ० ४ । ४ । १०९ ॥

सोने अर्थ में सप्तमीसमर्थ सोदर शब्द से यत् प्रत्यय हो ॥ ५२४ ॥

विभाषोदरे ॥ ५२५ ॥ अ० ६ । ३ । ८८ ॥

उदर शब्द के परे यत् प्रत्यय हो तो समान शब्द को विकल्प कर के स आदेश होवे जैसे । समानोदरे शयितः सोदर्य्यो भ्राता † ॥ ५२५ ॥

भवे छन्दसि ॥ ५२६ ॥ अ० ४ । ४ । ११० ॥

भव अर्थ और वैदिक प्रयोगों में सप्तमीसमर्थ प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो यहां छन्द का अधिकार इस पाद की समाप्ति तक और भवाधिकार (समुद्राभ्राद् घः) इस से पूर्व २ जानना चाहिये । यह अण् और घ आदि प्रत्ययों का अपवाद है । मेघ्याय च विद्युत्याय च नमः । इत्यादि ॥ ५२६ ॥

पूर्वैः कृतमिनियौ च ॥ ५२७ ॥ अ० ४ । ४ । १३३ ॥

कृत अर्थ में तृतीयासमर्थ पूर्व शब्द से इनि तथा य और चकार से ख प्रत्यय होवें जैसे । पूर्वैः कृतं कर्म पूर्वि । पूर्व्यम् । पूर्वीणम् ॥ ५२७ ॥

अद्भिः संस्कृतम् ॥ ५२८ ॥ अ० ४ । ४ । १३४ ॥

संस्कृत अर्थ में तृतीयासमर्थ अप् शब्द से यत् प्रत्यय हो जैसे । अद्भिः संस्कृतम् अप्यं हविः ॥ ५२८ ॥

सोममर्हति यः ॥ ५२९ ॥ अ० ४ । ४ । १३७ ॥

योग्यता अर्थ में द्वितीयासमर्थ सोम शब्द से य प्रत्यय हो । सोममर्हति सोम्यः ॥ ५२८ ॥

---

* यहां तीर्थ शब्द से कहते हैं जो संसार से दुःखों से पार कर देवे । जो पढ़ानेवाला आचार्य्य और विद्या समझनी चाहिये । जिन का एक गुरु पढ़ाने हारा और वेद का पाठ मात्र हो वे सतीर्थ्य कहावें ॥

† समानोदर्य्य और सोदर्य्य उन भाइयों के नाम [illegible] जो एक माता के उदर से उत्पन्न हुए हों जो जिनकी माता दो और पिता एक [illegible] बने हैं ॥

मये च ॥ ५३० ॥ अ० ४ । ४ । १३८ ॥

जिन २ अर्थों में मयट् प्रत्यय विधान किया है उन २ अर्थों और उन्हीं समर्थ-विभक्तियों से सोम शब्द से य प्रत्यय हो जैसे । सोमस्य विकारोऽवयवो वा सोम्यं मधु । इत्यादि ॥ ५३० ॥

शिवशमरिष्टस्य करे ॥ ५३१ ॥ अ० ४ । ४ । १४३ ॥

करने अर्थ में शिव शम् और अरिष्ट शब्दों से तातिल् प्रत्यय हो जैसे । शिवस्य करः शिवतातिः । शन्तातिः । अरिष्टतातिः ॥ ५३१ ॥

भावे च ॥ ५३२ ॥ अ० ४ । ४ । १४४ ॥

भावार्थ में भी शिव शम् और अरिष्ट प्रातिपदिकों से तातिल् प्रत्यय हो जैसे । शिवस्य भावः शिवतातिः । शन्तातिः । अरिष्टतातिः ॥ ५३२ ॥

इति चतुर्थाध्यायः समाप्तः ॥

अथ पञ्चमाध्याय आरभ्यते ॥

प्राक्क्रीताच्छः ॥ ५३३ ॥ अ० ५ । १ । १ ॥

क्रीताधिकार से पूर्व २ छ प्रत्यय का अधिकार किया जाता है यहां से आगे सामान्य करके सब अर्थों में छ प्रत्यय होगा जैसे । घटाय हिता घटीया मृत्तिका । इत्यादि ॥ ५३३ ॥

उगवादिभ्यो यत् ॥ ५३४ ॥ अ० ५ । १ । २ ॥

क्रीत से पूर्व २ जो अर्थ कहे हैं उन में उवर्णान्त और गवादि प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय हो । यह छ प्रत्यय का अपवाद है । शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु । पिचव्यः कार्पासः । कमण्डलव्या मृत्तिका । इत्यादि । गवादिकों से । गवे हितं गव्यम् । हविष्यम् । मेधायै हितं मेध्यम् । इत्यादि ॥ ५३४ ॥

तस्मै हितम् ॥ ५३५ ॥ अ० ५ । १ । ५ ॥

हित नाम उपकारी का है उस हित अर्थ में चतुर्थीसमर्थ प्रातिपदिक से छ प्रत्यय हो जैसे । रोगिणे हितं रोगीयमौषधम् । मातृीयः पित्रीयो वा पुत्रः । वत्सेभ्यो हितो गोधुक् । वत्सीयः । गर्भेभ्यो हितं गर्भीयं । माहनम् । इत्यादि ॥ ५३५ ॥

वा–सर्वाणएस्य वा वचनम् ॥ ५४४ ॥

सर्व शब्द से ण प्रत्यय विकल्प करके हो जैसे । सर्वाय हितः सार्वः सर्वीयः ॥ ५४४ ॥

वा–पुरुषाद्वधविकारसमूहतेनकृतेषु ॥ ५४५ ॥

षष्ठीसमर्थ पुरुष शब्द से वध विकार और समूह अर्थों में तथा तृतीयास॰ मर्थ से कृत अर्थ में ढञ् प्रत्यय हो जैसे । पौरुषेयो वधः । पौरुषेयो विकारः । पौरुषेयः समूहः । पौरुषेयो ग्रन्थः ॥ ५४५ ॥

तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ ॥ ५४६ ॥ अ॰ ५ । १ । १२ ॥

प्रकृति अर्थात् कारण जहां अभिधेय रहे वहां चतुर्थीसमर्थ विकृतिवाची प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । अङ्गारेभ्यो हितानि काष्ठानि अङ्गारीयाणि काष्ठानि । प्राकारीया इष्टकाः । शङ्कव्यं दारु । पिचव्यः कार्पासः । इत्यादि । यहां तदर्थग्रहण इसलिये है कि । यवानां धानाः । धानानां सक्तवः । यहां प्रत्यय न हो । विकृतिग्रहण इसलिये है कि । उदकार्थः कूपः । प्रकृति-ग्रहण इसलिये है कि अस्यर्थी कोशी* । यहां छ प्रत्यय न हो ॥ ५४६ ॥

तदस्य तदस्मिन् स्यादिति + ॥ ५४७ ॥ अ॰ ५ । १ । १६ ॥

षष्ठ्यर्थ और सप्तम्यर्थ में स्यात् समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों । प्राकारमासामिष्टकानां स्यादिति प्राकारीया इष्टकाः । प्रासादीयं दारु । प्राकारोऽस्मिन् देशे स्यात्प्राकारीयो देशः । प्रासादीया भूमिः । इत्यादि । प्रासादो देवदत्तस्य स्यात् । यहां प्रत्यय इसलिये नहीं होता कि यहां प्रकृति विकृति का प्रकरण है देवदत्त प्रासाद का कारण नहीं है ॥ ५४७ ॥

प्राग्वतेष्ठञ् ॥ ५४८ ॥ अ॰ ५ । १ । १८ ॥

यह अधिकार सूत्र है (तेन तुल्यं क्रियाचेद्वतिः) इस सूत्र से पूर्व २ जो २ अर्थ कहें उन २ में सामान्य से ठञ् प्रत्यय होगा जैसे । चान्द्रायणं वर्त्तयति । चान्द्रायणिकः । इत्यादि ॥ ५४८ ॥

आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट्ठक् ॥ ५४९ ॥ अ॰ ५ । १ । १९ ॥

---

* यहां प्रकृतिग्रहण से उपादान कारण समझना चाहिये [illegible] ॥

+ इस सूत्र में स्यात् [illegible] ॥

ठञ् अधिकार के अन्तर्गत यह ठक् प्रत्यय का अधिकार उस का बाधक किया है (तदर्हति) इस सूत्र में जो अर्ह शब्द है वहांतक ठक् प्रत्यय का अधिकार जानना चाहिये परन्तु आङ् उपसर्ग यहां अभिविधि अर्थ में है। इसी से अर्हअधिकार में भी ठक् होता है । गोपुच्छ संख्या और परिमाणवाचियों से ठक् का निषेध होने से सब अर्थों में ठञ् ही होता है जैसे । गोपुच्छेन क्रीतं गौपुच्छिकम् । सङ्ख्या । षाष्टिकम् । परिमाण । प्रास्थिकम् । कौडविकम् । इत्यादि ॥५४९॥

सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन् ॥ ५५० ॥ अ० ५ । १ । २२ ॥

जिस संख्या के अन्त में ति और शत् शब्द न हों उस से आर्हीय अर्थों में कन् प्रत्यय हो । यह ठञ् का अपवाद है जैसे । पञ्चभिः क्रीतः पटः पञ्चकः । बहुकः । यहां तिदन्त शदन्त का निषेध इसलिये है कि साप्ततिकः । चत्वारिंशत्कः । यहां कन् प्रत्यय न होवे ॥ ५५० ॥

अध्यर्द्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम् ॥ ५५१ ॥ अ० ५ । १ । २८ ॥

जिस प्रातिपदिक के पूर्व अध्यर्द्ध हो उस और द्विगुसमास प्रातिपदिक से आर्हीय अर्थों में संज्ञाविषय को छोड़ के प्रत्यय का लुक् हो जैसे । अध्यर्द्धकंसेन क्रीतमध्यर्द्धकंसम् । द्विकंसम् । त्रिकंसम् । अध्यर्द्धशूर्पम् । द्विशूर्पम् । त्रिशूर्पम् । यहां संज्ञा का निषेध इसलिये है कि । पाञ्चलौहितिकम् । पाञ्चकपालिकम् । यहां लुक् न होवे ॥ ५५१ ॥

तेन क्रीतम् ॥ ५५२ ॥ अ० ५ । १ । ३७ ॥

ठञ् से लेके तेरह १३ प्रत्यय हैं उन का अर्थ और समर्थविभक्ति इसी सूत्र से जानना चाहिये । क्रीत अर्थ में तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित ठञ् आदि प्रत्यय होवें जैसे । सप्तत्या क्रीतं साप्ततिकम् । आशीतिकम् । नैष्किकम् । पाणिकम् । पादिकम् । माषिकम् । शत्यम् । शतिकम् । इत्यादि * ॥ ५५२ ॥

तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ + ॥ ५५३ ॥ अ० ५ । १ । ३८ ॥

जो निमित्त अर्थ संयोग वा उत्पातसम्बन्धी होवे तो षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हो जैसे । शतस्य निमित्तं संयोगः । शत्यः । शतिकः । साहस्रः । शतस्य निमित्तमुत्पातः । शत्यः । शतिकः । साहस्रः । इत्यादि ॥ ५५३ ॥

* देवदत्तेन क्रीतम् । इत्यादि वाक्यों में ठञ् इसलिये नहीं होता कि लोक में देवदत्तिक आदि शब्दों से क्रीत अर्थ का बोध नहीं होता ॥

+ [illegible]

वा०—तस्य निमित्तप्रकरणे वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसङ्ख्यानम् ॥ ५५४ ॥

शांति और कुपित होने अर्थ में वात पित्त और श्लेष्म शब्दों से ठक् प्रत्यय होवे जैसे। वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम्। पैत्तिकम्। श्लैष्मिकम् ॥ ५५४ ॥

वा०—सन्निपाताच्च ॥ ५५५ ॥

सन्निपात शब्द से भी शान्ति और कोप अर्थ में ठक् प्रत्यय होवे जैसे। सन्निपातस्य शमनं कोपनं वा सान्निपातिकम्। ये दोनों वार्त्तिक अपूर्वविधायक हैं क्योंकि इन शब्दों से ठक् प्रत्यय किसी सूत्र करके प्राप्त नहीं है ॥ ५५५ ॥

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ॥ ५५६ ॥ अ० ५ । १ । ४१ ॥

संयोग और उत्पातसम्बन्धी निमित्त अर्थ में षष्ठीसमर्थ सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिक से यथासंख्य करके अण् और अञ् प्रत्यय होवें जैसे। सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभौमः। पार्थिवो वा। यहां अनुशतिकादिगण में होने से सर्वभूमि शब्द को उभयपदवृद्धि होती है ॥ ५५६ ॥

तस्येश्वरः ॥ ५५७ ॥ अ० ५ । १ । ४२ ॥

षष्ठीसमर्थ सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिक से ईश्वर अर्थ में यथासंख्य करके अण् और अञ् प्रत्यय होवें जैसे। सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः। पार्थिवो वा ॥५५७॥

तत्र विदित इति च ॥ ५५८ ॥ अ० ५ । १ । ४३ ॥

सप्तमीसमर्थ सर्वभूमि और पृथिवी शब्द से विदित नाम प्रसिद्ध अर्थ में अण् तथा अञ् प्रत्यय हों जैसे। सर्वभूमौ विदितः सार्वभौमः पार्थिवो वा ॥ ५५८ ॥

तस्य वापः ॥ ५५९ ॥ अ० ५ । १ । ४५ ॥

षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से खेत अर्थ वाच्य रहे तो यथाविहित प्रत्यय हों वाप कहते हैं खेत को क्योंकि उस में जो आदि अन्न बोये जाते हैं। प्रस्थस्य वापः क्षेत्रं प्रास्थिकम्। द्रौणिकम्। खारिकम्। इत्यादि ॥ ५५९ ॥

तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते ॥ ५६० ॥ अ० ५ । १ । ४७ ॥

सप्तम्यर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों। जो वृद्धि आय लाभ शुल्क और उपदा ये अर्थ दीयते क्रिया के कर्म वाच्य होवें तो जो द्रव्य ब्याज में देते हैं उस को वृद्धि कहते हैं ग्राम आदि में जो जिमींदार का भाग

होता है वह आय, जो दुकान्दारी के व्यवहार में मूल वस्तु से अधिक द्रव्य की प्राप्ति है उस को लाभ, राजा के भाग को शुल्क और घूंस लेने को उपदा कहते हैं जैसे। पञ्चास्मिन् वृद्धिर्वा आयो वा लाभो वा उपदा वा दीयते पञ्चकः। सप्तकः। शत्यः। शतिकः। साहस्रः। इत्यादि ॥ ५६० ॥

वा०—चतुर्थ्यर्थ उपसङ्ख्यानम् ॥ ५६१ ॥

वृद्धि आदि दीयते क्रिया के कर्म वाच्य हों तो चतुर्थी के अर्थ में भी प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होवें जैसे। पञ्चास्मै वृद्धिर्वा आयो वा लाभो वा उपदा वा दीयते पञ्चको देवदत्तः। इत्यादि ॥ ५६१ ॥

तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः ॥ ५६२ ॥ अ० ५।१।५० ॥

द्वितीयासमर्थ, वंश आदि गण पठित शब्दों से परे जो भार शब्द तदन्त से हरति वहति और आवहति क्रियाओं के कर्त्ता अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो जैसे। वंशभारं हरति वहति आवहति वा वांशभारिकः। कौटजभारिकः। बाल्वजभारिकः *। यहां भारग्रहण इसलिये है कि भारवंशं हरति। यहां न हो। और वंशादि इसलिये है कि। व्रीहिभारं हरति। यहां भी प्रत्यय न हो ॥ ५६२ ॥

सम्भवत्यवहरति पचति ॥ ५६३ ॥ अ० ५ । १ । ५२ ॥

द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से संभव समाप्ति और पकाने अर्थों में यथाविहित प्रत्यय हो जैसे। प्रस्थं सम्भवति अवहरति पचति वा प्रास्थिकः। कौडविकः। खारीकः। प्रत्यक्षमनुमानं शब्दो वा यं व्यवहारं प्रति सम्भवति स प्रात्यक्षिकः। आनुमानिकः। शाब्दिको वा व्यवहारः। इत्यादि ॥ ५६३ ॥

वा०—तत्पचतीति द्रोणादण् च ॥ ५६४ ॥

द्वितीयासमर्थ द्रोण प्रातिपदिक से पकाने अर्थ में अण् और ठञ् प्रत्यय होवें जैसे। द्रोणं पचति द्रौणी द्रौणिकी वा ब्राह्मणी ॥ ५६४ ॥

सोऽस्यांशवस्नभृतयः ॥ ५६५ ॥ अ० ५ । १ । ५६ ॥

अंश मूल्य और वेतन अर्थों में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय हो जैसे। पञ्चांशा वस्नानि भृतयो वा अस्य पञ्चकः। सप्तकः। साहस्रः। इत्यादि ॥ ५६५ ॥

* [illegible]

तदस्य परिमाणम् ॥ ५६६ ॥ अ० ५ । १ । ५७ ॥

षष्ठ्यर्थ में परिमाणवाची प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे । प्रस्थः परिमाणमस्य प्राम्थिको राशिः । खारीकः।शत्यः । शतिकः । साहस्रः । द्रौणिकः । कौडविकः । वर्षशतं परिमाणमस्य वार्षशतिकः । वार्षसह-स्रिकः । षष्टिजीवितं परिमाणमस्य षाष्टिकः । इत्यादि ॥ ५६६ ॥

सङ्ख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राऽध्ययनेषु ॥५६७॥अ० ५।१।५८ ॥

पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति यहां चली आती है । संज्ञा सङ्घ सूत्र और अध्ययन अर्थों में परिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में यथाप्राप्त प्रत्यय होवें ॥ ५६७ ॥

वा०—संज्ञायां स्वार्थे ॥ ५६८ ॥

संज्ञा अर्थ में कहे प्रत्यय स्वार्थ को संज्ञा में होवें जैसे । पञ्चैव पञ्चकाः शकुनयः । त्रय एव त्रिकाः शालङ्कायनाः । सङ्घ अर्थ में । पञ्च परिमाणमस्य पञ्चकः सङ्घः । पञ्चका उष्ट्राः । त्रिकः । अष्टको वा । सूत्र अर्थ में । अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य सूत्रस्य।अष्टकं पाणिनीयं सूत्रम् । पञ्चको गौतमो न्यायः । द्वादशिका जैमिनीया मीमांसा । चतुष्कं व्यासीयं सूत्रम् । दशकं वैयाघ्रपदीयम् । त्रिकं काशकृत्स्नम् । अध्यायों का समुदाय भी सङ्घ अर्थ में आ जाता है फिर सूत्रग्रहण पृथक् इसलिये है कि सङ्घ शब्द बहुधा प्राणियों के समुदाय में आता है । अध्ययन अर्थ में । पञ्चकोऽधीतः । सप्तकोऽधीतः । अष्टकः । नवकः । इत्यादि ॥ ५६८ ॥

वा०—स्तोमे डविधिः पञ्चदशाद्यर्थः ॥ ५६९ ॥

स्तोमपरिमाणसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ पञ्चदशादि प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ड प्रत्यय होवे जैसे । पञ्चदश मन्त्राः परिमाणमस्य स्तोमस्य पञ्चदशः स्तोमः । सप्तदशः । एकविंशः । इत्यादि ॥ ५६९ ॥

वा०—शन्शतोर्डिनिश्छन्दसि ॥ ५७० ॥

शन् और शत् जिन के अन्त में हों उन प्रातिपदिकों से वैदिकप्रयोगविषय में डिनि प्रत्यय हो जैसे । पञ्चदश दिनानि परिमाणमेषां पञ्चदशिनोऽर्धमासाः । त्रिंशिनो मासाः ॥ ५७० ॥

वा०—विंशतेश्च ॥ ५७१ ॥

विंशति शब्द से भी डिनि प्रत्यय हो जैसे। विंशतिः परिमाणमेषां विंशिनोऽङ्गिरसः ॥ ५७१ ॥

पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् ॥ ५७२ ॥ अ० ५ । १ । ५९ ॥

परिमाण अर्थ में पङ्क्ति आदि शब्द निपातन किये हैं जो कुछ कार्य सूत्रों से सिद्ध नहीं होता वो सब निपातन से सिद्ध जानना चाहिये जैसे। पङ्क्ति शब्दों पञ्चन् शब्द के टिभाग का लोप और ति प्रत्यय किया है। पञ्च परिमाणमस्य तत् पङ्क्तिश्छन्दः। दो दशत् शब्द को विन् आदेश और शतिच् प्रत्यय हो जैसे। द्वौ दशतौ परिमाणमेषान्ते विंशतिः पुरुषाः। तीन दशत् शब्दों को त्रिन् आदेश और शत् प्रत्यय जैसे। त्रयो दशतः परिमाणमेषान्ते त्रिंशत्। चार दशत् शब्दों को चत्वारिन् आदेश और शत् प्रत्यय जैसे। चत्वारो दशतः परिमाणमेषां ते चत्वारिंशत्। पांच दशत् शब्दों को पञ्चा आदेश और शत् प्रत्यय जैसे। पञ्च दशतः परिमाणमेषां ते पञ्चाशत्। छः दशत् शब्दों को षष् आदेश और ति प्रत्यय जैसे। षड् दशतः परिमाणमेषां ते षष्टिः। सात दशत् शब्दों को सप्त आदेश और ति प्रत्यय जैसे। सप्त दशतः परिमाणमेषां ते सप्ततिः। आठ दशत् शब्दों को अशी आदेश और ति प्रत्यय जैसे। अष्टौ दशतः परिमाणमेषां ते अशीतिः। नव दशत् शब्दोंको नव आदेश और ति प्रत्यय जैसे। नव दशतः परिमाणमेषां ते नवतिः। और दश दशत् शब्दों को श आदेश और त प्रत्यय निपातन किया है जैसे। दश दशतः परिमाणमेषां ते शतम् ॥ ५७२ ॥

पञ्चद्दशतौ वर्गे वा ॥ ५७३ ॥ अ० ५ । १ । ६० ॥

यहां सङ्ख्यावाची पंच और दश शब्द से कन् प्राप्त है उस का यह अपवाद है और पक्ष में कन् भी होजाता है। पञ्चत् और दशत् ये डति प्रत्ययान्त वर्ग और परिमाण अर्थ में विकल्प करके निपातन किये हैं जैसे। पञ्च परिमाणमस्य पञ्चद्वर्गः। दशद्वर्गः। पंचको वर्गः। दशको वर्गः ॥ ५७३ ॥

तदर्हति ॥ ५७४ ॥ अ० ५ । १ । ६३ ॥

योग्यता अर्थ में द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय हों जैसे। श्वेतच्छत्रमर्हति श्वेतच्छत्रिकः। वास्त्रयुग्मिकः। शत्यः। शतिकः। इत्यादि ॥ ५७४ ॥

यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ ॥ ५७५ ॥ अ० ५ । १ । ७१ ॥

यह सूत्र ठक् प्रत्यय का बाधक है योग्यता अर्थ में द्वितीयासमर्थ यज्ञ और ऋत्विज् प्रातिपदिक से यथासंख्य करके घ और खञ् प्रत्यय होवें जैसे। यज्ञमर्हति यज्ञियः। ऋत्विजमर्हति। स आर्त्विजीनो ब्राह्मणः ॥ ५७५ ॥

वा०—यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीत्युपसङ्ख्यानम् ॥ ५७६ ॥

यज्ञ और ऋत्विज् शब्द से उन कर्मों के करने योग्य अर्थों में उक्त प्रत्यय हों, यह वार्त्तिक सूत्र का शेष है क्योंकि यह विशेष अर्थ सूत्र से नहीं आता है। यज्ञकर्मार्हति यज्ञियो देशः। ऋत्विक्कर्मार्हति। आर्त्विजीनं ब्राह्मणकुलम्। अब यहां तक अर्हअधिकार पूरा हुआ इसी से ठक् प्रत्यय के अधिकार की समाप्ति जानो। अब यहां से आगे केवल ठञ् प्रत्यय का ही अधिकार चलेगा ॥ ५७६ ॥

पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्त्तयति॥ ५७७ ॥ अ० ५। १। ७२॥

द्वितीयासमर्थ पारायण तुरायण और चान्द्रायण प्रातिपदिक से वर्त्तन क्रिया का कर्त्ता वाच्य रहे तो ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। पारायणं वर्त्तयति पारायणिकश्छात्रः। तुरायणं वर्त्तयति तौरायणिको यजमानः। चान्द्रायणं वर्त्तयति चान्द्रायणिको ब्राह्मणः ॥ ५७७ ॥

संशयमापन्नः ॥ ५७८ ॥ अ० ५। १। ७३ ॥

प्राप्त होने अर्थ में द्वितीयासमर्थ संशय प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। संशयमापन्नः सांशयिकश्चोरः ॥ ५७८ ॥

योजनं गच्छति ॥ ५७९ ॥ अ० ५। १। ७४ ॥

चलने अर्थ में द्वितीयासमर्थ योजन प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। योजनं गच्छति यौजनिकः ॥ ५७९ ॥

वा०—क्रोशशतयोजनशतयोरुपसङ्ख्यानम् ॥ ५८० ॥

चलने अर्थ में द्वितीयासमर्थ क्रोशशत और योजनशत प्रातिपदिक से भी ... । क्रोशशतं गच्छति क्रौशशतिकः। यौजनशतिकः ॥ ५८० ॥

...नमर्हतीति च ॥ ५८१ ॥

पूर्व ... अनुवृत्ति आती है। निरन्तर चलने अर्थ में ... शब्द से भी ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। क्रो... ... ो भिक्षुः। यौजनशतिक आचार्यः ॥ ५८१ ॥

.५. ... । १ । ७७ ॥

यहां चकार से गच्छति क्रिया की अनुवृत्ति आती है। पहुंच करने चलने अर्थ में तृतीयासमर्थ उत्तरपथ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। त्तरपथेनाहृतमौत्तरपथिकम्। उत्तरपथेन गच्छति-औत्तरपथिकः ॥ ५८२ ॥

वा०—आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तार-
पूर्वपदादुपसङ्ख्यानम् ॥ ५८३ ॥

लेआने और चलने अर्थ में वारि जङ्गल स्थल और कान्तार शब्द जिस पूर्व हों ऐसे द्वितीयासमर्थ पथ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय हो जैसे। वारिपथेनाहृतं वारिपथिकम्। वारिपथेन गच्छति वारिपथिकः। जङ्गलपथेनाहृतं जाङ्गलपथिकम्। जङ्गलपथेन गच्छति जाङ्गलपथिकः। स्थलपथेनाहृतं स्थालपथिकम्। स्थलपथेन गच्छति स्थालपथिकः। कान्तारपथेनाहृतं कान्तारपथिकम्। कान्तारपथेन गच्छति कान्तारपथिकः ॥ ५८३ ॥

वा०—अजपथशङ्कुपथाभ्यां च ॥ ५८४ ॥

अजपथ और शङ्कुपथ शब्द से भी उक्त अर्थों में ठञ् प्रत्यय हो जैसे। अजपथेनाहृतं गच्छति वा—आजपथिकः। शङ्कुपथेनाहृतं गच्छति वा शाङ्कुपथिकः ॥ ५८४ ॥

वा०—मधुकमरिचयोरण् स्थलात् ॥ ५८५ ॥

मधुक और मरिच अभिधेय हों तो स्थलशब्द से परे जो पथ प्रातिपदिक उस से लेआने अर्थ में ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। स्थलपथेनाहृतं स्थालपथं मधुकम्। स्थालपथं मरिचम् ॥ ५८५ ॥

कालात् ॥ ५८६ ॥ अ० ५ । १ । ७८ ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो २ प्रत्यय विधान करेंगे वे २ कालवाची प्रातिपदिक से जानो जैसे। मासेन निर्वृत्तं कार्यं मासिकम् ...मासिकम्। सांवत्सरिकम्। इत्यादि ॥ ५८६ ॥

तेन निर्वृत्तम् ॥ ५८७ ॥ अ० ५ । १ । ७९ ॥

समझना चाहिये। इन, अधीट आदि अर्थों में द्वितीयासमर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय हो जैसे। मासमधीटो मासिक आचार्यः। मासम्भृतः मासिकः कर्मकरः। सप्ताह भूतः साप्ताहिको व्याधिः। पौर्णमासीं भावी पौर्णमासिक उत्सवः। इत्यादि ॥ ५८८ ॥

मासाद्वयसि यत्खञौ ॥ ५८९ ॥ अ० ५ । १ । ८१ ॥

यह सूत्र ठञ् प्रत्यय का अपवाद है। यहां अधीट आदि अर्थों का अधिकार तो है परन्तु योग्यता के न होने से एक भूत अर्थ ही लिया जाता है। द्वितीयासमर्थ मास शब्द से अवस्था गम्यमान होवे तो यत् और खञ् प्रत्यय हों जैसे। मासं भूतो मास्यः। मासीनो वा शिशुः ॥ ५८९ ॥

तेन परिजय्यलभ्यकार्य्यसुकरम् ॥ ५९० ॥ अ० ५ । १ । ९३ ॥

जीत सकने प्राप्त होने योग्य और जो अच्छे प्रकार सिद्ध हो इन अर्थों में तृतीया समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। पक्षेण परिजेतुं शक्यते पाक्षिकः सङ्ग्रामः। मासेन लभ्यं मासिकं धनम्। द्वादशाहेन कार्यं द्वादशाहिकं व्रतम्। वर्षेण सुकरो वार्षिकः प्रासादः ॥ ५९० ॥

तदस्य ब्रह्मचर्य्यम् ॥ ५९१ ॥ अ० ५ । १ । ९४ ॥

प्रथमासमर्थ कालवाची प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो ब्रह्मचर्य वाच्य रहे तो जैसे। षट्त्रिंशदब्दा यस्य ब्रह्मचर्यस्य षट्त्रिंशदाब्दिकं ब्रह्मचर्यम्। अष्टादशाब्दिकम्। नवाब्दिकम्। इस सूत्र में [illegible] ने द्वितीया विभक्ति काल के अत्यन्तसंयोगमें मान के अर्थ किया है सो सूत्र में तो काल के साथ अत्यन्तसंयोग है ही नहीं उदाहरण में भी सकता है फिर सूत्र में द्वितीया क्यों कर हो सकती है। और द्वितीयासमर्थ विभक्ति मानने से [illegible] सम्बन्ध ब्रह्मचारी [illegible] ऋषि लोगों के [illegible] के विरुद्ध है

१) इस पद उदाहरणों का विशेष [illegible]

[illegible]

द्वितीयासमर्थ महानाम्नी आदि प्रातिपदिकों से आचरण अर्थ में ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। महानाम्नीश्चरति माहानामिकः* । आदित्यव्रतिकः । इत्यादि ॥ ५८३ ॥

वा०—अवान्तरदीक्षादिभ्यो डिनिः ॥ ५९४ ॥

द्वितीयासमर्थ अवान्तरदीक्षा आदि प्रातिपदिकों से आचरण अर्थ में डिनि होवे जैसे। अवान्तरदीक्षामाचरति–अवान्तरदीक्षी । तिलव्रती । इत्यादि ॥५८४॥

वा०—अष्टाचत्वारिंशतो ड्वुंश्च ॥ ५९५ ॥

यहां चरति क्रिया और डिनि प्रत्यय की अनुवृत्ति पूर्व वार्त्तिकों से आती है। द्वितीयासमर्थ अष्टाचत्वारिंशत् प्रातिपदिक से आचरण अर्थ में ड्वुन् और डिनि प्रत्यय हों जैसे । अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि व्रतमाचरति–अष्टाचत्वारिंशकः । अष्टाचत्वारिंशी ॥ ५८५ ॥

वा०—चातुर्मास्यानां यलोपश्च ॥ ५९६ ॥

यहां भी पूर्व की सब अनुवृत्ति आती है । द्वितीयासमर्थ चातुर्मास्य प्रातिपदिक से आचरण अर्थ में ड्वुन् और डिनि प्रत्यय होवें जैसे । चातुर्मास्यानि तान्याचरति चातुर्मासकः । चातुर्मासी ॥ ५८६ ॥

वा०—चतुर्मासाण्ण्यो यज्ञे तत्र भवे ॥ ५९७ ॥

सप्तमीसमर्थ चतुर्मास शब्द से भव अर्थ यज्ञ होवे तो ण्य प्रत्यय हो जैसे। चतुर्षु मासेषु भवाश्चातुर्मास्या यज्ञाः ॥ ५८७ ॥

वा०—संज्ञायामण् ॥ ५९८ ॥

भवार्थ संज्ञा अभिधेय हो तो सप्तमीसमर्थ चतुर्मास आदि शब्दों से अण् प्रत्यय होवे जैसे । चतुर्मासेषु भवा चातुर्मासी पौर्णमासी । आषाढी । कार्त्तिकी । फाल्गुनी । चैत्री । इत्यादि ॥ ५८८ ॥

तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः ॥ ५९९ ॥ अ० ५ । १ । ९५ ॥

षष्ठीसमर्थ यज्ञाख्य प्रातिपदिकों से दक्षिणा अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो जैसे । अग्निष्टोमस्य दक्षिणा–आग्निष्टोमिकी । आश्वमेधिकी । वाजपेयिकी । राजसूयिकी । इत्यादि । यहां आख्यग्रहण इसलिये है कि इस कालाधिकार में आ- समानाधिकरण हों वा भी यज्ञ न हो जावे ॥ ५८९ ॥

* [illegible]

तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ ॥ ६००॥ अ० ५ । १ । ९८॥

यथाकथाच यह अव्ययशब्द अनादर अर्थ में आता है। और पूर्व सूत्र से (दीयते) और (कार्यम्) इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। तृतीयासमर्थ यथाकथाच और हस्त प्रातिपदिक से देने और करने अर्थों में ण और यत् प्रत्यय यथासंख्य करके हों जैसे। यथाकथाच दीयते कार्यं वा याथाकथाचम्। हस्तेन दीयते कार्यं वा हस्त्यम् ॥ ६०० ॥

सम्पादिनि ॥ ६०१ ॥ अ० ५ । १ । ९९ ॥

यहां पूर्व से तृतीयासमर्थ की अनुवृत्ति आती है। अवश्यसिद्ध होने वाला कर्त्ता वाच्य रहे तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। ब्रह्मचर्येण सम्पद्यते विद्या ब्राह्मचर्यिकी। उपकारेण सम्पद्यते-औपकारिको धर्मः। धर्मेण सम्पद्यते धार्मिकं सुखम्। इत्यादि ॥ ६०१ ॥

कर्म्मवेषाद्यत् ॥ ६०२ ॥ अ० ५ । १ । १०० ॥

सम्पन्न होने अर्थ में तृतीयासमर्थ कर्म्म और वेष प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय हो। यह ठञ् का अपवाद है। कर्म्मणा सम्पद्यते कर्म्मण्यं शरीरम्। वेषेण सम्पद्यते वेष्यो नटः। वेष्या नटिनी। यही वेष्या शब्द आज कल प्रकार से प्रवृत्त है सो ठीक नहीं क्योंकि जो अर्थ उन में घट सकता है वह यही है और विश प्रवेशने धातु से भी बन सकता है परन्तु ठीक २ अर्थ गणिकाओं में नहीं घटता ॥ ६०२ ॥

तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः ॥६०३ ॥ अ० ५ । १ । १०१॥

चतुर्थीसमर्थ सन्ताप आदि, गणपठित प्रातिपदिकों से प्रभव अर्थात् सामर्थ्यवान् अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो जैसे। सन्तापाय प्रभवति सान्तापिकः। सङ्ग्रामाय प्रभवति साङ्ग्रामिकः। प्रवासाय प्रभवति प्रावासिकः ॥ ६०३ ॥

समयस्तदस्य प्राप्तम् ॥ ६०४ ॥ अ० ५ । १ । १०२ ॥

प्राप्तसमानाधिकरणप्रथमासमर्थ समय प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो जैसे। समयः प्राप्तोऽस्य सामयिकः पदार्थः। सामयिकं वचनम्। सामयिका योगाभ्यासः। सामयिकमोदनम्। इत्यादि ॥ ६०४ ॥

छन्दसि घस् ॥ ६०५ ॥ अ० ५ । १ । १०६ ॥

यहां ऋतु शब्द से अण् प्रत्यय प्राप्त है उस का यह अपवाद है। प्राप्तसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ ऋतु प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में [illegible]

ठञ् प्रत्यय होवे जैसे। ऋतुः प्राप्तोऽस्य ऋत्वियः। अयम्ते योनिर्ऋत्वियः। यहां घस् प्रत्यय के सित् होने से भसंज्ञा होकर पदसंज्ञा का कार्य जश्त्व नहीं होता॥ ६०५॥

प्रयोजनम् ॥ ६०६ ॥ अ० ५। १। १०९॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से षष्ठी के अर्थ में ठञ् प्रत्यय हो जैसे। उपदेशः प्रयोजनमस्य औपदेशिकः। आध्यायनिकः। स्त्री प्रयोजनमस्य स्त्रैणः। पौंस्नः। धर्मः प्रयोजनमस्य धार्मिकः। वितण्डा प्रयोजनमस्य वैतण्डिकः। पारोधिकः। इत्यादि॥ ६०६॥

अनुप्रवचनादिभ्यः ॥ ६०७ ॥ अ० ५। १। १११॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ अनुप्रवचनादि, गणपठित प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में छ प्रत्यय हो। ठञ् का अपवाद है। अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम्। उत्थापनीयम्। अनुवासनीयम्। आरम्भणीयम्। इत्यादि॥ ६०७॥

वा०—विशिपूरिपतिरुहिपदिप्रकृतेरनात्सपूर्वपदादुपसङ्ख्यानम् ॥ ६०८ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ विशि पूरि पति रुहि पदि इन ल्युट् प्रत्ययान्त धातुओं के प्रयोग जिन के अन्त में हों उन प्रातिपदिकों से छ प्रत्यय होवे जैसे। गृहप्रवेशनं प्रयोजनमस्य गृहप्रवेशनीयम्। प्रपापूरणीयम्। अश्वप्रपतनीयम्। प्रासादारोहणीयम्। गोप्रपदनं प्रयोजनमस्य गोप्रपदनीयम्॥ ६०८॥

वा०—स्वर्गादिभ्यो यत् ॥ ६०९ ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण स्वर्गादि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में यत् प्रत्यय हो जैसे। स्वर्गः प्रयोजनमस्य स्वर्ग्यम्। यशस्यम्। आयुष्यम्। इत्यादि॥ ६०९॥

वा०—पुण्याहवाचनादिभ्यो लुक् ॥ ६१० ॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ पुण्याहवाचन आदि प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होवे जैसे। पुण्याहवाचनं प्रयोजनमस्य पुण्याहवाचनम्। स्वस्तिवाचनम्। शान्तिवाचनम्। इत्यादि॥ ६१०॥

समापनात्सपूर्वपदात् ॥ ६११ ॥ अ० ५। १। ११२॥

प्रयोजनसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ समापन शब्द जिन के अन्त में हो उन प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में छ प्रत्यय होवे जैसे। छन्दःसमापनं प्रयोजनमस्य

छन्दःसमापनीयम् । न्यायसमापनीयम् । व्याकरणसमापनीयम् । इत्यादि ॥ ६११ ॥

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ॥ ६१२ ॥ अ० ५ । १ । ११५ ॥

तुल्य अर्थ क्रिया होवे तो तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से वति प्रत्यय होवे जैसे । ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवत् । सिंहवत् । व्याघ्रवत् । इत्यादि । यहां क्रियाग्रहण इसलिये है कि जहां गुण और द्रव्य का सादृश्य हो वहां प्रत्यय न होवे जैसे । भ्रात्रा तुल्यः स्थूलः । भ्रात्रा तुल्यः पिङ्गलः । यहां वति प्रत्यय न होवे ॥ ६१२ ॥

तदर्हम् ॥ ६१३ ॥ अ० ५ । १ । ११७ ॥

अर्ह अर्थ में, द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से वति प्रत्यय होवे जैसे । राजानमर्हति राजवत् पालनम् । ब्राह्मणवद्विद्याप्रचारः । ऋषिवत् । इत्यादि ॥ ६१३ ॥

तस्य भावस्त्वतलौ ॥ ६१४ ॥ अ० ५ । १ । ११९ ॥

जिस गुण के होने से शब्द का अर्थ के साथ वाच्यवाचक सम्बन्ध समझा जाता है उस गुण को विवक्षा में षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकमात्र से त्व और तल् प्रत्यय हों जैसे । ब्राह्मणस्य भावो ब्राह्मणत्वम् । ब्राह्मणता । तस्य भावस्तत्त्वम् । तत्ता । स्त्रीत्वम् । पुंस्त्वम् । स्थूलत्वम् । स्थूलता । क्षमत्वम् । क्षमता । चेतनत्वम् । चेतनता । जडत्वम् । जडता । इत्यादि । यहां से ले के इस पाद की समाप्तिपर्यन्त त्व और तल् प्रत्यय का अधिकार समझना चाहिये ॥ ६१४ ॥

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥ ६१५ ॥ अ० ५ । १ । १२२ ॥

षष्ठीसमर्थ पृथु आदि, गणपठित प्रातिपदिकों से भाव अर्थ में इमनिच् प्रत्यय विकल्प करके होवे । पक्ष में त्व और तल् प्रत्यय होवें जैसे । पृथोर्भावः प्रथिमा । म्रदिमा । महिमा । लघिमा । गरिमा । पृथुत्वम् । पृथुता । मृदुत्वम् । मृदुता । महत्वम् । महत्ता । लघुत्वम् । लघुता । गुरुत्वम् । गुरुता । इत्यादि ॥ ६१५ ॥

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ॥ ६१६ ॥ अ० ५ । १ । १२३ ॥

यहां चकार से इमनिच् और विकल्प की भी अनुवृत्ति आती है । षष्ठीसमर्थ वर्णवाची और दृढादि प्रातिपदिकों से भाव अर्थ में ष्यञ् और इमनिच् प्रत्यय हों जैसे । शुक्लस्य भावः शौक्ल्यम् । शुक्लिमा । शुक्लत्वम् । शुक्लता । कार्ष्ण्यम् । कृष्णिमा । कृष्णत्वम् । कृष्णता । नैल्यम् । नीलिमा । नीलत्वम् । नीलता । इत्यादि । दृढादिकों से । दार्ढ्यम् । द्रढिमा । दृढत्वम् । दृढता । पाण्डित्यम् । पण्डितिमा । पण्डितत्वम् । पण्डितता । मधुरस्य भावो माधुर्यम् । मधुरिमा । मधुरत्वम् । मधुरता । इत्यादि ॥ ६१६ ॥

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥६१७॥अ०५।१।१२४॥

जिन शब्दों से शीत उष्ण आदि गुणों का बोध हो उन को गुणवचन कहते हैं यहां चकार, भाव अर्थ का समुच्चय होने के लिये है। षष्ठीसमर्थ गुणवाची और ब्राह्मणादि प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होवे जैसे। शीतस्य भावः कर्म वा शैत्यम्। औष्ण्यम्। शीतत्वम्। शीतता। उष्णत्वम्। उष्णता। ब्राह्मणादिकों से। ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा ब्राह्मण्यम्। चौर्य्यम्। मौढ्यम्। कौशल्यम्। चापल्यम्। नैपुण्यम्। इत्यादि। और अधिकार से त्व और तल् भी होते हैं। ब्राह्मणत्वम्। ब्राह्मणता। इत्यादि। यहां से आगे भाव और कर्म दोनों अर्थों का अधिकार चलेगा॥ ६१७॥

वा०—चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ उपसङ्ख्यानम् ॥ ६१८ ॥

चतुर्वर्ण आदि शब्दों से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय हो जैसे। चत्वार एव वर्णाः चातुर्वर्ण्यम्। चातुराश्रम्यम्। त्रैलोक्यम्। त्रैस्वर्य्यम्। ऐश्वर्य्यम्। षाड्गुण्यम्। सैन्यम्। सान्निध्यम्। सामीप्यम्। औपम्यम्। सौख्यम्। इत्यादि॥ ६१८॥

स्तेनाद्यन्नलोपश्च ॥ ६१९ ॥ अ० ५ । १ । १२५ ॥

भाव और कर्म अर्थ में स्तेन शब्द से यत् प्रत्यय और नकार का लोप होवे जैसे। स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम्॥ ६१९॥

सख्युर्यः ॥ ६२० ॥ अ० ५ । १ । १२६ ॥

भाव और कर्म अर्थ में सखि शब्द से य प्रत्यय होवे जैसे। सख्युर्भावः कर्म सख्यम्॥ ६२०॥

वा०—दूतवणिग्भ्यां च ॥ ६२१ ॥

दूत और वणिक् शब्दों से भी य प्रत्यय हो जैसे। दूतस्य भावः कर्म वा दूत्यम्। वणिज्यम्। वणिज् शब्द का पाठ ब्राह्मणादि गण में होने से ष्यञ् प्रत्यय भी हो जाता है जैसे। वाणिज्यम्॥ ६२१॥

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ॥ ६२२ ॥ अ० ५ । १ । १२८ ॥

षष्ठीसमर्थ पति शब्द जिन के अन्त में हो उन और पुरोहितादि प्रातिपदिकों से यक् प्रत्यय होवे भाव और कर्म अर्थ वाच्य रहे तो जैसे। सेनापतेर्भावः कर्म वा सैनापत्यम्। गाणपत्यम्। प्राजापत्यम्। बार्हस्पत्यम्। [illegible] इत्यादि॥ ६२२॥ [illegible]

॥ अथ द्वितीयः पादः ॥

—.o.—

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ॥ ६२३ ॥ अ० ५ । २ । १ ॥

यहां बहुवचन का निर्देश होने से धान्य के विशेषवाची शब्दों का ग्रहण होता है । षष्ठीसमर्थ धान्यविशेषवाची शब्दों से उत्पत्ति का स्थान खेत अर्थ वाच्य रहे तो खञ् प्रत्यय हो जैसे । गोधूमानां भवनं क्षेत्रं गोधूमीनम् । मौद्गीनम् । कौलत्थीनम् । इत्यादि । यहां धान्यवाचियों का ग्रहण इसलिये है कि । तृणानां भवनं क्षेत्रम् । यहां न हो और खेत का ग्रहण इसलिये है कि । गोधूमानां भवनं कुशूलम् । यहां भी खञ् प्रत्यय न होवे । ६२३ ॥

तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति ॥६२४॥अ० ५।२।७॥

सर्व शब्द जिन के आदि में हो ऐसे पथिन् अङ्ग कर्मन् पत्र और पात्र द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिकों से व्याप्ति अर्थ में ख प्रत्यय होवे जैसे । सर्वपथं व्याप्नोति सर्वपथीनं शकटम् । सर्वाण्यङ्गानि व्याप्नोति सर्वाङ्गीणस्तापः । सर्वं कर्म व्याप्नोति सर्वकर्मीणः पुरुषः । सर्वपत्रीणः सारथिः । सर्वपात्रीणः सूपः । इत्यादि ॥६२४॥

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ॥ ६२५ ॥ अ० ५ । २ । २४ ॥

पाक और मूल अर्थों में षष्ठीसमर्थ पील्वादि और कर्णादि, गणपठित प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके कुणप् और जाहच् प्रत्यय हों जैसे । पीलूनां पाकः पीलुकुणः । बदरकुणः । खदिरकुणः । इत्यादि । कर्णादिकों से । कर्णस्य मूलं कर्णजाहम् । नखजाहम् । केशानां मूलम् । केशजाहम् । दन्तजाहम् । इत्यादि ॥६२५॥

तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ ॥ ६२६ ॥ अ० ५ । २ । २६ ॥

तृतीयासमर्थ प्रातिपदिकों से ज्ञात अर्थ में चुञ्चुप् और चणप् प्रत्यय हों जैसे । विद्यया वित्तो ज्ञातः-विद्याचुञ्चुः । उपदेशेन वित्त उपदेशचणः । इत्यादि ॥६२६॥

विनञ्भ्यां नानाञौ नसह * ॥ ६२७ ॥ अ० ५ । २ । २७ ॥

नसह अर्थात् पृथग्भाव अर्थ में वि और नञ् अव्यय प्रातिपदिकों से यथासंख्य करके ना और नाञ् प्रत्यय हों जैसे । विना । नाना । नञ् अव्यय के अनुबन्ध का लोप होकर वृद्धि हो जाती है ॥ ६२७ ॥

* इत्यादि जिन २ सूत्र वार्त्तिकों में शब्दों से प्रत्यय विधान किये हैं वहां २ महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस अधिकार सूत्र के विकल्प की प्राप्ति न होने से वाक्य नहीं रहता अर्थात् नित्य प्रत्यय हो जाते हैं ॥

वा०—द्वित्वे गोयुगच् ॥ ६३४ ॥

पशुओं के द्वित्व अर्थ में उक्त शब्दों से गोयुगच् प्रत्यय होवे जैसे । उष्ट्राणां द्वित्वम् । उष्ट्रगोयुगम् । हस्तिगोयुगम् । व्याघ्रगोयुगम् । इत्यादि ॥ ६३४ ॥

वा०—प्रकृत्यर्थस्य षट्त्वे षड्गवच् ॥ ६३५ ॥

उक्त प्रातिपदिकों से छः व्यक्तियों के बोधहोने अर्थ में षड्गवच् प्रत्यय हो जैसे । षट् हस्तिनो हस्तिषड्गवम् । अश्वषड्गवम् । इत्यादि ॥ ६३५ ॥

वा०—स्नेहे तैलच् ॥ ६३६ ॥

स्नेह अर्थात् घी तेल आदि अर्थों में सामान्य प्रातिपदिकों से तैलच् प्रत्यय हो जैसे । एरण्डतैलम् । तिलतैलम् । सर्षपतैलम् । इङ्गुदीतैलम् । इत्यादि ॥ ६३६ ॥

वा०—भवने क्षेत्रे इक्ष्वादिभ्यः शाकटशाकिनौ ॥ ६३७ ॥

उत्पत्ति का स्थान खेत वाच्य रहे तो इक्षु आदि शब्दों से शाकट और शाकिन प्रत्यय हों जैसे । इक्षूणां क्षेत्रमिक्षुशाकटम् । इक्षुशाकिनम् । यवशाकटम् । यवशाकिनम् । इत्यादि ॥ ६३७ ॥

नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः ॥ ६३८ ॥

अ० ५ । २ । ३१ ॥

यहां पूर्व सूत्र से अव उपसर्ग की अनुवृत्ति आती है । नासिका के टेढ़े होने अर्थ में संज्ञा अभिधेय रहे तो अव शब्द से टीटच् नाटच् और भ्रटच् प्रत्यय हों जैसे । नासिकाया नतम् । अवटीटम् । अवनाटम् । अवभ्रटम् । ऐसी नासिका से युक्त पुरुष के ये भी नाम पड़ जाते हैं जैसे । अवटीटः । अवनाटः । अवभ्रटो वा पुरुषः । इत्यादि ॥ ६३८ ॥

इनच्पिटच्चिकचि च ॥ ६३९ ॥ अ० ५ । २ । ३३ ॥

यहां नि उपसर्ग और नासिका के नत की अनुवृत्ति आती है । नि शब्द से नासिका के नम जाने अर्थ में इनच् और पिटच् प्रत्ययों के परे नि शब्द को यथासंख्य करके चिक और चि आदेश होवें जैसे । चिकिनः । चिपिटः ॥ ६३९ ॥

वा०—कप्रत्ययो वक्तव्यश्चिकच्च प्रकृत्यादेशः ॥ ६४० ॥

नि शब्द को चिक् आदेश और उस से क प्रत्यय भी हो जैसे । चिकः ॥ ६४० ॥

वा०—क्लिन्नस्य चिल्पिल्चुल्श्चास्य चक्षुषी ॥ ६४१ ॥

वेः शालच्छङ्कटचौ ॥ ६२८ ॥ अ० ५ । २ । २८ ॥

वि अव्यय प्रातिपदिक से शालच् और शङ्कटच् प्रत्यय हों जैसे । विशालः । विशङ्कटो वा पुरुषः * ॥ ६२८ ॥

सम्प्रोदश्च कटच् ॥ ६२९ ॥ अ० ५ । २ । २९ ॥

यहां चकार ग्रहण से वि उपसर्ग की अनुवृत्ति आती है । सम् प्र उद् और वि इन उपसर्ग शब्दों से कटच् प्रत्यय हो जैसे । सङ्कटम् । प्रकटम् । उत्कटम् । विकटम् ॥ ६२९ ॥

वा०–कटच्प्रकरणेऽलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसङ्ख्यानम् † ॥ ६३० ॥

अलाबू तिल उमा और भङ्गा प्रातिपदिकों से रज अर्थ में कटच् प्रत्यय हो जैसे । अलाबूनां रजोऽलाबूकटम् । तिलकटम् । उमाकटम् । भङ्गाकटम् ॥ ६३० ॥

वा०–गोष्ठादयः स्थानादिषु पशुनामादिभ्य उपसङ्ख्यानम् ॥ ६३१ ॥

स्थान आदि अर्थों में पशु आदि के विशेषनामवाची शब्दों से गोष्ठ आदि प्रत्यय हों जैसे । गवां स्थानं गोगोष्ठम् । महिषीगोष्ठम् । अजागोष्ठम् । अविगोष्ठम् । इत्यादि ॥ ६३१ ॥

वा०–सङ्घाते कटच् ॥ ६३२ ॥

यहां पूर्व वार्त्तिक की अनुवृत्ति आती है । संघात अर्थ में पशुओं के विशेष नामवाची प्रातिपदिकों से कटच् प्रत्यय हो जैसे । अवीनां सङ्घातोऽविकटम् । अजाकटम् । गोकटम् । इत्यादि ॥ ६३२ ॥

वा०–विस्तारे पटच् ॥ ६३३ ॥

विस्तार अर्थ में पशुओं के विशेषनामवाची प्रातिपदिकों से पटच् प्रत्यय हो जैसे । गवां विस्तारो गोपटम् । उष्ट्रपटम् । वृकपटम् । इत्यादि ॥ ६३३ ॥

---

* विशाल आदि शब्द कि जिन का निर्वचन करने में नहीं आता है अव्युत्पन्न शब्द कहाते हैं । क्योंकि प्रकृति और प्रत्ययों का भिन्न अर्थ कुछ विदित नहीं होता। फिर इन में प्रत्यय विधान केवल स्वर आदि का बोध होने के लिये है ॥ वस्तुतः ये शब्द अव्युत्पन्न ही हैं ॥

† इन सूत्र वार्त्तिकों से कटच् आदि प्रत्ययों के विधान में दूसरा पक्ष यह भी है कि कट आदि शब्द रज आदि अर्थों के वाचक हैं उन के साथ षष्ठीतत्पुरुष समास होकर ये शब्द बनते हैं । जैसे गोष्ठ नाम स्थान का है । गवां गोष्ठं गोगोष्ठम् । इत्यादि । इस पक्ष में इन वार्त्तिकों का कुछ प्रयोजन नहीं है ॥

वा०—द्वित्वे गोयुगच् ॥ ६३४ ॥

पशुओं के द्वित्व अर्थ में उक्त शब्दों से गोयुगच् प्रत्यय होवे जैसे। उष्ट्राणां द्वित्वम्। उष्ट्रगोयुगम्। हस्तिगोयुगम्। व्याघ्रगोयुगम्। इत्यादि ॥ ६३४ ॥

वा०—प्रकृत्यर्थस्य षट्त्वे षड्गवच् ॥ ६३५ ॥

उक्त प्रातिपदिकों से छः व्यक्तियों के बोध होने अर्थ में षड्गवच् प्रत्यय हो जैसे। षट् हस्तिनो हस्तिषड्गवम्। अश्वषड्गवम्। इत्यादि ॥ ६३५ ॥

वा०—स्नेहे तैलच् ॥ ६३६ ॥

स्नेह अर्थात् घी तेल आदि अर्थों में सामान्य प्रातिपदिकों से तैलच् प्रत्यय हो जैसे। एरण्डतैलम्। तिलतैलम्। सर्षपतैलम्। इङ्गुदीतैलम्। इत्यादि ॥ ६३६ ॥

वा०—भवने क्षेत्रे इक्ष्वादिभ्यः शाकटशाकिनौ ॥ ६३७ ॥

उत्पत्ति का स्थान खेत वाच्य रहे तो इक्षु आदि शब्दों से शाकट और शाकिन प्रत्यय हों जैसे। इक्षूणां क्षेत्रमिक्षुशाकटम्। इक्षुशाकिनम्। यवशाकटम्। यवशाकिनम्। इत्यादि ॥ ६३७ ॥

नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः ॥ ६३८ ॥

अ० ५। २। ३१ ॥

यहां पूर्व सूत्र से अव उपसर्ग की अनुवृत्ति आती है। नासिका के टेढ़े होने अर्थ में संज्ञा अभिधेय रहे तो अव शब्द से टीटच् नाटच् और भ्रटच् प्रत्यय हों जैसे। नासिकाया नतम्। अवटीटम्। अवनाटम्। अवभ्रटम्। ऐसी नासिका से युक्त पुरुष के ये भी नाम पड़ जाते हैं जैसे। अवटीटः। अवनाटः। अवभ्रटो वा पुरुषः। इत्यादि ॥ ६३८ ॥

इनच्पिटच्चिकचि च ॥ ६३९ ॥ अ० ५। २। ३३ ॥

यहां नि उपसर्ग और नासिका के नत की अनुवृत्ति आती है। नि शब्द से नासिका के नम जाने अर्थ में इनच् और पिटच् प्रत्ययों के परे नि शब्द को यथासंख्य करके चिक और चि आदेश होवें जैसे। चिकिनः। चिपिटः ॥ ६३९ ॥

वा०—ककारप्रत्ययो वक्तव्यश्चिकच् प्रकृत्यादेशः ॥ ६४० ॥

नि शब्द को चिक् आदेश और उस से क प्रत्यय भी हो जैसे। चिक्कः ॥ ६४० ॥

वा०—क्लिन्नस्य चिल्पिल्लश्चास्य चक्षुषी ॥ ६४१ ॥

वा०—प्रमाणपरिमाणाभ्यां सङ्ख्यायाश्चापि संशये मात्रच् ॥ ६४८ ॥

प्रमाणवाची परिमाणवाची और संख्यावाची प्रातिपदिकों से संशय अर्थ में मात्रच् प्रत्यय होवे जैसे प्रमाणवाची। प्रस्थमात्रम्। दिष्टिमात्रम्। परिमाणवाची। प्रस्थमात्रम्। संख्यावाची। पञ्चमात्रा अश्वाः। दशमात्रा गावः। इत्यादि ॥ ६४८ ॥

वा०—वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम् ॥ ६४९ ॥

वतुप् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से द्वयसच् और मात्रच् प्रत्यय स्वार्थ में बहुल करके हों जैसे। तावदेव तावद्द्वयसम्। तावन्मात्रम्। एतावद्द्वयसम्। एतावन्मात्रम्। यावद्द्वयसम्। यावन्मात्रम् ॥ ६४९ ॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ॥ ६५० ॥ अ० ५ । २ । ३९ ॥

प्रथमासमर्थ परिमाणसमानाधिकरण यत् तत् और एतत् सर्वनामवाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में वतुप् प्रत्यय हो जैसे। यत्परिमाणमस्य यावान्। तावान्। एतावान्। प्रमाण ग्रहण की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती फिर परिमाणग्रहण से इन दोनों का भेद विदित होता है ॥ ६५० ॥

वा०—वतुप्प्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्य उपसङ्ख्यानम् ॥ ६५१ ॥

युष्मद् अस्मद् शब्दों से सादृश्य अर्थ में वैदिकप्रयोगों में वतुप् प्रत्यय हो जैसे। त्वत्सदृशस्त्वावान्। मत्सदृशो मावान्। त्वावतः पुरूवसो यज्ञं विप्रस्य मावतः ॥ ६५१ ॥

किमिदम्भ्यां वो घः ॥ ६५२ ॥ अ० ५ । २ । ४० ॥

परिमाण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ किम् और इदम् शब्दों से वतुप् प्रत्यय और वतुप् के वकार को घकारादेश होवे जैसे। किम्परिमाणमस्य कियान्। इदम्परिमाणमस्य इयान् ॥ ६५२ ॥

सङ्ख्याया अवयवे तयप् ॥ ६५३ ॥ अ० ५ । २ । ४२ ॥

अवयवों का अवयवी के साथ सम्बन्ध होने से इकट्ठा अवयवी समझा जाता है। अवयवसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में तयप् प्रत्यय हो जैसे। पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम्। दशतयम्। चतुष्टयम्। चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः। इत्यादि ॥ ६५३ ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ॥ ६५४ ॥ अ० ५ । २ । ४३ ॥

वा०—प्रमाणपरिमाणाभ्यांसङ्ख्यायाश्चापिसंशयेमात्रच्॥६४८॥

प्रमाणवाची परिमाणवाची और संख्यावाची प्रातिपदिकों से संशय अर्थ में मात्रच् प्रत्यय होवे जैसे प्रमाणवाची । शममात्रम् । दिष्टिमात्रम्।परिमाणवाची। प्रस्थमात्रम् । संख्यावाची । पञ्चमात्रा ह्यचाः । दशमात्रा गावः ।इत्यादि ॥६४८॥

वा०—वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम् ॥ ६४९ ॥

वतुप् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से द्वयसच् और मात्रच् प्रत्यय स्वार्थ में बहुल करके हों जैसे । तावदेव तावद्द्वयसम् । तावन्मात्रम् । एतावद्द्वयसम् । एताव-न्मात्रम् । यावद्द्वयसम् । यावन्मात्रम् ॥ ६४८ ॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ॥ ६५० ॥ अ० ५ । २ । ३९ ॥

प्रथमासमर्थ परिमाणसमानाधिकरण यत् तत् और एतत् सर्वनामवाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में वतुप् प्रत्यय हो जैसे । यत्परिमाणमस्य यावान्। तावान् । एतावान् । प्रमाण ग्रहण की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती फिर परि-माणग्रहण से इन दोनों का भेद विदित होता है ॥ ६५० ॥

वा०—वतुप्प्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्य उप-सङ्ख्यानम् ॥ ६५१ ॥

युष्मद् अस्मद् शब्दों से सादृश्य अर्थ में वैदिकप्रयोगों में वतुप् प्रत्यय होजैसे। त्वत्सदृशस्त्वावान्।मत्सदृशो मावान्।त्वावतः पुरुवसो यज्ञं विप्रस्य मावतः ॥६५१॥

किमिदम्भ्यां वो घः ॥ ६५२ ॥ अ० ५ । २ । ४० ॥

परिमाण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ किम् और इदम् शब्दों से वतुप् प्रत्य-य और वतुप् के वकार को घकारादेश होवे जैसे । किम्परिमाणमस्य कियान् । इदम्परिमाणमस्य-इयान् ॥ ६५२ ॥

सङ्ख्याया अवयवे तयप् ॥ ६५३ ॥ अ० ५। २ । ४२ ॥

अवयवों का अवयवी के साथ सम्बन्ध होने से प्रत्ययार्थ अवयवी समझा जाता है । अवयवसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में तयप् प्रत्यय हो जैसे । पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम् । दशतयम् । च-तुष्टयम् । चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः । इत्यादि ॥ ६५३ ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ॥ ६५४ ॥ अ० ५ । २ । ४३ ॥

इस के नेत्र इस अर्थ में क्लिन्न शब्द को चिल् पिल् और चुल् आदेश और ल प्रत्यय होवे जैसे । क्लिन्ने अस्य चक्षुषी चिल्लः । पिल्लः । चुल्लः ॥ ६४१ ॥

उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ॥ ६४२ ॥ अ० ५ । २ । ३४ ॥

यहां (नते नासिका०) इस सूत्र से संज्ञा की अनुवृत्ति चली आती है। आसन्न और आरूढ़ अर्थ में वर्त्तमान उप और अधि उपसर्गों से संज्ञाविषयक स्वार्थ में त्यकन् प्रत्यय हो जैसे । पर्वतस्यासन्नमुपत्यका । पर्वतस्यारूढमधित्यका * ॥ ६४२॥

तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ॥ ६४३ ॥ अ० ५ । २ । ३६ ॥

सञ्जात समानाधिकरण प्रथमासमर्थ तारक आदि, गणपठित शब्दों से षष्ठी के अर्थ में इतच् प्रत्यय होवे जैसे । तारकाः सञ्जाता अस्य तारकितं नभः। पुष्पितो वृक्षः । पण्डा सञ्जाता अस्य पण्डितः । तन्द्रा सञ्जाताऽस्य तन्द्रितः। मुद्रा सञ्जाताऽस्य मुद्रितं पुस्तकम् । इत्यादि। तारकादि आकृतिगण समझना चाहिये।६४३।

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ॥ ६४४ ॥ अ० ५ । २ । ३७ ॥

प्रमाण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में द्वयसच् दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय हों ॥ ६४४ ॥

का०—प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मतौ मम ॥ ६४५ ॥

द्वयसच् और दघ्नच् ये दोनों प्रत्यय ऊर्ध्वमान अर्थात् उंचाई के इतने अर्थ में होते हैं और मात्रच् सामान्य इयत्ता में जानो । यह कारिका सूत्र का शेष है जैसे । ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसमुदकम् । ऊरुदघ्नमुदकम् । ऊरुमात्रम् । जानुद्वयसम् । जानुदघ्नम् । जानुमात्रम् । प्रस्थमात्रम् ।इत्यादि ॥ ६४५ ॥

वा०—प्रमाणे लः ॥ ६४६ ॥

प्रमाणवाची शब्दों से षष्ठी के अर्थ में हुए प्रत्यय का लुक् हो जैसे । शमः प्रमाणमस्य शमः । दिष्टिः । वितस्तिः । इत्यादि ॥ ६४६ ॥

वा०—द्विगोर्नित्यम् ॥ ६४७ ॥

द्विगुसंज्ञक प्रमाणवाची शब्दों से नित्य ही उत्पन्न प्रत्य का लुक् हो जैसे। द्वौ शमौ प्रमाणमस्य द्विशमः । त्रिशमः । द्विवितस्तिः । इत्यादि। इस वार्त्तिक में नित्यग्रहण इसलिये है कि अगले वार्त्तिक में संशय अर्थ में मात्रच् कहा है वहां भी द्विगु से लुक् ही होजावे जैसे । द्वे दिष्टी स्यातां वा न वा द्विदिष्टिः ॥ ६४७ ॥

---

* यहां ह्रस्व मकार से पूर्व इत्व प्राप्त है सो इन शब्दों के संज्ञावाची होने से नहीं होता अर्थात् ये इन दोनों प्रकार के पर्वत के समीप चाहे वहीं में रूढि हैं ।

वा०–प्रमाणपरिमाणाभ्यां सङ्ख्यायाश्चापि संशये मात्रच् ॥ ६४८ ॥

प्रमाणवाची परिमाणवाची और संख्यावाची प्रातिपदिकों से संशय अर्थ में मात्रच् प्रत्यय होवे जैसे प्रमाणवाची। शममात्रम्। दिष्टिमात्रम्। परिमाणवाची। प्रस्थमात्रम्। संख्यावाची। पञ्चमात्रा वृक्षाः। दशमात्रा गावः। इत्यादि ॥ ६४८ ॥

वा०–वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम् ॥ ६४९ ॥

वतुप् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से द्वयसच् और मात्रच् प्रत्यय स्वार्थ में बहुल करके हों जैसे। तावदेव तावद्द्वयसम्। तावन्मात्रम्। एतावद्द्वयसम्। एतावन्मात्रम्। यावद्द्वयसम्। यावन्मात्रम् ॥ ६४९ ॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ॥ ६५० ॥ अ० ५ । २ । ३९ ॥

प्रथमासमर्थ परिमाणसमानाधिकरण यत् तत् और एतत् सर्वनामवाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में वतुप् प्रत्यय हो जैसे। यत्परिमाणमस्य यावान्। तावान्। एतावान्। प्रमाण ग्रहण की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती फिर परिमाणग्रहण से इन दोनों का भेद विदित होता है ॥ ६५० ॥

वा०–वतुप्प्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्य उपसङ्ख्यानम् ॥ ६५१ ॥

युष्मद् अस्मद् शब्दों से सादृश्य अर्थ में वैदिकप्रयोगों में वतुप् प्रत्यय होवे। त्वत्सदृशस्त्वावान्। मत्सदृशो मावान्। त्वावतः पुरूवसो यज्ञ विप्रस्य मावतः ॥ ६५१ ॥

किमिदम्भ्यां वो घः ॥ ६५२ ॥ अ० ५ । २ । ४० ॥

परिमाण समानाधिकरण प्रथमासमर्थ किम् और इदम् शब्दों से वतुप् प्रत्यय और वतुप् के वकार को घकारादेश होवे जैसे। किम्परिमाणमस्य कियान्। इदम्परिमाणमस्य-इयान् ॥ ६५२ ॥

सङ्ख्याया अवयवे तयप् ॥ ६५३ ॥ अ० ५ । २ । ४२ ॥

अवयवों का अवयवी के साथ सम्बन्ध होने से इस अर्थ में प्रत्यय किया जाता है। अवयवसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ संख्यावाची प्रातिपदिकों से षष्ठी के अर्थ में तयप् प्रत्यय हो जैसे। पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम्। दशतयम्। चतुष्टयम्। चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः। इत्यादि ॥ ६५३ ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ॥ ६५४ ॥ अ० ५ । २ । ४३ ॥

पूर्व सूत्र से विहित जो द्वि त्रि शब्दों से तयप् प्रत्यय उस के स्थान में अयच् आदेश विकल्प करके होवे जैसे । द्वाववयवावस्य द्वयम् । द्वितयम्।त्रयम्।त्रितयम्। इस अयच् आदेश को जो प्रत्ययान्तर मानें तो तयप् ग्रहण न करने पड़े परन्तु स्थानिवद्भाव मान के जो त्रयो शब्द में ङीप् और जस् विभक्ति में सर्वनामसंज्ञा का विकल्प होता है सो नहीं पावे ॥ ६५४ ॥

उभादुदात्तो नित्यम् ॥ ६५५ ॥ अ० ५ । २ । ४४ ॥

यहां पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति आती है । उभ शब्द से परे जो तयप् उस के स्थान में अयच् आदेश उदात्त नित्य ही होवे जैसे । उभाववयवावस्य—उभयो मणिः । उभये देवमनुष्याः । यहां उदात्त के कहने से आद्युदात्त होता है । क्योंकि अन्तोदात्त तो चित् होने से हो ही जाता ॥ ६५५ ॥

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ॥६५६॥ अ० ५।२।४५॥

अधिकसमानाधिकरण प्रथमासमर्थ दश जिन के अन्त में हों ऐसे संख्यावाची प्रातिपदिक से ड प्रत्यय हो जैसे । एकादश अधिका अस्मिन् शते—एकादशं शतम् । एकादशं सहस्रम्।द्वादशं शतम् ।द्वादशं सहस्रम् । इत्यादि । यहां दशा-न्तग्रहण इसलिये है कि । पञ्चाधिका अस्मिन् शते यहां प्रत्यय न हो । और अन्त-ग्रहण इसलिये है कि दशाधिका अस्मिन् शते। यहां भी ड प्रत्यय न हो । इति शब्द इसलिये पढ़ा है कि जहां प्रत्ययार्थ की विवक्षा हो वहीं प्रत्यय हो और । एकादश माषा अधिका अस्मिन् कार्षापणशते । यहां नहा । एकादशाधिका अस्यां त्रिंशतीति । यहां भी विवक्षा के न होने से प्रत्यय नहीं होता ॥ ६५६ ॥

हो चौर आदि में संख्या का निषेध इसलिये है कि । एकादशानां पूरण एकादशः । यहां भी मट् का आगम न हो ॥ ६५८ ॥

पट्कतिकतिपयचतुरान्थुक् ॥ ६५९ ॥ अ० ५ । २ । ५१ ॥

डट् की अनुवृत्ति यहां भी आती है । षट् कति कतिपय और चतुर् शब्दों को डट् प्रत्यय के परे थुक् का आगम हो जैसे । षण्णां पूरणः षष्ठः । कतिथः । कतिपयथः । चतुर्थः ॥ ६५९ ॥

वा०—चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च ॥ ६६० ॥

षष्ठीसमर्थ चतुर् प्रातिपदिक से डट् के अपवाद छ और यत् प्रत्यय हों और चतुर् शब्द के चकार का लोप हो जैसे । चतुर्णां पूरणः तुरीयः । तुर्य्यः ॥ ६६० ॥

द्वेस्तीयः ॥ ६६१ ॥ अ० ५ । २ । ५४ ॥

यह भी डट् का अपवाद है । द्वि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय हो जैसे । द्वयोः पूरणो द्वितीयः ॥ ६६१ ॥

त्रेः सम्प्रसारणञ्च ॥ ६६२ ॥ अ० ५ । २ । ५५ ॥

त्रि शब्द से तीय प्रत्यय और उस के परे उस को सम्प्रसारण भी होजावे जैसे । त्रयाणां पूरणस्तृतीयः * ॥ ६६२ ॥

विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ॥ ६६३ ॥ अ० ५ । २ । ५६ ॥

विंशति आदि प्रातिपदिकों से परे डट् प्रत्यय को तमट् का आगम विकल्प करके हो जैसे । विंशतेः पूरणो विंशतितमः । विंशः । एकविंशतितमः । एकविंशः । त्रिंशत्तमः । त्रिंशः । एकत्रिंशत्तमः । एकत्रिंशः । इत्यादि ॥ ६६३ ॥

नित्यं शतादिमासार्द्धमाससंवत्सराच्च ॥ ६६४ ॥ अ० ५।२।५७ ॥

पूरणार्थ में शत आदि मास अर्द्धमास और संवत्सर शब्दों से परे डट् प्रत्यय को तमट् का आगम नित्य हो होवे जैसे । शतस्य पूरणः शततमः । सहस्रतमः । लक्षतमः । इत्यादि । मासतमो दिवसः । अर्द्धमासतमः । संवत्सरतमः ॥ ६६४ ॥

षष्ट्यादेश्चासङ्ख्यादेः ॥ ६६५ ॥ अ० ५ । २ । ५८ ॥

पूरणार्थ में संख्या जिन के आदि में न हो ऐसे जो षष्टि आदि शब्द हैं उन से परे डट् प्रत्यय को तमट् का आगम हो जैसे । षष्टेः पूरणः । षष्टितमः । सप्ततितमः । अशीतितमः । नवतितमः । यहां संख्यादि का निषेध इसलिये है कि ।

* यहां यण् से परे ऋकार सम्प्रसारण को दीर्घ इसलिये नहीं होता कि (हलः) इस सूत्र में यण् की अनुवृत्ति आती और यण् पूर्व ऋकार से लिया जाता है ॥

एकपष्टः । एकपष्टितमः । एकसप्ततः । एकसप्ततितमः । यहां विंशत्यादि सूत्र से विकल्प होजाता है ॥ ६६५ ॥

स एषां ग्रामणीः ॥ ६६६ ॥ अ० ५ । २ । ७८ ॥

षष्ठ्यर्थ वाच्य रहे तो ग्रामणी अर्थ में प्रथमासमर्थ प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो । ग्रामणी मुख्य का नाम है जैसे । देवदत्तो ग्रामणीरेषां देवदत्तकाः । यज्ञदत्तकाः । यहां ग्रामणी ग्रहण इसलिये है कि । देवदत्तः शत्रुरेषाम् । इत्यादि में कन् प्रत्यय न हो ॥ ६६६ ॥

कालप्रयोजनाद्रोगे ॥ ६६७ ॥ अ० ५ । २ । ८१ ॥

रोग अर्थ में सप्तमीसमर्थ कालवाची और प्रयोजन नाम कारणवाची तृतीयासमर्थ प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय हो जैसे । द्वितीयेऽह्नि भवो द्वितीयको ज्वरः तृतीयको ज्वरः । चतुर्थकः । प्रयोजन से । विषपुष्पैर्जनितो विषपुष्पको ज्वरः । काशपुष्पको ज्वरः । उष्णं कार्य्यमस्य उष्णकः । शीतको ज्वरः । इत्यादि ॥६६७॥

श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते ॥ ६६८ ॥ अ० ५ । २ । ८४ ॥

यश्छन्दोऽधीते स श्रोत्रियः । यहां छन्द के पढ़ने अर्थ में छन्दस् शब्द को श्रोत्रभाव और घन् प्रत्यय निपातन किया है ॥ ६६८ ॥

श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ ॥ ६६९ ॥ अ० ५ । २ । ८५ ॥

अनेन भुक्तं इस अर्थ में प्रथमासमर्थ श्राद्ध प्रातिपदिक से इनि और ठन् प्रत्यय हों जैसे । श्राद्धं भुक्तमनेन श्राद्धी । श्राद्धिकः ॥ ६६९ ॥

साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम् ॥ ६७० ॥ अ० ५ । २ । ९१ ॥

द्रष्टा की संज्ञा अर्थ में साक्षात् अव्यय से इनि प्रत्यय हो जैसे । साक्षाद्द्रष्टा साक्षी ॥ ६७० ॥

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा ॥ ६७१ ॥ अ० ५ । २ । ९३ ॥

यहां इन्द्र जीवात्मा और लिंग चिन्ह का नाम है । लिंगादि अर्थों में इन्द्र शब्द से घच् प्रत्यय निपातन करने से इन्द्रिय शब्द सिद्ध होता है जैसे । इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियम् । इन्द्र नाम जीवात्मा का लिंग जो प्रकाशक चिन्ह हो उस को इन्द्रिय कहते हैं । इन्द्रेण दृष्टम् । इन्द्रियम् । इन्द्रेण सृष्टम् । इन्द्रियम् । यहां ईश्वर का ग्रहण है । इन्द्रेण जुष्टम् । इन्द्रियम् । यहां जीव का ग्रहण है । इन्द्रेण दत्तम् । इन्द्रियम् । और यहां ईश्वर का ग्रहण होता है ॥ ६७१ ॥

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ॥ ६७२ ॥ अ० ५ । २ । ९४ ॥

अस्ति और प्रथमासमानाधिकरण ङ्याप् प्रातिपदिकों से षष्ठी और सप्तमी के अर्थ में मतुप् प्रत्यय हो जैसे। गावोऽस्य सन्ति गोमान् देवदत्तः। वृक्षाः सन्त्यस्मिन् स वृक्षवान् पर्वतः। यवा अस्य सन्ति यवमान्। प्लक्षवान्। इत्यादि ॥ ६७२ ॥

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ॥ ६७३ ॥ अ० ८ । २ । ९ ॥

मकारान्त मकारोपध अवर्णान्त और अवर्णोपध प्रातिपदिकों से परे मतुप् प्रत्यय के मकार को वकारादेश हो परन्तु यवादि प्रातिपदिकों से परे न हो जैसे। मकारान्त। किंवान्। शंवान्। मकारोपध। शमीवान्। दाडिमीवान्। लक्ष्मीवान्। अवर्णान्त। वृक्षवान्। प्लक्षवान्। घटवान्। खट्वावान्। मालावान्। अवर्णोपध पयस्वान्। यशस्वान्। भास्वान्। यहां मकारान्त आदि का ग्रहण इसलिये है कि अग्निमान्। वायुमान्। बुद्धिमान्। यहां वकार न हो और अयवादि इसलिये कहा है कि यवमान्। दल्मिमान्। ऊर्मिमान्। इत्यादि। यहां भी मकार को वकार आदेश न होवे ॥ ६७३ ॥

झयः ॥ ६७४ ॥ अ० ८ । २ । १० ॥

झय् प्रत्याहारान्त प्रातिपदिक से परे मतुप् के मकार को वकारादेश हो जैसे। अग्निचित्वान् ग्रामः। उदश्वित्वान् घोषः। विद्युत्वान् बलाहकः। मरुत्वानिन्द्रः। दृषद्वान् देशः। इत्यादि ॥ ६७४ ॥

संज्ञायाम् ॥ ६७५ ॥ अ० ८ । २ । ११ ॥

संज्ञाविषय में मतुप् के मकार को वकारादेश हो जैसे। अहीवती। कपीवती। ऋषीवती। मुनीवती वा नगरी। इत्यादि ॥ ६७५ ॥

का०—भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने । सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥ ६७६ ॥

बहुत्व निन्दा प्रशंसा नित्ययोग अतिशय सम्बन्ध और अस्ति (होने) की विवक्षा अर्थ में मतुप् और इस प्रकरण में जितने प्रत्यय हैं वे सब होते हैं। यह कारिका इसी सूत्र पर महाभाष्य में है जैसे। भूम अर्थ में। गोमान्। यवमान्। इत्यादि। निन्दा में। कुष्ठी। ककुदावर्तिनी। इत्यादि। प्रशंसा में। रूपवती। इत्यादि। नित्ययोग अर्थ में क्षीरिणो वृक्षाः। कण्टकिनो वृक्षाः। इत्यादि। अतिशय में उदरिणी कन्या। इत्यादि। सम्बन्ध में। दण्डी। छत्री। इत्यादि। होने की विवक्षा में अस्तिमान् ॥ ६७६ ॥

वा०—गुणवचनेभ्यो मतुपो लुक् ॥ ६७७ ॥

गुणवाची प्रातिपदिकों से परे मतुप् प्रत्यय का लुक् हो जैसे । शुक्लो गुणोऽस्याऽस्तीति शुक्लः पटः । कृष्णः । श्वेतः । इत्यादि ॥ ६७७ ॥

रसादिभ्यश्च ॥ ६७८ ॥ अ० ५ । २ । ९५ ॥

रस आदि प्रातिपदिकों से षष्ठी सप्तमी के अर्थ में मतुप् प्रत्यय हो जैसे । रसोऽस्याऽस्तीति रसवान् । रूपवान् । गन्धवान् । शब्दवान् । इत्यादि । यहां रसादि शब्दों से प्रत्ययविधान इसलिये किया है कि इन के गुणवाची होने से मतुप् का लुक् पूर्व वार्त्तिक से पाया था सो न हो ॥ ६७८ ॥

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ॥ ६७९ ॥ अ० ५ । २ । ९६ ॥

मत्वर्थ में प्राणिस्थवाची आकारान्त शब्द से लच् प्रत्यय विकल्प करके हो जैसे । चूडालः । चूडावान् । कर्णिकालः । कर्णिकावान् । जिह्वालः । जिह्वावान् । जङ्घालः । जङ्घावान् । यहां प्राणिस्थग्रहण इसलिये है कि । शिखावान् प्रदीपः । यहां न हो । और आकारान्तग्रहण इसलिये है कि । हस्तवान् । पादवान् । इत्यादि में भी लच् प्रत्यय न हो ॥ ६७९ ॥

वा०—प्राण्यङ्गादिति वक्तव्यम् ॥ ६८० ॥

प्राणिस्थ आकारान्त शब्दों से जो लच् प्रत्यय कहा है वह प्राणियोंके अङ्गवाचियों से हो अर्थात् चिकीर्षाऽस्याऽस्ति जिहीर्षाऽस्यास्ति । चिकीर्षावान् । जिहीर्षावान् । इत्यादि में लच् प्रत्यय न हो ॥ ६८० ॥

सिध्मादिभ्यश्च ॥ ६८१ ॥ अ० ५ । २ । ९७ ॥

मत्वर्थ में सिध्म आदि प्रातिपदिकों से लच् प्रत्यय विकल्प करके हो पक्ष में मतुप् जैसे । सिध्मोऽस्याऽस्तीति सिध्मलः । सिध्मवान् । गडुलः । गडुमान् । मणिलः । मणिमान् । इत्यादि ॥ ६८१ ॥

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ॥ ६८२ ॥ अ० ५ । २ । १०० ॥

मत्वर्थ में लोमादि पामादि और पिच्छादि, गणपठित प्रातिपदिकों से श न और इलच् प्रत्यय यथासंख्य करके हों तथा मतुप् भी होवे जैसे । लोमान्यस्य सन्ति लोमशः । लोमवान् । पामनः । पामवान् । पिच्छिलः । पिच्छवान् । उरसिलः । उरस्वान् । इत्यादि ॥ ६८२ ॥

प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः ॥ ६८३ ॥ अ० ५ । २ । १०१ ॥

मत्वर्थ में प्रज्ञा श्रद्धा और अर्चा प्रातिपदिकों से ण प्रत्यय हो जैसे प्रज्ञाऽस्यास्ति प्राज्ञः । प्रज्ञावान् । श्राद्धः । श्रद्धावान् । आर्चः । अर्चावान् * ॥ ६८३ ॥

तपःसहस्राभ्यां विनीनी ॥ ६८४ ॥ अ० ५ । २ । १०२ ॥

मत्वर्थ में तपस् और सहस्र प्रातिपदिक से विनि और इनि प्रत्यय हों जैसे । तपोऽस्यास्तीति तपस्वी । सहस्री ॥ ६८४ ॥

अण् च ॥ ६८५ ॥ अ० ५ । २ । १०३ ॥

मत्वर्थ में तपस् और सहस्र प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय भी हो जैसे । तापसः । साहस्रः ॥ ६८५ ॥

दन्त उन्नत उरच् ॥ ६८६ ॥ अ० ५ । २ । १०६ ॥

उन्नतसमानाधिकरण दन्त शब्द से मतुप् के अर्थ में उरच् प्रत्यय हो जैसे । दन्ता उन्नता अस्य सन्ति स दन्तुरः । यहां उन्नत विशेषण इसलिये है कि दन्तवान् । यहां निन्दा आदि अर्थों में उरच् प्रत्यय न होवे ॥ ६८६ ॥

ऊषसुषिमुष्कमधो रः ॥ ६८७ ॥ अ० ५ । २ । १०७ ॥

ऊष सुषि मुष्क और मधु प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में र प्रत्यय होवे जैसे । ऊषमस्मिन्नस्ति । ऊषरा भूमिः । सुषिरं काष्ठम् । मुष्करः पशुः । मधुरो गुडः ॥ ६८७ ॥

वा०—रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसङ्ख्यानम् ॥ ६८८ ॥

ख मुख और कुञ्ज शब्दों से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय हो जैसे । खमस्यास्तीति खरः । मुखमस्यास्तीति मुखरः । कुञ्जरः † ॥ ६८८ ॥

वा०—नगपांसुपाण्डुभ्यश्च ॥ ६८९ ॥

नग पांसु और पाण्डु शब्दों से भी मत्वर्थ में र प्रत्यय हो जैसे । नगमस्मिन्नस्तीति नगरम् ‡ । पांसुरम् । पाण्डुरम् ॥ ६८९ ॥

वा०—कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च ॥ ६९० ॥

कच्छू शब्द से र प्रत्यय और उस को ह्रस्वादेश भी हो जैसे । कच्छ्वाऽस्यामस्तीति कच्छुरा भूमिः ॥ ६९० ॥

---

* यहां प्रज्ञा आदि शब्दों से ण और मतुप् प्रत्यय प्रशंसा अर्थ में समझना चाहिये । और जो सामान्य अर्थ में अर्थात् बुद्धि जिस में हो ऐसा समझने से साधारण प्राणियों के नाम प्राज्ञ और प्रज्ञावान् होवें इसलिये उस का निषेध जाने समझो ॥

† जिस के कण्ठ में वा नाक विशेष अवकाश हो उस को खर, मुख को जो निरन्तर उच्चारण करना जिस का हो उस को मुखर और कुञ्जर बड़ी ठोढ़ी होवे से हाथी को कहते हैं ।

‡ नग अर्थात् वृक्ष और पर्वत जिस में हों उस को नगर कहते हैं ॥

केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ॥ ६९१ ॥ अ० ५ । २ । १०९ ॥

इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इसलिये समझना चाहिये कि केश शब्द से व प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। केश प्रातिपदिक से व प्रत्यय विकल्प करके हो। यहां महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है और दूसरे इस विकल्प के होने से चार प्रयोग होते हैं जैसे। प्रशस्ताः केशा अस्य सन्तीति केशवः। केशी। केशिकः। केशवान्। केश शब्द ज्योति अर्थात् प्रकाश गुण का भी नाम है। ६८१ ॥

वा०—वप्रकरणे मणिहिरण्याभ्यामुपसङ्ख्यानम् ॥ ६९२ ॥

मणि और हिरण्य प्रातिपदिक से भी व प्रत्यय हो जैसे। मणिरस्मिन्नस्तीति मणिवः सर्पः। हिरण्यवः * ॥ ६८२ ॥

वा०—छन्दसीवनिपौ च ॥ ६९३ ॥

वैदिक प्रयोगों में सामान्य प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में ई और वनिप् प्रत्यय हो जैसे। रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ। यहां (रथीः) शब्द में ईप्रत्यय हुआ है। सुमङ्गलीरियं वधूः। इत्यादि। ऋतावानम्। मघवानमीमहे। यहां ऋत और मघ शब्द से वनिप् होता है। ६८३ ॥

वा०—मेधारथाभ्यामिरन्निरचौ वक्तव्यौ ॥ ६९४ ॥

मेधा और रथ शब्दों से मत्वर्थ में इरन् और इरच् प्रत्यय हों जैसे। मेधिरः। रथिरः। ये भी मतुप् के बाधक हैं ॥ ६८४ ॥

वा०—अपर आह। वप्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यत इति वक्तव्यम् ॥ ६९५ ॥

इस विषय में बहुतेरे ऋषि लोगों का ऐसा मत है कि अविहित सामान्य प्रातिपदिकों से व प्रत्यय देखने में आता है जैसे। बिम्बावम्। कुररावम्। इष्टकावम्। इत्यादि। प्रयोजन यह है कि पूर्व वार्त्तिक में जो मणि और हिरण्य शब्दों से व प्रत्यय कहा है उस का भी इस पक्ष में कुछ प्रयोजन नहीं है। ६८५ ॥

रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ॥ ६९६ ॥ अ० ५ । २ । ११२ ॥

रजस् कृषि आसुति और परिषत् प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में वलच् प्रत्यय हो जैसे। रजोऽस्याः प्रवर्त्तत इति रजस्वला स्त्री। कृषीवलो ग्रामीणः। आसुतिवलः। शौण्डिकः। परिषद्वलो राजा। इत्यादि। ६८६ ॥

वा०—वलच्प्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यते ६९७ ॥

* मणिव किसी विशेष सर्प को और हिरण्यव धनविशेष की संज्ञा है।

विहितों से पृथक् प्रातिपदिकों से भी वलच् प्रत्यय देखने में आता है जैसे। भ्रातास्यास्तीति भ्रातृवलः। पुत्रवलः। उत्सङ्गवलः। इत्यादि ॥ ६९७ ॥

अत इनिठनौ ॥ ६९८ ॥ अ० ५ । २ । ११५ ॥

मत्वर्थ में अकारान्त प्रातिपदिक से इनि और ठन् प्रत्यय हों जैसे। दण्डी। दण्डिकः। छत्री। छत्रिकः। यहां विकल्प की अनुवृत्ति आने से पक्ष में मतुप् प्रत्यय भी होता है जैसे। दण्डवान्। दण्डिकः। छत्रवान्। छत्रिकः। इत्यादि। यहां तपरकरण इसलिये है कि खट्वावान्। यहां इनि ठन् न हों ॥ ६९८ ॥

का०—एकाक्षरात्कृतो जातेः सप्तम्यां च न तौ स्मृतौ ॥ ६९९ ॥

एकाक्षर शब्द कृदन्त जातिवाची और सप्तमी के अर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय न हों सूत्र से जो प्राप्ति है उस का विशेष विषय में निषेध किया है जैसे। एकाक्षर से। स्ववान्। खवान्। इत्यादि। कृदन्त से। कारकवान्। हारकवान्। जातिवाचियों से। वृक्षवान्। प्लक्षवान्। व्याघ्रवान्। सिंहवान्। इत्यादि। सप्तम्यर्थ में। दण्डा अस्यां शालायां सन्तीति। दण्डवती शाला। इत्यादि ॥ ६९९ ॥

व्रीह्यादिभ्यश्च ॥ ७०० ॥ अ० ५ । २ । ११६ ॥

व्रीहि आदि गणपठित प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय हों जैसे। व्रीही। व्रीहिकः। व्रीहिमान्। मायी। मायिकः। मायावान्। इत्यादि ॥ ७०० ॥

का०—शिखादिभ्य इनिर्वाच्य इकन्यवखदादिषु ॥ ७०१ ॥

पूर्वसूत्र में जो व्रीह्यादि शब्दों में शिखादिगण हैं उनसे इनि और यवखदादि प्रातिपदिकों से इकन् (ठन्) कहना चाहिये। प्रयोजन यह है कि सब व्रीह्यादिकों से दोनों प्रत्यय प्राप्त हैं सो नहीं किन्तु शिखादिकों से इनि ही हो, ठन् नहीं और यवखदादिकों से ठन् ही हो इनि नहीं, यह नियम समझना चाहिये जैसे। शिखी। मेखली। इत्यादि। यवखदिकः। इत्यादि ॥ ७०१ ॥

अस्मायामेधास्रजो विनिः ॥ ७०२ ॥ अ० ५ । २ । १२१ ॥

असन्त माया मेधा और स्रज् प्रातिपदिकों से मतुप् के अर्थ में विनि प्रत्यय हो और मतुप् तो सर्वत्र होता ही है। और माया शब्द व्रीह्यादिगण में पढ़ा है इस से इनि ठन् भी होते हैं। यशस्वी है। तपस्वी। तेजस्वी। इत्यादि। मायावी। मायी। मायिकः। मायावान्। मेधावी। मेधावान्। स्रग्वी। स्रग्वान् ॥ ७०२ ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ७०३ ॥ अ० ५ । २ । १२२ ॥

केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ॥ ६९१ ॥ अ० ५ । २ । १०९

इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा इसलिये समझना चाहिये कि केश से प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है । केश प्रातिपदिक से व प्रत्यय विकल्प कर यहां महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति आती है और दूसरे इस विकल्प के होने से चार प्रयोग होते हैं जैसे । प्र केशा अस्य सन्तीति केशवः । केशी । केशिकः । केशवान् । केश शब्द ज्योति प्रकाश गुण का भी नाम है ॥ ६८१ ॥

वा०—वप्रकरणे मणिहिरण्याभ्यामुपसङ्ख्यानम् ॥ ६९२

मणि और हिरण्य प्रातिपदिक से भी व प्रत्यय हो जैसे । मणिरस्मिन मणिवः सर्पः । हिरण्यवः ० ॥ ६८२ ॥

वा०—छन्दसीवनिपौ च ॥ ६९३ ॥

वैदिक प्रयोगों में सामान्य प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में ई और वनिप् हो जैसे । रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ । यहां (रथीः) शब्द में ईप्रत्यय सुमङ्गलीरियं वधूः । इत्यादि । ऋतावानम् । मघवानमीमहे । यहां मघ शब्द से वनिप् होता है ॥ ६८३ ॥

वा०—मेधारथाभ्यामिरन्निरचौ वक्तव्यौ ॥ ६९४

मेधा और रथ शब्दों से मत्वर्थ में इरन् और इरच् प्रत्यय हों जैसे रथिरः । ये भी मतुप् के बाधक हैं ॥ ६८४ ॥

वा०—अपर आह।वप्रकरणेऽन्येभ्योऽपि दृश्यत इति वक्तव्य

इस विषय में [illegible] षि लोगों का ऐसा मत है कि अविहि प्रातिपदिकों से [illegible] । बिम्बावम् । कु काबम् । इत्या [illegible] । सक [illegible] भि

वा०–बलाच्चोलः ॥ ७१२ ॥

बल शब्द से उसके न सहने अर्थ में उल प्रत्यय हो जैसे। बलं न सहत इति बलूलः ॥ ७१२ ॥

वा०–वातात्समूहे च ॥ ७१३ ॥

वात शब्द से उस के न सहने और समूह अर्थ में उल प्रत्यय हो जैसे। वातानां समूहो वातं न सहते वा स वातूलः ॥ ७१३ ॥

वा०–पर्वमरुद्भ्यां तप् ॥ ७१४ ॥

पर्व और मरुत् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में तप् प्रत्यय हो जैसे। पर्वमस्मिन्नस्ति स पर्वतः। मरुत्तः। और यह मरुत् शब्द मरुतों ने दिया ऐसे भी अर्थ में कृदन्त प्रत्यय होने से बन जाता है ॥ ७१४ ॥

वाचो ग्मिनिः ॥ ७१५ ॥ अ० ५ । २ । १२४ ॥

वाक् प्रातिपदिक से मत्वर्थ में ग्मिनि प्रत्यय हो जैसे। प्रशस्ता वागस्य स वाग्मी। वाग्मिनौ। वाग्मिनः ॥ ७१५ ॥

आलजाटचौ बहुभाषिणि ॥ ७१६ ॥ अ० ५ । २ । १२५ ॥

यहां पूर्व सूत्र से वाक् शब्द की अनुवृत्ति आती है। बहुत बोलने वाले के अर्थ में वाक् प्रातिपदिक से आलच् और आटच् प्रत्यय हों जैसे। बहु भाषत इति वाचालः। वाचाटः। यह ग्मिनि प्रत्यय का अपवाद है। और यह भी समझना चाहिये कि जो विद्या के अनुकूल विचारपूर्वक बहुत बोलता है उस को वाचाल और वाचाट नहीं कहते हैं, किन्तु जो अंड बंड बोले यह बात महाभाष्य में है ॥७१६॥

स्वामिन्नैश्वर्य्ये ॥ ७१७ ॥ अ० ५ । २ । १२६ ॥

यहां ऐश्वर्यवाची स्व शब्द से मत्वर्थ में आमिन् प्रत्यय करके स्वामिन् शब्द निपातन किया है जैसे। स्वमैश्वर्यमस्यास्तीति स्वामी। स्वामिनौ। स्वामिनः। ऐश्वर्य अर्थ इसलिये समझना चाहिये कि। स्ववान्। यहां आमिन् न हो ॥ ७१७ ॥

वातातीसाराभ्यां कुक् च ॥ ७१८ ॥ अ० ५ । २ । १२९ ॥

वात और अतीसार प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय और कुक् का आगम भी हो जैसे। वातकी। अतीसारकी। यहां रोग अर्थ में प्रत्यय होना इष्ट है इस से। वातवती गुहा। यहां इनि और कुक् नहीं होते ॥ ७१८ ॥

वा०–पिशाचाच्च ॥ ७१९ ॥

वैदिकप्रयोगविषय में सामान्य प्रातिपदिकों से मत्वर्थविषयक विनि प्रत्यय बहुल करके हो जैसे। अग्ने तेजस्विन्। यहां हो गया और सूर्यो वर्चस्वान्। यहां नहीं भी हुआ। इत्यादि। बहुल से अनेक प्रयोजन समझना चाहिये ॥ ७०३ ॥

वा०–छन्दोविन्प्रकरणेऽष्ट्रामेखलाद्वयोभयरुजाहृदयानां दीर्घश्च ॥ ७०४ ॥

अष्ट्रा मेखला द्वय उभय रुजा और हृदय शब्दों से विनि प्रत्यय और इन को दीर्घादेश भी होवे जैसे। अष्ट्रावी। मेखलावी। द्वयावी। उभयावी। हृदयावी ॥७०४॥

वा०–मर्मणश्च ॥ ७०५ ॥

मर्मन् शब्द से भी विनि प्रत्यय और उस को दीर्घादेश हो जैसे। मर्मावी ॥ ७०५ ॥

वा०–सर्वत्रामयस्योपसङ्ख्यानम् ॥ ७०६ ॥

पूर्व के तीनों वार्त्तिकों से वेद में प्रत्ययविधान समझना चाहिये इसीलिये इस वार्त्तिक में सर्वत्र शब्द पढ़ा है। सर्वत्र (लौकिक वैदिक सब प्रयोगों में) आमय शब्द से विनि प्रत्यय और दीर्घादेश भी होवे जैसे। आमयावी ॥ ७०६ ॥

वा०–शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् ॥ ७०७ ॥

पूर्व वार्त्तिक से अगले सब वार्त्तिकों में सर्वत्र शब्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये। शृङ्ग और वृन्द प्रातिपदिक से मत्वर्थ में आरकन् प्रत्यय हो जैसे। शृङ्गाण्यस्य सन्ति शृङ्गारकः। वृन्दारकः ॥ ७०७ ॥

वा०–फलबर्हिभ्यामिनच् ॥ ७०८ ॥

फल और बर्हं शब्दों से इनच् हो जैसे फलान्यस्मिन्सन्ति फलिनः। बर्हिणः ॥७०८॥

वा०–हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम् ॥ ७०९ ॥

हृदय शब्द से चालु प्रत्यय विकल्प करके हो और पक्ष में इनि ठन् तथा मतुप् भी हो जावें जैसे। हृदयालुः। हृदयी। हृदयिकः। हृदयवान् ॥ ७०९ ॥

वा०–शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तन्न सहत इति चालुर्वक्तव्यः ॥ ७१० ॥

शीत उष्ण और तृप्र प्रातिपदिकों से प्रकृत्यर्थ के न सह सकने अर्थ में चालु प्रत्यय हो जैसे। शीतं न सहते स शीतालुः। उष्णालुः। तृप्रालुः ॥ ७१० ॥

वा०–हिमाच्चेलुः ॥ ७११ ॥

हिम शब्द से उसके न सहने अर्थ में चेलु प्रत्यय हो जैसे। हिमं न सहते स हिमेलुः ॥ ७११ ॥

सर्व शब्द जिस के आदि में हो ऐसे प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय हो जैसे। सर्वधनमस्यास्ति स सर्वधनी। सर्वबीजी सर्वकेशी नटः। इत्यादि ॥ ७२६ ॥

वा०-अर्थाच्चासंनिहिते ॥ ७२७ ॥

जिस के निकट पदार्थ न हो और उन की चाहना हो ऐसे अर्थ में अर्थ शब्द से इनि प्रत्यय हो जैसे। अर्थमभीप्सति—अर्थी। यहां असन्निहितग्रहण इसलिये है कि। अर्थवान्। यहां इनि प्रत्यय न हो ॥ ७२७ ॥

वा०-तदन्ताच्च ॥ ७२८ ॥

अर्थ शब्द जिनके अन्त में हो उन से भी इनि प्रत्यय हो जैसे। धान्यार्थी। हिरण्यार्थी। इत्यादि इन सब वार्त्तिकों में भी यही नियम समझना चाहिये कि इन विशेष अर्थों में और शब्दों से इनि ही हो, ठन् न हो ॥ ७२८ ॥

बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ॥ ७२९ ॥ अ० ५। २। १३६ ॥

बलादि प्रातिपदिकों से मतुप् प्रत्यय विकल्प करके हो पक्ष में इनि समझो जैसे। बलमस्यास्तीति बलवान्। बली। उत्साहवान्। उत्साही। उद्भाववान्। उद्भावी। इत्यादि ॥ ७२९ ॥

संज्ञायां मन्माभ्याम् ॥ ७३० ॥ अ० ५। २। १३७ ॥

मत्वर्थ में मन्नन्त और मान्त प्रातिपदिकों से संज्ञाविषय में इनि प्रत्यय हो जैसे। प्रथिमिनी। दामिनी। होमिनी। सोमिनी। यहां संज्ञाग्रहण इसलिये है कि। सोमवान्। होमवान्। इत्यादि में इनि न हो ॥ ७३० ॥

कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः ॥ ७३१ ॥ अ० ५। २। १३८ ॥

जल और सुख के वाची कम् और शम् मकारान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में ब, भ, युस्, ति, तु, त, और यस् प्रत्यय हों जैसे। कम्बः। शम्बः। कम्भः। शम्भः। कंयुः। शंयुः। कन्तिः। शन्तिः। कन्तुः। शन्तुः। कन्तः। शन्तः। कंयः। शंयः। यहां युस् और यस् प्रत्यय में सकार पदसंज्ञा होने के लिये है। इस से मकार को अनुस्वार और परसवर्ण होते हैं और जो भसंज्ञा होती मकार ही बना रहे ॥ ७३१ ॥

अहंशुभमोर्युस् ॥ ७३२ ॥ अ० ५। २। १४० ॥

अहं और शुभम् अव्ययसंज्ञक शब्दों से मत्वर्थ में युस् प्रत्यय हो जैसे। अहंयुः। यह अहंकारी का नाम है। शुभंयुः। यह कल्याणकारी की संज्ञा है ॥ ७३२ ॥

॥ यह द्वितीय पाद समाप्त हुआ ॥

किमोऽत् ॥ ७४२ ॥ अ० ५ । ३ । १२ ॥

किम् शब्द से सप्तमी के स्थान में अत् प्रत्यय हो जैसे । क्वकिमिचिति, क ॥७४२॥

इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ ७४३ ॥ अ० ५ । ३ । १४ ॥

इतर अर्थात् पञ्चमी सप्तमी से अन्य विभक्तियों के स्थान में भी उक्त प्रत्यय देखने में आते हैं इस में विशेष यह है कि ॥ ७४३ ॥

वा०–भवदादिभियोगे ॥ ७४४ ॥

भवान् दीर्घायुः, आयुष्मान् देवानां प्रियः, इन चार शब्दों के योग में पूर्वसूत्र से प्रत्ययविधान समझना चाहिये । अर्थात् सूत्र से जो सामान्य विधान था उस को वार्त्तिक से विशेष जनाया है । जैसे। स भवान् । तत्र भवान् । ततो भवान् । तम्भवन्तम् । तत्र भवन्तम् । ततो भवन्तम् । तेन भवता । तत्र भवता । ततो भवता । तस्मै भवते । तत्र भवते । ततो भवते । तस्माद्भवतः । तत्र भवतः । ततो भवतः । तस्य भवतः । तत्र भवतः । ततो भवतः । तस्मिन् भवति । तत्र भवति । ततो भवति । स दीर्घायुः । तत्र दीर्घायुः । ततो दीर्घायुः । स आयुष्मान् । तत्रायुष्मान् । तत आयुष्मान् । स देवानां प्रियः । तत्र देवानां प्रियः। ततो देवानां प्रियः। इत्यादि७४४

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ॥ ७४५ ॥ अ० ५ । ३ । १५ ॥

सर्व एक अन्य किम् यद् और तद् प्रातिपदिकों से काल अर्थ में सप्तमी के स्थान में दा प्रत्यय हो यह सूत्र त्रल् प्रत्यय का बाधक है जैसे । सर्वस्मिन् काले इति सर्वदा। एकस्मिन् कालेएकदा। अन्यदा । कदा । यदा । तदा । इत्यादि । यहां काल इसलिये कहा है कि । सर्वत्र देशे । यहां दा प्रत्यय न हो ॥ ७४५ ॥

इदमोर्हिल् ॥ ७४६ ॥ अ० ५ । ३ । १६ ॥

काल अर्थ में इदम् शब्द से सप्तमी के स्थान में र्हिल् प्रत्यय हो जैसे । अस्मिन् काले । एतर्हि । यहां काल की अनुवृत्ति आने से (इह देशे) इस प्रयोग में र्हिल् प्रत्यय नहीं होता ॥ ७४६ ॥

अधुना ॥ ७४७ ॥ अ० ५ । ३ । १७ ॥

कालाधिकरण अर्थ में इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में धुना प्रत्यय और इदम् शब्द को अश्भाव निपातन करने से अधुना शब्द बनता है जैसे । अस्मिन् काले इति अधुना ॥ ७४७ ॥

अथ तृतीयपादः ॥

प्राग्दिशो विभक्तिः ॥ ७३३ ॥ अ० ५ । ३ । १ ॥

यह अधिकार सूत्र है । जो दिक् शब्द के उच्चारण से पूर्व २ प्रत्यय विधान करेंगे, उन २ की विभक्तिसंज्ञा जाननी चाहिये ॥ ७३३ ॥

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ॥ ७३४ ॥ अ० ५ । ३ । २

यह भी अधिकार सूत्र है । यहां से आगे किम् शब्द द्वि आदि से भिन्न स नाम और बहु प्रातिपदिकों से प्रत्ययों का विधान जानना चाहिये ॥ ७३४ ॥

इदम इश् ॥ ७३५ ॥ अ० ५ । ३ । ३ ॥

विभक्तिसंज्ञक प्रत्ययों के परे इदम् शब्द को इश् आदेश हो जैसे । इत ह । यहां इश् आदेश में शकार सब के स्थान में आदेश होने के लिये है ॥ ७३

एतेतौ रथोः ॥ ७३६ ॥ अ० ५ । ३ । ४ ॥

जो प्राग्दिशीय रेफादि और थकारादि विभक्ति परे हों तो इदम् शब्द को एत और इत् आदेश होवें जैसे । एतर्हि । इत्थम् ॥ ७३६ ॥

सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ॥ ७३७ ॥ अ० ५ । ३ । ६ ॥

जो दकारादि प्रत्यय परे हों तो सर्व शब्द को स आदेश विकल्प करके हो जैसे । सर्वदा । सदा ॥ ७३७ ॥

पंचम्यास्तसिल् ॥ ७३८ ॥ अ० ५ । ३ । ७ ॥

किम् सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से पंचमी विभक्ति के स्थान में तसिल् हो जैसे । कस्मादिति कुतः । यस्मादिति यतः । ततः । बहुतः । इत्यादि ॥ ७३८ ॥

पर्यभिभ्यां च ॥ ७३९ ॥ अ० ५ । ३ । ९ ॥

परि और अभि शब्दों से तसिल् प्रत्यय हो जैसे । परितः । चारों ओर से । सन्मुख से ॥ ७३९ ॥

सप्तम्यास्त्रल् ॥ ७४० ॥ अ० ५ । ३ । १० ॥

सर्वनाम और बहु शब्दों से परे सप्तमी विभक्ति के स्थान में त्रल् प्रत्यय कस्मिन्निति कुत्र । सर्वस्मिन्निति सर्वत्र । यत्र । तत्र । इत्यादि ॥ ७४० ॥

इदमो हः ॥ ७४१ ॥ अ० ५ । ३ । ११ ॥

इदम् से सप्तमी के स्थान में ह प्रत्यय हो जैसे । अस्मिन्निति, इह ॥ ७४१ ॥

प्रकारवचने थाल् ॥ ७५३ ॥ अ० ५ । ३ । २३ ॥

यहां भी किम् सर्वनाम आदि शब्दों की अनुवृत्ति चली आती है । प्रकारसमानाधिकरण किम् सर्वनाम और बहु प्रातिपदिकों से स्वार्थ में थाल् प्रत्यय हो जैसे। तेन प्रकारेण तथा । यथा । सर्वथा । इतरथा । अन्यथा।बहुथा।इत्यादि॥ ७५३॥

इदमस्थमुः ॥ ७५४ ॥ अ० ५ । ३ । २४ ॥

प्रकारसमानाधिकरण इदम् शब्द से स्वार्थ में थाल् का अपवाद थमु प्रत्यय हो । उकार की इत्संज्ञा होकर लोप होजाता है।अनेनप्रकारेण इत्थम् ॥ ७५४ ॥

किमश्च ॥ ७५५ ॥ अ० ५ । ३ । २५ ॥

प्रकारसमानाधिकरण किम् शब्द से भी स्वार्थ में थमु प्रत्यय होवे जैसे । केन प्रकारेण कथम् ॥ ७५५ ॥

था हेतौ च छन्दसि ॥ ७५६ ॥ अ० ५ । ३ । २६ ॥

यहां पूर्व सूत्र से किम् और प्रकारवचन शब्द की अनुवृत्ति आती है । वैदिक प्रयोगविषय में हेतुसमानाधिकरण किम् प्रातिपदिक से था प्रत्यय हो । यह थमु प्रत्यय का बाधक है । केन हेतुना । इति कथा । केन प्रकारेण इति कथा ॥ ७५६ ॥

दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः ॥ ७५७ ॥ अ० ५ । ३ । २७ ॥

सप्तमी पञ्चमी और प्रथमासमर्थ दिशा देश और काल अर्थों में दिशावाची पूर्वादि शब्दों से स्वार्थ में अस्ताति प्रत्यय होवे जैसे । पूर्वस्यां दिशि पूर्वस्मिन् देशे काले वा पुरस्तात् । अधस्तात् । पञ्चमीसमर्थ से । पुरस्तादागतः । प्रथमासमर्थ से । पुरस्ताद्रमणीयम् । इत्यादि यहां समर्थविभक्ति और दिशा आदि अर्थों का यथासंख्य अभीष्ट नहीं है । यहां दिशावाचियों का ग्रहण इसलिये है कि । ऐन्द्र्यां दिशि वसति । यहां ऐन्द्री शब्द दिशा का यौगिक नाम है । सप्तमी आदि समर्थविभक्तियों का ग्रहण इसलिये है कि । पूर्वं ग्रामं गतः । यहां भी अस्ताति प्रत्यय नहीं होता । और दिग् देश काल अर्थों का ग्रहण इसलिये है कि । पूर्वस्मिन् गुरौ वसति । यहां भी प्रत्यय न होवे । अस्ताति प्रत्यय में इकार तकार की रक्षा के लिये है ॥ ७५७ ॥

दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ॥ ७५८ ॥ अ० ५ । ३ । २८ ॥

यह सूत्र अस्ताति प्रत्यय पूर्वसूत्र से प्राप्त है उस का अपवाद है । दिशा देश और काल अर्थों में वर्तमान सप्तमी पञ्चमी और प्रथमासमर्थ दक्षिण [illegible] शब्दों से [illegible]

दानीं च ॥ ७४८ ॥ अ० ५ । ३ । १८ ॥

काल अर्थ में वर्त्तमान इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थान में दानीं प्र हो जैसे । अस्मिन् काले । इदानीम् ॥ ७४८ ॥

तदो दा च ॥ ७४९ ॥ अ० ५ । ३ । १९ ॥

काल अर्थ में वर्त्तमान तद् शब्द से सप्तमी विभक्ति के स्थानमें दा और च से दानीं प्रत्यय हों जैसे । तस्मिन् काले, तदा । तदानीम् ॥ ७४९ ॥

तयोर्दार्हिलौ च छन्दसि ॥ ७५० ॥ अ० ५ । ३ । २० ॥

इदम् और तद् दोनों शब्दों से वैदिकप्रयोगविषय में सप्तमी विभक्ति के स्था में यथासंख्य करके दा और र्हिल् प्रत्यय हों जैसे । अस्मिन् काले, इदा । तस्मि काले तर्हि ॥ ७५० ॥

सद्यः परुत्परार्य्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्यु रपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः ॥ ७५१ ॥ अ० ५ । ३ । २२ ।

यहां सप्तमी विभक्ति और काल की अनुवृत्ति आती है । इस सूत्र में काल अर्थ में सद्यः आदि शब्द सप्तमी विभक्तिके स्थान में द्यस् आदि प्रत्ययान्त निपातन किये हैं जैसे । समाने, अहनि, सद्यः। समान शब्द को स आदेश और द्यस् प्रत्यय दिवस अर्थ में हुआ है । पूर्वस्मिन् सम्वत्सरे, परुत् । पूर्वतरे सम्वत्सरे परारि । पूर्व और पूर्वतर शब्दों को पर आदेश और उत् तथा आरीच् प्रत्यय सम्वत्सर अर्थमें यथासंख्य करके होते हैं । अस्मिन् सम्वत्सरे, ऐषमः । यहां इदम् शब्द से सम्वत्सर अर्थ में समसण् प्रत्यय हुआ है उस के अणभाग का लोप होकर इदम् के इकार को वृद्धि होजाती है । परस्मिन्नहनि, परेद्यवि । यहां पर शब्द से दिन अर्थ में एद्यवि प्रत्यय होगया है । अस्मिन्नहनि, अद्य । यहां इदम् शब्द को अश्भाव और द्य प्रत्यय दिन अर्थ में किया है । और पूर्व अन्य अन्यतर इतर अपर अधर उभय और उत्तर शब्दों से दिन अर्थ अभिधेय रहे तो एद्युस् प्रत्यय निपातन किया है जैसे । पूर्वस्मिन्नहनि, पूर्वेद्युः । अन्यस्मिन्नहनि, अन्येद्युः । अन्यतरस्मिन्नहनि, अन्यतरेद्युः । इतरस्मिन्नहनि, इतरेद्युः । अपरस्मिन्नहनि, अपरेद्युः । अधरस्मिन्नहनि, अधरेद्युः । उत्तरस्मिन्नहनि, उत्तरेद्युः । उभयोरह्नोः, उभयेद्युः ॥ ७५१ ॥

वा०—द्युश्चोभयात् ॥ ७५२ ॥

उभय शब्द से द्यु प्रत्यय भी हो जैसे । तस्मात्स्मनुष्येभ्य उभयद्युः ॥ ७५२ ॥

दिशावाची शब्द जिस के पूर्वपद में हो और समास में अर्द्ध शब्द जिस के उत्तरपद में हो ऐसे अपर शब्द को पश्च आदेश होवे जैसे । दक्षिणपश्चार्द्धः । उत्तरपश्चार्द्धः ॥७६४॥

वा०—अर्द्धे च ॥ ७६५ ॥

पूर्वपद के विना भी अर्द्ध जिस के उत्तरपद में हो उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश हो जैसे । पश्चार्द्धः ॥ ७६५ ॥

पश्च पश्चा चच्छन्दसि ॥ ७६६ ॥ अ० ५ । ३ । ३३ ॥

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश अ तथा आ प्रत्यय वैदिकप्रयोगविषय में होते हैं । और चकार से आति प्रत्यय भी हो जैसे । पश्च सिंहः । पश्चा सिंहः । पश्चात् सिंहः ॥ ७६६ ॥

उत्तराधरदक्षिणादातिः ॥ ७६७ ॥ अ० ५ । ३ । ३४ ॥

उत्तर अधर और दक्षिण शब्दों से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में आति प्रत्यय होवे जैसे । उत्तरस्यां दिशि वसति, उत्तराद्वसति । उत्तरादागतः । उत्तराद्रमणीयम् । अधराद्वसति । अधरादागतः । अधराद्रमणीयम् । दक्षिणाद्वसति । दक्षिणादागतः । दक्षिणाद्रमणीयम् ॥ ७६७ ॥

एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ॥ ७६८ ॥ अ० ५ । ३ । ३५ ॥

यहां एनप् प्रत्यय में अप्राप्तविभाषा है क्योंकि एनप् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है । और पूर्व सूत्र से उत्तर आदि तीनों शब्दों की अनुवृत्ति आती है । सप्तमी और प्रथमासमर्थ उत्तर अधर और दक्षिण शब्दों से निकट अर्थ में आति प्रत्यय का बाधक एनप् प्रत्यय विकल्प करके हो पक्ष में आति भी हो जावे जैसे । उत्तरस्यां दिशि वसति । उत्तरेणवसति । उत्तराद्वसति । उत्तरतो वसति । उत्तरेणरमणीयम् । उत्तराद्रमणीयम् । उत्तरतो रमणीयम् । अधरेण वसति । अधराद्वसति । अधस्ताद्वसति । अधरेण रमणीयम् । अधराद्रमणीयम् । अधस्ताद्रमणीयम् । दक्षिणेन वसति । दक्षिणाद्वसति । दक्षिणतो वसति । दक्षिणेन रमणीयम् । दक्षिणाद्रमणीयम् । दक्षिणतो रमणीयम् । यहां अदूरग्रहण इसलिये है कि । उत्तराद्वसति । यहां एनप् न होवे । और पञ्चमीसमर्थ का निषेध इसलिये किया है कि । उत्तरादागतः । यहां भी एनप् प्रत्यय न होवे । और यहां से आगे अस्ति प्रत्यय के पूर्व २ सब सूत्रों में पञ्चमीसमर्थ का निषेध समझना चाहिये ॥ ७६८ ॥

दक्षिणादाच् ॥ ७६९ ॥ अ० ५ । ३ । ३६ ॥

सप्तमी और प्रथमासमर्थ दक्षिण शब्द से अस्ताति के अर्थ में आच् प्रत्यय हो

अतसुच् प्रत्यय होवे, जैसे । दक्षिणतो वसति । दक्षिणत आगतः । दक्षिण रमणीयम् । उत्तरतो वसति । उत्तरत आगतः । उत्तरतो रमणीयम् । अतसुच् प्र के उच्भाव की इत्संज्ञा हो कर लोप हो जाता है । और इस सूत्र में दक्षि र का सम्बन्ध काल के साथ असम्भव होने से नहीं होता किन्तु दिशा औ र दो ही अर्थों के साथ होता है ॥ ७५८ ॥

विभाषा परावराभ्याम् ॥ ७५९ ॥ अ० ५ । ३ । २९ ॥

यहां प्राप्तविभाषा इसलिये समझना चाहिये कि अतसुच् प्रत्यय किस से प्राप्त नहीं । अतसुच् का विकल्प होने से पक्ष में अस्ताति भी होजाता है अस्ताति प्रत्यय के अर्थों में पर और अवर शब्दों से अतसुच् प्रत्यय विकल्प करके हो और पक्ष में अस्ताति होजावे जैसे । परतो वसति । परत आगतः । परतो रमणीयम् । परस्ताद्वसति । परस्तादागतः । परस्ताद्रमणीयम् । अवरतो वसति । अवरत आगतः । अवरतो रमणीयम् । अवरस्ताद्वसति । अवरस्तादागतः । अवरस्ताद्रमणीयम् ॥ ७५९ ॥

अञ्चेर्लुक् ॥ ७६० ॥ अ० ५ । ३ । ३० ॥

क्विबन्त अञ्चुधातु जिन के अन्त में हो ऐसे दिशावाची शब्दों से परे अस्ताति प्रत्यय का लुक् होजावे जैसे । प्राच्यां दिशि वसति । प्राग्वसति । प्रागागतः । प्राग्रमणीयम् । यहां तद्धितसंज्ञक अस्ताति प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक् तद्धित०) इस सूत्र से स्त्री प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥ ७६० ॥

उपर्युपरिष्टात् ॥ ७६१ ॥ अ० ५ । ३ । ३१ ॥

यहां ऊर्ध्व शब्द को उपभाव और रिल् तथा रिष्टातिल् प्रत्यय अस्ताति के अर्थ में निपातन किये हैं जैसे । ऊर्ध्वायां दिशि वसति । उपरि वसति । उपर्यागतः । उपरि रमणीयम् । उपरिष्टाद्वसति । उपरिष्टादागतः । उपरिष्टाद्रमणीयम् ॥ ७६१ ॥

पश्चात् ॥ ७६२ ॥ अ० ५ । ३ । ३२ ॥

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश और आति प्रत्यय निपातन किया है जैसे । अपरस्यां दिशि वसति । पश्चाद्वसति । पश्चादागतः । पश्चाद्रमणीयम् ॥ ७६२ ॥

वा०—दिक्पूर्वपदस्य च ॥ ७६३ ॥

दिशा जिस के पूर्वपद में हो उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश और आति प्रत्यय हो जैसे । दक्षिणपश्चात् । उत्तरपश्चात् ॥ ७६३ ॥

वा०—अर्द्धोत्तरपदस्य च समासे ॥ ७६४ ॥

दिशावाची शब्द जिस के पूर्वपद में हो और समास में अर्द्ध शब्द जिस के उत्तरपद में हो ऐसे अपर शब्द को पश्च आदेश होवे जैसे। दक्षिणपश्चार्द्धः। उत्तरपश्चार्द्धः॥ ७६४॥

वा०—अर्द्धे च ॥ ७६५ ॥

पूर्वपद के विना भी अर्द्ध जिस के उत्तरपद में हो उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश हो जैसे। पश्चार्द्धः॥ ७६५॥

पश्च पश्चा च च्छन्दसि ॥ ७६६ ॥ अ० ५ । ३ । ३३ ॥

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश और तथा आ प्रत्यय वैदिकप्रयोगविषय में होते हैं। और चकार से आति प्रत्यय भी हो जैसे। पश्च सिंहः। पश्चा सिंहः। पश्चात् सिंहः॥ ७६६॥

उत्तराधरदक्षिणादातिः ॥ ७६७ ॥ अ० ५ । ३ । ३४ ॥

उत्तर अधर और दक्षिण शब्दों से अस्ताति प्रत्यय के अर्थ में आति प्रत्यय होवे जैसे। उत्तरस्यां दिशि वसति, उत्तराद्वसति। उत्तरादागतः। उत्तराद्रमणीयम्। अधराद्वसति। अधरादागतः। अधराद्रमणीयम्। दक्षिणाद्वसति। दक्षिणादागतः। दक्षिणाद्रमणीयम्॥ ७६७॥

एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः॥ ७६८ ॥ अ० ५ । ३ । ३५ ॥

यहां एनप् प्रत्यय में अप्राप्तविभाषा है क्योंकि एनप् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है। और पूर्व सूत्र से उत्तर आदि तीनों शब्दों की अनुवृत्ति आती है। सप्तमी और प्रथमासमर्थ उत्तर अधर और दक्षिण शब्दों से निकट अर्थ में आति प्रत्यय का बाधक एनप् प्रत्यय विकल्प करके हो पक्ष में आति भी हो जावे जैसे। उत्तरस्यां दिशि वसति। उत्तरेण वसति। उत्तराद्वसति। उत्तरतो वसति। उत्तरेण रमणीयम्। उत्तराद्रमणीयम्। उत्तरतो रमणीयम्। अधरेण वसति। अधराद्वसति। अधस्ताद्वसति। अधरेण रमणीयम्। अधराद्रमणीयम्। अधस्ताद्रमणीयम्। दक्षिणेन वसति। दक्षिणाद्वसति। दक्षिणतो वसति। दक्षिणेन रमणीयम्। दक्षिणाद्रमणीयम्। दक्षिणतो रमणीयम्। यहां अदूरग्रहण इसलिये है कि। उत्तराद्वसति। यहां एनप् न होवे। और पञ्चमीसमर्थ का निषेध इसलिये किया है कि। उत्तरादागतः। यहां भी एनप् प्रत्यय न होवे। और यहां से आगे आति प्रत्यय के पूर्वोक्त सब अर्थों में पञ्चमीसमर्थ का निषेध समझना चाहिये॥ ७६८॥

दक्षिणादाच् ॥ ७६९ ॥ अ० ५ । ३ । ३६ ॥

सप्तमी और प्रथमासमर्थ दक्षिण शब्द से अस्ताति के अर्थ में आच् प्रत्यय हो

में अतसुच् प्रत्यय होवे, जैसे । दक्षिणतो वसति । दक्षिणत आगतः । दक्षिणतो रमणीयम् । उत्तरतो वसति । उत्तरत आगतः । उत्तरतो रमणीयम् । अतसुच् प्रत्यय के उच्मात्र की इत्संज्ञा हो कर लोप हो जाता है । और इस सूत्र में दक्षिण शब्द का सम्बन्ध काल के साथ असम्भव होने से नहीं होता किन्तु दिशा और देश दो ही अर्थों के साथ होता है ॥ ७५८ ॥

विभाषा परावराभ्याम् ॥ ७५९ ॥ अ० ५ । ३ । २९ ॥

यहां अप्राप्तविभाषा इसलिये समझना चाहिये कि अतसुच् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं । अतसुच् का विकल्प होने से पक्ष में अस्ताति भी होजाता है । अस्ताति प्रत्यय के अर्थों में पर और अवर शब्दों से अतसुच् प्रत्यय विकल्प करके हो और पक्ष में अस्ताति होजावे जैसे । परतो वसति । परत आगतः । परतो रमणीयम् । परस्ताद्वसति । परस्तादागतः । परस्ताद्रमणीयम् । अवरतो वसति । अवरत आगतः । अवरतो रमणीयम् । अवस्ताद्वसति । अवस्तादागतः । अवस्ताद्रमणीयम् ॥ ७५९ ॥

अञ्चेर्लुक् ॥ ७६० ॥ अ० ५ । ३ । ३० ॥

क्विन्त अञ्चुधातु जिन के अन्त में हो ऐसे दिशावाची शब्दों से परे अस्ताति प्रत्यय का लुक् होजावे जैसे । प्राच्यां दिशि वसति । प्राग्वसति । प्रागागतः । प्राग्रमणीयम् । यहां तद्धितसंज्ञक अस्ताति प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् (लुक् तद्धित०) इस सूत्र से स्त्री प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है ॥ ७६० ॥

उपर्युपरिष्टात् ॥ ७६१ ॥ अ० ५ । ३ । ३१ ॥

यहां ऊर्ध्व शब्द को उपभाव और रिल् तथा रिष्टातिल् प्रत्यय अस्ताति के अर्थ में निपातन किये हैं जैसे । ऊर्ध्वायां दिशि वसति । उपरि वसति । उपरि रमणीयम् । उपरिष्टाद्वसति । उपरिष्टादागतः । उपरिष्टाद्रमणीयम्

पश्चात् ॥ ७६२ ॥ अ० ५ । ३ । ३२ ॥

यहां अपर शब्द को पश्च आदेश और आति प्रत्यय निपातन किया अपरस्यां दिशि वसति । पश्चाद्वसति । पश्चादागतः । पश्चाद्रमणीयम् ॥

वा०—दिक्पूर्वपदस्य च ॥ ७६३ ॥

दिशा जिस के पूर्वपद में हो उस अपर शब्द को भी पश्च आदेश प्रत्यय हो जैसे । दक्षिणपश्चात् । उत्तरपश्चात् ॥ ७६३ ॥

वा०—अर्द्धोत्तरपदस्य च समासे ॥ ७६४ ॥

सङ्ख्याया विधार्थे धा ॥ ७७५ ॥ अ० ५ । ३ । ४२ ॥

क्रिया के प्रकार अर्थ में वर्तमान संख्यावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में धा प्रत्यय हो जैसे । एकधा भुङ्क्ते । द्विधा गच्छति । चतुर्धा । पञ्चधा । इत्यादि ॥७७५॥

याप्ये पाशप् ॥ ७७६ ॥ अ० ५ । ३ । ४७ ॥

याप्य (निन्दित) अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में पाशप् प्रत्यय हो जैसे । कुत्सितो वैयाकरणो वैयाकरणपाशः । याज्ञिकपाशः । इत्यादि जो पुरुष व्याकरणशास्त्र में प्रवीण और बुरे आचरण करता है उस को वैयाकरणपाश संज्ञा इसलिये नहीं होती कि जिस गुण के विद्यमान होने से वैयाकरण शब्द की प्रवृत्ति उस पुरुष में होती है उसी गुण की निन्दा में प्रत्यय होता है ॥ ७७६ ॥

एकादाकिनिच्चासहाये ॥ ७७७ ॥ अ० ५ । ३ । ५२ ॥

असहायवाची एक शब्द से स्वार्थ में आकिनिच् प्रत्यय हो और चकार से कन् प्रत्यय और लुक् भी हो जैसे । एकाकी । एककः । एकः । यहां आकिनिच् और कन् दोनों का लुक् समझना चाहिये परन्तु प्रत्ययविधान व्यर्थ न हो इसलिये पक्ष में लुक् होता है ॥ ७७७ ॥

अतिशायने तमबिष्ठनौ ॥ ७७८ ॥ अ० ५ । ३ । ५५ ॥

अतिशायन (प्रकृत्यर्थ की उत्कर्षता) अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय हों जैसे । अतिशयितः श्रेष्ठः श्रेष्ठतमः । वैयाकरणतमः । आढ्यतमः । दर्शनीयतमः । सुकुमारतमः । इत्यादि । अयमेषामतिशयेन पटुः, पटिष्ठः । लघिष्ठः । गरिष्ठः । इत्यादि ॥ ७७८ ॥

तिङश्च ॥ ७७९ ॥ अ० ५ । ३ । ५६ ॥

यहां तद्धितप्रकरण में चतुर्थाध्याय के आदि में ङीबन्त आबन्त और प्रातिपदिकों से प्रत्ययविधान का अधिकार कर चुके हैं । इस कारण तिङन्त शब्दों से प्रत्ययविधान नहीं प्राप्त है इसीलिये यह सूत्र पढ़ा है । तिङन्त शब्दों से अतिशय अर्थ में तमप्प्रत्यय हो जैसे । अयमेषु भृशं पचति, पचतितमाम् । जल्पतितमाम् । इत्यादि । यहां पूर्वसूत्र से इष्ठन् प्रत्यय इसलिये नहीं आता कि प्रत्ययान्त गुणवाची शब्दों से लोक में द्रव्य अर्थों के साथ सम्बन्ध दीखता है क्रिया शब्दों के साथ नहीं ॥ ७७९ ॥

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ॥ ७८० ॥ अ० ५ । ३ । ५७ ॥

यहां तिङन्त की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से आती है जहां विभाग करने योग्य दो और व्यक्तियों का कहना उपपद हो वहां सामान्यप्रातिपदिकों और तिङन्त शब्दों से अतिशय अर्थ में तरप् और ईयसुन् प्रत्यय हों जैसे। द्वाविमावाढ्यौ, अयमनयोरतिशयेनाढ्यः, आढ्यतरः, द्वाविमौ विद्वांसौ, अयमनयोरतिशयेन विद्वान्, विद्वत्तरः। प्राज्ञतरः। पचतितराम्। जल्पतितराम्। इत्यादि। ईयसुन्। द्वाविमौ गुरू, अयमनयोरतिशयेन, गरीयान्। पटीयान्। लघीयान्। इत्यादि। विभज्योपपद से। माथुराः पाटलिपुत्रेभ्य आढ्यतराः। वाराणसेया इतरेभ्यो विद्वत्तराः। दर्शनीयतराः। इत्ययादि। ईयसुन्। गरीयांसः। पटीयांसः। इत्यादि॥७८०॥

अजादी गुणवचनादेव ॥ ७८१ ॥ अ० ५ । ३ । ५८ ॥

पूर्व सूत्रों में जो अजादि (इष्ठन् ईयसुन्) प्रत्यय सामान्य करके कहे हैं उन का यहां विषयनियम करते हैं कि वे दोनों प्रत्यय गुणवाची प्रातिपदिक से हो होवें अन्य से नहीं। उदाहरण पूर्व दे चुके हैं। नियम होने से। पाचकतरः। पाचकतमः। इत्यादि में इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय नहीं होते। और प्रत्यय का नियम समझना चाहिये प्रकृति का नहीं अर्थात् गुणवाची प्रातिपदिकों से तरप् तमप् प्रत्यय भी होते हैं और द्रव्यवाचक शब्दों से तरप् तमप् हो होते हैं इष्ठन् और ईयसुन् नहीं होते॥७८१॥

तुश्छन्दसि ॥ ७८२ ॥ अ० ५ । ३ । ५९ ॥

यहां पूर्व सूत्र से अजादि की अनुवृत्ति चली आती है। पूर्व सूत्र में गुणवाचियों से नियम किया है इस से यहां प्राप्ति नहीं थी। तृच् और तृन् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से वेदविषय में इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय होवें जैसे। आसुतिं करिष्ठः। अतिशयेन कर्त्ता। ऐसा विग्रह होगा। अतिशयेन दोग्ध्री। दोहीयसी धेनुः। यहां सामान्य भसंज्ञा में (भस्याढे०) इस से पुंवद्भाव हो कर तृच् तृन् प्रत्ययों का लुक् हो जाता है॥७८२॥

प्रशस्यस्य श्रः ॥ ७८३ ॥ अ० ५ । ३ । ६० ॥

अजादि प्रत्ययों के परे प्रशस्य शब्द को श्र आदेश होवे जैसे। सर्वे इमे प्रशस्याः, अयमतिशयेन प्रशस्यः, श्रेष्ठः। द्वाविमौ प्रशस्यौ, अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः श्रेयान्। तद्धितप्रत्ययों के परे भसंज्ञक एकाच् शब्दों को प्रकृतिभाव होने से श्र शब्द के टिभाग का लोप नहीं होता॥७८३॥

प्रशस्य शब्द को अजादि प्रत्ययों के परे ज्य आदेश भी हो जैसे। सर्वे इमे प्रशस्या अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः, ज्येष्ठः। द्वाविमौ प्रशस्यौ, अयमतिशयेन प्रशस्यः, ज्यायान्। यहां ईयसुन् के ईकार को आकारादेश (ज्यादादी०) इस वक्ष्यमाण सूत्र से हो जाता है। ७८४॥

वृद्धस्य च ॥ ७८५ ॥ अ० ५। ३। ६२ ॥

वृद्ध शब्द को भी अजादि प्रत्ययों के परे ज्य आदेश होवे जैसे। सर्वे इमे वृद्धा अयमेषामतिशयेन वृद्धः, ज्येष्ठः, उभाविमौ वृद्धौ अयमनयोरतिशयेन वृद्धः, ज्यायान्। और (प्रियस्थिर०) इस वक्ष्यमाण सूत्र से वृद्ध शब्द को वर्ष आदेश भी होता है परन्तु वृद्ध आदेश कहना व्यर्थ न होजावे इसलिये पक्ष में समझना चाहिये जैसे। वर्षिष्ठः। वर्षीयान्। ७८५॥

अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ ॥ ७८६ ॥ अ० ५। ३। ६५ ॥

अन्तिक और बाढ शब्दों को यथासंख्य करके अजादि प्रत्ययों के परे नेद और साध आदेश होवें जैसे। सर्वाणीमान्यन्तिकानि। इदमेषामतिशयेनान्तिकम्, नेदिष्ठम्। उभे इमे अन्तिके इदमनयोरतिशयेनान्तिकं नेदीयः। सर्वे इमे बाढमधीयते, नेदिष्ठम् ... इमावेताभ्यां बाढमधीयाते साधीयोऽधीते॥ ७८६॥

श्रेयस्मात् धनीयान् । इत्यादि (प्रशस्यस्य श्रः) इस सूत्र से ले के यहां तक सब सूत्रों में आदेश विधानरूप ज्ञापक से अजादि प्रत्ययों (इष्ठन् ईयसुन्) की उत्पत्ति उन २ प्रशस्य आदि प्रातिपदिकों से समझनी चाहिये ॥ ७८८ ॥

प्रशंसायां रूपप् ॥ ७८९ ॥ अ० ५ । ३ । ६६ ॥

प्रकृत्यर्थ की प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में रूपप् प्रत्यय होवे जैसे । प्रशस्तो वैयाकरणो वैयाकरणरूपः । याज्ञिकरूपः । पाचकरूपः । उपदेशकरूपः । पाठकरूपः । इत्यादि । यहां पूर्व से तिङन्त की भी अनुवृत्ति चली आती है जैसे । पचतिरूपम् । पठतिरूपम् । जल्पतिरूपम् । तद्धित प्रत्ययान्त आख्यात क्रियाओं से द्विवचन बहुवचन विभक्ति नहीं आती और सब विभक्तियों के एक वचन भी नहीं होते किन्तु अव्ययसंज्ञा हो जाने से सब विभक्तियों के स्थान में अम् आदेश हो जाता है । परन्तु द्विवचनान्त और बहुवचनान्त क्रियाओं से तो तद्धित प्रत्यय हो जाते हैं जैसे । पठतोरूपम् । पठन्तिरूपम् । इत्यादि ॥ ७८९ ॥

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ॥ ७९० ॥ अ० ५ । ३ । ६७ ॥

समाप्ति होने में थोड़ी न्यूनता अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में कल्पप्, देश्य और देशीयर् प्रत्यय होवें जैसे । ईषदसमाप्ता विद्या विद्याकल्पः । विद्यादेश्यः । विद्यादेशीयः । ईषदसमाप्तः पटः पटकल्पः । पटदेश्यः । पटदेशीयः । मृदुकल्पः । मृदुदेश्यः । मृदुदेशीयः । इत्यादि । तिङन्त की भी अनुवृत्ति चली आती है जैसे । पचतिकल्पम् । पठतिकल्पम् । पठतिदेश्यम् । पठतिदेशीयम् । पठतःकल्पम् । पठन्तिकल्पम् । इत्यादि ॥ ७९० ॥

विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ॥ ७९१ ॥ अ० ५ । ३ । ६८ ॥

यहां भी अप्राप्तविभाषा है क्योंकि सुबन्त से पूर्व बहुच् प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं । और यहां पूर्व सूत्र से ईषदसमाप्ति अर्थ की अनुवृत्ति भी चली आती है । ईषदसमाप्ति अर्थ में वर्त्तमान सुबन्त से पूर्व बहुच् प्रत्यय विकल्प करके होवे । तृतीयाध्याय के प्रारम्भ में प्रत्ययों के प्रातिपदिकों से परे होने का अधिकार कर चुके हैं इसलिये यहां पुरस्तात् शब्द पढ़ा है कि प्रातिपदिकों के आदि में प्रत्यय हो जैसे । ईषदसमाप्तो [illegible], [illegible] । बहुपटुः । बहुमृदुः । बहुगुडा द्राक्षा । इत्यादि । विकल्प के कहने से कल्पप् आदि प्रत्यय भी इन प्रातिपदिकों से होते हैं । और सुबन्त ग्रहण तिङन्त की निवृत्ति के लिये है ॥ ७९१ ॥

प्रकारवचने जातीयर् ॥ ७९२ ॥ अ० ५ । ३ । ६९ ॥

प्रकार के कहने अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थमें जातीयर् प्रत्यय होवे जैसे। एवम्प्रकारः, एवञ्जातीयः। मृदुप्रकारः, मृदुजातीयः। प्रमाणजातीयः। प्रमेयजातीयः। इत्यादि ॥ ७८२ ॥

प्रागिवात्कः ॥ ७९३ ॥ अ० ५। ३। ७० ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे (इवे प्रतिकृतौ) इस सूत्रपर्य्यन्त सब सूत्रों तथा अर्थों में सामान्य करके क प्रत्यय होगा जैसे। अश्वकः। उपभकः। गोकः। इत्यादि। तिङन्त की अनुवृत्ति इस सूत्र में नहीं आती किन्तु उत्तर सूत्र में तो आती है ॥ ७८३ ॥

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः ॥ ७९४ ॥ अ० ५। ३। ७१ ॥

यहां तिङन्त की भी अनुवृत्ति आती है। और यह सूत्र क प्रत्यय का अपवाद है। अव्यय सर्वनाम संज्ञक और तिङन्त शब्दों के टि भाग से पूर्व अकच् प्रत्यय होवे। यहां भी प्रत्ययों का पर होना अधिकार होने से टि से पूर्व नहीं प्राप्त है इसलिये प्राक्ग्रहण किया है जैसे। अव्ययों से। उच्चकैः। नीचकैः। शनकैः। इत्यादि। सर्वनामसंज्ञकों से। सर्वके। सर्वे। विश्वके। विश्वे। उभयके। उभये। यका। सका। या। सा। यकः। सकः। यः। सः। एषकः। एषः। यहां प्रातिपदिक और सुबन्त दोनों की अनुवृत्ति चली आती है इस कारण कहीं प्रातिपदिक के टि से पूर्व और कहीं सुबन्त के टि से पूर्व अकच् प्रत्यय होता है। प्रातिपदिक के टि से पूर्व जैसे। युष्मकाभिः। अस्मकाभिः। युष्माभिः। अस्माभिः। युष्मकासु। अस्मकासु। युष्मासु। अस्मासु। युवकयोः। आवकयोः। युवयोः। आवयोः। इत्यादि। सुबन्त के टि से पूर्व जैसे। त्वयका। मयका। त्वया। मया। त्वयकि। मयकि। त्वयि। मयि। इत्यादि। तिङन्त से। भवतकि। पचतकि। पठतकि। जल्पतकि। इत्यादि ॥ ७८४ ॥

वा०—अकच्प्रकरणे तूष्णीमः काम् ॥ ७९५ ॥

तूष्णीम् मकारान्त अव्यय शब्द के टि भाग से पूर्व अकच् प्रत्यय का बाधक काम् प्रत्यय होवे जैसे। आसितव्यं किल तूष्णीकाम् ॥ ७८५ ॥

वा०—शीले को मलोपश्च ॥ ७९६ ॥

शील अर्थ में तूष्णीम् अव्यय शब्द से क प्रत्यय और तूष्णीक् शब्द के मकार का लोप हो जावे जैसे। तूष्णींशीलः। तूष्णीकः ॥ ७८६ ॥

भयमस्मात् धनीयान् । इत्यादि (प्रशस्यस्य श्रः) इस सूत्र से ले के यहां तक सब सूत्रों में आदेश विधानरूप ज्ञापक से अजादि प्रत्ययों (इष्ठन् ईयसुन्) की उत्पत्ति इन २ प्रशस्य आदि प्रातिपदिकों से समझनी चाहिये ॥ ७८८ ॥

प्रशंसायां रूपप् ॥ ७८९ ॥ अ० ५ । ३ । ६६ ॥

प्रकृत्यर्थ की प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में रूपप् प्रत्यय होवे जैसे । प्रशस्तो वैयाकरणो वैयाकरणरूपः । याज्ञिकरूपः । पाचकरूपः । उपदेशकरूपः । प्राज्ञरूपः । इत्यादि । यहां पूर्व से तिङन्त को भी अनुवृत्ति चली आती है जैसे । पचतिरूपम् । पठतिरूपम् । जल्पतिरूपम् । तद्धित प्रत्ययान्त आख्यात क्रियाओं से द्विवचन बहुवचन विभक्ति नहीं आती और सब विभक्तियों के एकवचन भी नहीं होते किन्तु अव्ययसंज्ञा हो जाने से सब विभक्तियों के स्थान अम् आदेश हो जाता है । परन्तु द्विवचनान्त और बहुवचनान्त क्रियाओं से तद्धित प्रत्यय हो जाते हैं जैसे । पठतोरूपम् । पठन्तिरूपम् । इत्यादि ॥ ७८९

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ॥ ७९० ॥ अ० ५ । ३ । ६७

समाप्ति होने में थोड़ी न्यूनता अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से स्वार्थ कल्पप् देश्य और देशीयर् प्रत्यय होवें जैसे । ईषदसमाप्ता विद्या विद्याकल्प विद्यादेश्यः । विद्यादेशीयः । ईषदसमाप्तः पटः पटकल्पः । पटदेश्यः । पटदेशी मृदुकल्पः । मृदुदेश्यः । मृदुदेशीयः । इत्यादि । तिङन्त को भी अनुवृत्ति आती है जैसे । पचतिकल्पम् । पठतिकल्पम् । पठतिदेश्यम् । पठतिदेशी पठतःकल्पम् । पठन्तिकल्पम् । इत्यादि ॥ ७९० ॥

विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ॥ ७९१ ॥ अ० ५ । ३ । ६

द्वितीय अच् से परे अन्य भाग का जो लोप कहा है सो चतुर्थ अच् से परे भी होजावे जैसे । बृहस्पतिदत्तकः । बृहस्पतिकः । बृहस्पतियः । बृहस्पतिलः । इत्यादि ॥ ८०१ ॥

वा०—अजादौ च ॥ ८०२ ॥

अजादि प्रत्यय के परे लोप कहा है । सो ठजादि प्रत्ययों के परे भी द्वितीय अच् से ऊर्ध्व का लोप हो जैसे । देवदत्तकः । देवकः । यज्ञदत्तकः । यज्ञकः । यहां कन् प्रत्यय हुआ है ॥ ८०२ ॥

वा०—लोपः पूर्वपदस्य च ॥ ८०३ ॥

अजादि हलादि सामान्य प्रत्ययों के परे सञ्ज्ञावाची शब्दों के पूर्वपद का भी लोप होजावे जैसे । देवदत्तिकः दत्तकः । यज्ञदत्तिकः दत्तकः । दत्तिकः । दत्तियः । दत्तिलः । इत्यादि ॥ ८०३ ॥

वा०—अप्रत्यये तथैवेष्टः ॥ ८०४ ॥

कोई भी प्रत्यय न परे हो तो भी पूर्वपद का लोप होवे जैसे । देवदत्तो दत्त इत्यादि ॥ ८०४ ॥

वा०—उवर्णाल्ल इलस्य च ॥ ८०५ ॥

उवर्णान्त संज्ञा शब्द से परे जो इलच् प्रत्यय उस के इकार का लोप हो जैसे । भानुदत्तो भानुलः । वसुदत्तो वसुलः । इत्यादि ॥ ८०५ ॥

वा०—एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपः ॥ ८०६ ॥

एकाक्षर जिन का पूर्वपद हो उन के उत्तरपद का लोप हो अजादि प्रत्ययों के परे जैसे । वागाशीः । वाचिकः । स्रुचिकः । त्वचिकः । इत्यादि ॥ ८०६ ॥

किंयत्तदो निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ॥ ८०७ ॥ अ० ५ । ३ । ९२ ॥

दोनों में से एक का जहां निर्द्धारण (पृथक्) करना हो वहां किम्, यत् और तत् प्रातिपदिकों से डतरच् प्रत्यय होवे । जातिवाची क्रियावाची गुणवाची वा संज्ञा शब्दों के समुदाय से एकदेश का पृथक् करना होता है जैसे । कतरो भवतोः कठः । कतरो भवतोः कारकः । कतरो भवतोः पटुः । कतरो भवतोर्देवदत्तः । यतरो भवतोः कठः । यतरो भवतोः कारकः । यतरो भवतोः पटुः । यतरो भवतोर्देवदत्तः । ततर आगच्छतु । इत्यादि । यहां महाविभाषा अर्थात् (समर्थानां०) इस सूत्र से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है इस से । को भवतोर्देवदत्तः । स आगच्छतु । इत्यादि वाक्यों में डतरच् प्रत्यय नहीं होता ॥ ८०७ ॥

कस्य च दः ॥ ७९७ ॥ अ० ५ । ३ । ७२ ॥

यहां अव्ययों के सम्बन्ध का सूत्रार्थ के साथ सम्बन्ध होने से अव्यय की अनुवृत्ति पूर्व सूत्र से आती है सर्वनाम की नहीं क्योंकि सर्वनाम शब्द कोई ककारान्त नहीं है ककारान्त अव्ययों को अकच् प्रत्यय के संयोग में दकारादेश आदेश होवे जैसे। धिक्। धकित्। हिरुक्। हिरकुत्। पृथक्। पृथकत्। इत्यादि॥७९७॥

अनुकम्पायाम् ॥ ७९८ ॥ अ० ५ । ३ । ७६ ॥

दूसरों के दुःखों को यथाशक्ति निवारण करने को अनुकम्पा कहते हैं अनुकम्पा अर्थ में वर्त्तमान सामान्य प्रातिपदिकों और तिङन्त शब्दों से यथाप्राप्त प्रत्यय हों जैसे। पुत्रकः। वत्सकः। दुर्बलकः। बुभुक्षितकः। व्यसितकः। इत्यादि। तिङन्तों से। शेतके। विश्वसितकि। स्वपितकि। प्राणितकि। इत्यादि॥७९८॥

ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ॥ ७९९ ॥ अ० ५ । ३ । ८३ ॥

यहां पूर्व सूत्र से लोप की अनुवृत्ति आती है। इस प्रकरण में जो ठ अजादि प्रत्यय हैं उन के परे प्रकृति के द्वितीय अच् से ऊर्ध्व जो शब्दरूप है उस का लोप हो ऊर्ध्व शब्द के ग्रहण से सब का लोप होजाता है जैसे। अनुकम्पितो देवदत्तः। देविकः। देवियः। देविलः। यज्ञिकः। यज्ञियः। यज्ञिलः। यहां देवदत्त और यज्ञदत्त शब्द से ठ,घ और इलच् प्रत्यय क्रम से हुए हैं। अनुकम्पित उपेन्द्रदत्तकः, उपडः। उपकः। उपियः। उपिलः। उपिकः। यहां उपेन्द्रदत्त शब्द से अडच्, वुच्, घ, इलच्, तथा ठच्, प्रत्यय होते हैं। इस सूत्र में ठ को भी इक आदेश हो जाता है। फिर अजादि के कहने से ठ प्रत्यय का भी ग्रहण हो जाता फिर ठ प्रत्यय का ग्रहण इसलिये है कि जहां अच् [illegible] ठ के स्थान में क आदेश होता है वहां भी द्वितीय अच् से परवर्णों का लोप हो जाता जैसे। अनुकम्पितो वायुदत्तः, वायुकः। पितृकः॥७९९॥

वा०—द्वितीयादचो लोपे संध्यक्षरद्वितीयत्वे तदादेर्लोपो वक्तव्यः ॥ ८०० ॥

दो अक्षरों से परे वर्णों का जो लोप सूत्र से कहा है सो [illegible] सन्ध्यक्षर (ए, ऐ, ओ, औ,) होता वहां सन्ध्यक्षर का भी [illegible] [illegible]। [illegible]। [illegible]। [illegible] [illegible] को संज्ञा है उन में [illegible] का भी [illegible]

वा०—चतुर्थात् ॥ ८०१ ॥

(* जीविकार्थे चापण्ये) इस सूत्र पर विचार–

जीविका शब्द का अर्थ मुख्य करके जीवनोपाय करना है इस प्रकरण में सिवाय प्रतिकृति और मनुष्य के दूसरे की अनुवृत्ति नहीं आती यहां प्रयोजन यह है कि जिन स्त्री पुत्र आदि सम्बन्धी वा मित्रादिकों के साथ परम प्रेम होता है उन के वियोग में उन की प्रतिकृति देखते और गुण कर्म तथा उपकार आदि का ध्यान करते हुए अपने चित्त में सन्तोष करते हैं परन्तु इस प्रकरण में यह बात विचारना चाहिये कि संसार में जितने द्रव्य पदार्थ हैं उन सब की प्रतिकृति होती है वा नहीं जो बहुतेरे घोड़े हाथी आदि जीवों की अविदग्धीय मनुष्यादि की प्रतिकृतियां बना २ कर बेचते हैं वे जीविकार्थपण्य होते हैं । और जो बहुतेरे द्वीप द्वीपान्तर देश देशान्तरों में पशु पक्ष्यादि तथा पति स्त्री पुत्रादि की प्रतिकृतियां रखते हैं वे अपण्यजीविकार्थ अर्थात् बेचने के लिये न हों किन्तु देख और दिखला के जीविका करते हों परन्तु परमार्थ के साथ इस विषय का कुछ सम्बन्ध नहीं । इस सूत्र से बहुतेरे वैयाकरणों का यह अभिप्राय है कि जीविका के लिये जो पदार्थ हो और वह बेचा न जावे तो उस अर्थ में कन् प्रत्यय का लुप् हो जावे और (लुम्मनुष्ये) इस सूत्र से मनुष्य शब्द का भी सम्बन्ध न करके ब्रह्मा आदि देवताओं की मूर्त्तियां जो कि मन्दिरों में बना २ कर रखते हैं । उन से जीविका (धन का आगमन) तो है परन्तु वे प्रतिमा बेचने के लिये नहीं हैं इसलिये उन्हीं का ग्रहण होना चाहिये । और इस सूत्र पर महाभाष्यकारने भी लिखा है कि जो धनार्थी लोग शिव आदि की प्रतिमा बना २ कर बेचते हैं वहां लुप् नहीं आवेगा । क्योंकि सूत्रकार ने अपण्य शब्द पढ़ा है कि जो बेचने के लिये न हो । इस महाभाष्य से भी अपना जो अभिप्राय सिद्ध करते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि यहां प्रतिकृति और मनुष्य शब्द दो की अनुवृत्ति है अन्य की नहीं । देवता शब्द भी यहां देवव्यक्तियों के साथ सम्बद्ध होता है वहां मनुष्यों ही की संज्ञा होती है और वैदिक शब्द सब यौगिक ही हैं देवता शब्द भी वैदिक है । जो इस सूत्र में मनुष्य शब्द की अनुवृत्ति जयादित्य आदि लोगों ने नहीं की यह उन का भ्रम है क्योंकि वे लोग देवता शब्द को मनुष्य से व्यतिरिक्तार्थवाची समझते हैं परन्तु सामान्य ग्रहण होने से जो २ प्रतिकृति जीविका के लिये हो और बेची न जावे तो उस २ सब के अभिधेय में प्रत्यय का लुप् होना चाहिये । और जहां कोई मनुष्य किन्हीं जीवों की प्रतिकृतियों को दिखा के सर्वत्र अपनी जीविका करता हो वहां भी लुप् होना चाहिये । और पूजा का अर्थ भी आदर सत्कार ही होता है सो चेतन के होने चाहियें । फिर महाभाष्यकार ने लिखा है कि जो इस समय पूजा के लिये हैं वहां लुप् होगा इस का भी यही अभिप्राय है कि जो शिव आदि मनुष्य की प्रतिकृति पूजा सत्कार के लिये है उन से प्रत्यय का लुप् हो जावे । क्योंकि अच्छे पुरुषों की जो प्रतिकृति है उस के बेचने में सज्जन लोग बुराई समझते हैं देव और देवता शब्द से मनुष्यों के ग्रहण में प्रमाण ॥

(विश्वे देवास आगत शृणुतेमꣳहवम्) यह यजुर्वेद का प्रमाण है ॥

(विद्वांसो हि देवाः) यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है ॥

(मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्य्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव)

यह तैत्तिरीय आरण्यक का वाक्य है इत्यादि सब प्रमाणवचनों से विद्वानों आदि का ग्रहण देव और देवता शब्द से होता है इसलिये पाणिनि आदि ऋषि लोगों का अभिप्राय भी वेदों से विरुद्ध कभी न होना चाहिये । इस प्रकरण को पक्षपात छोड़ के वेदानुकूलता से सब सज्जन लोग विचारें ॥

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ॥ ८०८ ॥ अ० ५ । ३ । ९३ ॥

पूर्व सूत्र से किम् आदि शब्दों और एक के निर्धारण की अनुवृत्ति आती है। बहुतों में से एक का निर्धारण करना अर्थ हो तो जाति के पूछने अर्थ में वर्त्तमान किम् आदि शब्दों से विकल्प करके डतरच् प्रत्यय होवे जैसे। कतमो भवतां कठः। यतमो भवतां कठः। ततम आगच्छतु। इत्यादि। यहां विकल्प के होने से पक्ष में इसी अर्थ में अकच् भी होता है जैसे। यको भवतां कठः। सक आगच्छतु। और महाविभाषा के चले आने से वाक्य भी बना रहता है जैसे। यो भवतां कठः। स आगच्छतु। यहां जातिपरिप्रश्न का ग्रहण इसलिये है कि। को भवतां देवदत्तः। यहां निज की संज्ञा के प्रश्न में किम् शब्द से डतमच् प्रत्यय नहीं होता। और परिप्रश्न का सम्बन्ध एक किम् शब्द के साथ ही समझना चाहिये क्योंकि यत् तत् के साथ वह अर्थ सम्भवित नहीं होता ॥ ८०८ ॥

इवे प्रतिकृतौ ॥ ८०९ ॥ अ० ५ । ३ । ९६ ॥

यहां पूर्व से परिप्रश्न की अनुवृत्ति आती है। उपमावाचक अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होवे जैसे। अश्व इव प्रतिकृतिः। अश्वकः। गर्दभकः। उष्ट्रकः। यहां प्रतिकृतिग्रहण इसलिये है कि। गौरिव गवयः। यहां केवल उपमा ही है प्रतिकृति नहीं इस से कन् प्रत्यय नहीं होता ॥ ८०९ ॥

लुम्मनुष्ये ॥ ८१० ॥ अ० ५ । ३ । ९८ ॥

प्रतिकृति सादृश्यार्थसंज्ञा हो तो उस अर्थ में विहित कन् प्रत्यय का लुप् होवे जैसे। चञ्चेव मनुष्यः। चञ्चा। दासी। खरकुटी। इत्यादि। यहां तद्धित प्रत्यय का लुप् होने से लिङ्ग और वचन पूर्व के ही हो जाते हैं। मनुष्य-ग्रहण इसलिये है कि। अश्वकः। उष्ट्रकः। इत्यादि में

जीविकार्थे चापण्ये ॥ ८११

प्रहण को अनुवृत्ति इसलिये है कि। अश्वकं दर्शयति । यहां न हो और अपस्त्र-
ग्रहण इसलिये है कि। हस्तिकान् विक्रीणीते । यहां भी कन् का लुप् न हो ॥ ८११ ॥

समासाच्च तद्विषयात् ॥ ८१२ ॥ अ० ५ । ३ । १०६ ॥

यहां तत् शब्द से पूर्वोक्त उपमावाचक शब्द लिया जाता है। उपमार्थ में समास किये प्रातिपदिकों से दूसरे उपमार्थ में छ प्रत्यय होवे जैसे। काकागमनमिव तालपतनमिव काकतालम् । काकतालमिव यत्कार्यं काकतालीयम् । अजाकृपाणीयम्। अन्धकवर्तकीयम् । इत्यादि । यहां कौवे का वृक्ष के नीचे आना और ताल के फल का गिरना एक काल में होने से उस फल से दब के मर जाना अथवा उस फल को खा के तृप्त होना दोनों अर्थों का सम्भव है। ऐसे ही संसार में जो कार्य हो उस को काकतालीय न्याय कहते हैं। इस सूत्र में पहिले उपमार्थ में समास और दूसरे में प्रत्यय की उत्पत्ति होती है ॥ ८१२ ॥

प्रत्नपूर्वविश्वेमात्थाल् छन्दसि ॥ ८१३ ॥ अ० ५ । ३ । १११ ॥

प्रत्न पूर्व विश्व और इम शब्दों से उपमार्थ में वेदविषयक थाल् प्रत्यय होवे जैसे । प्रत्नथा । पूर्वथा । विश्वथा । इमथा ॥ ८१३ ॥

पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् ॥ ८१४ ॥ अ० ५ । ३ । ११२ ॥

यहां से उपमार्थ निवृत्त हुआ । अर्थ और काम में आसक्त पुरुषों को पूग कहते हैं। ग्रामणी शब्द जिस के पूर्व न हो ऐसे पूगवाची प्रातिपदिक से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय हो जैसे। लौहध्वज्यः । लौहध्वज्यौ । लौहध्वजाः । शैब्यः । शैब्यौ । शिबयः । चातक्यः । चातक्यौ । चातकाः । यहां ग्रामणी पूर्व का [illegible] इसलिये है कि । देवदत्तो ग्रामणीर्येषां त इमे देवदत्तकाः । यज्ञदत्तकाः । इत्यादि से ञ्य प्रत्यय न होवे ॥ ८१४ ॥

व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ॥ ८१५ ॥ अ० ५ । ३ । ११३ ॥

जो पुरुष [illegible] को मार २ के जीविका करें उन को [illegible] कहते हैं । [illegible] और [illegible] प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ञ्य [illegible] हो [illegible] जैसे । कापोतपाक्यः । कापोतपाक्यौ । कपोतपाकाः । [illegible] से । कौञ्जायन्यः । कौञ्जायन्यौ । कौञ्जायनाः । इत्यादि । यहां [illegible] का निषेध इसलिये है कि । कपोतपाकी । कौञ्जायनी । यहां [illegible] ॥ ८१५ ॥

ञ्यादयस्तद्राजाः ॥ ८१६ ॥ अ० ५ । ३ । ११९ ॥

(पूगाञ्ञ्योऽ०) इस सूत्र से जो ञ्य [illegible] से [illegible] प्रत्यय हैं उन उन को तद्राजसंज्ञा होती है। [illegible] है कि बहुवचन में प्रत्यय का लुक् हो जाता है ॥ ८१६ ॥

इति स्वार्थिकप्रकरणं [illegible]

अथ चतुर्थः पादः ।

पादशतस्य सङ्ख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च ॥ ८१७ ॥ अ० ५।४।१।

संख्या जिसके आदि में हो ऐसे पाद और शतशब्दान्त प्रातिपदिक से वीप्सा अर्थ में वुन् प्रत्यय और पाद, शत शब्दों के अन्त का लोप होवे जैसे । द्वौ द्वौ पादौ ददाति द्विपदिकां ददाति । द्वे द्वे शते ददाति द्विशतिकां ददाति । इत्यादि । यहां भसंज्ञक प्रत्ययों के परे अन्त का लोप हो जाता फिर लोपग्रहण इसलिये है कि उस लोप के परनिमित्तक होने से स्थानिवद्भाव हो कर पाद शब्द को पत् आदेश नहीं पावे यह लोप परनिमित्त नहीं है इस कारण स्थानिवद्भाव का निषेध होकर पत् आदेश होजाता है । इस सूत्र में पाद और शत शब्दों का ग्रहण किया है । परन्तु पाद शत शब्दों से अन्यत्र भी संख्यादि शब्दों से वीप्सा अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है जैसे । द्विमोदकिकामाददाति । इत्यादि प्रयोगों का आश्रय लेकर महाभाष्यकार ने पाद शत ग्रहण की उपेक्षा की है । ८१७ ॥

अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात्खः ॥ ८१८ ॥ अ० ५ । ४ । ७ ॥

अषडक्ष, आशितङ्गु, अलङ्कर्म, अलम्पुरुष, और अधि जिन का उत्तर पद हो उन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ख प्रत्यय होवे जैसे । अविद्यमानानि षट्-अक्षीण्यस्य । इस प्रकार बहुव्रीहि समास किये पश्चात् अक्षि शब्द से समासान्त षच् प्रत्यय हो जाता है । उस अषडक्ष शब्द से ख प्रत्यय हुआ है । अषडक्षीणो मन्त्रः । आशिता गावोऽस्मिन्नरण्ये, आशितङ्गवीनमरण्यम् । यहां निपातन पूर्वपद को मुम् का आगम हुआ है । अलङ्कर्मीणम् । अलम्पुरुषीणम् । आर्य्याधीनः । राजाधीनः । इत्यादि ॥ ८१८ ॥

विभाषाऽञ्चेरदिक्स्त्रियाम् ॥ ८१९ ॥ अ० ५ । ४ । ८ ॥

यहां अप्राप्तविभाषा है क्योंकि ख प्रत्यय किसी से प्राप्त नहीं है । क्विप् प्रत्ययान्त अञ्चु जिस के अन्त में हो उस प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग दिशा अर्थ को छोड़ के स्वार्थ में विकल्प से ख प्रत्यय होवे जैसे । प्राक्, प्राचीनम् । अर्वाक्, अर्वाचीनम् । दिशा स्त्रीलिंग का निषेध इसलिये है कि । प्राची दिक् । प्रतीची दिक् । दिशा का ग्रहण इसलिये है कि । प्राचीना ब्राह्मणी । अर्वाचीना [illegible] । इत्यादि में ख प्रत्यय न होवे ॥ ८१८ ॥

स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् ॥ ८२० ॥ अ० ५ । ४ । १० ॥

तुल्यता अर्थ में स्थानान्त प्रातिपदिक से विकल्प करके छ प्रत्यय होवे स्वार्थ में जैसे । पित्रा तुल्यः पितृस्थानीयः । पितृस्थानः । मातृस्थानीयः । मातृस्थानः । भ्रातृस्थानीयः । भ्रातृस्थानः । राजस्थानीयः । राजस्थानः । इत्यादि । यहां स्थान-ग्रहण इसलिये है कि । गोस्थानम् । अश्वस्थानम् । यहां न हो ॥ ८२० ॥

किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ॥ ८२१ ॥ अ० ५ । ४ । ११ ॥

किम् एकारान्त निपात तिङन्त और अव्यय शब्दों से परे जो घ प्रत्यय तदन्त प्रातिपदिकों से अद्रव्य (क्रिया और गुण) की अधिकता में आमु प्रत्यय होवे । यद्यपि गुण कर्मों के विना केवल द्रव्य की कुछ उन्नति नहीं होती तथापि क्रिया और गुणों की उन्नति की जब द्रव्य में विवक्षा होती है उस द्रव्यस्थ प्रकर्ष का निषेध यहां समझना चाहिये जैसे । किन्तराम् । किन्तमाम् । पूर्वाह्णेतराम् । पूर्वाह्णेतमाम् । पठतितराम् । पठतितमाम् । उच्चैस्तराम् । उच्चैस्तमाम् । इत्यादि । यहां आमु प्रत्यय में उकारानुबन्ध मकार की रक्षा के लिये है ॥ ८२१ ॥

णचः स्त्रियामञ् ॥ ८२२ ॥ अ० ५ । ४ । १४ ॥

स्त्रीलिंग में जो कृदन्त णच् प्रत्यय होता है तदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग विषयक, स्वार्थ में अञ् प्रत्यय होवे जैसे । व्यावक्रोशी । व्यावलेखी । इत्यादि ॥ ८२२ ॥

सङ्ख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ॥ ८२३ ॥ अ० ५ । ४ । १७ ॥

एक हो जिन का कर्त्ता हो ऐसी एक ही प्रकार की क्रियाओं के बार२ गणने अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची शब्दों से स्वार्थ में कृत्वसुच् प्रत्यय होवे जैसे । पञ्च वारान् भुङ्क्ते पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते । सप्तकृत्वः । अष्टकृत्वः । दशकृत्वः । इत्यादि यहां संख्याग्रहण इसलिये है कि । भूरीन् वारान् भुङ्क्ते । यहां प्रत्यय न हो और बार२ होना क्रिया का ही हो सकता है द्रव्य गुण का नहीं फिर यहां क्रियाग्रहण इसलिये है कि उत्तर सूत्रों में जहां क्रिया नहीं गिना जाती और अभ्यावृत्ति नहीं होती वहां भी होजावे । और अभ्यावृत्ति ग्रहण इसलिये है कि क्रिया मात्र के गणने में न हो जैसे । पञ्च पाकाः । दश पाकाः ॥ ८२३ ॥

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ॥ ८२४ ॥ अ० ५ । ४ । १८ ॥

क्रिया के बार२ गणने अर्थ में वर्त्तमान संख्यावाची द्वि, त्रि, और चतुर् शब्दों से कृत्वसुच् का बाधक सुच् प्रत्यय होवे जैसे । द्विः पठति । त्रिः पठति । चतुः पठति । इत्यादि ॥ ८२४ ॥

एकस्य सकृच्च ॥ ८२५ ॥ अ० ५ । ४ । १९ ॥

क्रिया की संख्या में वर्त्तमान एक शब्द से क्रत्वसुच का अपवाद सुच् प्रत्यय और एक शब्द को सकृत् आदेश होवे जैसे। सकृदधीते। सकृद्दाति। सकृत् कन्या प्रदीयते। इत्यादि ॥ ८२५ ॥

तत्प्रकृतवचने मयट् ॥ ८२६ ॥ अ० ५ । ४ । २१ ॥

जिस शब्द से प्रत्ययार्थ की विवक्षा हो उसी के निरन्तर कहने अर्थात् जात्यन्तर के मेल की निवृत्ति करने अर्थ में वर्त्तमान प्रथमासमर्थ प्रातिपदिकों से स्वार्थ में मयट्प्रत्यय होवे जैसे। आनन्दमयं ब्रह्म। अर्थात् ईश्वर में दुःख का लेश भी नहीं है। अन्नमयम्। प्राणमयम्। मनोमयम्। इत्यादि ॥ ८२६ ॥

अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः ॥ ८२७ ॥ अ० ५ । ४ । २३॥

अनन्त, आवसथ, इतिह, और भेषज, शब्दों से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय होवे जैसे। अनन्त एव, आनन्त्यम्। आवसथएव, आवसथ्यम्। इतिह, ऐतिह्यम्। भेषजमेव, भैषज्यम् ॥ ८२७ ॥

देवतान्तात्तादर्थ्ये यत् ॥ ८२८ ॥ अ० ५ । ४ । २४ ॥

देवता शब्द जिस के अन्त में हो उस चतुर्थीसमर्थ प्रातिपदिक से प्रत्ययार्थ तादर्थ्य के लिये होवे तो यत् प्रत्यय होवे जैसे। अग्निदेवतायै इदम्, अग्निदेवत्यम्। पितृदेवत्यम्। मातृदेवत्यम्। वायुदेवत्यम्। इत्यादि ॥ ८२८ ॥

अतिथेर्ञ्यः ॥ ८२९ ॥ अ० ५ । ४ । २६ ॥

तादर्थ्य अर्थ में, चतुर्थीसमर्थ अतिथि प्रातिपदिक से ञ्य प्रत्यय हो जैसे। अतिथये इदमातिथ्यम् ॥ ८२९ ॥

देवात्तल् ॥ ८३० ॥ अ० ५ । ४ । २७ ॥

देव शब्द से स्वार्थ में तल् प्रत्यय होवे जैसे। देव एव, देवता ॥ ८३० ॥

लोहितान्मणौ ॥ ८३१ ॥ अ० ५ । ४ । ३० ॥

मणिवाची लोहित शब्द से स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो जैसे। लोहितो मणिः, लोहितकः। मणिग्रहण इसलिये है कि। लोहितः। यहां प्रत्यय न हो ॥ ८३१ ॥

वा०—लोहिताल्लिङ्गबाधनं वा ॥ ८३२ ॥

लोहित शब्द से प्रतिपदविधि में कन् प्रत्यय के बलवान् होने से स्त्रीलिङ्ग में तकार को नकार आदेश नहीं प्राप्त है इसलिये यह वार्त्तिक कहा है कि लोहित शब्द से कन् प्रत्यय नकारादेश का बाधक विकल्प करके होवे जैसे। लोहिनिका। लोहितिका ॥ ८३२ ॥

वा०—अक्षरसमूहे छन्दसि यत उपसङ्ख्यानम् ॥ ८३३ ॥

अक्षरों के समूह अर्थ में वेदविषय में यत् प्रत्यय होवे जैसे। एव वै सप्तदशा-क्षरच्छन्दस्यः प्रजापतिः। यहां छन्दस् शब्द में यत् प्रत्यय हुआ है ॥ ८३३ ॥

वा०—छन्दसि बहुभिर्वसव्यैरुपसङ्ख्यानम् ॥ ८३४ ॥

वेद में वसु शब्द से यत् प्रत्यय होवे जैसे। हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैः। यहां वसव्य शब्द में यत् प्रत्यय हुआ है ॥ ८३४ ॥

वा०—अपस, ओक, कवि, उदक, वर्चस्, निष्केवल, उक्थ, जन, इत्येतेभ्यश्च वा ॥ ८३५ ॥

यहां चकार से छन्दसि और यत् की अनुवृत्ति आती है। इन अपस् आदि प्रातिपदिकों से वेद में स्वार्थिक यत् प्रत्यय विकल्प करके होवे जैसे। अपस्यो वसानाः। अपो वसानाः। स्व ओक्ये। स्व ओके। काव्योऽसि। कविरसि। वर्चस्यः। वर्चः। निष्केवल्यम्। निष्केवलम्। उक्थ्यम्। उक्थम्। जन्यम्। जनम् ॥ ८३५ ॥

वा०—समादावतुः ॥ ८३६ ॥

सम शब्द से स्वार्थ में आवतु प्रत्यय होवे जैसे। समावद्वसति। समावद्-गृह्णाति। इत्यादि ॥ ८३६ ॥

वा०—नवस्य नू त्नप्तनप्खाश्च ॥ ८३७ ॥

नव शब्द को नू आदेश और उस से स्वार्थ में त्नप्, तनप् तथा ख प्रत्यय होवे जैसे। नूत्नम्। नूतनम्। नवीनम् ॥ ८३७ ॥

वा०—नश्च पुराणे प्रात् ॥ ८३८ ॥

प्राचीन अर्थ में वर्त्तमान प्र शब्द से न प्रत्यय और चकार से त्नप् तनप् और ख प्रत्यय भी हों जैसे। प्रणम्। प्रत्नम्। प्रतनम्। प्रीणम् ॥ ८३८ ॥

तद्युक्तात्कर्मणोऽण् ॥ ८३९ ॥ अ० ५ । ४ । ३६ ॥

यहां पूर्व सूत्र से व्याहृतवाची की अनुवृत्ति आती है। व्याहृतवाची से युक्त (योग्य) कर्म शब्द से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होवे जैसे। कर्मैव कार्मणम्। वाची को सुन के जैसे जो कर्म किया जावे उस को कार्मण कहते हैं ॥ ८३९ ॥

वा०—अण्प्रकरणे कुलालवरुडनिषादचण्डालामित्रेभ्य-श्छन्दस्युपसङ्ख्यानम् ॥ ८४० ॥

कुलाल, वरुड, निषाद, चण्डाल, और अमित्र प्रातिपदिकों से वेद में अण् प्रत्यय करना चाहिये जैसे। कौलालः। वारुडः। नैषादः। चाण्डालः। आमित्रः ॥ ८४० ॥

वा०—भागरूपनामभ्यो धेयः ॥ ८४१ ॥

भाग, रूप और नाम शब्दों से धेय प्रत्यय हो जैसे। भागधेयम्। रूपधेयम्। नामधेयम् ॥ ८४१ ॥

वा०—मित्राच्छन्दसि धेयः ॥ ८४२ ॥

मित्र शब्द से वेदविषयक, स्वार्थ में धेय प्रत्यय हो जैसे। मित्रधेये यतस्व ॥ ८४२ ॥

वा०—अण् मित्राच्च ॥ ८४३ ॥

मित्र और अमित्र शब्दों से स्वार्थ में अण् प्रत्यय भी हो जैसे। मित्रमेव मैत्रम्। अमित्र एव, आमित्रः ॥ ८४३ ॥

वा०—सान्नाय्यानुजावरानुषूकचातुष्प्राश्यराक्षोघ्नवैयातवैकृतवारिवस्कृताग्रायणाग्रहायणसान्तपनानि निपात्यन्ते ॥ ८४४ ॥

सान्नाय्य आदि शब्द स्वार्थिक अण्प्रत्ययान्त लोक वेद में सर्वत्र निपातन किये जैसे। सान्नाय्यः। आनुजावरः। आनुषूकः। चातुष्प्राश्यः। राक्षोघ्नः। वैयातः। वैकृतः। वारिवस्कृतः। आग्रायणः। आग्रहायणः। सान्तपनः ॥ ८४४ ॥

वा०—आग्नीध्रसाधारणादञ् ॥ ८४५ ॥

आग्नीध्र और साधारण शब्दों से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय हो जैसे। आग्नीध्रम्। साधारणम् ॥ ८४५ ॥

वा०—अयवसमरुद्भ्यां छन्दस्यञ् ॥ ८४६ ॥

अयवस और मरुत् शब्दों से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय हो जैसे। आयवसे वर्वन्तम्। मारुतं शब्दः ॥ ८४६ ॥

वा०—नवसूरमर्त्तयविष्ठेभ्यो यत् ॥ ८४७ ॥

यहां भी पूर्व वार्त्तिक से छन्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये। नव, सूर, मर्त, और यविष्ठ शब्दों से स्वार्थ में यत् प्रत्यय होवे जैसे। नव्यः। सूर्यः। मर्त्यः। यविष्ठ्यः ॥ ८४७ ॥

वा०—क्षेमाद्यः ॥ ८४८ ॥

क्षेम शब्द से स्वार्थ में य प्रत्यय हो जैसे। क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः। यहां यत् और य प्रत्यय में केवल स्वर का भेद है रूपभेद नहीं ॥ ८४८ ॥

ओषधेरजातौ ॥ ८४९ ॥ अ० ५ । ४ । ३७ ॥

ओषधि शब्द से जाति अर्थ न होवे तो स्वार्थ में अण् प्रत्यय हो जैसे। औषधं पिबति। औषधं ददाति। इत्यादि ॥ ८४९ ॥

मृदस्तिकन् ॥ ८५० ॥ अ० ५ । ४ । ३९ ॥

मृत् शब्द से स्वार्थ में तिकन् प्रत्यय हो जैसे । मृदेव मृत्तिका ॥ ८५० ॥

सस्नौ प्रशंसायाम् ॥ ८५१ ॥ अ० ५ । ४ । ४० ॥

प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान मृत् प्रातिपदिक से स्वार्थ में स और स्न प्रत्यय हों जैसे । प्रशस्ता मृत्, मृत्स्ना । मृत्सा ॥ ८५१ ॥

बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ॥ ८५२ ॥ अ० ५ । ४ । ४२ ॥

यहां शस् प्रत्यय को किसी सूत्र से प्राप्ति न होने से यह अप्राप्तविभाषा समझनी चाहिये । कारकवाची बहु अल्प और इन के अर्थ के शब्दों से विकल्प करके शस् प्रत्यय होवे किसी कारक का यहां विशेष निर्देश नहीं किया इस से कर्मादि सब कारकों का ग्रहण होता है जैसे । बहूनि ददाति । बहुशो ददाति । अल्पं ददाति । अल्पशो ददाति । बहुभिर्ददाति । बहुशो ददाति । अल्पेन, अल्पशो ददाति । बहुभ्यः । बहुशः । अल्पशः । बहूनां बहुषु वा बहुशः । अल्पस्य, अल्पे वा,अल्पशः । इन के अर्थ के । भूरिशो ददाति । स्तोकशो ददाति । इत्यादि । यहां बहु तथा अल्पार्थों का ग्रहण इसलिये है कि । गां ददाति । अश्वं ददाति । इत्यादि से शस् प्रत्यय न होवे ॥ ८५२ ॥

वा०— बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम् ॥ ८५३ ॥

बहु और अल्प शब्दों से जो प्रत्यय विधान किया है वहां बहु से मङ्गल और अल्प शब्द से अमंगल अर्थ में होवे । यह वार्त्तिक सूत्र का शेष है इसलिये उक्त उदाहरण ही समझने चाहियें । अर्थात् बहुशो ददाति । यह प्रयोग अनिष्ट के बहुत देने में न होवे और । अल्पशो ददाति । यह भी इष्ट के देने में प्रयोग न किया जावे ॥ ८५३ ॥

प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ॥ ८५४ ॥ अ० ५ । ४ । ४४ ॥

कर्मप्रवचनीयसंज्ञक प्रति शब्द के योग में जहां पंचमी विभक्ति की है । उस विभक्त्यन्त प्रातिपदिक से तसि प्रत्यय होवे जैसे । प्रद्युम्नो वासुदेवतः प्रति । अभिमन्युरर्जुनतः प्रति । यहां पूर्व से विकल्प की अनुवृत्ति चली आने से । वासुदेवात् । अर्जुनात् । ऐसा भी प्रयोग होता है ॥ ८५४ ॥

वा०—तसिप्रकरणे आद्यादिभ्य उपसङ्ख्यानम् ॥ ८५५ ॥

प्रकरण में आद्यादि शब्दों से तसि प्रत्यय कहना चाहिये जैसे । आदौ, ...तः । अन्ततः । पार्श्वतः । पृष्ठतः । इत्यादि ॥ ८५५ ॥

कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः ॥ ८५६ ॥ अ० ५ । ४ । ५० ॥

संपूर्वक पदधातु के कर्त्ता अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक से कृ, भू और अस्ति धातुओं के योग में च्वि प्रत्यय होवे ॥ ८५६ ॥

वा०—च्विविधावभूततद्भावग्रहणम् ॥ ८५७ ॥

यह वार्त्तिक सूत्र का शेष समझना चाहिये। जो पदार्थ प्रथम कारण रूप से अप्रसिद्ध हो और पीछे कार्य्यरूप से प्रकट किया जावे उस को अभूततद्भाव कहते हैं। इस अभूततद्भाव अर्थ में उक्त सूत्र से च्वि प्रत्यय कहा है सो होवे जैसे। अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते तं करोति शुक्लीकरोति। अर्थात् जो पदार्थ प्रथम से मलीन है उस को शुद्ध करता है। शुक्लीभवति। शुक्लीस्यात्। कठिनीकरोति। कठिनीभवति। कठिनीस्यात्। घटीकरोति। घटीभवति। घटीस्यात्। इत्यादि। प्रयोजन यह है कि जो पदार्थ अपनी प्रथमावस्था में जिस स्वरूप से वर्त्तमान हो उसी अवस्था के साथ इस प्रत्ययार्थ की विवक्षा समझनी चाहिये और इस प्रत्यय के विना लोक में सिद्ध पदार्थों का कहना बन सकता है कि जो पदार्थ जैसा हो उस को वैसे ही स्वरूप से वर्णन करें। यहां अभूततद्भावग्रहण इसलिये है कि सम्पद्यन्ते यवाः। सम्पद्यन्ते शालयः। यहां च्वि प्रत्यय न होवे। कृ भू अस्ति धातुओं का योग इसलिये कहा है कि। अशुक्लः शुक्लो जायते। यहां न हो और संपूर्वक पद धातु के कर्त्ता का ग्रहण इसलिये है कि। शटे संयुज्यते। यहां भी च्वि प्रत्यय न होवे ॥ ८५७ ॥

वा०—समीपादिभ्य उपसङ्ख्यानम् ॥ ८५८ ॥

समीप आदि शब्दों से भी पूर्वोक्त अर्थों में च्वि प्रत्यय होवे जैसे। असमीपस्थं समीपस्थं भवति। समीपीभवति। अभ्याशीभवति। अन्तिकीभवति। सविधीभवति। इत्यादि। यहां प्रकृति से विकार का होना नहीं है इस कारण प्रत्यय की प्राप्ति नहीं है ॥ ८५८ ॥

विभाषा साति कार्त्स्न्ये ॥ ८५९ ॥ अ० ५ । ४ । ५२ ॥

यहां च्वि प्रत्यय को छोड़ के पूर्व सूत्र से सब पदों की अनुवृत्ति आती है। संपूर्वक पद धातु के कर्त्ता में वर्त्तमान प्रातिपदिकों से कृ भू और अस्ति धातु का योग हो तो अभूततद्भाव अर्थ में संपूर्णता विदित होवे तो साति प्रत्यय विकल्प करके हो जैसे। भस्मसाद्भवति काष्ठम्। भस्मसात्करोति। भस्मसात्स्यात्। भस्मीभवति। भस्मीस्यात्। उदकसाद्भवति लवणम्। उदकीभवति लवणम्। इत्यादि। प्रकृति संपूर्ण विकाररूप होजावे। यह सूत्र च्वि प्रत्यय का अपवाद और

यहां प्रधानविभाषा है। पक्ष में त्विड प्रत्यय भी होजाता है। यहां संपूर्णतायहण इसलिये है कि। एकदेशेन पटः शुक्लो भवति। यहां प्रत्यय न होवे ॥ ८५९ ॥

देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्यो-र्बहुलम् ॥ ८६० ॥ अ० ५ । ४ । ५६ ॥

यहां से साति प्रत्यय निवृत्त हुआ और त्रा प्रत्यय की अनुवृत्ति आती है द्वितीया और सप्तमीसमर्थ देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु, और मर्त्य प्रातिपदिकों से बहुल करके स्वार्थ में त्रा प्रत्यय होवे जैसे। देवान् सत्करोति। देवत्रा सत्करोति। देवेषु वसति। देवत्रा वसति। मनुष्यान् गच्छति-मनुष्यत्रा गच्छति। मनुष्येषु वसति। मनुष्यत्रा वसति। पुरुषं ध्यायति--पुरुषत्रा ध्यायति। पुरून् गृह्णाति। पुरुत्रा गृह्णाति। पुरुषु वसति। पुरुत्रा वसति। मर्त्यान् मर्त्येषु वा मर्त्यत्रा। इत्यादि यहां बहुल शब्द के ग्रहण से अनुक्त शब्दों से भी त्रा प्रत्यय होजावे जैसे। बहुत्रा जीवतो मनः। इत्यादि ॥ ८६० ॥

अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्द्धादनितौ डाच्॥८६१॥अ०५।४।५७॥

यहां कृ भू और अस्ति धातुओं के योग की अनुवृत्ति आती है जिस ध्वनि में अकारादि वर्ण पृथक् २ स्पष्ट नहीं जाने जाते उस को अव्यक्त शब्द कहते हैं। उसी शब्द के अनुसार जो जनाया जावे कि वह अव्यक्त शब्द ऐसा हुआ उस को अव्यक्तानुकरण कहते हैं। इति शब्द जिस से परे न हो और जिस के एक अर्द्धभाग में दो अच् हों ऐसे अव्यक्तानुकरण प्रातिपदिक से कृ भू और अस धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे जैसे। पटपटा करोति। पटपटा भवति। पटपटा स्यात्। दमदमा करोति। दमदमा भवति। दमदमा स्यात्। खलखला करोति। खलखला भवति। खलखला स्यात्। इत्यादि यहां अव्यक्तानुकरण-ग्रहण इसलिये है कि। दृषत्करोति। दरत्करोति। इत्यादि में डाच् प्रत्यय नहो। द्व्यजवरार्द्धग्रहण इसलिये है कि। यत्करोति। यहां एकाच् में न हो, और अवर शब्द का ग्रहण इसलिये है कि, खरट खरट करोति। यहां अर्द्धभाग में तीन अच् हैं इस से डाच् प्रत्यय नहीं होता और इतिपरक का निषेध इसलिये है कि। पटिति करोति। यहां इति शब्द के परे डाच् प्रत्यय न हो (डाचि बहुलं द्वे भवतः) इस वार्त्तिक में विषयसप्तमी मान के डाच् प्रत्यय के होने की विवक्षा में ही द्विर्वचन हो जाता है पश्चात् डाच् प्रत्यय होता है। जो कदाचित् ऐसा न समझें तो जिस के अवर अर्द्धभाग में दो अच् हों यह कहना ही न बने। डाच् प्रत्यय में डकार का लोप होकर डित् मान के टिलोप और चकार अनुबन्ध से अन्तोदात्तस्वर होता है ॥ ८६१ ॥

कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्कृषौ ॥ ८६२ ॥ अ० ५ । ४ । ५८ ॥

यहां कृञ् धातु का ग्रहण भू और अस् धातु की निवृत्ति के लिये है। द्वितीय तृतीय शम्ब और बीज प्रातिपदिक से खेती अर्थ अभिधेय हो तो कृञ् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे जैसे। द्वितीया करोति। दूसरी वार खेत को जोतता है। तृतीया करोति। तीसरी वार जोतता है। शम्बा करोति। सीधा जोत के फिर तिरछा जोतता है। बीजा करोति। बीजबोने के साथ ही जोतता है। यहां कृषिग्रहण इसलिये है कि द्वितीयं करोति पादम्। यहां डाच् न होवे॥ ८६२॥

सङ्ख्यायाश्च गुणान्तायाः ॥ ८६३ ॥ अ० ५ । ४ । ५९ ॥

यहां कृञ् धातु और कृषि अर्थ दोनों की अनुवृत्ति चली आती है। गुण शब्द जिस के अन्त में हो ऐसे संख्यावाची प्रातिपदिक से कृषि अर्थ में, कृ धातु के योग में डाच् प्रत्यय हो जैसे। द्विगुणं विलेखनं क्षेत्रस्य करोति–द्विगुणा करोति क्षेत्रम्। त्रिगुणा करोति। इत्यादि। यहां कृषिग्रहण इसलिये है कि। द्विगुणां करोति रज्जुम्। यहां डाच् प्रत्यय न हो। पूर्व सूत्र में द्वितीय तृतीय शब्दों के साथ इस सूत्र का शब्दभेद ही प्राप्त होता है अर्थभेद नहीं॥ ८६३॥

समयाच्च यापनायाम् ॥ ८६४ ॥ अ० ५ । ४ । ६० ॥

यहां कृषि की अनुवृत्ति नहीं आती परन्तु कृञ् धातु की चली आती है, करने योग्य कर्मों के अवसर मिलने को समय कहते हैं, उस समय के यापना (अतिक्रमण) अर्थ में समय शब्द से कृञ् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होवे जैसे। समया करोति। कालक्षेप करता है। यहां यापनाग्रहण इसलिये है कि। समयं करोति मेघः। यहां डाच् प्रत्यय न हो॥ ८६४॥

मद्रात्परिवापणे ॥ ८६५ ॥ अ० ५ । ४ । ६७ ॥

मङ्गलवाची मद्र शब्द से परिवापण (मुण्डन) अर्थ में कृञ् धातु का योग होवे तो डाच् प्रत्यय हो। मद्रं मुण्डनं करोति। मद्रा करोति। यहां परिवापण इसलिये कहा है कि। मद्रं करोति। यहां डाच् प्रत्यय न होवे॥ ८६५॥

वा०–भद्राच्च ॥ ८६६ ॥

भद्र शब्द से जो परिवापण अर्थ में कृञ् धातु का योग हो तो डाच् प्रत्यय हो जैसे। भद्रा करोति नापितः कुमारम्। यहां जो परिवापण अर्थ न होवे। भद्रं करोति। यहां प्रयोग होता है॥ ८६६॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः॥

नस्तद्धिते ॥ ८६७ ॥ अ० ६ । ४ । १४४ ॥

तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हो तो नकारान्त भसंज्ञक अङ्ग के टिभाग का लोप होवे जैसे । अग्निशर्मणोऽपत्यमाग्निशर्मिः । औडुलोमिः । इत्यादि । यहां अग्निशर्मन् आदि शब्दों का बाह्वादि गण में पाठ होने से इञ् प्रत्यय हुआ है । यहां नान्त का ग्रहण इसलिये है कि (सात्वतः) यहां तकारान्त के टिभाग का लोप न होवे । और तद्धितग्रहण इसलिये है कि । शर्मणा । शर्मणि । इत्यादि प्रयोगों में लोप न हो ॥ ८६७ ॥

वा०—नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापिकौथुमितैतिलिजाजलिलाङ्गलिशिलालिशिखण्डिसूकरसद्मसुपर्वणामुपसङ्ख्यानम् ॥ ८६८ ॥

यहां इनन्त और अन्नन्त शब्दों में आगामी सूत्रों से प्रकृतिभाव प्राप्त है उस का पुरस्तात् अपवाद यह वार्त्तिक है । तद्धित प्रत्ययों के परे सब्रह्मचारिन् आदि भसंज्ञक नकारान्त प्रातिपदिकों के टिभाग का लोप होवे जैसे । सब्रह्मचारिण इमे छात्राः सब्रह्मचाराः । यहां सम्बन्धसामान्य में शैषिक अण् प्रत्यय हुआ है । पीठसर्पिण इमे छात्राः पैठसर्पाः । यहां भी पूर्व के समान अण् । कलापिना प्रोक्तमधीयते—कालापाः । यहां (कलापिनोऽण्) इस सूत्र से प्रोक्त अर्थ में अण् । कौथुमिना प्रोक्तमधीयते—कौथुमाः । यहां भी पूर्ववत् अण् जानो । तैतिलिनामकं ग्रन्थमधीयते विद्वांसः—तैतिलाः । जाजलाः । लाङ्गलाः । शैलालाः । शैखण्डाः । सूकरसद्मना प्रोक्तमधीयते सौकरसद्माः । सुपर्वणा प्रोक्तमधीयते सौपर्वाः । यहां तैतिलि आदि ग्रन्थवाची शब्दों से शैषिक प्रोक्त अर्थ में वृद्ध होने से छ प्रत्यय प्राप्त है इसलिये अधीत वेद अर्थ में अण् समझना चाहिये । और सूकरसद्मन् तथा सुपर्वन् शब्दों से वृद्धसंज्ञा के न होने से प्रोक्तार्थ अण् प्रत्यय होता है ॥ ८६८ ॥

वा०—चर्मणः कोश उपसङ्ख्यानम् ॥ ८६९ ॥

कोश (तलवार का घर) अर्थ हो तो तद्धित संज्ञक प्रत्ययों के परे होने चर्मन् शब्द के टिभाग का लोप होवे जैसे । चर्मणो विकारः कोशः । चार्मः कोशः । जहां कोश अर्थ न हो वहां । चार्मणः । प्रयोग होगा ॥ ८६९ ॥

वा०—अश्मनो विकार उपसङ्ख्यानम् ॥ ८७० ॥

विकार अर्थ में तद्धित प्रत्यय परे हो तो पाषाणवाची अश्मन् शब्द के टिभाग का लोप हो जैसे। अश्मनो विकार आश्मः। जहां विकार अर्थ न हो वहां। आश्मनः। ऐसा ही रहे। ८७०।

वा०-शुनः सङ्कोच उपसङ्ख्यानम् ॥ ८७१ ॥

कुत्ते के वाची श्वन् शब्द के टिभाग का लोप हो संकोच अर्थ अभिधेय रहे तो। सङ्कुचितः श्वा शौवः। इस श्वन् शब्द का द्वारादिगण में पाठ होने से वकार से पूर्व ऐच् का आगम हो जाता है। और संकोच अर्थ से अन्यत्र। शौवनः। ऐसा ही प्रयोग होगा। ८७१।

वा०— अव्ययानां च सायम्प्रातिकाद्यर्थम् ॥ ८७२ ॥

तद्धितसंज्ञक प्रत्ययों के परे सायम्प्रातिक आदि शब्दों के सिद्ध होने के लिये भसंज्ञक अव्यय शब्दों के टिभाग का भी लोप कहना चाहिये जैसे। सायम्प्रातर्भवः सायम्प्रातिकः। पौनःपुनिकः। इत्यादि, यहां कालसंज्ञक अव्ययों से ठञ् होता है। शाश्वतिक शब्द में निपातन मान के टिलोप नहीं होता (येषां च विरोधः शाश्वतिकः) जिन अव्यय शब्दों में अविहित टिलोप दीखता है वहां वैसे ही अव्ययों में समझना चाहिये क्योंकि। शाश्वतम्। इत्यादि में इस लिये अव्यय और ठञ् प्रत्यय दोनों ही नहीं इस से लोप नहीं होता। ८७२।

अह्नष्टखोरेव ॥ ८७३ ॥ अ० ६ । ४ । १४५ ॥

यह सूत्र नियमार्थ है। ट और ख इन्हीं दोनों प्रत्ययों के परे अहन् शब्द के टिभाग का लोप होवे अन्यत्र प्रकृतिभाव हो जावे। जैसे। द्वे अहनी समाहृते, द्व्यहः। त्र्यहः। यहां समासान्त टच् प्रत्यय हुआ है। द्वे अहनी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा, द्व्यहीनः। त्र्यहीनः। अह्नां समूहोऽहीनः क्रतुः। यहां टिलोप का नियम इसलिये है कि अह्ना निर्वृत्तमाह्निकम्। यहां नियम के होने से टिलोप न होवे। ८७३।

ओर्गुणः ॥ ८७४ ॥ अ० ६ । ४ । १४६ ॥

तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हो तो उवर्णान्त भसंज्ञक प्रातिपदिकों को गुण होवे जैसे। बभ्रोर्गोत्रापत्यं बाभ्रव्यः। माण्डव्यः। [illegible] पिचव्यः कार्पासः। [illegible]। औपगवः। माधवः। इत्यादि। इत्यादि तद्धितप्रकरण में अनेक गुण [illegible]

ावें वो रे यहां कहें समझने चाहिये । और इस सूत्र को इसी ग्रन्थ के ११ ह में भी लिख चुके हैं परन्तु विशेष व्याख्यानार्थ यहां लिखना आवश्यक समझा गया । ८७४ ॥

ढे लोपोऽकद्र्वाः ॥ ८७५ ॥ अ० ६ । ४ । १४७ ॥

तद्धितसंज्ञक ढ प्रत्यय परे हो तो कद्रू शब्द को छोड़ के भसंज्ञक प्रातिप-दिक के उवर्ण का लोप होवे जैसे । कमण्डल्वा अपत्यम् । कामण्डलेयः । शैति-बाहेयः । जाम्बेयः । माद्रबाहेयः । इत्यादि, यहां कद्रू शब्द का निषेध इसलिये है कि (काद्रवेय सर्पाः) यहां लोप न हो किन्तु पूर्व सूत्र से गुण हो जावे । और यह लोप गुण का ही अपवाद है । ८७५ ॥

यस्येति च ॥ ८७६ ॥ अ० ६ । ४ । १४८ ॥

यहां तद्धित की अनुवृत्ति के लिये चकार पढ़ा है । तद्धितसंज्ञक और और ईकार प्रत्यय परे हों तो इवर्णान्त अवर्णान्त भसंज्ञक प्रातिपदिक का लोप हो जैसे । इवर्णान्त का लोप ईकार के परे । दक्षस्यापत्यं स्त्री दाक्षी । प्लाक्षी । इत्यादि, यहां जो सवर्णदीर्घ एकादेश मान लेवें तो । ङ दाक्षि । यहां सवर्णदीर्घ एकादेश वर्णकार्य से संवुद्धि में ह्रस्व होना अङ्गकार्य बलवान् होने से प्रथम हो जाता है फिर जो लोप न करें तो पीछे सवर्णदीर्घ एकादेश हो-कर संवुद्धि में भी दीर्घ ईकार बना रहे । इसलिये ईकार प्रत्यय के परे इवर्णान्त का लोप कहा है । इवर्णान्त का लोप तद्धितप्रत्ययों के परे । दुल्या अपत्यम् । दौलेयः । बलि । बालेयः । अत्रि । आत्रेयः । इत्यादि, अवर्णान्त का लोप ईकार प्रत्यय के परे । कुमारी । किशोरी । गौरी । जानपदी । इत्यादि तद्धितप्रत्यय के परे । दाक्षिः । प्लाक्षिः । बलाकाया अपत्यम् । बालाकिः । सुमित्राया अपत्यम् । सौमित्रिः । इत्यादि यहां सर्वत्र लोप को आदेश मान के अन्त्य अल् इवर्ण और अवर्ण का लोप होता है । यह भी सूत्र (ओर्गुणः) इसी के समीप पूर्व लिख चुके हैं परन्तु उसी का सा लिखना इसका भी जानो ॥ ८७६ ॥

वा०-यस्येत्यादौ श्यां प्रतिषेधः ॥ ८७७ ॥

(यस्येति च) इत्यादि सूत्रों में औविभक्ति के स्थानमें जो शी आदेश होता है उस ईकार के परे इवर्ण अवर्ण के लोप का निषेध करना चाहिये जैसे । काण्डे । शृङ्गे । यहां जब नपुंसक काण्ड और शृङ्ग शब्दों से परे औ के स्थान में शी हो जाता है तब अवर्ण का लोप प्राप्त है सो न हो । और कुड्ये । सौर्ये । यहां भी

पूर्व के समान अवर्ण का लोप और आगामी सूत्र से उपधासंज्ञक यकार का लोप प्राप्त है सो न होवे जैसे । त्रियौ । त्रियः । भ्रुवौ । भ्रुवः । इत्यादि में इयङ्, उवङ् आदेश होते हैं वैसे ही । वत्सान् प्रीणातीति वत्सप्रीः । लेखाभ्रूः । तस्या अपत्यम् । वात्सप्रेयः । लैखाभ्रेयः । इत्यादि में भी इयङ् उवङ् आदेश प्राप्त हैं परन्तु परविप्रतिषेध मान के इवर्ण उवर्ण का लोप हो जाता है । ८७७ ।

सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः ॥८७८॥ अ० ६।४।१४९॥

तद्धितसंज्ञक और ईकार प्रत्यय परे हों तो सूर्य, तिष्य, अगस्त्य, और मत्स्य शब्दों के उपधाभू भसंज्ञक यकार का लोप हो जावे । और अवर्ण का लोप तो पूर्वसूत्र से हो ही जाता है जैसे । सूर्येण एकदिक् सौरी बलाका । यहां उपधा-ग्रहण ज्ञापक से अवर्ण का लोप असिद्ध नहीं समझा जाता । तिष्येण युक्तः कालः, तैषमहः । तैषी रात्रि । अगस्त्यस्यापत्यं कन्या इस विग्रह में ऋषिवाची अगस्त्य शब्द से अण् प्रत्यय हो जाता है । आगस्ती । आगस्तीयः । मत्स्य शब्द के गौरादि गण में होने से ङीप् हो जाता है । मत्सी । उपधाग्रहण इसलिये है कि । सूर्यचरी । यहां सूरी शब्द से भूतपूर्व अर्थ में चरट् प्रत्यय के परे पुम्वद्भाव हुआ है । सामिवत् मान के यकार का लोप प्राप्त है उपधा के न होने से नहीं होता इत्यादि ॥८७८॥

वा०—मत्स्यस्य ङ्याम् ॥ ८७९ ॥

ङीप् प्रत्यय के परे ही मत्स्य शब्द के उपधा यकार का लोप हो अन्यत्र नहीं जैसे । मत्सी । नियम होने से । मत्स्यस्य विकारो मात्स्यं मांसम् । यहां न हो । ८७९ ।

वा०—सूर्यागस्त्ययोश्छे च ॥ ८८० ॥

छ और ङीप् ङीप् प्रत्यय के परे हो सूर्य और अगस्त्य शब्दों के यकार का लोप हो जैसे । सूरीयः । सौरी । आगस्तीयः । आगस्ती । नियम होने से । सूर्यो देवताऽस्य सौर्यं चरुः । अगस्त्यस्य गोत्रापत्यमागस्त्यः । यहां न होवे । ८८० ।

वा०—तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि ॥ ८८१ ॥

यहां स्वरूपग्रहण परिभाषा का आश्रय इसलिये नहीं होता जिसलिये लिङ्ग पढ़ा है । यदि स्वरूपग्रहण के न होने में वार्त्तिक ज्ञापक है तद्धितसंज्ञक और ईकार प्रत्यय परे हो तो तिष्य और पुष्य शब्दों के उपधा यकार का लोप होवे अन्य पर्यायवाचियों का नहीं जैसे । तिष्यनक्षत्रेण युक्तः कालः तैषः । पौष० । नियम इसलिये है कि । सैध्यः । यहां लोप न हो । ८८१ ।

तसि कादिलोपश्चायुदात्तश्च ॥ ८८२ ॥

अन्तिक शब्द से तसि प्रत्यय परे हो तो कादि (स्वरसहित ककार) का लोप और आद्युदात्तस्वर होवे जैसे। अन्तितो न दूरात्। तसि प्रत्यय को प्रत्ययस्वर होने से अन्तोदात्त होता इसलिये आद्युदात्त कहा है। और अन्तिश शब्द से अपादान कारक में असि प्रत्यय होता है ॥ ८८२ ॥

वा०–तमे तादेश्च ॥ ८८३ ॥

यहां चकारग्रहण से कादि की भी अनुवृत्ति आती है। तम प्रत्यय परे हो तो अन्तिक शब्द तादि (तिक) भाग तथा कादि (क) मात्र का लोप होवे जैसे। अतिशयेनान्तिकम्, । अन्तमः। अन्तिमः। अग्ने त्वन्नो अन्तमः। अन्तितमे पवरोहति। यद्यपि इस वार्त्तिक में छन्दोग्रहण नहीं किया तथापि वैदिक प्रयोगों में हो बहुधा इस की प्रवृत्ति दीख पड़ती है। इस से पूर्व वार्त्तिक में जो तसि प्रत्यय का ग्रहण है उस की महाभाष्यकारने उपेक्षा की है कि। अन्तिके सीदति, अन्तिषत्। इत्यादि प्रयोगों में भी कादिलोप हो जावे ॥ ८८३ ॥

हलस्तद्धितस्य ॥ ८८४ ॥ अ० ६ । ४ । १५० ॥

हल् से परे जो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय का उपधा यकार उस का लोप होवे ईकार प्रत्यय परे हो तो जैसे। गर्गस्यापत्यं कन्या गार्गी। वात्सी। गाकली। इत्यादि, यहां हल्ग्रहण इसलिये है कि। वैदस्य स्त्री वैदी। यहां भी यकार का लोप न हो ॥ ८८४ ॥

आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति ॥ ८८५ ॥ अ० ६ । ४ । १५१ ॥

आकार जिस के आदि में न हो ऐसा तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हो तो हल् से परे अपत्याधिकारस्थ प्रत्यय के उपधा यकार का लोप होवे। और इस सूत्र में फिर तद्धितग्रहण से यह भी समझना चाहिये कि ईकार प्रत्यय परे हो तो अपत्यसंज्ञक से भिन्न यकार का भी लोप हो जाता है जैसे। गर्गाणां समूहो गार्गकम्। वात्सकम्। सोमो देवताऽस्य सौम्यं हविः। सौमी इष्टिः। आपत्य-ग्रहण इसलिये है कि। सांकाश्यकः। काम्पिल्यकः। यहां लोप न हो। आकारादि का निषेध इसलिये है कि। गार्ग्यायणः। वात्स्यायनः। यहां लोप न हो और हल् से परे इसलिये कहा है कि। कारिकेयस्य पुत्रश्च कारिकेयिः। यहां भी लोप न होवे ॥ ८८५ ॥

क्यच्व्योश्च ॥ ८८६ ॥ अ० ६ । ४ । १५२ ॥

क्य और च्वि प्रत्यय परे हों तो भी हल् से परे अपत्यसंज्ञक यकार का लोप होवे जैसे। गार्ग्य इवाचरति, गार्गीयति। वात्स्य इवाचरति, [illegible]।

शाकलीयति । गार्गीयते । वात्सीयते । शाकलीयते । इत्यादि, च्वि प्रत्यय के परे गार्गीभूतः । वात्सीभूतः । शाकलीभूतः । इत्यादि, यहां अपत्यसंज्ञक यकार का ग्रहण इसलिये है कि । सांकाश्यायते । सांकाश्योभूतः । यहां लोप न होवे और हल् से परे इसलिये कहा है कि । कारिकेयीयति । कारिकेयीभूतः यहां भी यकार का लोप न होवे ॥ ८८६ ॥

बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् ॥ ८८७ ॥ अ० ६ । ४ । १५३ ।

(नडादीनां कुक् च) इस सूत्र पर नडादिगण के अन्तर्गत बिल्वादि शब्द पढ़े हैं । उन को कुक् का आगम होने से बिल्वक आदि होते हैं । बिल्वक आदि शब्दों से परे छ प्रत्यय का लुक् हो तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हो तो जैसे बिल्वा अस्यां सन्तीति, बिल्वकीया, तस्यां भवाः, बैल्वकाः । वेणुकीयाः वैणुकाः । वेत्रकीयाः । वैत्रकाः । इत्यादि, यहां छ प्रत्यय का ग्रहण इसलिये है कि कुक् आगम का लुक् न होवे अर्थात् (सन्नियोगशिष्टानां०) इस परिभाषा से कुगागम के सहित लुक् प्राप्त है सो न हो । और लोप की अनुवृत्ति चली आती है फिर लुक्ग्रहण इसलिये किया है कि संपूर्ण प्रत्यय का लोप हो जावे । लुक् न कहते तो अन्त्य अल् के स्थान में होता ॥ ८८७ ॥

तुरिष्ठेमेयस्सु ॥ ८८८ ॥ अ० ६ । ४ । १५४ ॥

पूर्व से यहां लुक् की अनुवृत्ति नहीं आती किन्तु लोप की आती है । लुक् होने से अङ्गकार्य्य गुण का निषेध प्राप्त है । जो अन्त्य का लोप होवे तो सूत्र ही व्यर्थ होवै क्योंकि टिभाग का लोप तो अगले सूत्र से ही हो जाता । इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् ये तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों तो तृच् तृन् प्रत्ययान्त शब्दों का लुक् होवे । प्रत्ययमात्र का लुक् कहा है इसलिये सब का ही जाता है जैसे । अतिशयेन कर्त्ता, करिष्ठः । भृशं विजेता, विजयिष्ठः । वोढा, वहिष्ठो प्रभः । दोहीयसी धेनुः । इत्यादि, यहां इमनिच् ग्रहण उत्तरार्थ है ॥ ८८८ ॥

टेः ॥ ८८९ ॥ अ० ६ । ४ । १५५ ॥

इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो भ संज्ञक शब्दों के टिभाग का लोप होवे जैसे । अतिशयेन पटुः, पटिष्ठः । लघिष्ठः । पटीयान् । लघीयान् । पटिमा । लघिमा । इत्यादि, यह लोप गुण का अपवाद उवर्णान्त शब्दों में समझना चाहिये । अर्थात् गुण की प्राप्ति में लोपविधान किया है ॥ ८८९ ॥

वा०—णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य पुम्वद्भावरभावटिलोपयणादिप-

णिच् प्रत्यय के परे प्रसंज्ञक प्रातिपदिकमात्र को इष्ठवत् कार्य्य होवे। प्रयोजन यह है कि। पुंवद्भाव, रभाव, टिलोप, यणादि पर, पादि आदेश, जैसे। विन्मतोर्लुक्, और कन् प्रत्यय, ये विधि होने के लिये यह वार्त्तिक कहा है जैसे। पुंवद्भाव। एनीमाचष्टे, एतयति। श्येनीमाचष्टे, श्येतयति। इष्ठन् प्रत्यय के परे पुंवद्भाव कहा है वैसे ही यहां णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है। इसी प्रकार सब कार्य्य जो इष्ठन् के परे होते हैं वे णिच् प्रत्यय के परे भी समझना चाहिये। रभाव। पृथुमाचष्टे, प्रथयति। म्रदयति। यहां (र ऋतो०) इस आगामी सूत्र से इष्ठन् के परे ऋकार को र आदेश कहा है सो णिच् के परे भी होजाता है। टिलोप। पटुमाचष्टे, पटयति। लघुमाचष्टे, लघयति। यहां इसी (टेः) सूत्र से जो इष्ठन् प्रत्यय के परे टिलोप कहा है वह णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है। यणादि-पर। स्थूलमाचष्टे, स्थवयति। दूरमाचष्टे, दवयति। इत्यादि यहां अगले सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे यण् को आदि ले परभाग का लोप और पूर्व को गुणादेश कहा है सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जाता है। प्रादि। अगले सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे प्रिय आदि शब्दों को (प्र) आदि आदेश कहे हैं सो णिच्प्रत्यय के परे भी हो जावें जैसे। प्रियमाचष्टे, प्रापयति। स्थिरमाचष्टे स्थापयति। यहां प्रिय और स्थिर शब्दों को प्र, स्थ, आदेश होकर (अर्त्तिह्री०) सूत्र में आत् ग्रहण के होने से प्र, स्थ, को वृद्धि हो कर पुगागम हो जाता है (विन्मतोर्लुक्) इस सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय के परे विन् और मतुप् प्रत्ययों का लुक् कहा है। सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावे जैसे। स्रग्विणमाचष्टे, स्रजयति। वसुमन्तमाचष्टे वसयति। यहां वसु शब्द के उकार का भी लोप हो जाता है और (कन्विधि) युव और अल्प शब्दों को इष्ठन् प्रत्यय के परे कन् आदेश कह चुके हैं। सो णिच् प्रत्यय के परे भी हो जावे जैसे। युवानमाचष्टे। अल्पमाचष्टे। कनयति। यवयति। अल्पयति। इत्यादि, इस वार्त्तिक के उदाहरणों को गिनती नहीं करते कि इतने ही स्थलों में इस का प्रयोजन है किन्तु उदाहरणमात्र दिये हैं और भी इस के बहुत प्रयोजन समझने चाहिये॥ ८९०॥

स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ॥ ८९१ ॥ अ० ६ । ४ । १५६ ॥

इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो स्थूल, दूर, युव, ह्रस्व क्षिप्र और क्षुद्र शब्दों के यण् को आदि ले के परभाग का लोप और पूर्व को गुणादेश होवे जैसे (अतिशयेन स्थूलः) स्थविष्ठः। स्थवीयान्। (अयमनयोरतिशयेन दूरं) दविष्ठम्। दवीयः। यहां स्थूल शब्द में (ल) और दूर में (र) मात्र का लोप होजाता और पूर्व

उकार को गुण होकर अवादेश होता है । युवन् । अत्यन्तो युवा, यवीयान् । यविष्ठः । इन स्थूल आदि तीन शब्दों का पृथ्वादि गण में पाठ न होने से इमनिच् प्रत्यय नहीं होता । क्षुद्र । क्षोदिष्ठः । क्षोदीयान् । क्षोदिमा । क्षिप्र । क्षेपिष्ठः । क्षेपीयान् । क्षेपिमा । क्षोदिष्ठः । क्षोदीयान् । क्षोदिमा । इन क्षुद्र आदि तीन शब्दों का पृथ्वादि गण में पाठ होने से इमनिच् होजाता है । यहां परग्रहण इसलिये किया है कि यण् को आदि ले के पूर्वभाग का लोप न हो जावे ॥ ८८१ ॥

प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः ॥ ८९२ ॥ अ० ६ । ४ । १५७ ॥

प्रिय, स्थिर, स्फिर, उरु, बहुल, गुरु, वृद्ध, तृप्र, दीर्घ, और वृन्दारक शब्द के स्थान में प्र, स्थ, स्फ, वर्, बंहि, गर्, वर्षि, त्रप्, द्राघि, और वृन्द आदेश यथासंख्य करके होवें, इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो जैसे प्रिय–प्र । अतिशयेन प्रियः । प्रेष्ठः । प्रेयान् । प्रियस्य भावः प्रेमा । स्थिर–स्थ स्थेष्ठः । स्थेयान् । स्फिर–स्फ । स्फेष्ठः । स्फेयान् । उरु–वर् । वरिष्ठः । वरीयान् वरिमा । बहुल–बंहि । बंहिष्ठः । बंहीयान् । बंहिमा । गुरु–गर् । गरिष्ठः गरीयान् । गरिमा । वृद्ध–वर्षि । वर्षिष्ठः । वर्षीयान् । तृप्र–त्रप् । त्रपिष्ठः । त्रपीयान् । दीर्घ–द्राघि । द्राघिष्ठः । द्राघीयान् । द्राघिमा । वृन्दारक–वृन्द । वृन्दिष्ठः । वृन्दीयान् । प्रिय उरु गुरु बहुल और दीर्घ शब्द पृथ्वादि गण में पढ़े हैं इस कारण उन से इमनिच् प्रत्यय होता है औरों से नहीं होता । इसीलिये उन से इमनिच् प्रत्यय के उदाहरण भी नहीं दिये ॥ ८९२ ॥

बहोर्लोपो भू च बहोः ॥ ८९३ ॥ अ० ६ । ४ । १५८ ॥

बहु शब्द से परे जो इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय उन का लोप हो और बहु शब्द को भू आदेश होवे (भू) अनेकाल् आदेश होने से सब के स्थान में होजाता है । और (आदेः परस्य) इस परिभाषा सूत्र से पञ्चमीनिर्दिष्ट बहु शब्द से उत्तर को कहा लोपरूप आदेश आदि अल् के स्थान में होता है जैसे । अतिशयेन बहुः, भूयान् । भूयांसौ । भूयांसः । बहोर्भावः । भूमा । बहु शब्द पृथ्वादि गण में पढ़ा है । और इस सूत्र में बहु शब्द का दूसरी बार ग्रहण इस लिये है कि प्रत्ययों के स्थान में भू आदेश न हो जावे । इष्ठन् प्रत्यय में विशेष यह है कि ॥ ८९३ ॥

इष्ठस्य यिट् च ॥ ८९४ ॥ अ० ६ । ४ । १५९ ॥

बहु शब्द से परे जो इष्ठन् प्रत्यय उस को यिट् का आगम और बहु शब्द को भू आदेश भी होवे जैसे । अतिशयेन बहुः, भूयिष्ठः ॥ (यिट्) में से इट् मात्र का लोप हो जाता है । और यह आगम लोप का अपवाद है ॥ ८९४ ॥

ज्यादादीयसः ॥ ८९५ ॥ अ० ६ । ४ । १६० ॥

प्रशस्य और वृद्ध शब्द को जो ज्य आदेश कह चुके हैं उस से परे ईयसुन् प्रत्यय के ईकार को आकारादेश होवे जैसे। अतिशयेन प्रशस्यो वृद्धो वा ज्यायान्। लोप की अनुवृत्ति यहां चली आती तो आकारादेश कहने नहीं पड़ता फिर बीच में यिडागम का व्यवधान होने से नहीं आसकती ॥ ८९५ ॥

र ऋतो हलादेर्लघोः ॥ ८९६ ॥ अ० ६ । ४ । १६१ ॥

इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो हल् जिस के आदि में हो ऐसे लघुसंज्ञक ह्रस्व ऋकार के स्थान में र आदेश हो जैसे। (अतिशयेन पृथुः) प्रथिष्ठः। प्रथीयान्। पृथोर्भावः। प्रथिमा। म्रदिष्ठः। म्रदीयान्। म्रदिमा। इत्यादि। यहां ऋकार का ग्रहण इसलिये है कि। पटिष्ठः। पटीयान्। पटिमा। यहां र आदेश न हो। हल् आदि में इसलिये कहा है कि। अतिशयेन, ऋजुः, ऋजिष्ठः। ऋजीयान्। ऋजिमा। यहां न हो और लघुसंज्ञक विशेषण इसलिये दिया है कि। कृष्णिष्ठः। कृष्णीयान्। कृष्णिमा। यहां गुरुसंज्ञक ऋकार को र आदेश न होवे ॥ ८९६ ॥

वा०—पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामिति वक्तव्यम् ॥ ८९७ ॥

इस वार्त्तिक से परिगणन करते हैं कि। पृथु, मृदु, भृश, कृश, दृढ़, और परिवृढ शब्दों के ऋकार को ही र आदेश हो दूसरों को नहीं। इस नियम के होने से। कृतमाचष्टे, कृतयति। मातरमाचष्टे, मातयति। भ्रातयति। इत्यादि में ऋ के स्थान में र आदेश नहीं होता ॥ ८९७ ॥

विभाषर्जोश्छन्दसि ॥ ८९८ ॥ अ० ६ । ४ । १६२ ॥

यहां अप्राप्तविभाषा है क्योंकि ऋजु शब्द के ऋकार को किसी से र आदेश प्राप्त नहीं है। इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो वेदविषय में ऋजु शब्द के ऋकार को विकल्प करके र आदेश होवे जैसे। अतिशयेन ऋजुः, रजिष्ठः। ऋजिष्ठो वा पन्थाः। रजीयान्। ऋजीयान्। ऋजुमाचष्टे, रजयति। इत्यादि ॥ ८९८ ॥

प्रकृत्यैकाच् ॥ ८९९ ॥ अ० ६ । ४ । १६३ ॥

इष्ठन् इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो [illegible] एकाच् [illegible] यह प्रकृति करके रहें जैसे। अतिशयेन स्रग्वी, स्रजिष्ठः। स्रजीयान्। [illegible] माचष्टे स्रजयति। अतिशयेन स्रुग्वान्, स्रुचिष्ठः। स्रुचीयान्। [illegible] स्रुचयति। यहां [illegible] [illegible]

ब्रह्मण्यः । इत्यादि । यहां भाव कर्म अर्थों का निषेध इसलिये है कि । राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम् । यह राजन् शब्द पुरोहितादिगण में पढ़ा है इस कारण इस से यक् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८०५ ॥

आत्माध्वानौ खे ॥ ९०६ ॥ अ० ६ । ४ । १६९ ॥

तद्धितसंज्ञक ख प्रत्यय परे हो तो आत्मन् और अध्वन् शब्द प्रकृति करके रह जावें जैसे । आत्मनीनः । अध्वानमलङ्गामी, अध्वनीनः । यहां ख प्रत्यय का ग्रहण इसलिये है कि । प्रत्यात्मम् । प्राध्वम् । यहां प्रकृतिभाव न होवे । यहां आत्मन् अन्नन्त शब्द से समासान्त टच् और उपसर्ग से परे अध्वन् शब्द से अच् प्रत्यय हुआ है ॥ ८०६ ॥

न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः ॥ ९०७ ॥ अ० ६ । ४ । १७० ॥

अपत्याधिकार मे विहित अण् प्रत्यय परे हो तो वर्मन् शब्द को छोड़ के (म) जिस के पूर्व हो ऐसा भसंज्ञक अन्नन्त शब्द प्रकृति करके न रहे किन्तु टिलोप हो जावे जैसे । सुषाम्णोऽपत्यं, सौषामः । चान्द्रसामः । सुदाम्नोऽपत्यं सौदामः । इत्यादि । यहां मकारपूर्व का ग्रहण इसलिये है कि । सौत्वनः । यहां टिलोप न हो अपत्य अर्थ इसलिये कहा है कि । चर्मणा परिवृतो रथश्चार्मणः । यहां प्रकृतिभाव हो जावे । और वर्मन् शब्द का निषेध इसलिये किया है कि । भूपालवर्मणोऽपत्यं भौपालवर्मणः । यहां भी टिलोप न हो जावे ॥ ८०७ ॥

वा०—मपूर्वात् प्रतिषेधे वा हितनाम्नः ९०८ ॥

पूर्व सूत्र में मकार जिस के पूर्व हो उस को प्रकृतिभाव का निषेध किया है सो हितनामन् शब्द को विकल्प करके प्रकृतिभाव हो जैसे । हितनाम्नोऽपत्यं हैतनामः । हैतनाम्नः । यहां पक्ष में टिलोप हो जाता है ॥ ८०८ ॥

ब्राह्मोऽजातौ ॥ ९०९ ॥ अ० ६ । ४ । १७१ ॥

इस सूत्र का अर्थ महाभाष्यकार ने ऐसा किया है कि इस सूत्र का योग-विभाग करके दो वाक्यार्थ समझने चाहिये । ब्राह्म शब्द सामान्य अर्थ में अण् प्रत्ययान्त निपातन किया है जैसे । ब्राह्मो गर्भः । ब्राह्ममस्त्रम् । ब्राह्मं हविः । ब्राह्मो नारदः । इत्यादि, यहां सर्वत्र ब्रह्मन् शब्द का टिलोप निपातन से हुआ है । और अपत्यसंज्ञक अण्प्रत्यय परे हो तो जाति अर्थ में ब्रह्मन् शब्द के टिभाग का लोप न होवे जैसे । ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणः । यहां अपत्यग्रहण इसलिये है कि । ब्राह्मी ओषधिः । यहां निषेध न लगे ॥ ८०९ ॥

कार्मस्ताच्छील्ये ॥ ९१० ॥ अ० ६ । ४ । १७२ ॥

ताच्छील्य अर्थ में ण प्रत्यय परे हो तो कर्मन् शब्द का टिलोप निपातन से किया है जैसे। कर्मशीलः कार्मः। इस कर्मन् शब्द का छत्रादि गण में पाठ होने से शील अर्थ में ण प्रत्यय होता है। यह सूत्र नियमार्थ है कि। कर्मण इदं कार्मणम्। इत्यादि में टिलोप न होवे ॥ ८१० ॥

औक्षमनपत्ये ॥ ९११ ॥ अ० ६ । ४ । १७३ ॥

अपत्याधिकार को छोड़ के अन्य अर्थों में अण् प्रत्यय परे हो तो उक्षन् शब्द में टिलोप निपातन किया है जैसे। उक्ष्ण इदं औक्षम्। अपत्य का निषेध इस लिये है कि। उक्ष्णोऽपत्यमौक्ष्णः। यहां निषेध न होवे ॥ ८११ ॥

दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवासिनायनि-भ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि ॥ ९१२ ॥ अ० ६ । ४ । १७४ ॥

इस सूत्र में दाण्डिनायन, हास्तिनायन, आथर्वणिक, जैह्माशिनेय, वासिनायनि, भ्रौणहत्य, धैवत्य, सारव, ऐक्ष्वाक, मैत्रेय, और हिरण्मय। इन शब्दों में तद्धितप्रत्ययों के परे टिलोप आदि कार्य निपातन से माने हैं। दण्डिन् और हस्तिन् शब्द नडादि गण में पढ़े हैं इन से फक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन से किया है जैसे। दण्डिनो गोत्रापत्यं दाण्डिनायनः। हास्तिनायनः। अथर्वन् शब्द वसन्तादि गण में पढ़ा है। उपचारोपाधि मान के अथर्वा ऋषि के बनाये ग्रन्थ को भी अथर्वान् कहते हैं। उसके पढ़ने जानने अर्थों में ठक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन किया है जैसे। अथर्वाणमधीते वेत्ति वा आथर्वणिकः। जिह्माशिन् शब्द शुभ्रादि गण में पढ़ा है, उस से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव निपातन किया है जैसे। जिह्माशिनोऽपत्यं जैह्माशिनेयः। गोत्रसंज्ञारहित वृद्धसंज्ञक वासिन् शब्द से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय के परे टिलोप का निषेध निपातन किया है जैसे। वासिनोऽपत्यं, वासिनायनिः। भ्रूणहन् और धीवन् शब्दों से ष्यञ् प्रत्यय के परे इन के नकार को तकारादेश निपातन किया है जैसे। भ्रूणघ्नो भावः, भ्रौणहत्यम्। धीवनो भावो धैवत्यम्। भ्रूणहन् शब्द से ष्यञ् प्रत्यय के षित् होने से (हनस्तोऽचिण्णलोः) इस सूत्र से नकारादेश हो जाता फिर निपातन नियमार्थ है कि अन्य तद्धितप्रत्ययों के परे इस को तकारादेश न होवे जैसे। भ्रूणघ्नोऽपत्यं भ्रौणघ्नः। वार्त्रघ्नः। यहां अण् प्रत्यय हुआ है। सरयू शब्द से शैषिक अण् प्रत्यय के परे यू भाग का लोप निपातन

किया है जैसे । सरय्वां भवं सारवमुदकम् । ऊकार को गुण हो कर अवादेश हो जाता है । जनपद के समान क्षत्रियवाची इक्ष्वाकु शब्द से अपत्य और तद्राज अर्थों में अञ् प्रत्यय के परे उकार का लोप निपातन किया है जैसे । इक्ष्वाकोरपत्य-मिक्ष्वाकूणां राजा वा । ऐक्ष्वाकः । मित्रयु शब्द गृष्ट्यादि गण में पढ़ा है उस से ढञ् प्रत्यय के परे इय आदेश का अपवाद यु शब्द का लोप निपातन किया है जैसे । मित्रयोरपत्यं मैत्रेयः । हिरण्य शब्द से मयट् प्रत्यय के परे (य) मात्र का लोप निपातन किया है जैसे । हिरण्यस्य विकारः । हिरण्मयः ॥ ८१२ ॥

ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि च्छन्दसि ॥ ९१३ ॥

अ० ६ । ४ । १७५ ॥

ऋत्व्य, वास्त्व्य, वास्त्व, माध्वी, और हिरण्यय, ये शब्द वेदविषय में तद्धित-प्रत्ययान्त निपातन किये हैं जैसे । ऋतौ भवं, ऋत्व्यम् । वास्तौ भवं, वास्त्व्यम् । यहां ऋतु और वास्तु शब्दों को यकारादि यत् प्रत्यय के परे यणादेश निपातन किया है । वस्तु शब्द से अण् प्रत्यय के परे गुण का अपवाद यणादेश निपातन किया है । वस्तुनि भवं वास्त्वम् । मधुशब्द से स्त्रीलिङ्ग में अण् प्रत्यय के परे यणादेश निपातन किया है जैसे । मधुन इमा माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । हिरण्य शब्द से परे मयट् के (म) मात्र का लोप निपातनसे किया है जैसे । हिरण्यस्य विकारो, हिरण्ययम् ॥ ८१३ ॥

तद्धितेष्वचामादेः ॥ ९१४ ॥ अ० ७ । २ । ११७ ॥

ञित्, णित्, तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों तो अङ्ग के अचों में आदि अच् को वृद्धि हो जैसे । ञित् । गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः । वात्स्यः । दाक्षिः । प्लाक्षिः । इत्यादि । णित् । उपगोरपत्यं, औपगवः । कापटवः । सौम्यं हविः । इत्यादि ॥ ८१४ ॥

किति च ॥ ९१५ ॥ अ० ७ । २ । ११८ ॥

कित्संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों तो भी अङ्ग के अचों में आदि अच् को वृद्धि होवे जैसे । फक् । नाडायनः । चारायणः । रेवत्या अपत्यं रैवतिकः । इत्यादि ॥ ८१५ ॥

देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात् ॥ ९१६ ॥

अ० ७ । ३ । १ ॥

यहां ञित् णित् और कित् तद्धितप्रत्ययों तथा अचों के आदि अच् इन सबकी अनुवृत्ति चली आती है । ञित् णित् और कित् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों तो देविका, शिंशपा, दित्यवाट्, दीर्घसत्र, और श्रेयस्, इन शब्दों के आदि अच् को वृद्धि

आगम हो अर्थात् यकार से पूर्व ऐकार और वकार से पूर्व औकार आदेश होवे जैसे। व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः। न्यायमधीते नैयायकः। व्यसने भवं, वैयसनम्। इत्यादि। स्वश्वस्यापत्यं सौवश्वः। सौवर्गः। स्वराणां व्याख्यानो ग्रन्थः, सौवरः। इत्यादि, यहां यकार वकार से पूर्व इसलिये कहा है कि। त्र्यर्थस्याऽपत्यं त्रार्थिः। यहां रेफ से पूर्व ऐच् का आगम न हो। पदान्तविशेषण इसलिये है कि। यष्टिः प्रहरणमस्य याष्टीकः। यहां यकार से पूर्व ऐच् का आगम भी न होवे। और जहां यकार वकारों से उत्तर वृद्धि की प्राप्ति न हो वहां उनसे पूर्व ऐच् का आगम भी न हो जैसे। दध्यश्वस्याऽपत्यं दाध्यश्विः ॥ ८१६ ॥

द्वारादीनाञ्च ॥ ९२० ॥ अ० ७ । ३ । ४ ॥

द्वारादि शब्दों के यकार वकार से उत्तर अचों के आदि अच् की वृद्धि न हो किन्तु उन यकार वकारों से पूर्व तो ऐच् का आगम हो जावे जैसे। द्वारे नियुक्तः, दौवारिकः। द्वारपालस्याऽपत्यम्, दौवारपालम्। स्वरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः, सौवरः। सौवरोऽध्यायः। स्वाध्यायः प्रयोजनमस्य, सौवाध्यायिकः। व्यल्कशे भवः, वैयल्कशः। स्वस्तीत्याह, सौवस्तिकः। स्वर्गमनं प्रयोजनमस्य, सौवर्गमनिकः। स्फयकृतस्याऽपत्यं, स्फैयकृतः। स्वादुमृदु भक्तिरस्य, सौवादुमृदवः। श्वन इदं, शौवनम्। यहां पूर्वलिखित (अन्) सूत्र से अण् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव हो जाता है। शुनो विकारः, शौवनं मांसम्। श्वदंष्ट्रायां भवः, शौवादंष्ट्रो मणिः। स्वरिदमैश्वर्यं सौवम्। स्वग्रामे भवः, सौवग्रामिकः। स्वग्राम शब्द से अध्यात्मादि गण में मान के ठञ् प्रत्यय होता है। पूर्व सूत्र में पदान्त यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम कहा है यहां द्वारादि शब्दों में पदान्त नहीं इसलिये फिर प्रसङ्ग करके कहा। स्वाध्याय शब्द इस द्वारादि गण में पढ़ा है इस का दो प्रकार से निर्वचन होता है। सुष्ठु वा, अध्ययनं स्वाध्यायः। शोभनं वा अध्ययनं स्वाध्यायः। अथवा स्वमध्ययनं स्वाध्यायः। इन में से किसी प्रकार का निर्वचन समझो स्वाध्याय शब्द सर्वथा यौगिक होवे। और द्वारादि शब्द सब अव्युत्पन्नप्रातिपदिक हैं। इसीलिये यह सूत्र कहा है। सो जो (सु-अध्याय) ऐसा विग्रह करें तब तो पदान्त वकार से पूर्व प्रथम सूत्र से ही ऐच् का आगम हो जावेगा। और जब (स्व-अध्याय) ऐसा निर्वचन करें तो भी स्व शब्द इसी गण में पढ़ा है। तो इसने सूत्र में केवल शब्द के ग्रापक से इस प्रकरण में तदादिविधि होती है। फिर स्वशब्द जिस के आदि में हो ऐसे स्वाध्याय शब्द से इसी सूत्र करके ऐच् का आगम हो जावेगा। फिर स्वाध्याय शब्द को इस गण में पढ़ने से कुछ प्रयोजन नहीं। यह महाभाष्यकार का आशय है ॥ ८२० ॥

प्राप्त है उस को बाध के आकारादेश होवे जैसे । देविकायां भवं, दाविकमुदकम्। देविका नाम किसी नदीविशेष का है । देविकाकूले भवाः, दाविकाः शालयः। पूर्वदेविका नाम है प्राचीनों के ग्राम का, पूर्वदेविकायां भवः, पूर्वदाविकः, यहां भी (प्राचां ग्राम०) इस आगामी सूत्र से उत्तरपदवृद्धि प्राप्त है उस का अपवाद आकार ही हो जाता है। शिंशपाया विकारः, शांशपश्चमसः । यह शिंशपा शब्द (शीशो) वृक्ष का नाम है । उस के अनुदात्तादि होने से विकार अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। शिंशपास्थले भवाः, शांशपास्थलाः।और पूर्वशिंशपा शब्द प्राचीन-ग्राम की संज्ञा है उस को भी पूर्वोक्त प्रकार से उत्तरपदवृद्धि हो जाती है जैसे। पूर्वशिंशपायां भवः पूर्वशांशपः । दित्यवाट्। दित्यौह इदं, दात्यौहम् । यहां शैषिक अण् प्रत्यय हुआ है । दीर्घसत्र। दीर्घसत्रे भवं, दार्घसत्रम्। श्रेयसि भवं श्रायसम् ॥ ८१६ ॥

वा०—वहीनरस्येद्वचनम् ॥ ९१७ ॥

ञित् णित् और कित् तद्धितसंज्ञक प्रत्यय परे हों तो वहीनर शब्द के आदि अच् को इकारादेश होवे जैसे। वहीनरस्यापत्यं वैहीनरिः। यहां इकारादेश वृद्धि की प्राप्ति में नहीं कहा इसी से वृद्धि का बाधक नहीं होता है । आदेश किये इकार को वृद्धि हो जाती है । और किन्हीं ऋषि लोगों का इस विषय में यह अभिप्राय है कि विहीनर शब्द से ही प्रत्यय होता है । अर्थात् यह ऐसा ही शब्द है। कामभोगाभ्यां विहीनो नरः, विहीनरः । यहां पृषोदरादि मान के एक नकार का लोप हो जाता है। जिन के मत में विहीनर शब्द है उन के मत में वार्त्तिक नहीं करना चाहिये ॥ ८१७ ॥

केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः ॥ ९१८ ॥ अ० ७ । ३ । २ ॥

केकय,मित्रयु और प्रलय शब्दों के यकारादि भाग को इय आदेश होवे ञित् णित् कित् तद्धित प्रत्यय परे हों तो, और आदि अच् को वृद्धि तो पूर्व सूत्रों से सिद्ध ही है जैसे। केकयस्याऽपत्यं केकयानां राजा वा कैकेयः । यहां जनपद क्षत्रियवाची केकय शब्द से अञ् प्रत्यय हुआ है । मित्रयुभावेन श्लाघते । मैत्रेयिकया श्लाघते । यहां गोत्रवाची मित्रयु शब्द से श्लाघा अर्थ में वुञ् प्रत्यय हुआ है । प्रलयादागतं प्रालेयमुदकम् । यहां आगत अर्थ में अण्प्रत्यय हुआ है ॥ ८१८ ॥

न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ॥ ९१९ ॥ अ० ७ । ३ । ३ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों तो यकार वकार से परे अचों के आदि अच् के स्थान में वृद्धि न हो किन्तु उन यकार वकार से पूर्व ऐच् का

आगम हो अर्थात् यकार से पूर्व ऐकार और वकार से पूर्व औकार आदेश होवे जैसे। व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः। न्यायमधीते नैयायिकः। व्यसने भवं, वैयसनम्। इत्यादि। स्वश्वस्यापत्यं सौवश्वः। सौवर्गः। स्वराणां व्याख्यानो ग्रन्थः, सौवरः। इत्यादि, यहां यकार वकार से पूर्व इसलिये कहा है कि। त्र्यर्षस्याऽपत्यं त्रार्षिः। यहां रेफ से पूर्व ऐच् का आगम न हो। पदान्तविशेषण इसलिये है कि। यष्टिः प्रहरणमस्य याष्टीकः। यहां यकार से पूर्व ऐच् का आगम भी न होवे। और जहां यकार वकारों से उत्तर वृद्धि की प्राप्ति न हो वहां उनसे पूर्व ऐच् का आगम भी न हो जैसे। दध्यश्वस्याऽपत्यं दाध्यश्विः ॥ ९१९ ॥

द्वारादीनाञ्च ॥ ९२० ॥ अ० ७। ३। ४ ॥

द्वारादि शब्दों के यकार वकार से उत्तर अचों के आदि अच् को वृद्धि न हो किन्तु उन यकार वकारों से पूर्व तो ऐच् का आगम हो जावे जैसे। द्वारे नियुक्तः, दौवारिकः। द्वारपालस्याऽपत्यम्, दौवारपालम्। स्वरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः, सौवरः। सौवरोऽध्यायः। स्वाध्यायः प्रयोजनमस्य, सौवाध्यायिकः। व्यल्कशे भवः, वैयल्कशः। स्वस्तीत्याह, सौवस्तिकः। स्वर्गमनं प्रयोजनमस्य, सौवर्गमनिकः। स्फ्यकृतस्या-ऽपत्यं, स्फैयकृतः। स्वादुमृदु भक्तिरस्य, सौवादुमृदवः। श्वन इदं, शौवनम्। यहां पूर्वलिखित (अन्) सूत्र से अण् प्रत्यय के परे प्रकृतिभाव हो जाता है। शुनो विकारः, शौवनं मांसम्। श्वदंष्ट्राया भवः, शौवादंष्ट्रो मणिः। [illegible] सौवम। स्वग्रामे भवः, सौवग्रामिकः। स्वग्राम शब्द से अध्यात्मादि गण में पाठ

न्यग्रोधस्य च केवलस्य ॥ ९२१ ॥ अ० ७ । ३ । ५ ॥

केवल न्यग्रोध शब्द के यकार से परे, अचों के आदि अच् के स्थान में वृद्धि न हो किन्तु यकार से पूर्व ऐच् का आगम हो जावे जैसे । न्यग्रोधस्य विकारो, नैयग्रोधश्चमसः । यहां केवल शब्द का ग्रहण इसलिये है कि । न्यग्रोधमूले भवाः, न्याग्रोधमूलाः शालयः । यहां ऐच् का आगम न होवे । इस न्यग्रोध शब्द का ग्रहण व्युत्पत्तिपक्ष में नियमार्थ है कि पदान्त यकार से पूर्व जो केवल न्यग्रोध शब्द को हो ऐच् का आगम हो अन्य शब्दों को तदादि होने से भी हो जावे । और अव्युत्पत्तिपक्ष में विधान ज्ञापकार्थ है ॥ ८२१ ॥

न कर्मव्यतिहारे ॥ ९२२ ॥ अ० ७ । ३ । ६ ॥

कर्मव्यतिहार अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक के यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम न होवे जैसे । व्यावक्रोशी । व्यावलेखी । व्यावहासी । इत्यादि, यहां कर्मव्यतिहार अर्थ में णच्‌प्रत्ययान्त णच् प्रत्यय और तदन्त से स्वार्थ में तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय हुआ है ॥ ८२२ ॥

स्वागतादीनां च ॥ ९२३ ॥ अ० ७ । ३ । ७ ॥

ञित् णित् कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों तो गणपठित स्वागतादि शब्दों के यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम न होवे जैसे । स्वागतमित्याह, स्वागतिकः । स्वध्वरेण चरति, स्वाध्वरिकः । स्वङ्गस्यापत्यम्, स्वाङ्गिः । व्यङ्गस्यापत्यम्, व्याङ्गिः । व्यडस्यापत्यं, व्याडिः । व्यवहारः प्रयोजनमस्य, व्यावहारिकः । यहां व्यवहार शब्द कर्मव्यतिहार अर्थ में नहीं किन्तु लौकिक कार्यों का वाची है । स्वपती साधुः, स्वापतेयः । स्वागतादि सब यौगिक शब्द हैं उन में तो पदान्त यकार वकार से पूर्व ऐच् का आगम प्राप्त है और स्वपति शब्द में यह बात नहीं सो स्व शब्द द्वारादि गण में पढ़ा है वहां तदादि से ऐच् का आगम प्राप्त है इन सब का निषेध समझना चाहिये ॥ ८२३ ॥

श्वादेरिञि ॥ ९२४ ॥ अ० ७ । ३ । ८ ॥

तद्धितसंज्ञक इञ् प्रत्यय परे हो तो किसी शब्द के आदि में वर्त्तमान श्व शब्द के वकार से पूर्व ऐच् का आगम न हो जैसे । श्वभस्त्रस्यापत्यं, श्वाभस्त्रिः । श्वादंष्ट्रिः । इत्यादि । श्वन् शब्द द्वारादिगण में पढ़ा है इस कारण इस को तदादिविधि मान कर वकार से पूर्व ऐच् प्राप्त है उस का प्रतिषेध किया है ॥ ८२४ ॥

वा०—इकारादिग्रहणं च श्वागणिकाद्यर्थम् ॥ ९२५ ॥

सूत्र में तद्धितसंज्ञक इञ् प्रत्यय के परे ऐजागम का निषेध किया है सो सामान्य इकारादि प्रत्यय के परे करना चाहिये जैसे। श्वगणेन चरति, श्वागणिकः। श्वायूथिकः। इत्यादि। यह वार्त्तिक सूत्र का शेष है ॥ ८२५ ॥

वा०—तदन्तस्य चान्यत्र प्रतिषेधः ॥ ९२६ ॥

और इञ् प्रत्यय से भिन्न कोई प्रत्यय परे हो तो आदि में वर्त्तमान श्व शब्द के वकार से पूर्व ऐच् का आगम न हो जैसे। श्वाभस्त्रेः स्वं श्वाभस्त्रम्। इत्यादि ॥ ८२६ ॥

पदान्तस्यान्यतरस्याम् ॥ ९२७ ॥ अ० ७। ३। ९ ॥

पद शब्द जिस के अन्त में हो ऐसे श्व शब्द के वकार से पूर्व ऐच् का आगम विकल्प करके होवे जैसे। श्वापदस्येदं श्वापदम्। शौवापदम्। इत्यादि ॥ ८२७ ॥

उत्तरपदस्य ॥ ९२८ ॥ अ० ७। ३। १० ॥

यह अधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो कार्य्य विधान करें सो (हनस्तो०) इस सूत्र पर्य्यन्त सामान्य करके उत्तरपद को होगा ॥ ८२८ ॥

अवयवादृतोः ॥ ९२९ ॥ अ० ७। ३। ११ ॥

जित् णित् और कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हो तो अवयववाची से परे जो ऋतुवाची उत्तरपद उस के अचों में आदि अच् को वृद्धि होवे जैसे। पूर्ववर्षासु भवं पूर्ववार्षिकम्। पूर्वहैमनम्। अपरवार्षिकम्। अपरहैमनम्। इत्यादि, यहां पूर्व शब्द का वर्षा और हेमन्त शब्द के साथ एकदेशि समास होता और वर्षा शब्द से शैषिक ठञ् हेमन्त से अण् प्रत्यय और हेमन्त शब्द के तकार का लोप हुआ है, यहां अवयव शब्द का ग्रहण इसलिये है कि। पूर्वासु वर्षासु भवं, पौर्ववार्षिकम्। यहां अवयविसमास के न होने से उत्तरपदवृद्धि न हुई। यहां वर्षा और हेमन्त शब्दों के पूर्व और अपर शब्द अवयव हैं ॥ ८२९ ॥

सुसर्वार्द्धाज्जनपदस्य ॥ ९३० ॥ अ० ७। ३। १२ ॥

जित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो तो सु, सर्व, और अर्द्ध शब्दों से परे जो जनपद देशवाची उत्तरपद उस के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे जैसे। सुपञ्चालेषु भवः, सुपाञ्चालकः। सर्वपाञ्चालकः। अर्द्धपाञ्चालकः। इत्यादि, यहां शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है ॥ ८३० ॥

न्यग्रोधस्य च केवलस्य ॥ ९२१ ॥ अ० ७ । ३

केवल न्यग्रोध शब्द के यकार से परे, अचों के आदि अच् के स्थ
हो किन्तु यकार से पूर्व ऐच् का आगम हो जावे जैसे । न्यग्रोध
नैयग्रोधश्चमसः । यहां केवल शब्द का ग्रहण इसलिये है कि । न्यग्रोध
न्याग्रोधमूलाः शालयः । यहां ऐच् का आगम न होवे । इस न्यग्रो
ग्रहण व्युत्पत्तिपक्ष में नियमार्थ है कि पदान्त यकार से पूर्व के केवल
शब्द को ही ऐच् का आगम हो अन्य शब्दों को तदादि होने से भी हो
और अव्युत्पत्तिपक्ष में विधान प्रापकार्थ है ॥ ८२१ ॥

न कर्मव्यतिहारे ॥ ९२२ ॥ अ० ७ । ३ । ६ ॥

कर्मव्यतिहार अर्थ में वर्त्तमान प्रातिपदिक के यकार वकार से पूर्व ऐच्
आगम न होवे जैसे । व्यावक्रोशी । व्यावलेखी । व्यावहासी । इत्यादि, यहां क
व्यतिहार अर्थ में णच्‌न्त णच् प्रत्यय और तदन्त से स्त्रीलिङ्गस्वार्थ में तद्धि
संज्ञक अञ् प्रत्यय हुआ है ॥ ८२२ ॥

स्वागतादीनां च ॥ ९२३ ॥ अ० ७ । ३ । ७ ॥

ञित् णित् कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों तो गणपठित स्वागतादि शब्द
के यकारवकार से पूर्व ऐच् का आगम न होवे जैसे । स्वागतमित्याह, स्वागतिकः ।
स्वध्वरेण चरति, स्वाध्वरिकः । स्वङ्गस्यापत्यम्, स्वाङ्गिः । व्यङ्गस्यापत्यम्, व्याङ्गिः ।
व्यडस्यापत्यं, व्याडिः । व्यवहारः प्रयोजनमस्य, व्यावहारिकः । यहां व्यवहार
शब्द कर्मव्यतिहार अर्थ में नहीं किन्तु लौकिक कार्यों का वाची है । स्वपती
साधुः, स्वापतेयः । स्वागतादि सब यौगिक शब्द हैं उन में तो पदान्त य
वकार से पूर्व ऐच् का आगम प्राप्त है और स्वपति शब्द में यह बात
स्व शब्द द्वारादि गण में पढ़ा है वहां तदादि से ऐच् का
प्राप्त का निषेध समझना चाहिये ॥ ८२३ ॥

श्वादेरिञि ॥ ९२४ ॥ अ० ७ । ३

तद्धितसंज्ञक इञ् प्रत्यय परे हो तो किसी शब्द के
कार से पूर्व ऐच् का आगम न हो जैसे । श्वभस्त्रस्यापत्यं,
दि । श्वन् शब्द द्वारादिगण में पढ़ा है इस कारण
कार वकार से पूर्व ऐच् प्राप्त है उस का प्रतिषेध

से परे जो वर्ष उत्तरपद उन के अचों में आदि अच् को वृद्धि हो जैसे । द्विव अधीटो भृतो भूतो वा, द्विवार्षिकः । त्रिवार्षिकः । इत्यादि, यहां भविष्य अर्थ का निषेध इसलिये किया है कि । त्रीणि वर्षाणि भावी, त्रैवर्षिकम् । यह उत्तरपदवृद्धि न होवे । अधीष्ट और भृत अर्थों में भी भविष्यत्काल होता है परन्तु वहां भविष्यत् का निषेध नहीं लगता क्योंकि उन अर्थों में जो भविष्य आसकता है वह तद्धितप्रत्यय का अर्थ नहीं है जैसे । द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो व कर्म करिष्यतीति, द्विवार्षिको मनुष्यः ॥ ८३४ ॥

परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः ॥ ९३५ ॥ अ० ७ । ३ । १७ ।

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों तो संख्यावाची शब्दों परे जो संज्ञाविषय में और शाण उत्तरपद को छोड़ के अन्य परिमाणान्त उत्त पद उस के अचों में आदि अच् को वृद्धि होवे जैसे । द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य द्विकौडविकः । द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतं, द्विसौवर्णिकम् । द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीत द्विनैष्किकम् । त्रिनैष्किकम् । इत्यादि, यहां ठञ् प्रत्यय हुआ है । यहां संज्ञा विषय में निषेध इसलिये किया है कि । पञ्च लोहित्यः परिमाणमस्य पाञ्चलोहितिकम् । पाञ्चकपालिकम् । यहां संज्ञा में उत्तरपदवृद्धि न हो और शाण उत्तरपद के परे निषेध इसलिये है कि । द्वाभ्यां शाणाभ्यां क्रीतं, द्वैशाणम् त्रैशाणम् । यहां क्रीत अर्थ में अण् प्रत्यय के परे उत्तरपद को वृद्धि न होवे ।८३५

जे प्रोष्ठपदानाम् ॥ ९३६ ॥ अ० ७ । ३ । १८ ॥

यहां जे शब्द से जात अर्थ का बोध होता है । जात अर्थ में विहित ञि णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों तो प्रोष्ठपदा नामक नक्षत्र में उत्तरप के आदि अच् को वृद्धि होवे जैसे । प्रोष्ठपदासु जातः, प्रोष्ठपदो माणवकः यहां नक्षत्रवाची से सामान्य काल अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का लुप् हो क फिर नक्षत्रवाची से जात अर्थ में अण् प्रत्यय होता है । यहां जे ग्रहण इसलि है कि । प्रोष्ठपदासु भवः । प्रोष्ठपदः । यहां वृद्धि न हो । और इस सूत्र में बहुवच निर्देश से प्रोष्ठपदा के पर्य्यायवाचियों का भी ग्रहण समझना चाहिये जैसे भद्रपदासु जातो भाद्रपादः ॥ ८३६ ॥

हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च ॥ ९३७ ॥ अ० ७ । ३ । १९

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों तो हृद्, भग, सिन्धु ये जि के अन्त में हों ऐसे पूर्वपदों और उत्तरपदों के अचों में आदि अच् के स्थान

दिशोऽमद्राणाम् ॥ ९३१ ॥ अ० ७ । ३ । १३ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों तो दिशावाची शब्दों से परे जो मद्र शब्द को छोड़ के जनपद देशवाची उत्तरपद उस के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे जैसे । पूर्वपञ्चाला निवासोऽस्य, पूर्वपाञ्चालकः । अपरपाञ्चालकः । दक्षिणपाञ्चालकः । इत्यादि, यहां भी शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है। यहां दिशावाची का ग्रहण इसलिये है कि । पूर्वः पञ्चालानां, पूर्वपञ्चालः । पूर्वपञ्चालेषु भवः, पौर्वपञ्चालकः । आपरपञ्चालकः । यहां एकदेशी समास में पूर्व तथा अपर शब्द दिशावाची नहीं किन्तु अवयववाची है इस कारण उत्तरपदवृद्धि नहीं होती । मद्रशब्द का निषेध इसलिये है कि । पूर्वमद्रेषु भवः, पौर्वमद्रः । आपरमद्रः । यहां शैषिक अञ् प्रत्यय के परे के उत्तरपदवृद्धि नहीं होती ॥ ८११ ॥

प्राचां ग्रामनगराणाम् ॥ ९३२ ॥ अ० ७ । ३ । १४ ॥

ञित् णित् और कित्संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो तो प्राचीन आचार्यों के मत में दिशावाची शब्दों से परे जो ग्राम और नगरवाची उत्तरपद उस के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि हो जैसे । ग्राम । पूर्वेषुकामशम्यां भवः, पूर्वैषुकामशमः अपरैषुकामशमः । पूर्वकार्णमृत्तिकः । अपरकार्णमृत्तिकः । नगरों से । पूर्वमथुरायां भवः, पूर्वमाथुरः । अपरमाथुरः । पूर्वसौघ्नः । दक्षिणसौघ्नः । इत्यादि ॥ ८१२ ॥

सङ्ख्यायाः संवत्सरसङ्ख्यस्य च ॥ ९३३ ॥ अ० ७ । ३ । १५ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों तो संख्यावाची शब्दों से परे जो संवत्सर और संख्यावाची उत्तरपद उस के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे जैसे । द्विसंवत्सरावधीष्टो भृतो भूतो भावी वा, द्विसांवत्सरिकः । द्वे षष्टी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा, द्विषाष्टिकः । ... द्व्याशीतिकः । इत्यादि, यहां संवत्सर के ग्रहण से उत्तर सूत्र में परिमाण ग्रहण में कालपरिमाण का ग्रहण नहीं होता इस से । द्वैसमिकः । त्रैसमिकः यहां उत्तरपदवृद्धि नहीं होती । द्विवर्षा । त्रिवर्षा । यहां परिमाण कहा ङीप् प्रत्यय भी नहीं होता ॥ ८१३ ॥

वर्षस्याभविष्यति ॥ ९३४ ॥ अ० ७ । ३ । १६

यहां संख्यावाची की अनुवृत्ति आती है । भविष्यत् अर्थ को छो अर्थों में स्थित ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों तो सं

देवताद्वन्द्वे च ॥ ९३९ ॥ अ० ७ । ३ । २१ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हों तो देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में पूर्व और उत्तर दोनों पदों के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे जैसे । आग्निवारुणी । आग्निमारुती मन्त्रः । परन्तु जहां सूक्त ऋचा मन्त्र और हविष्य पदार्थ संबन्धी देवतावाची शब्दों का द्वन्द्वसमास हो वहीं उभयपदवृद्धि हो और । स्कन्दविशाखौ देवते अस्य, स्कान्दविशाखं कर्म । ब्राह्मप्रजापत्यम् । यहां उभयपदवृद्धि न होवे ॥ ८३८ ॥

नेन्द्रस्य परस्य ॥ ९४० ॥ अ० ७ । ३ । २२ ॥

देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में उत्तरपद में जो इन्द्र शब्द आवे तो उस को वृद्धि न हो । पूर्वसूत्र से प्राप्त है उस का निषेध किया है जैसे । सोमेन्द्रौ देवते अस्य, सौमेन्द्रः । आग्नेन्द्रः । इत्यादि, यहां परग्रहण इसलिये है कि । ऐन्द्राग्नं चरुं निर्वपेत् । यहां पूर्वपद में निषेध न होवे । इन्द्र शब्द में दो स्वर हैं । उन में से अन्त्य अकार का तद्धित प्रत्यय के परे लोप और पूर्व इकार का दूसरे वर्ण के साथ एकादेश होने से उत्तरपदवृद्धि की प्राप्ति हो नहीं हो सकती फिर निषेध करने से यह ज्ञापक होता है कि अन्तरङ्ग भी एकादेश को बाध के प्रथम पूर्वोत्तरपदवृद्धि ही होती है । इस ज्ञापक का प्रयोजन फल यह है कि । पूर्वैषुकामशमः । यहां उत्तरपद में इषु शब्द के इकार को वृद्धि प्रथम हो जाती है पीछे एकादेश होता है ॥ ८४० ॥

दीर्घाच्च वरुणस्य ॥ ९४१ ॥ अ० ७ । ३ । २३ ॥

दीर्घ वर्ण से परे जो वरुण उत्तरपद उस के आदि अच् को वृद्धि न हो । यहां भी देवता के द्वन्द्वसमास में पूर्वसूत्र से प्राप्ति है उस का प्रतिषेध समझना चाहिये जैसे । इन्द्रावरुणौ देवते अस्य, ऐन्द्रावरुणम् । मैत्रावरुणम् । इत्यादि, दीर्घ वर्ण से परे इसलिये कहा है कि । आग्निवारुणी । यहां निषेध न हो जावे ॥ ८४१ ॥

प्राचां नगरान्ते ॥ ९४२ ॥ अ० ७ । ३ । २४ ॥

प्राचीनों के देश में ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों तो नगरान्त अङ्ग में उभयपद के आदि अच् को वृद्धि हो जैसे । सुह्मनगरे भवः, सौह्मनागरः । पौण्ड्रनागरः । इत्यादि, यहां प्राचां ग्रहण इसलिये है कि । मद्रनगरे भवः, माद्रनगरः । यहां उत्तरदेशीय नगरान्त में न होवे ॥ ८४२ ॥

जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् ॥ ९४३ ॥ अ० ७ । ३ । २५ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हों तो जङ्गल, धेनु, वलज,

वृद्धि हो जैसे। सुहृदयस्येदं, सौहार्दम्। सुहृदयस्य भावः सौहार्दम्। सुभगस्य भावः, सौभाग्यम्। दौर्भाग्यम्। सुभगाया अपत्यम्, सौभागिनेयः। दौर्भागिनेयः। और सुभग शब्द उद्गात्रादि गण में भी पढ़ा है उस से वेद में ही अञ् प्रत्यय होता है। परन्तु उभयपदवृद्धि नहीं होती। क्योंकि (महते सौभगाय) ऐसा ही प्रयोग वेद में आता है। सो वेद में सब कार्य्यों का विकल्प होने से पूर्वपदवृद्धि भी जाती है ॥ ९३७ ॥

अनुशतिकादीनां च ॥ ९३८ ॥ अ० ७ । ३ । २० ॥

यहां पूर्व सूत्र से पूर्वपद की भी अनुवृत्ति चली आती है। ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो तो अनुशतिकादिगणपठित शब्दों में पूर्व और उत्तर दोनों पदों के आदि अचों के स्थान में वृद्धि होवे जैसे। अनुशतिकस्येदं, आनुशातिकम्। अनुहोडेन चरति, आनुहौडिकः। अनुसंवरणे दीयते। आनुसांवरणम्। अनुसंवत्सरे दीयते, आनुसांवत्सरिकः। अङ्गारवेणोरपत्यं, आङ्गारवैणवः। असिहत्ये भवं, आसिहात्यम्। अस्यहत्यशब्दोऽत्रैवाध्यायेऽस्ति, आस्यहात्यः। अस्यहेतिः प्रयोजनमस्य, आस्यहैतिकः। वध्योगस्यापत्यं, वाध्यौगः। पुष्करसतोऽपत्यं, पौष्करसादिः। अनुहरतोऽपत्यं, आनुहारतिः। कुरुकतस्यापत्यं, कौरुकात्यः। कुरुपञ्चालेषु भवः, कौरुपाञ्चालः। उदकशुद्धस्यापत्यं, औदकशौद्धिः। इहलोके भवं, ऐहलौकिकम्। परलोके भवं, पारलौकिकम्। लोकोत्तरपदप्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय कह चुके हैं। सर्वलोके विदितः सार्वलौकिकः पुरुषः। सर्वपुरुषस्येदं कर्म सार्वपौरुषम्। सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा, सार्वभौमः। प्रयोगे भवं प्रायौगिकम्। परस्त्रिया अपत्यं, पारस्त्रैणेयः। परस्त्री शब्द कल्याण्यादिगण में पढ़ा है वहां इनङ् आदेश होजाता है। राजपुरुष शब्द को ष्यञ् प्रत्यय के परे उभयपदवृद्धि होती है। राजपुरुषस्य कर्म, राजपौरुष्यम्। ष्यञ् प्रत्यय का नियम इसलिये है कि। राजपुरुषस्यापत्यं, राजपुरुषायणिः। यहां उत्तरदेशीय आचार्य्यों के मत में गोत्रसंज्ञारहित वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय होता है। शतकुम्भे भवः, शातकौम्भः। सुखशयनं पृच्छति। सौखशायनिकः। परदारान् गच्छति, पारदारिकः। सूत्रनडस्यापत्यं, सौत्रनाडिः। अभिगममर्हति, आभिगामिकः। अधिदेवे भवमाधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। आध्यात्मिकम्। अध्यात्मादि शब्दों से भवार्थ में ठञ् प्रत्यय कह चुके हैं। यह आकृतिगण इसलिये समझना चाहिये कि अन्य अपठित शब्दों को भी उभयपदवृद्धि हो जावे. जैसे। चतस्र एव विद्याः चातुर्वैद्यम्। चातुराश्रम्यम्। इत्यादि में भी उभयपदवृद्धि हो जावे ॥ ९३८ ॥

देवताद्वन्द्वे च ॥ ९३९ ॥ अ० ७ । ३ । २१ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धितप्रत्यय परे हो तो देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में पूर्व और उत्तर दोनों पदों के अचों में आदि अच् के स्थान में वृद्धि होवे जैसे । आग्निवारुणी । आग्निमारुतो मन्त्रः । परन्तु जहां सूक्त ऋचा मन्त्र और हविष्य पदार्थ संबन्धी देवतावाची शब्दों का द्वन्द्वसमास हो वहीं उभयपदवृद्धि हो और । स्कन्दविशाखौ देवते अस्य, स्कान्दविशाखं कर्म । ब्राह्मप्रजापत्यम् । यहां उभयपदवृद्धि न होवे ॥ ८३८ ॥

नेन्द्रस्य परस्य ॥ ९४० ॥ अ० ७ । ३ । २२ ॥

देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में उत्तरपद में जो इन्द्र शब्द आवे तो उस को वृद्धि न हो । पूर्वसूत्र से प्राप्त है उस का निषेध किया है जैसे । सोमेन्द्रौ देवते-अस्य, *सोमेन्द्रः । आग्नेन्द्रः । इत्यादि, यहां परग्रहण इसलिये है कि । ऐन्द्राग्नं* अर्द्धं निर्वपेत् । यहां पूर्वपद में निषेध न होवे । इन्द्र शब्द में दो स्वर हैं । उन में से अन्त्य अकार का तद्धित प्रत्यय के परे लोप और पूर्व इकार का दूसरे वर्ण के साथ एकादेश होने से उत्तरपदवृद्धि की प्राप्ति हो नहीं हो सकती फिर निषेध करने से यह ज्ञापक होता है कि अन्तरङ्ग भी एकादेश को बाध के प्रथम पूर्वोत्तरपदवृद्धि हो होती है । इस ज्ञापक का अन्यत्र फल यह है कि । पूर्वेषुकामशमः । यहां उत्तरपद में इषु शब्द के इकार को वृद्धि प्रथम हो हो जाती है पीछे एकादेश होता है ॥ ८४० ॥

दीर्घाच्च वरुणस्य ॥ ९४१ ॥ अ० ७ । ३ । २३ ॥

दीर्घ वर्ण से परे जो वरुण उत्तरपद उस के आदि अच् को वृद्धि न हो । यहां भी देवता के द्वन्द्वसमास में पूर्वसूत्र से प्राप्ति है उस का प्रतिषेध समझना चाहिये जैसे । इन्द्रावरुणौ देवते अस्य, ऐन्द्रावरुणम् । मैत्रावरुणम् । इत्यादि, दीर्घ वर्ण से परे इसलिये कहा है कि । आग्निवारुणी । यहां निषेध न हो जावे ॥ ८४१ ॥

प्राचां नगरान्ते ॥ ९४२ ॥ अ० ७ । ३ । २४ ॥

प्राचीनों के देश में ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो तो नगरान्त अङ्ग में उभयपद के आदि अच् को वृद्धि हो जैसे । सुह्मनगरे भवः, सौह्मनागरः । पौण्ड्रनागरः । इत्यादि, यहां प्राचां ग्रहण इसलिये है कि । मद्रनगरे भवः, माद्रनगरः । यहां उत्तरदेशीय नगरान्त में न होवे ॥ ८४२ ॥

जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् ॥ ९४३ ॥ अ० ७ । ३ । २५ ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो तो जङ्गल, धेनु, वलज,

ये शब्द जिस के अन्त में हों उस समुदाय के उत्तरपद के आदि अच् को विकल्प करके और पूर्वपद के आदि अच् को नित्य वृद्धि होवे जैसे। कुरुजङ्गलेषु भवं, कौरुजाङ्गलम्। कौरुजङ्गलम्। वैश्वधेनवम्। वैश्वधैनवम्। सौवर्णवालजः। सौवर्णवलजः। यहां शैषिक अण् प्रत्यय हुआ है ॥ ८४३ ॥

अर्द्धात्परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा ॥९४४॥ अ० ७। ३। २६॥

जित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो तो अर्द्ध शब्द से परे जो परिमाणवाची उत्तरपद उस के अचों में आदि अच् को नित्य और पूर्वपद के आदि अच् को विकल्प करके वृद्धि होवे जैसे। अर्द्धद्रोणेन क्रीतमार्द्धद्रौणिकम्। अर्द्धद्रौणिकम्। आर्द्धकौडविकम्। अर्द्धकौडविकम्। यहां परिमाणग्रहण इस-लिये किया है कि। अर्द्धक्रोशः प्रयोजनमस्य, आर्द्धक्रोशिकम्। यहां पूर्वपद को विकल्प और उत्तरपद को नित्य वृद्धि न होवे ॥ ८४४ ॥

नातः परस्य ॥ ९४५ ॥ अ० ७। ३। २७॥

जित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो तो अर्द्ध शब्द से परे परिमाणवाची उत्तरपद के आदि अकार को वृद्धि न हो और पूर्वपद को विकल्प करके होवे जैसे। अर्द्धप्रस्थेन क्रीतमार्द्धप्रस्थिकम्। अर्द्धप्रस्थिकम्। आर्द्धकंसिकः। अर्द्धकंसिकः। यहां अकार का ग्रहण इसलिये है कि। आर्द्धकौडविकः। यहां वृद्धि का निषेध न होवे और अकार में तपरकरण इसलिये है कि। अर्द्धखार्यां भवा, आर्द्धखारी। यहां खारी शब्द उत्तरपद के आदि में दीर्घ आकार है यद्यपि वृद्धि होने न होने में कुछ विशेष नहीं दीखता तो भी। आर्द्धखारी भार्य्या अस्य आर्द्धखारीभार्य्यः। यहां वृद्धि के निमित्त तद्धित प्रत्यय के परे पुंवद्भाव का निषेध नहीं पावे गा। क्योंकि जिस तद्धित प्रत्यय के परे वृद्धि का निषेध है वह वृद्धि का निमित्त नहीं हो सकता। कि जैसे। वैयाकरणी भार्य्या अस्य, वैयाकरणभार्य्यः। यहां पुंवद्भाव हो जाता है वैसे उस में भी हो जावे गा ॥ ८४५ ॥

प्रवाहणस्य ढे ॥ ९४६ ॥ अ० ७। ३। २८॥

तद्धित संज्ञक ढ प्रत्यय परे हो तो प्रवाहण शब्द के उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि हो और पूर्वपद के आदि अच् को विकल्प करके होवे जैसे। प्रवाहणस्यापत्यं प्रावाहणेयः। प्रवाहणेयः। प्रवाहण शब्द का शुभ्रादिगण में पाठ होने से ढक् प्रत्यय हो जाता है ॥ ८४६ ॥

तत्प्रत्ययस्य च ॥ ९४७ ॥ अ० ७। ३। २९॥

जित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो तो ढक् प्रत्ययान्त प्रवाहण शब्द में उत्तरपद के आदि अच् को नित्य और पूर्वप[illegible] करके

वृद्धि हो जैसे । प्रवाहणेयस्य युवापत्यं, प्रावाहणेयिः । प्रवाहणेयिः । इत्यादि । अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय हुआ है । दूसरे प्रत्यय के आश्रय जो वृद्धि है सो ठक् प्रत्यय को मान के विकल्प से नहीं हो सकती इसलिये यह सूत्र कहा है ॥ ८४७ ॥

नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् ॥ ९४८ ॥ अ० ७ । ३ । ३० ॥

ञित् णित् और कित् संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो तो नञ् से परे जो शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल, और निपुण उत्तरपद उसके अचों में आदि अच् को नित्य और पूर्वपद को विकल्प करके वृद्धि हो जैसे । (शुचि) अशुचेर्भावः, आशौचम् । अशौचम् । (ईश्वर) अनीश्वरस्य भावः, आनैश्वर्यम् । अनैश्वर्यम् । (क्षेत्रज्ञ) आक्षैत्रज्ञ्यम् । अक्षैत्रज्ञ्यम् । (कुशल) अकुशलस्य भावः, आकौशलम् । अकौशलम् । (निपुण) आनैपुणम् । अनैपुणम् ॥ ८४८ ॥

यथातथयथापुरयोः पर्यायेण ॥ ९४९ ॥ अ० ७ । ३ । ३१ ॥

ञित् णित् और कित्संज्ञक तद्धित प्रत्यय परे हो तो नञ् से परे जो यथातथ और यथापुर उस के अचों में आदि अच् को पर्याय से वृद्धि हो अर्थात् जब पूर्वपद को हो तब उत्तरपद को नहीं और जब उत्तरपद को हो तब पूर्वपद को नहीं होवे जैसे । अयथातथा भावः, आयथातथ्यम् । अयाथातथ्यम् । आयथापुर्यम् । अयाथापुर्यम् । अयथातथा और अयथापुर ये दोनों शब्द ब्राह्मणादि गण में पढ़े हैं इस से ष्यञ् प्रत्यय होता है ॥ ८४९ ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीव्याख्यातोऽष्टाध्याय्यां
स्त्रैणताद्धितोऽयं ग्रन्थः समाप्तः ॥

वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे मार्गशीर्षे सिते दले ।
पञ्चमीशनिवारेऽयं ग्रन्थः पूर्त्तिं गतः शुभः ॥

संवत् १९३८ मार्ग शुक्ल ५ शनिवार के दिन यह स्त्रैणताद्धित ग्रन्थ
श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पूरा किया ॥

वैदिकयन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों का सूचीपत्र और संक्षिप्त नियम।

(१) मूल्य रोक भेजकर मंगावें (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जायंगे (३) डाक-महसूल वेदभाष्य छोड़कर सब से अलग लिया जायगा २) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक रजिस्टरी कराकर भेजे जायंगे॥ (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें॥

पुस्तक	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अंक १—१९८	५६।/)	
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण	३८)	
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका विना जिल्द की.	३)	≠)
,, जिल्द की	३।)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	≤)	)॥
सन्धिविषय	।≠)॥	)॥
नामिक	।≠)॥	)॥
कारकीय	।/)॥	)॥
सामासिक	।≠)॥	)॥
स्त्रैणताद्धित	।≠)	≤)
अव्ययार्थ	≠)॥	)।
सौवर	≠)॥	)॥
आख्यातिक	१।)	≠)॥
पारिभाषिक	≠)॥	)॥
धातुपाठ	।≠)	)॥
गणपाठ	।≤)	)॥
उणादिकोष	।≠)	=)
निघण्टु	।≠)	)॥
अष्टाध्यायी मूल	।/)॥	)।
संस्कृतवाक्यप्रबोध	≠)	)।
व्यवहारभानु	)॥	)।
गोमता के संक्षेप नियम	≠)	)।

पुस्तक	मू०	डा०
व्यवहारभानु	≠)	)।
भ्रमोच्छेदन	)॥	)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	)।
मेलाचांदापुर	≤)	)।
आर्योद्देश्यरत्नमाला	≤)	)।
गोकरुणानिधि	≤)	)।
स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	)॥	)।
वेदविरुद्धमतखण्डन	≤)	)।
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)।
शास्त्रार्थफीरोजाबाद	≠)	)।
शास्त्रार्थकाशी	≤)	)।
आर्याभिविनय	।)	)।
,, जिल्द की	।≠)	≤)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	≤)	)।
भ्रान्तिनिवारण	≤)।	)।
पञ्चमहायज्ञविधि	≠)।	)।
,, जिल्द की	।/)।	/)
आर्यसमाज के नियमोपनियम	)।	)।
सत्यार्थप्रकाश	२।)।	≠)।
,, जिल्द का	२।।)	।)
संस्कारविधि	१।)	/)
,, जिल्द की (≠)		≠)

१०७	९	समाड्ड	समाड्डे
१०७	११	सिद्द	सिद्द
१०७	११	से	में
११६	३४	प्रत्य	प्रत्यय
११६	२८	ब्द	शब्द
११७	१७	त्वद्सदृग्र	त्वद्सदृग्र
१२२	२२	कच्छा	कच्छ्रा
१२२	२२	कच्छ्र	कच्छ्रा
१२४	१३	गविष्टी	गविष्ठी
१२६	१५	समभनो	समभनो
१२८	१०	२७१	०२१
१२८	२६	सत्र	सूत्र
१२२	१२	श्रोर	श्रोर
१३७	७	श्राचारण	श्राचरण
१३७	१५	श्रतियातने	श्रतियायने
१३८	०	वारायणेया	वारायणेया
१३८	८	दर्शनीयतराः	दर्शनीयतराः
१३८	८	इत्ययादि	इत्यादि
१३८	८	गरीयासः	गरीयांसः
१३८	८	पटीयासः	पटीयांसः
१३८	८	वक्ष्माण	वक्ष्यमाण
१४२	२२	द्वियीयस्वे	द्वितीयस्वे
१४४	३४	में	में
१४६	१८	गावोऽप्यिनु	गावोऽप्यिनु
१४६	१८	श्रायिद्रवीन	श्रायितद्रवीन
१४७	१	स्त्रीतयावितः	स्त्रैयतावितः
१५६	२४	८४७	८७४
१५७	८	८५७	८७५
१५७	१२	श्रोर ईकार	ईकार
१६१	१४	प्रयत्य	प्रत्यय
१६८	१०	सब्द	शब्द
१७१	०	वारयतीति	वारियतीति
१७१	२१	माषगकः	माषकः

अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः

नवमो भागः ॥

॥ अव्ययार्थः ॥

॥ पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्याम् ॥

षष्ठो भागः ॥

॥ श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ॥

॥ पठनपाठनव्यवस्थायां नवमम्पुस्तकम् ॥

मुन्शी शिवदयालसिंहस्य प्रबन्धेन

प्रयाग

वैदिक यन्त्रालये मुद्रितम्

संवत् १९४७ श्रावण

दूसरी बार १०००

मूल्य =)

डाक महसूल)॥

ओ३म्

अथ भूमिका ॥

——:०:——

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम् ॥

जो शब्द स्वरूप तीनों लिङ्ग, सातों विभक्तियों और इन के एकवचन, द्विवचन, बहुवचन (सात विभक्तियों के तीन २ के हिसाब से सात तिये इक्कीस वचनों) में एक से बने रहें अर्थात् जैसा उन का स्वरूप प्रथम हो वैसा ही मध्य और अन्त में भी बना रहे। जिन में कोई विकार न हो उन को अव्यय शब्द कहते हैं इन का पाठ अकारादि क्रम से इस ग्रन्थ में लिखा है। ये अव्यय शब्द पद, वाक्य और क्रिया के साथ सम्बन्ध रखते हैं। और कहीं २ कोई२ अव्यय प्रकृति के अर्थ को विलक्षण करके दिखला देता है। जैसे प्र, परा, वि, इत्यादि (भवः) किसी का नाम वा संसार और (प्रभवः) उत्पत्ति (जयः) जीत और (पराजयः) हार (भूः) जो होता है। और (विभुः) व्यापक इत्यादि । और (च) (वा) आदि शब्द प्रकृति के अर्थ को बदलते नहीं किन्तु सहायक होते हैं। जिस लिये वेदादि शास्त्रों में इन के प्रयोग आते हैं इस लिये इन का अर्थ विदित करना कराना सब को उचित है। क्योंकि विना अर्थज्ञान के कुछ भी लाभ नहीं हो सकता इस ग्रन्थ में तीन प्रकार का क्रम रक्खा गया है। प्रथम मूल अव्यय दूसरे कोष्ठ में उन का अर्थ और तीसरे कोष्ठ में अव्ययों के उदाहरण रख दिये हैं। इस ग्रन्थ को संस्कृत में बनाने का यही प्रयोजन है कि इस पुस्तक के पूर्व, सन्धिविषय आदि ग्रन्थों को क्रमशः जो लोग पढ़ेंगे उन को संस्कृत का समझना कुछ कठिन नहीं पड़ेगा। और संस्कृत बोलने लिखने में भी उपयोगी होगा।

इति भूमिका

ओ३म्

अथाऽव्ययार्थः ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
		अ
अथो, अथ	मङ्गलाऽनन्तराऽऽरम्भप्रश्नकार्त्स्न्याधिकारेषु ...	(मङ्गले) अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (अनन्तरे) वेदमधीत्याथ धर्मो जिज्ञासितव्यः (आरम्भे) अथाऽध्येतव्यम् (प्रश्ने) अथ वक्तुं समर्थोऽथ न समर्थः (कार्त्स्न्ये) अथ वेदार्थं ब्रूमः (अधिकारे) अथ शब्दानुशासनम् ॥
अति ...	क्रान्तप्रकर्षोल्लङ्घनाऽतिशयपूजनेषु ...	(क्रान्ते) मासामतिक्रान्तोऽतिमासः (प्रकर्षे) अत्युत्तमो विद्वान् (लंघने) [illegible] (अतिशये) अतिबली देवदत्तः (पूजने) अत्यादृतः ॥
अतीव ...	अतिशयार्थे	अतीव शोभते धर्मः ॥
अलम् ...	भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणेषु	(भूषणे) विद्ययाऽलङ्कृता कन्या (पर्याप्तौ) अलं भोक्ता (शक्तौ) अलं वीरो वीराय (वारणे) अलं [illegible] ॥
अवतः, अव	[illegible] ...	अवतो याहि । [illegible] ॥
अनु ...	पश्चात्सादृश्यलक्षणेत्थम्भूताख्यानभागहीनेषु ...	(पश्चात्) गुरुमनु[illegible] (सादृश्ये) वेदमनुचरति विद्वान् (लक्षणे) [illegible] (इत्थम्भूताख्याने) [illegible] ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
अभितः ...	समीपोभयतःशीघ्रसाकल्याभिमुखसर्वतोभावेषु	(समीपे) प्रयागमभितो गङ्गा (उभयतः) अभितो भवतु सेना (शीघ्रे) अभितोऽधीष्व (साकल्ये) अभितो वनं दग्धम् (अभिमुखे) अभितो दीपं शलभाः पतन्ति (सर्वतोभावे) अभितो वर्षति मेघः ॥
अहह ...	अद्भुतखेदयोः	(अद्भुते) अहह बुद्धिमत्ता राज्ञः (खेदे) अहह मया कालो व्यर्थो नीतः ॥
अभीक्ष्णम्, असकृत् ...	वारंवारार्थे	अभीक्ष्णं विचार्य वक्तव्यम्। असकृदध्यापनीया विद्यार्थिनः ॥
अञ्जसा, अन्हाय ...	द्रुते ...	अश्वोऽञ्जसा धावति। अन्हाय सूर्येण तमो निरस्तम् ॥
अन्तरेण, अन्तरा, अन्तरे ...	वर्जनामध्ययोः	(वर्जने) विद्यामन्तरेण कुतः शान्तिः (मध्ये) अनयोर्ग्रामयोरन्तरा नदी। अनयोरन्तरे तिष्ठामि ॥
अवश्यम् ...	निश्चये ...	सर्वैर्मनुष्यैरवश्यं वेदः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ॥
अर्वाक् ...	अवरे ...	अर्वागागच्छ दुष्टात्मन् ॥
अस्तम् ..	अदर्शने ...	सायमस्तमितो रविः ॥
अस्ति ..	सत्त्वेऽर्थे ..	अस्तीदं जङ्गमं जडम् ॥
अङ्ग ...	पुनरर्थसम्बोधनयोः ...	मूर्खोऽपि नावमन्यते किमङ्ग विद्वान्। अङ्ग देवदत्त ॥
अद्य ..	वर्तमानेऽहनि	अद्यायाहि मया सह ॥
अपरेद्युः ...	अपरदिने ...	अपरेद्युर्गमिष्यामि ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
अपरेद्युः, अन्येद्युः	अन्यस्मिन्दिने	अपरेद्युस्त्वमागच्छेः ॥
अन्यतरेद्युः ...	अन्यस्मादन्यस्मिन्दिने ..	आगतोऽन्यतरेद्युः सः ॥
अपि ...	पदार्थसम्भावनाऽन्ववसर्गगर्हासमुच्चयप्रश्नेषु	(पदार्थे) सर्पिषोऽपि स्यात् (सम्भावने) अपि सिञ्चेन् मूलकसहस्रम् (अन्ववसर्गे) अपि स्तुहि (गर्हायाम्) देवदत्तमपि कामिनम् (समुच्चये) पठापि पाठय (प्र-च्छायाम्) अपिचोरो भवेत् (प्रश्ने,त्वं किमपि जानासि ॥
अद्धा, अञ्जसा	स्वीकारे ...	विद्यामद्धावेहि । अञ्जसा धर्ममाचर ॥
अधरात्, ... अधरेण, ... अधस्तात् ...	एतेऽधोदिग्देशकालवाचकाः ...	अधरात्, अधरेण, अधस्ताद्गच्छेत्यादि ॥
अव ...	विनिग्रहक्रियायोगयोः ...	(विनिग्रहे) अवग्रहः (क्रियायोगे) अवतिष्ठते ॥
अधि ..	उपरिभावैश्वर्यक्रियायोगेषु	(उपरिभावे) अधिष्ठाता (ऐश्वर्ये) अधिराजः (क्रियायोगे) अधिगच्छेस्तु तान्स्वयम् ॥
अमा ...	सहसमीपयोः	(सहार्थे) मित्रेणाऽमा भुङ्क्ते (समीपे) अमात्यो

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
अनुकम् ...	आनुकूल्ये ...	अनुकं गच्छ ॥
अथ ...	आनन्तर्ये ...	भोजनं कृत्वाऽथ गच्छ ॥
अहोवत ...	अनुकम्पाखेदयोः ...	(अनुकम्पायाम्) अहोवत न हन्तव्यः (खेदे) अहोवत मे मृतः पुत्रः ॥
अमुत्र ...	भवान्तरे ...	अमुत्र जायते जन्तुः ॥
अहो ...	विस्मये ...	अहो रूपं पश्य ॥
अ ...	अभावे ...	अराजके तु लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात् ॥
अस्तु ...	असूयाङ्गीकारयोः ...	(असूयायाम्) अस्तु तवेदं कथनम् (अङ्गीकारे) अस्तु त्वद्वचः सत्यम् ॥
अप ...	पृथग्भावे ...	अपेतः ॥
अह ...	विनिग्रहार्थीयः ...	अयमहेदं करोतु ॥
अपहु ...	निन्दाशोभार्थयोः ...	(निन्दायाम्) अपहु मूर्खोऽयम् (शोभार्थे) अपहु पठत्ययम् ॥

आ

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
आशु ...	शीघ्रार्थे ...	आशध्यापय ॥
आङ् ...	अर्वागीपदर्थेक्रियायोगमर्यादाभिविधिषु ...	(अर्वाक्वि) आकाशादायुः (ईषदर्थे) आपिङ्गलः (क्रियायोगे) आगच्छति (मर्यादायाम्) आसमुद्राद्रालदण्डः (अभिविधौ) आकुमारं यशः पाणिनेः ॥
आस् ...	कोपपीडयोः	(कोपे) आः पाप किं विकत्थसे (पीडायाम्) आः ज्वरः किं करिष्यति ॥
आ ...	वाक्यस्मरणयोः	(वाक्ये) आ एवं नु मन्यसे (स्मरणे) आ एवं किल तत् ॥
आः ...	स्मृतिवाक्यानुकम्पासु ...	(स्मृतौ) आः स गतन्धनम् (वाक्ये) आःसाधु पठसि (अनुकम्पायाम्) आः कथमिमं दुःखयसि ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
आरात् …	दूरसमीपयोः	(दूरे) दुष्टादाराद्वसेत् (समीपे) श्रेष्ठादाराद्वसेत् ॥
आहो …	विकल्पे	अयं व्याकरणमधीत आहो निरुक्तम् ॥
आम् …	अङ्गीकारे	आङ्करोमि त्वद्वचः ॥
आहोस्वित्	प्रश्नपक्षान्तरयोः… …	(प्रश्ने) त्वं काशीवास्याहोस्विन्मथुरावासी (पक्षान्तरे) त्वं वैशेषिकं पठिष्यस्याहोस्विन्न्यायम् ॥
आविस् …	प्राकट्ये	आविर्भाव्या सत्कीर्तिः ॥
आनुषक् …	आनुकूल्ये	धर्मेणानुषग्वर्त्तितव्यम् ॥

इ

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
इति …	हेतुप्रकरणप्रकर्षादिसमाप्तिषु ॥	(हेतौ) शूरो हन्तीति कातरः पलायते (प्रकरणे) इति वदति पाणिनिः (प्रकर्षे) इत्याद्याऽऽसः (क्रमे) इति व्याकरणमधीते (अनुक्रमे) इति वेदमध्यापयति पठित्वेत्यर्थः (समाप्तौ) इति प्रथमः पादः ॥
इ …	भेदकोपोक्त्यनुकम्पाऽपाकरणेषु ॥	(भेदे) इ अयं पुरुषोत्तमः (कोपोक्तौ) इ दुष्टं छिन्धि (अनुकम्पायाम्) इ पुत्र सुखी भव (अपाकरणे) इ धावितः खलः ॥
इतरेद्युः …	इतरस्मिन्दिने	इतरेद्युः स आगतः ॥
इव …	उपमायाम्	आम इवायं वदति ॥
इदानीम् …	वर्त्तमानकाले	इदानीमस्मि नीरोगः ॥
इद्धा …	प्रकाशे	इद्धा तपत्ययं राजा ॥

ई

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
ई …	विषादानुकम्पयोः … …	(विषादे) ईमयं दुःखं ददाति (अनुकम्पायाम्) ई अनाथः सुखी भवेत् ॥
ईषत् …	अल्पेऽर्थे	ईषद्दत्तमनेनान्नं ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
		उ
उ ...	रुषोक्त्यनुकम्पानियोगसमन्वयपादपूरणेषु	(रुषोक्तौ) उ उत्तिष्ठ दुष्टेतः (अनुकम्पायाम्) अस्यौपधङ्गु (नियोगे) उ अयं द्वारि तिष्ठतु (समन्वये) उ अयं मम प्रियः (पादपूरणे) किमुकाय वाऽनघ ॥
उत ...	प्रश्नाप्यर्थविकल्पेषु	(प्रश्ने) वेदमधीषे उताध्यापयसि (अप्यर्थे) मा वधीः पितरंमोतमातरम् (विकल्पे) वेदंपठस्युत वेदाङ्गम् ॥
उररी ...	विस्ताराङ्गीकारयोः ...	(विस्तारे) उररीकरोति राज्यम् (अङ्गीकारे) उररीकुर्य्याद्धर्मम् ॥
उच्चैस् ...	महत्यर्थे	उच्चैः पर्वताः सन्ति ॥
उम् ...	प्रश्नेऽर्थे ...	उम् देवदत्तः क्व गतः ॥
उषाः ...	रात्र्यवसानयोः	(रात्रौ) उषा भवेत्तमोऽहता (तदवसाने) उत्तिष्ठ उषा जाता ॥
उभयेद्युः ...	उभयोर्दिनयोः	उभयेद्युः कृतं कार्य्यम् ॥
उत्तरेद्युः ...	आगामिदिने	उत्तरेद्युरहङ्गतः ॥
उदक् , उत्तरात्, उत्तरेण, उत्तरतः	एते उत्तरदिग्देशकालवाचकाः ॥	उदक् , उत्तरात्,उत्तरेण, उत्तरतो वा सन्ति वसन्ति वेत्यादि ॥
उपरि, उपरिष्टात् ...	ऊर्ध्वदिग्देशकालवाचकौ	उपरि, उपरिष्टात्, गच्छन्ति, पक्षिणः ॥
उप ...	उपजननसामीप्यक्रियायोगेषु	(उपजने) उपक्रमः (सामीप्ये) उपकुम्भम् (क्रियायोगे) उपतिष्ठते ॥
उद् ...	उत्कृष्टोर्ध्वक्रियायोगेषु	(उत्कृष्टे) उत्तमः (ऊर्ध्वे) उद्गतः (क्रियायोगे) उद्यम्यते ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
उताहो	विकल्पार्थे	त्वं मीमांसां पठस्युताहो वैशेषिकम् ॥
उपांशु	शनैर्जपेऽर्थे	उपांशु जपति ॥
उत् उकत्	उत्प्रेक्षायाम्	किमु विद्वान् धार्मिकः स्यात् । किमुत विद्यया सुखं भवेत् ॥

ऊ

ऊरी	विस्ताराङ्गीकारयोः ...	(विस्तारे) ऊरीकुर्य्याद्विद्याम् (अङ्गीकारे) ऊरीकुर्य्याद्धर्मम् ॥
ऊ	पक्षवाक्याऽऽरम्भाऽनुकंपासु	(पक्षे) ऊ अयं मम सेवकः (वाक्यारम्भे) ऊ एवं नु मन्यसे (अनुकम्पायाम्) ऊ ते दुःखं विनश्यतु ॥
ऊम्	रुषोक्तौ ...	ऊं शत्रुर्हन्तव्यः ॥
ऊर्ध्वम्	ऊर्ध्वदिग्देशकालवाचकः	ऊर्ध्वं गच्छति वायुः ॥

ऋ

ऋ	वाक्यगर्हणयोः	(वाक्ये) ऋ त्वं किं सेवसे (गर्हणे) ऋ गच्छ पापजनम् ॥
ऋधक्	स्वीकारे ...	ऋधक् सत्सङ्गतिं कुरु ॥
ऋते	वर्जनेऽर्थे ...	ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ॥

ए

एवम्	प्रकारोपमाङ्गीकाराऽवधारणेषु ...	(प्रकारे) एवं कुरु (उपमायाम्) एवम्भूतो देवदत्तः (अङ्गीकारे) एवमस्तु देवोऽहम् (अवधारणे) एवं विदुषां मतम् ॥
एव	अवधारणे	सत्यमेव वेदोक्तम् ॥
एकदा	कदाचिदर्थे	एकदाऽत्राऽऽगताः सर्वे ॥
एतर्हि	वर्त्तमानकाले	एतर्ह्यधीते वेदम् ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
		ऐ
ऐ	अनुनये ...	ऐ धर्ममुपदिश ॥
ऐषमः	वर्त्तमाने वर्षे	ऐषमो बालकोऽयं मे ॥
		ओ
ओम्	प्रणवोपक्रमाऽनुमतिषु	(प्रणवे) ओं प्रणवः (उपक्रमे) ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत (अनुमतौ) ओमिदं सत्यमुक्तमनेन ॥
		क
कु	पापकुत्सेषदर्थेषु ...	(पापे) कुकर्मा (कुत्सायाम्) कुपुरुषः (ईषदर्थे) कवोष्णम् ॥
किञ्चित्	अल्पे ...	किंचिदद्य मया भुक्तम् ॥
कामम्	कामानुमतकामप्रवेदनयोः ...	(कामानुमते) कामं त्वदीयं कार्यं करोमि (कामप्रवेदने) कामं मे पुत्रं पाठय ॥
कच्चित्	कामप्रवेदने	कच्चित्कुशलमस्ति ते ॥
कदाचित्	कस्मिंश्चित्काले	कारणमन्तरा कार्यं कदाचिन्न जायते ॥
किल	विद्याप्रकर्षनिश्चयवार्त्तासम्भाव्येषु ॥	(विद्यायाम्) किलायं विद्वान् (प्रकर्षे) किलेदं वस्तु ग्राह्यम् (निश्चये) एवं किलेदमस्ति (वार्त्तायाम्) जघान कंसं किल वासुदेवः (संभाव्ये) विद्वांसं किलाश्रयेयुर्विद्यार्थिनः ॥
कम्	वारिमूर्द्धसुखेषु ...	(वारिणि) कं पिब (मूर्द्धि) कं भूषय (सुखे) मह्यम् कं देहि ॥
किमुत, किमूत	विकल्पे	त्वं न्यायमधीषे किमुत वेदान्तम् । त्वमायुर्वेदमधीषे किमूत धनुर्वेदम् ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
किम्	पृच्छाजुगुप्सनप्रश्नविकल्पक्षेपेषु ॥	(पृच्छायाम्) किं पठसि भोः (जुगुप्सने) किं पण्डितो यः पचपालो (प्रश्ने) किमयं पुरुषः (विकल्पे) किमैहिककर्म्मजन्यं सुखं दुःखं वा पूर्वजन्मकृतम् (क्षेपे) कथासौ राजा किं राजा ॥
कूपत्	कोपे	कथं कूपद्वदसि ॥
कुवित्	बले	कुवित्पुरुषः ॥
केवालो	हिंसायाम्	केवालो करोति दुष्टान् ॥
कपि	श्रद्धाप्रतिघाते	कपि इत्थ पयः पिबति ॥
किंच	प्राक्पूर्वस्मिन्नवान्तरे …	(प्राक्पूर्वस्मिन्) व्याकरणं मयाऽधीतं किंचान्यद्वाऽधीतम् (अवान्तरे) अनयोः पुरुषयोः किंचास्ति ॥
किनु	प्रश्नवितर्कयोः	(प्रश्ने) किन्नु तेनोक्तम् (वितर्के) किनु नो दुःखं भवति ॥
किमु	सम्भावनाऽऽमर्षयोः	(सम्भावनायाम्) किमु त्वं विद्यां पठिष्यसि (आमर्षे) किमु तदेवं स्यान्न वा ॥
		ख
खलु	निषेधवाक्यालङ्कारजिज्ञासाऽनुनयेषु ॥	(निषेधे) खल्वधर्म्मान्निर्गच्छेत् (वाक्यालङ्कारे) एतत्खल्वाहुः (जिज्ञासायाम्) व्याकरणं खलु पठामि (अनुनये) विद्यां खल्वध्यापय ॥
खम्	इन्द्रियाकाशब्रह्मसु …	(इन्द्रिये) ततः खानि च संस्पृशेत् (आकाशे) खमाकाशम् (ब्रह्मणि) खं ब्रह्म ॥
		ग
गुलगुधा	पीडार्थे	गुलगुधा करोति जन्तुः ॥
		च
च्वि	अभूततद्भावसंपद्यार्थे	अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते तस्य करणं शुक्लीकरणम् ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
चिराय, चिररात्राय, चिरस्य, चिरेण, चिरात्, चिरम्,	चिरकालार्थाः	चिराय सन्तर्पय धनैः सुपात्रान् । चिररात्राय संचितं वस्तु । चिरस्य दृष्टेव मृतोत्थितेव । चिरेणाऽऽगतोऽसि मित्र । चिरात् स क गतोऽस्ति । चिरं विद्या पठनीया ॥
चित्	पूजोपमाऽवकुत्सितासाकल्येषु ॥	(पूजायाम्) आचार्यश्चिदिदं ब्रूयात् (उपमायाम्) दधिचित्तक्रम् (अवकुत्सिते) कुल्माषांश्चिदाहरति ॥ एषु कश्चित् करोति
चटु	लौलुप्ये ...	चटूयं भोजने ॥
चण, चन	अल्पे ...	नास्ति किं चण । न जानासि किं चन ॥
च	अन्वाचयसमाहारेतरेतरसमुच्चयपादपूरणेषु ॥	(अन्वाचये) विद्यां पठ गुरुं च सेवस्व (समाहारे) संज्ञा च परिभाषा च संज्ञापरिभाषम् (इतरेतरस्मिन्) धर्मश्च अर्थश्च कामश्च मोक्षश्च ते धर्मार्थकाममोक्षाः (समुच्चये) ईश्वरं च धर्मं च सेवस्व (पादपूरणे) स च प्राह सुग्रान्ताय ॥

ज

जातु	कस्मिंश्चित्काले	न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥
जोषम्	सुखतूष्णीमर्थयोः ...	(सुखे) जोषमासीत (तूष्णीम्) जोषं कुरु ॥
ज्योक्	शाश्वते ...	ज्योक् पश्येम ॥

झ

झटिति	द्रुतेऽर्थे	नटो वंशं झटित्यारोहति ॥

त

तथाहि	पूर्वसादृश्ये	तथाहि वद ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
तूष्णीम्, तूष्णीकाम्	मौनेऽर्थे	कथं तूष्णीं स्थितो विद्वन् । तूष्णीकां भव बालिश ॥
तिरस्	तिर्यगर्थे	तिरो द्रव्या समीचते ॥
तथा	साम्येऽर्थे	तथैवेदमस्ति ॥
तत्, ततः	हेत्वर्थे	यदयं याचते तदस्मै ददामि । यतोऽयं विद्वान् ततोऽध्यापयतु ॥
त्वः	विनियद्वार्थेसर्वनामार्द्रनामसु	(विनियद्वार्थे) ऋचां त्वः पोषमास्ते (सर्वनाम्नि) त्वे गच्छति त्वस्मै देहि (अर्द्धनाम्नि) गायत्रं त्वो गायति शक्करीषु ॥
तदा, तदानीम्	तस्मिन् कालेऽर्थे ॥	क्व गतस्त्वं सखे तदा । तदानीमागमिष्यामि ॥
तु	भेदाऽवधारणपादपूरणेषु	(भेदे) देवदत्तादिष्णुमित्रस्तु बलवान् (अवधारणे) वेदोक्तन्तु सत्यम् (पादपूरणे) विद्वांस्त्वध्यापयेच्छिष्यान् ॥
तावत्	मानाऽवधिसाकल्यावधारणेषु ..	(माने) तावच्छ्लोकाऽयं यावत्पठेत (अवधौ) तावदध्येयं यावज्जीवनम् (साकल्ये) तावद्भुक्तं यावद्दत्तम् (अवधारणे) तावदामन्त्रयस्व यावच्छ्रोत्रियम् ॥

द

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
दक्षिणा, दक्षिणेन, दक्षिणात्, दक्षिणाहि, दक्षिणतः,	एते दक्षिणदिग्देशकालवाचकाः	दक्षिणा, दक्षिणेन, दक्षिणात्, दक्षिणाहि, दक्षिणतः, सन्ति वसन्ति वेत्यादि ॥
दिष्ट्या	आनन्देऽर्थे..	दिष्ट्या ते दर्शनं भ्रातः ॥
दुःषमम्	निन्द्येऽर्थे ...	दुःषमं खलु भाषितम् ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
पुरा	प्रबन्धचिरातीतनिकटाऽऽगामिषु	(प्रबन्धे) पुरा पाठयितव्यः (चिरातीते) पुरातनमिदं स्थानम् (निकटे) पुराऽऽयाति मेघः (आगामिनि) पुरा प्रीतं द्रष्टव्यम् ॥
पुरस्तात्	प्राचीप्रथमदेशकालेषु	(प्राच्याम्) पुरस्तादुदेति सूर्यः (प्रथमे) पुरस्तादृच (देशे काले च) पुरस्ताद्देशे काले वा ग्रामम् ॥
प्रति	प्रतिनिधिप्रतिदानलक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु	(प्रतिनिधौ) मंत्री राज्ञः प्रति (प्रतिदाने) प्रतितिलेभ्यो माषान् देहि (लक्षणे) वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् (इत्थम्भूताख्याने) प्रगल्भं प्रति संभाषणीयम् (भागे) इदं मां प्रति स्यात् (वीप्सायाम्) वृक्षं वृक्षं प्रतिसिञ्च ॥
पश्चात्	प्रतीचीचरमयोः	(प्रतीच्याम्) पश्चादस्तं गतो रविः (चरमे) पश्चाद्यतिः संन्यसेत् ॥
प्रसीम्	प्रसर्गसीमासर्वतोभावेषु	(प्रसर्गे) प्रसीमादित्योऽभवत् (सीमायाम्) प्रसीं समुद्रं गच्छेत् (सर्वतोभावे) प्रसीं वायुर्याति ॥
पुरः, पुरतः	सन्मुखार्थे	पुरो गच्छ । पुरतः पठ ॥
प्रेत्य	भवान्तरे	प्रेत्याऽत्र जायते जन्तुः ॥
प्रसह्य	हठार्थे ...	कार्यं प्रसह्य करोषि ॥
प्रादुस्	नामप्रकाशप्राकट्येषु	(नाशे) प्रादुरासीद्युधिष्ठिरः (प्रकाशे) प्रादुरासीत्तमोनुदः (प्राकट्ये) प्रादुरभूता त्वया विद्या ।
परितस्	सर्वतोभावे...	पावान्तु परितः शिवः ॥
परमम्, परम्	अङ्गीकारार्थे	परमसुखं त्वयाऽनघ । परमामोदन् ॥
प्राक्	अतीतपूर्वदिग्देशकालवाचकः ।	(अतीते) प्रागासीज्जगदुत्पत्तिः । (पूर्वदिशि) प्रागन्तु गता वा । (देशे, काले च) प्राग्देशे काले वा ।
पुनर्	विशेषपक्षान्तरयोः	(विशेषे) किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्याः (पक्षान्तरे) पुनर्वद ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
प्रायस्	बहुधार्थे ...	अस्मिन्नगरे प्रायो धनाढ्याः सन्ति ॥
प्रगे, प्रातर्,	प्रभातेऽर्थे ...	प्रगे सर्वैर्न शयितव्यम् । प्रातः स्नाहि यदीष्टं स्यात् ॥
परुत्	वर्त्तमानात्पूर्वे वर्षे	परुज्जातो बालः ॥
परारि	पूर्वतरे वर्षे.	परारि जाता कन्येयम् ॥
पूर्वेद्युः	पूर्वस्मिन्दिने	पूर्वेद्युरगमं ग्रामम् ॥
परेद्यवि	परेऽहनि ...	परेद्यव्यागतो विद्वान् ॥
परश्वस्	तत्परागामिदिने	परश्व आगमिष्यामि ॥
प्रत्यक्	पश्चिमदिग्दे प्रकालवाचकः	प्रत्यग्गच्छन्त्यागच्छन्ति ॥
प्रवाहुकम्	प्राबल्ये ..	प्रवाहुकं कुर्वन्ति दस्यवः ॥
प्राध्वम्	बन्धनानुकूलार्थयोः	(बन्धने) प्राध्वं चोरो मया (आनुकूल्ये) प्राध्वं मित्रो मया ॥

फ

फट्	शैघ्र्ये ...	फट्वद ॥
फल्, फली	विकारार्थे ...	फलूकृत्य । फलीकृत्य ॥

ब

बाट्	आनुकूल्ये ...	बाढमवदीत् ॥
बहुलम्	बह्वर्थे ...	उत्साहो बहुलम् ॥
बहिर्	बाह्येऽर्थे ...	बहिष्कार्यो दुरात्मा ॥
बलवत्	अतिशयार्थे	बलवद्विद्युज्ज्वलति ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
बत	खेदाऽनुकम्पासन्तोषविस्मयाऽऽमन्त्रणेषु	(खेदे) बत महत्कष्टम् (अनुकम्पायाम्) बतायमरोगः स्यात् (सन्तोषे) मात्रा पुत्रो बतालिंगितः (विस्मये) किमिदं बत दृश्यते (आमंत्रणे) एहि बत सुखं भुङ्क्ष्व ॥

भ

भोः	सम्बोधने ...	भोः शिष्य सद्यः पठ ॥
भाजक्	विभागे ...	भाजगमं देयं भिक्षुकेभ्यः ॥
भूरि	बह्वर्थे ...	भूरि विद्यार्थिनः पठन्ति ॥
भूयस्	पुनःपुनरधिकार्थयोः ...	(पुनःपुनरर्थे) भूयस्तेऽहं प्रवक्ष्यामि (अधिकार्थे) भूयो देहि सत्पात्राय ॥
भ्रंसकला	हिंसार्थे ...	भ्रंसकला कृत्य ॥

म

मुहुः	बारंबारेऽर्थे	मुहुर्द्रष्टव्यो वेदः ॥
मङ्क्षु	द्रुतेऽर्थे ...	मङ्क्षु धावन्ति मृगाः ॥
मृषा, मुधा, मिथ्या,	व्यर्थकेऽर्थे ...	मृषा वदति धूर्त्तोऽयम् । मुधा मूर्खा भ्रमन्त्यत्र । मिथ्येदं वचनं वेदविरुद्धम् ॥
मनाक्	अल्पेऽर्थे ...	मनाङ्मुक्तं कथं त्वया ॥
मास्म, मा, मो,	वारणे ...	मास्म कुर्यादिदं पुत्र । माकुर्वधर्मे मनः। मो अद्य हिंसे धर्मम् ॥
माकिम्	निषेधे ...	माकिमसत्यं वदेत् ॥
मात्रायाम्	अल्पे ...	कणेन मात्रायां भोक्तव्यम् ॥

य

यथायथम्, यथाद्गम् ।	यथावदर्थे ...	यथायथं वदत्याप्तः । यथाद्गं धर्मं पालयति ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
यत्, यतः	हेत्वर्थे ...	यद्यं याचते तदिदं ददामि । यतोऽयं विद्वांस्ततो धार्मिकः ॥
यावत्	मानाऽवधि-साकल्याऽव-धारणेषु ...	(माने) यावद्बुद्धिस्तावदध्येयम् (अवधौ) यावद्ब्रह्म-चर्यं तावदध्येयम् (साकल्ये) यावद्वेदार्थं तावदधीतम् (अवधारणे) यावद्गोतव्यम् ॥
यथा, यथो	सादृश्यापर-भावयोः ...	(सादृश्ये) यथा, यथो, वा देवदत्तस्तथा विष्णुमित्रः पठति (अपरभावे) यथा, यथो वा धावति ॥
यथार्थम्	सत्येऽर्थे ...	यथार्थं वदति धर्मात्मा ॥
यथावत्	योग्येऽर्थे .	यथावत्कर्म करोति विद्वान् ॥
युगपत्	सहार्थे ...	आगता युगपत्सर्वे ॥

र

रे, रे,	नीचसम्बोधने	रे वा रे जन ॥
विष्वक्, विष्वतस्	सर्वतोभावे...	विष्वगवस्थितं ब्रह्म । विष्वतो धर्ममाचरेत् ॥
वौषट्,वषट्।	वाक्यार्थे ...	बालो मातुर्वौषट्वमेत् । इन्द्रो वषड् वर्षति ॥
वत्, व,	साम्येऽर्थे ...	तद्वदिदम् । इदं व तत् ॥
वि	पृथग्विशेषा-र्थयोः ...	(पृथगर्थे) विगतः (विशेषार्थे) विशिष्टः ॥
वा ।	उपमानिश्च-यार्थविकल्पेषु	(उपमायाम्) सिंहो वा कुरो भवति (निश्चये) सर्वं वामेः सुसेवितम् (विकल्पे) व्याकरणं पठसि वा वेदम् ॥
इवा	व्यर्थकेऽर्थे ···	इवा पुरो देवदत्तः ॥
वै	पादपूरणनि-श्चयार्थयोः ...	(पादपूरणे) धर्म त्वा वच्मि वै हितम् (निश्चये) सत्यं वै सततं ब्रूयात् ॥
वरम्	अङ्गीकारे...	वरं विषः सुसंचितः ॥
वेलायाम्	समये ...	वेलायां भोक्तव्यम् ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
वशम्	स्वाधीनतायाम् ...	शत्रून् वशन्नयेत् ॥
विक्ली, वर्षाली,	हिंसायाम्...	विक्ली कृत्य । वर्षाली कृत्य ॥

श

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
शश्वत्	पुनः सदार्थयोः ...	(पुनरर्थे) शश्वत्संध्यामुपासीत (सदार्थे) शश्वत्सत्यं वदेत् ॥
शु	शीघ्रे ...	शु पठ ॥
शम्	सुखकल्याणयोः ...	(सुखे) शमस्तु ते (कल्याणे) शङ्करः ॥
श्रौषट्	वाक्यार्थयोगे	जिज्ञासुर्विदुषः श्रौषट् गच्छेत् ॥
शमुपजोषम्	आनन्दे ...	शमुपजोषं सेवन्ताम् ॥
श्वस्	अनागतेऽहनि	श्वो गन्तास्मि तवान्तिकम् ॥
शकला	हिंसायाम्...	शकलाकृत्य ॥
शकृत्	मले ...	शकृत्कृतं वत्सेन ॥

स

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
सम्	एकीभावाऽऽनन्दयोः	सङ्गतं घृतं तैले । समागतः सत्पुरुषान् ॥
स्वस्ति	आशीःक्षेमपुण्येषु	(आशिषि) स्वस्ति ते भूयात् (क्षेमे) स्वस्ति ग (पुण्ये) स्वस्तिमान्सुखमाप्नोति ॥
स्वित्	प्रश्नवितर्कयोः	(प्रश्ने) देवदत्त किंस्वित्पठितमस्ति (वितर्के) अधि पाण्डित्यं देवदत्ते स्विद्विष्णुमित्रे ॥
सकृत्	सहैकवारयोः	(सह) सकृद्गच्छन्तु भृत्याः (एकवारे) सकृद्दिवा कुर्यात् ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
साक्षात्	तुल्यप्रत्यक्षयोः	(तुल्ये) साक्षात्सिंहोऽयं वीरः (प्रत्यक्षे) साक्षान्मुनिर्मया दृष्टः ॥
सीम	सीमायाम्	विसीमतः सुरुचो वेनआवः ॥
सामि	अर्द्धजुगुप्सयोः	(अर्द्धे) सामि पठितं व्याकरणम् (जुगुप्सायाम्) साम्यधर्मः सेवितोऽनेन ॥
समया	अन्तिकमध्ययोः	(अन्तिके) समया नगरं नदी (मध्ये) समया शैलं ग्रामः ॥
स्राक्, सपदि सद्यः,	द्रुतेऽर्थे	स्राक् पठति बुद्धिमान् सपदि धावत्यश्वः सद्यो याहि ॥
सु	पूजने	सुपुरुषः ॥
साचि	तिर्य्यगर्थे	साचि गमनं करोति सर्पः ॥
साकम्, सार्द्धम्, समम्, सत्रा, सह	सहार्थे	राज्ञा साकं गच्छन्तु । शिष्यैः सार्द्धमागतोऽध्यापकः । पित्रा समं न विवदितव्यम् । मया सत्रा को गच्छेत् । विदुषा सह मन्त्री सदा रचेत् ॥
स्वाहा, स्वधा	वाक्यार्थयोगे	अग्नये स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा ॥
साम्प्रतम्, संप्रति,	युक्तवर्त्तमानार्थयोः	(युक्ते) क्रमशो वच्मि साम्प्रतम् । संप्रति वा (वर्त्तमाने) सांप्रतं गच्छामि संप्रति वा ॥
स्थाने	युक्तेऽर्थे	अयं तिष्ठतु राज्ञः स्थाने ॥
समन्ततस्, सर्वतस्,	सर्वतो भावे	मेघो वर्षति समन्ततः । सर्वतो वाति पवनः ॥
संवत्	वर्षे	प्रभवो नाम संवत् ॥
स्वयम्	आत्मार्थे	स्वयमिच्छामि पठितुम् ॥
सना, सनुतर्, सनत्, सनात्	सर्वदार्थे	सनातनः । सनुतः पुरुषार्थं प्रयतेरन् । सनद्विद्या सेवन्ताम् । सनाद्बुद्धिं वर्द्धयति विद्वान् ॥
स्म	अतीते	भवति स्म विद्याढ्यो देवदत्तः ॥
सुष्ठु	प्रशंसायाम्	सुष्ठु काव्यं पठसि त्वम् ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
सायम्	संध्यासमये	सायं संध्यामुपासीरन् ॥
सदा,सर्वदा,	सर्वस्मिन्काले	धर्मः सदा नरैः सेव्यः । सर्वदा सुखमास्व्यम् ॥
सजूः, सूपत्	सहार्थे	सजूः, सूपदा गच्छन्ति भृत्याः ॥
स्वंसकला	हिंसायाम्	स्वंसकलाकृत्य ॥
सत्	आदरे	सत्कृत्य । सत्कृतम् । यस्सत्करोति ॥
सहसा	अतर्कितबलात्कारयोः	(अतर्किते) सहसा करोत्ययं सदा (बलात्कारे) सहसा विदधीत न क्रियाम् ॥
सम्यक्	दृढ़प्रशंसयोः	(दृढ़े) सम्यग्धार्मिकः (प्रशंसायाम्) सम्यगध्यापकः ॥

ह

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
हन्त	हर्षविषादाऽनुकम्पावाक्यारम्भे	(हर्षे) हन्त लाभो महान्प्राप्तः (विषादे) हन्त नष्टो बन्धुर्मे (अनुकम्पायाम्) हन्त दीनो रक्षितव्यः (वाक्यारम्भे) हन्त ते कथयिष्यामि ॥
ह	अवधारणविनिग्रहार्थपादपूर्णेषु	(अवधारणे) अयमिदं ह करिष्यति (विनिग्रहे) अयं हेदं करोतु (पादपूरणे) तं हाऽध्यापयति प्राज्ञः ॥
हि	हेत्वपदेशाऽनुपृष्टाऽसूयाऽवधारणपादपूरणविस्मयेषु	(हेत्वपदेशे) इदं हि करिष्यति (अनुपृष्टे) कथं हि करिष्यति(असूयायाम्) कथं हि व्याकरिष्यति(अवधारणे) इदं हि कर्त्तव्यम् (पादपूरणे) अहं हि यास्यामि वरंपुरं तव (विस्मये) बलं हि वीरस्यसमीक्ष्यतां नराः ॥
हुम्	वितर्कपरिप्रश्नयोः	(वितर्के) दुःखमिदानीन्तनेन कर्मणा हुं पुरातनेन (परिप्रश्ने) हुं देवदत्त त्वया किं किमधीतम् ॥
हिरुक्	वर्जनेऽर्थे ···	हिरुग्धर्मेण कुतः सुखम् ॥
हे,है,	सम्बोधने···	हे विद्वन्नुपदिश । है अध्यापक पाठय ॥
ह्यस्	गतदिने ···	ह्यः, सखायं, समागच्छत् ॥
हाहा	खेदहास्ययोः	हाहा पुत्रो मृतो मे । हाहा तव का वार्त्ता ॥
हो	विस्मये ···	हो वीरेण बहुश्रुतम् ॥

अथ कृदव्ययानि

से, सेन्, असे, असेन्, कसे, कसेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ्, तवेन्, के, इध्यै, के, तवै, केन्, केन्य, त्वन्, णमुल्, क्त्वा, तोसुन्, कसुन्, णमुल्, कमुल्, तुमुन्, तसिल्, त्रल्, ह, दा, र्हिल्, धुना, दानीम्, थाल्, थमु, था, अस्ताति, अतसुच्, आति, एनप्, आच्, आहि, असि, धा, कृत्वसुच्, सुच्, शस्, ध्यमुञ्, धमुञ्, धाम्, थम्, तसि, वति, ना, नाञ्, घो, साति, त्रा, डाच्, ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
से	तुमर्थे छन्दसि	वक्षे रायः (धनानि वोढुम्) ॥
सेन्	„	तावामेषे रथानाम् (युवां रथान् गमयितुं समर्थौ) ॥
असे, असेन्,	„	क्रत्वे दक्षाय जीवसे (जीवितुम्) ॥
कसे,	„	प्रेषे भगाय ॥
कसेन्,	„	श्रियसे ॥
अध्यै, अध्यैन्	„	कर्मण्युपाचरध्यै ॥
कध्यै, कध्यैन्,	„	इन्द्राग्नोआहुवध्यै ॥
शध्यै, शध्यैन्,	„	सह मादयध्यै ॥
तवै	„	ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै ॥
तवेङ्	„	दशमे मासि सूतवे ॥
तवेन्	„	स्वर्देवेषु गन्तवे ॥
के,	„	प्रये देवेभ्यः प्रयातुमित्यर्थः ॥
इध्यै,	„	अपामोषधीनां रोहिध्यै (रोहणाय) अध्यधिध्यै (अध्ययनाय) ॥
के,	„	दृशे विश्वाय सूर्यम् (द्रष्टुम्) विख्ये (विख्यातुम्) ॥
तवै,	कृत्यार्थेछन्दसि	परिधातवै (परिधातव्यम्) ॥
केन्,	„	नावगाहे (नावगाहितव्यम् ॥
केन्य,	„	शुश्रूषेण्यः (शुश्रूषितव्यः ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
सायम्	संध्यासमये	सायं संध्यामुपासीरन् ॥
सदा, सर्वदा,	सर्वस्मिन्काले	धर्मः सदा नरैः सेव्यः । सर्वदा सुखमासव्यम् ॥
सजूः, सुपत्	सहार्थे	सजूः, सुपदा गच्छन्ति भृत्याः ॥
स्रंसक्ला	हिंसायाम्	स्रंसकलाकृत्य ॥
सत्	आदरे	सत्कृत्य । सत्कृतम् । यत्सत्करोति ॥
सहसा	अतर्कितब-लात्कारयोः	(अतर्किते) सहसा करोत्ययं सदा (बलात्कारे) सहसा विदधीत न क्रियाम् ॥
सम्यक्	दृढ़प्रशंसयोः	(दृढ़े) सम्यग्धार्मिकः (प्रशंसायाम्) सम्यगध्यापकः ॥

ह

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
हन्त	हर्षविषादा-ऽनुकम्पावा-क्यारम्भे	(हर्षे) हन्त लाभो महान्प्राप्तः (विषादे) हन्त नष्टो बन्धुर्मे (अनुकम्पायाम्) हन्त दीनो रक्षितव्यः (वाक्यारम्भे) हन्त ते कथयिष्यामि ॥
ह	अवधारण-विनिग्रहा-र्थपादपूर्णेषु	(अवधारणे) अयमिदं ह करिष्यति (विनिग्रहे) अयं हेदं करोतु (पादपूरणे) तं हाऽध्यापयति प्राज्ञः॥
हि	हेतुपदेशा-ऽनुपृष्टाऽसू-याऽवधारण-पादपूरणवि-स्मयेषु	(हेतुपदेशे) इदं हि करिष्यति (अनुपृष्टे) कथं हि करिष्यति(असूयायाम्) कथं हि व्याकरिष्यति(अवधारणे) इदं हि कर्त्तव्यम् (पादपूरणे) अहं हि यास्यामि वरंपुरं तव (विस्मये) बलंहि वीरस्यसमीक्ष्यतो नराः ॥
हुम्	वितर्कपरि-प्रश्नयोः	(वितर्के) दुःखमिदानीन्तनेन धर्मेण हुं पुरातनेन (परिप्रश्ने) हुं देवदत्त त्वया किं किमधीतम् ॥
हिरुक्	वर्जनेऽर्थे ···	हिरुग्धर्मेण कुतः सुखम् ॥
हे, है,	सम्बोधने ···	हे विद्वन्नुपदिश । है अध्यापक पाठय ॥
ह्यस्	गतदिने ···	ह्यः, सखायं, समागच्छत् ॥
हाहा	खेदहास्ययोः	हाहा पुत्रो मृतो मे । हाहा तव का वार्त्ता ॥
हो	विस्मये ···	हो वीरेण बहुश्रुतम् ।

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
सुच्	क्रियाभ्यावृत्तिगणने	दिनस्य द्विरधीते, त्रिरधीते, चतुरधीते, एकस्मिन्दिने द्विवारं त्रिवारं चतुर्वारं वा पठतीत्यर्थः ॥
शस्	बह्वल्पार्थात् कारकात्	अल्पशो ग्रन्थानधीतवान् । अल्पानित्यर्थः । बहुशो वित्तं गृह्णन्ति बहुवित्तमित्यर्थः ॥
आम्	घप्रत्ययान्तात् किमादिभ्योद्रव्यप्रकर्षे	किन्तराम् । किन्तमाम् । पचतितराम् । जल्पतितमाम् । उच्चैस्तराम् ॥
	छन्दसि	प्रतरं नयामः ॥
	प्रतियोगे पञ्चम्यन्तात्	प्रद्युम्नः कृष्णात्प्रति ॥
	आद्यादिभ्य	आदितः । मध्यतः । अन्ततः ॥
	तृतीयाषष्ठी सप्तम्यन्तात्तुल्ये	स्थानिवत् । ब्राह्मणवत् । आद्यन्तवत् । इत्यादि ॥
ि,	पृथग्भाववाचिभ्यां विनञ्भ्यां स्वार्थे	विना, नाना ॥
	कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्त्तरि	भस्मी भवति । पात्री करोति ॥
	कृभ्वस्तियोगे ात्स्न्ये अभिविधौ तद्‌ान वचने च	भस्मसात्कुरुते । ब्राह्मणसात् करोति ॥
	दधीनवचदेयेषु	देवत्रा वसति । मनुष्यत्रा गच्छति । पुरुषत्रा वसति ॥
	ाक्षानुकद्दरजात्	पटपटा भवति । पटपटा करोति । दमदमा भवति । दमदमा स्यात् । इत्यादि ॥
		एतेषां ऋादिप्रत्ययानामन्यविशे

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
त्वन्,	कृत्यार्थे छन्दसि	कर्त्वं हविः (कर्त्तव्यम्) ॥
एश्,	”	नावचक्षे (नावख्यातव्यम्) ॥
क्त्वा	प्रतिषेधार्थं अलंखलुयोगे। समान कर्तृकयोःपूर्वकाले व्यतीहारे वा	अलं खलु वा कृत्वा। पठित्वा पाठयेत्। अपमित्ययाचते
तोसुन्	ईश्वर शब्दे उपपदेतुमर्थे भावलक्षणे स्थादिभ्योवाछंदसि	ईश्वरोऽभिचरितोः। अभिचरितुं समर्थ इत्यर्थः आसंस्थातोर्वेद्यां सीदन्ति ॥
कसुन्	ईश्वरशब्दे उपपदे भावलक्षणे वर्तमानयोस्सृपितृदोसुमर्थे	ईश्वरो विलिखः। विलिखितुं समर्थं इत्यर्थः ॥ पुराक्रूरस्य विसृपः (विसृमुमित्यर्थः) पुराजर्तृभ्यआतृदः आतर्दितुमित्यर्थः
णमुल्	वा छन्दसि शक्युपपदे वेदे समानकर्तृकयोः पूर्वकाले वा सर्वत्र	अग्निर्वैदेवा विभाजंनाशक्नुवन् (विभक्तुमित्यर्थः) स्मारं २ वेदवचोऽधीते। स्मृत्वा स्मृत्वेत्यर्थः ॥
कमुल्	शक्युपपदे छन्दसि	अग्निमपलुपं नाशक्नुवन्। अपलोप्तुमित्यर्थः ॥
तुमुन्	[illegible]र्थायां [illegible]	भोक्तुं व्रजति। भोजनायेत्यर्थः ॥

क्त्वा केभ्य इति कुतः। सर्वस्मात् सर्वाभ्याम् इत्यादि ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
आति	उत्तराधरदक्षिणादस्तात्यर्थे	उत्तरादधरादृदक्षिणाच्च वसति, आगतो, रमणीयं, चेत्यादि ॥
एनप्	सप्तमी प्रथमान्तादुत्तरादिभ्योऽस्तात्यर्थेऽदूरे ।	उत्तरेणाऽधरेण, दक्षिणेन, वसतीत्यादि ॥
आच्	सप्तमी प्रथमान्ताद्दक्षिणशब्दादस्तात्यर्थे	दक्षिणा, वसति, इत्यादि ॥
आहि	अस्तात्यर्थे दक्षिणाद्दूरे	दक्षिणाहि, वसन्ति, दूरे, इत्यर्थः ॥
असि	पूर्वादिभ्योऽस्तात्यर्थे	पुरोऽधोऽवध, वसतीत्यादि ॥
धा,	विधार्थे द्रव्यविचाले वा संख्यातः	एकविधं इत्येकधा, एवं द्विधा बहुधा, त्रिधा चतुर्धा, इत्यादि ॥
ध्यमुञ्,	उक्त धा प्रत्ययादेशोऽन्यतरस्यामेकशब्दतः	ऐकध्यम् ॥
धमुञ्	द्वित्रिभ्यां धा प्रत्ययादेशः	द्वैधम्, त्रैधम् ॥
एधाच्	द्वित्रिभ्यां धा प्रत्ययादेशो वा	द्वेधा, त्रेधा ॥
कृत्वसुच्	क्रियाभ्यावृत्तिगणने	पञ्चकृत्वोऽधीतोऽनुवाकः। पञ्चवारं कृत्वेत्यर्थः। एवमेव, षट्कृत्व इत्यादि ॥

अव्ययानि	अर्थाः	उदाहरणानि
सुच्	क्रियाभ्यावृत्तिगणने	दिनस्य द्विरधीते, त्रिरधीते, चतुरधीते, एकस्मिन्दिने द्विवारं त्रिवारं चतुर्वारं वा पठतीत्यर्थः ॥
शस्	बह्वल्पार्थात् कारकात्	अल्पशो ग्रन्थानधीतवान् । अल्पानित्यर्थः । बहुशो वित्तं गृह्णन्ति बहुवित्तमित्यर्थः ॥
आम्	घप्रत्ययान्तात् किमादिभ्योद्रव्यप्रकर्षे	किन्तराम् । किन्तमाम् । पचतितराम् । जल्पतितमाम् । उच्चैस्तराम् ॥
अम्	उक्तेर्थेछन्दसि	प्रतरं नयामः ॥
तसि	प्रतियोगे पञ्चम्यन्तात् आद्यादिभ्यश्च	प्रद्युम्नः कृष्णात्प्रति ॥ आदितः । मध्यतः । अन्ततः ॥
वति	तृतीयाषष्ठीसप्तम्यन्तात्तुल्ये	स्थानिवत् । ब्राह्मणवत् । आद्यन्तवत् । इत्यादि ॥
ना, नाञ्,	पृथग्भाववाचिभ्यां विनञ्भ्यां स्वार्थे	विना, नाना ॥
च्वि	कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि	भस्मी भवति । पात्री करोति ॥
साति	कृभ्वस्तियोगे कार्त्स्न्ये अभिविधौ तदधीन वचने च	भस्मसात्कुरुते । ब्राह्मणसात् करोति ॥
त्रा,	तदधीनवचने देये	देवत्रा वसति । मनुष्यत्रा गच्छति । पुरुषत्रा वसति
डाच्	अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धात्	पटपटा भवति । पटपटा करोति । दमदमा भवति दमदमा स्यात् । इत्यादि ॥
		एतेषां सुजादिप्रत्ययानामन्यदपि विशेषतोऽष्टाध्याय्यां द्रष्टव्यमिति ॥